जैन साहित्य एवं मंदिर उपकरण

हमारे यहाँ सभी प्रकार का दिगंबर जैन एवं भारत के सभी प्रमुख धार्मिक संस्थानों का सत साहित्य एवं मदिर में उपयोग हेतु उपकरण और प्रभावना में बाटने योग्य सामग्री सीमित मूल्य पर उपलब्ध है !

शुध्द चांदी के उपकरण आर्डर पर निर्मित किये जातें है!

(पांडुशिला, सिंघासन , छत्र , चंवर प्रातिहार्य , जापमाला , मंगल कलश, पूजा बर्तन चंदोवा, तोरण, झारी)

नोट :- हमारे यहाँ घरो मे उपयोग हेतु , साधुओं के उपयोग हेतु, अनुष्ठानो मे उपयोग हेतु शुध्द देशी घी भी आर्डर पर उपलब्ध कराया जाता है !

Contact:-
Sourabh Sagar Indore
9993602663
7722983010
sourabhjn1989@gmail.com

जैन

जयजिनेन्द्र

गाय का शुद्ध देशी घी

शुद्धता पूर्वक बनाया गया देशी घी

साधु व्रती एवं धार्मिक अनुष्ठानो को ध्यान में
रख कर बनाया गया शुद्ध देशी घी

घी ऐसा के दिल जीत जाये !

अब 1kg की पैकिंग में भी उपलब्ध

संपर्क सूत्र

Contact For Order

Sourabh Sagar Indore

Call & Whatsapp:

9993602663,7722983010

All India Home Delivery

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

क्रम सख्या

काल नं०

खण्ड

Mānikachandra
Digambara Jaina Granthamālā
No. 40

To

My Grand-father

Who quietly passed away, a few days back,
at the ripe age of about one hundred & five.

—EDITOR

Mānikachandra D Jaina Granthamālā, No 40.

JATĀ SIMHANANDI'S

VARĀṄGACARITA

(A Sanskrit Purānic Kāv,a of A D. 7th Century)

Edited for the first tim from two palm-leaf Mss. with Various Readings a critical Introduction, Notes, etc.

BY

Prof A N. UPADHYE, M. A.

Rajaram College, Kolhapur.

PUBLISHED BY

The Secretary, Mānikachandra D. Jaina Granthamālā,
Hirabag, Bombay 4.

1938

Price Rupees Three

काव्यानुचिन्तने यस्य जटाः प्रचलवृत्तयः ।
अर्थान्स्मानुवदन्तीव जटाचार्यः स नोऽवतात् ॥

जिनसेन, आदिपुराण १–५०.

माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमालायाः
चत्वारिंशो ग्रन्थः

श्री-जटासिंहनन्दि-विरचितं

वराङ्गचरितम्

उपाध्यायोपाह्व - आदिनाथेन
संशोधनात्मकया प्रस्तावनया टिप्पण्यादिभिश्च
समलंकृतं संपादितं च

प्रकाशिका
माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमाला-समितिः
हीराबाग, मुम्बापुरी ४

वीरनिर्वाण संवत् २४६५

रूप्यकत्रयम्

प्रकाशक

पं. नाथूराम प्रेमी,

मंत्री, माणिकचन्द्र दिगंबर जैनग्रंथमाला, हीराबाग, बंबई ४

First Edition 1938

प्रथमा आवृत्ति., वि. सं. १९९५

मुद्रक

रघुनाथ दीपाजी देसाई, न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,

बंबई ४, पृ. 56 88, १–३६४.

मंगेश नारायण कुलकर्णी, कर्नाटक प्रेस,

चीरा बाजार, बंबई २, पृ i–xvi, 1-56, 365–396.

CONTENTS

प्रकाशकका निवेदन ix

PREFACE xi–xiv

INTRODUCTION 1–56

1 Critical Apparatus . 1

2 Text-constitution 5

3 Authorship of the Poem 8

4 Jaṭā-Siṃhanandyācārya 13

5 His Date and other Works . 19

6 Varāṅgacarita A Critical Study 24–53

i) Analysis of the Contents 24

ii) A Dharmakathā with some Kāvya features 27

iii) Dogmatical Details in Varāṅgacarita 29

iv) Polemic Discussions 32

v) Some Details viewed in contemporary Socio-political Back-ground 35

vi) Aśvaghosa and Jaṭila 39

vii) Varāṅgacarita and Later Jaina Authors 41

viii) Grammatical Peculiarities of Varāṅgacarita 42

ix) Metres in Varāṅgacarita 48

x) Style of Varāṅgacarita 51

7 Four Other Varāṅgacaritas 53–56

i) Vardhamāna's Varāṅgacarita in Sanskrit 53

ii) Dharaṇi Paṇḍita's Varāṅgacarita in Kannaḍa 55

iii) Lālacanda's Varāṅgacarita in Hindī 55

iv) Kamalanayana's Varāṅgacarita in Hindī 56

अंग्रेजी प्रस्तावनाका हिंदी सार 57-79
विषयानुक्रमः 80-88
वराङ्गचरितम्—Text with Foot-notes १–३१२
वराङ्गचरितपद्यानां वर्णानुक्रमसूची ३१३–३६२
NOTES 363–383
INDEX OF PROPER NAMES IN THE TEXT 384–388
ADDENDA ET CORRIGENDA 389–392

प्रकाशकका निवेदन

न्यायकुमुदचन्द्रके बाद मा० ग्र० मालाका यह चालीसवाँ ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। न्यायकुमुदका अन्तिम भाग प्रेसमें जा रहा है जो संभवतः आगामी वर्षके अन्त तक प्रकाशित हो जायगा, और क्रमानुसार उसका नम्बर ३९ होगा।

दिगम्बर जैन-सम्प्रदायके उपलब्ध संस्कृत कथा-साहित्यमें जहाँ तक मैं जानता हूँ रविषेणके पद्मचरितको छोड़कर और कोई ग्रन्थ इससे प्राचीन नहीं है। आचार्य जिनसेन (प्रथम) के हरिवंशपुराणके उल्लेखके आधारपर सबसे पहले, लगभग २० वर्ष पहले, मैंने वरांगचरितकी ओर विद्वानोंका ध्यान आकर्षित किया था, परन्तु उस समय यह रविषेणकृत समझ लिया गया था। सबसे पहले प्रो. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय, एम. ए. ने इस ग्रन्थके पता लगानेका प्रयत्न किया, और इसका एक सर्ग पूनेके भाण्डारकर प्राच्यविद्यासंशोधन मन्दिरके त्रैमासिकमें प्रकाशित करके बतलाया कि यह वही वरांगचरित है जिसका हरिवंशमें उल्लेख है परन्तु इसके कर्ता रविषेण नहीं किन्तु आचार्य सिंहनन्दि या जटाचार्य हैं। तब मैंने उपाध्यायजीसे प्रार्थना की कि यदि आप इस ग्रन्थकी एक दो प्रतियाँ और भी तलाश करके सम्पादित कर दें, तो मैं इसे मा० ग्रन्थमालामें प्रकाशित करनेका प्रबन्ध कर सकूँगा। उपाध्यायजीने इसे स्वीकार तो कर लिया परन्तु प्रतियाँ जब तक न मिलें तब तक कार्यका प्रारंभ कैसे हो? कारंजाके भंडारोंकी दो प्रतियोंका हम लोगोंको पता लग गया था, और आशा भी थी कि वे किसी न किसी तरह प्राप्त की जा सकेंगी, परन्तु हमारे सब प्रयत्न व्यर्थ हुए। ग्रन्थमालाके शुभचिन्तक प्रो० हीरालालजी जैन एम्० ए०, पं० देवकीनन्दनजी शास्त्री और सिंघई पन्नालालजी आदि भी कारंजाके पुस्तकाध्यक्षोंपर अपना प्रभाव डालकर इस कार्यको न कर सके। यह भी न हो सका कि कारंजामें ही प्रेस-कापीका मिलान कर लेने दिया जाय। लाचार उपाध्यायजी स्वयं अपने सतत प्रयत्नसे अन्यत्रकी जिन दो प्रतियोंको प्राप्त कर सके उन्हींके आधारसे उन्हें इस ग्रंथको सम्पादित करना पड़ा।

ग्रन्थ कितने परिश्रम और सावधानीसे सम्पादित हुआ है, यह विद्वान् पाठक स्वयं ही इसका स्वाध्याय करके निर्णय कर लेंगे। मुझे तो इतना ही कहना है कि उपाध्यायजी आधुनिक ग्रन्थ-संशोधन-कलामे बहुत ही कुशल है, और उन्होंने जैनसमाजके विद्वानोंके सम्मुख इस बातका आदर्श उपस्थित किया है कि प्राचीन ग्रन्थोंका सम्पादन किस प्रकार होना चाहिए।

उनकी इस योग्यताके ही कारण बॉम्बे यूनिवर्सिटीने इस ग्रन्थके प्रकाशन कार्यमें २५० ढाई सौ रुपयोंकी सहायता देकर ग्रन्थमालाके गौरवको बढाया है। इसके लिए ग्रन्थमालाके प्रकाशक युनिवर्सिटीके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते है।

अन्तमे हम जैनसमाजके धनी-मानियो और साहित्यप्रेमी विद्वानोंका ध्यान ग्रन्थमालाके आर्थिक सकटकी ओर आकर्षित करते है जिसके कारण उसके प्रकाशक अतिशय चिन्तित हो रहे है, और उन्हें इस समय अपना कार्य एक तरहसे स्थगित-सा कर देना पड़ा है। महाकवि पुष्पदन्तके महापुराणका एक ही खड आदिपुराण प्रकाशित हो सका है। उसके दो खड अभी और बाकी है। इसके सिवाय कई अलभ्य और अश्रुतपूर्व ग्रन्थोंकी पूर्व-तयारी की जा चुकी है, फिर भी उन्हें प्रेसमें नही दिया जा सका है।

ग्रन्थमालाके पूर्व प्रकाशित ग्रन्थोंका स्टॉक बढ़ता जा रहा है। बिक्री नही हो रही है। यदि कमसे कम बड़े बडे मन्दिरोंके पुस्तक-भडारोंमें ग्रन्थमालाका एक एक सेट ही खरीद कर रख दिया जाय, तो उनकी बिक्रीसे ही यह आर्थिक संकट टल सकता है।

जैन-समाजको सरस्वतीमाताके जीर्णोद्धार-कार्यमें इतनी उपेक्षा तो नहीं करनी चाहिए।

निवेदक,

हीराबाग, बम्बई
२७-१२-३८

नाथूराम प्रेमी,
मंत्री

PREFACE

As late as 1933, *Varāṅgacarita*, which is referred to as an attractive composition by Jinasena in his *Harivaṁśa* (A.D. 783), was merely a name to us, and by mistake it was attributed to Ravisena, the author of *Padmacarita*. After discovering an anonymous Ms of *Varāṅgacarita* in Kolhapur, I contributed a paper to the *Annals* of the Bhandarkar Oriental Research Institute, vol. XIV, parts I-II, in which the following points were clearly brought out there was no *Varāṅgacarita* of Ravisena, Jatilamuni wrote one *Varāṅgacarita* which is preserved in the anonymous Ms, and this Jatilamuni, Jatācārya or Jatāsimhanandi flourished earlier than A.D. 778.

This new find was warmly welcomed, and my researches about its authorship and date were much appreciated. Some of my friends repeatedly pressed me to bring forth a complete edition of it. To publish the text of such an old poem from a single Ms was not advisable, so I had to wait for some more material to fulfil the desire of my friends

I learnt that there are two Mss of this poem in the Karanja Bhandāras from the *Catalogue of Sanskrit and Prākrit Mss. in the C. P. and Berar* (Nos 7862-3) Pt PREMI and myself tried our utmost to get their transcripts, but all our efforts failed Even the variant readings of the first canto could not be available to us despite the kind efforts made on our behalf by eminent persons like Pt DEVAKINANDAN and Prof HIRALAL The attitude of the custodians of these Bhandāras stands self-condemned. Such people will be remembered as pious iconoclasts

whose orthodoxy, as time passes on, will destroy many valuable Mss. to which even light and air are denied.

By about the middle of 1936 I got the happy news from Mr. D L. NARASIMHACAHAR that an old palm-leaf Ms. was just received in the Government Oriental Library, Mysore. It was through the kind offices of Mr. N. ANANTHARANGACHAR that I could get a faithful transcript of it within a short period of time. The present edition of the text is based on these two Mss. which unfortunately belong to the same family. As the material was limited and defective, I had to proceed with utmost conservatism in presenting the text. My modest ambition was to rescue this old text from oblivion, and I hope that this *editio princeps* of *Varāngacarita* will be received by scholars for what it is worth.

The Introduction is devoted to the various important problems connected with the study of *Varāngacarita*. After a critical description of the Ms. material. I have explained the procedure of text-constitution adopted by me. The very nature of the material demanded many emendations. I have offered them in my humble way either in the square-brackets in the foot-notes or in the Notes at the end. Then the authorship of the poem is determined with the help of external evidence, and the date and the personality of Jatilamuni are fully discussed in the light of various references from Sanskrit, Prākrit and Kannada works. In the critical study of the various aspects of *Varāngacarita* the contents are analysed and the Kāvya features of the poem are noted. Dogmatical and polemical sections are separately summarised, and the attention of the reader is drawn to the contemporary socio-political back-ground of the poem. There are many common points between Aśvaghosa's Kāvyas and

Varāṅgacarita. In spite of the defective material at our disposal, our text shows certain grammatical peculiarities which are akin to what we call Epic Sanskrit. Metres used in this work are tabulated, and lastly some remarks are made on the style of *Varāṅgacarita.* The concluding section is occupied by the study of four other *Varāṅgacaritas,* one in Sanskrit, one in Kannaḍa and two in Hindī.

The Notes at the end are not in any way explanatory but merely textual. They simply record the difficulties which the editor had to face in constituting the text and some useful emendations that suggested themselves to him. All such emendations are bound to be tentative till they are confirmed by actual readings from new Mss.

I must record my sense of respect and gratitude to Svasti Śrī LAKSHMISENA BHATTARAKA, Kolhapur, for kindly placing Ms. *Ka* at my disposal. I am much obliged to my friends Mr. D. L. NARASIMHACHAR, M.A. and Mr. N. ANANTHARANGACHAR, M.A., B.T., Mysore, whose prompt and kind coöperation was of great value to me in getting the transcript of the Mysore Ms. Thanks are also due to Pt. JINADAS, Sholapur, Prof. K. G. KUNDANGAR, Kolhapur, and Mr. N. L. RAO, M.A., Asst. to the Govt. Epigraphist for India, Ootacamund, for some of their suggestions; to Mr. N. R. ACHARYA, Bombay, for checking the press-corrections from my proofs; to Pt. KAILASCHANDRAJI, Benares, for preparing the Hindi summary of my Introduction; and to Mr. K. P. JAINA, Aliganj, and Mr. PANNALAL JAINA, Delhi, for sending me the extracts etc. from Hindī *Varāṅgacaritas.* I am very thankful to my friend Mr. K. J. DIKSHIT, B. A., B.T., Sangli, who carefully read the text and offered some

valuable suggestions which I have incorporated in the Notes. It was very kind of the Director, Archæological Department, Nizam's Government, to have allowed us to include the photograph of the Kopbāl inscription in this volume.

Words are inadequate to express my sense of obligation to Pt NATHURAM PREMI, Bombay, but for whose encouragement I would not have been able to publish this work Some twenty-five years back, it was he who drew the attention of scholars to the existence of a *Varāṅgacarita* , and to-day, with almost a personal interest, he shouldered the responsibility of publishing this work, though the funds at the disposal of the Mālā were very meagre. Thanks are also due to Sheth THAKURDAS BHAGWANDAS JHAVERI who takes sincere interest in the progress of the Mālā.

The editor acknowledges his indebtedness to the University of Bombay for the substantial financial help it has granted towards the cost of the publication of this book.

In placing this work in the hands of Sanskritists it is a consolation for the editor and the publisher that a Sanskrit Purānic Kāvya of the last quarter of the 7th century A.D is brought to light , and its author, whose personality and identity were almost forgotten, is rescued from oblivion.

karmanyevādhikāras te :

Rajaram College, Kolhapur :
December 1938.

A. N. UPADHYE

BY THE SAME AUTHOR

1. **Pamcasuttam** of an Unknown ancient writer: Prākrit Text edited with Introduction, Translation, Notes with Copious extracts from Haribhadra's Commentary, and a Glossary Second Ed, revised and enlarged, Crown pp. 96, Kolhapur 1934.

2. **Pravacanasāra** of Kundakunda, an authoritative work on Jaina ontology, epistemology etc. Prākrit text, the Sanskrit commentaries of Amrtacandra and Jayasena, Hindī exposition by Pāṇḍe Hemarāja: edited with an English Translation and a critical elaborate Introduction etc. New Edition, Published in the Rāyachandra Jaina Sāstramālā vol. 9, Royal 8vo pp. 16+132+376+64, Bombay 1935.

3 **Paramatma-prakāsa** of Yogīndudeva. An Apabhramśa work on Jaina Mysticism. Apabhramśa text with various readings, Sanskrit Tīkā of Brahmadeva and Hindī exposition of Daulatarāma, also the critical Text of **Yogasāra** with Hindī paraphrase edited with a critical Introduction in English. New Ed., Published in the Rāyachandra Jaina Śāstramālā vol 10, Royal 8vo pp. 12+124+ 396, Bombay 1937.

INTRODUCTION

1. Critical Apparatus

This edition of *Varāṅgacarita* is based on two palm-leaf Mss that were available, and their critical description is given below

Ka (क) This palm-leaf Ms, measuring 13 5″ × 2″ × 2″, belongs to Śrī Lakṣmīsena Matha, Kolhapur (No 155, also 195, *Varāṅgacarita, Saṃskṛta*) It contains 144 leaves (= 288 pages), each page has eight lines and each line about 55 letters It is written in Old-Kannada script, and the hand-writing is uniform and fairly beautiful The Ms is well preserved and is in good order Only one leaf, No 30, is broken across It has some lacunae here and there The copyist is careful, but his copy appears to have inherited some mistakes from the original Now and then intelligent corrections are made in a new hand-writing As it is usual in Old-Kannada Mss, short and long *i*, *u* and *e* are not distinguished Here *dh* and *th* are generally represented by *da* and *ta*, and very often *p* and *y* are interchanged When *r* is the first member of a conjunct group, the other consonant is written as double *vīryya*, *dharmma* etc The three sibilants are often confused, and *l* is usually put for *l*

The Ms opens thus

श्रीमदादिब्रह्मणे नमः । निर्विघ्नमस्तु ॥ अर्हन्त्रिलोक..... ,

and the concluding passage, at the close of thirty-first canto, runs thus

स्वस्ति श्रीविजयाभ्युदयशालिवाहनशकवर्षे १६५८ नळनामसंवत्सरे कार्तिकमासे कृष्णपक्षे चतुर्दशीतिथौ मन्दवारयुक्तायां श्रीरङ्गपत्तनप्रविराजमानश्रीमदादिनाथ

श्रीवीरनाथस्वामिपादाम्भोरुहयुग्मसंनिधौ श्रीमदभिनवचारुकीर्तिपण्डिताचार्यवर्यानुज्ञया पोमण्णोपाध्यायस्य प्रियपुत्राय अण्णैय्योपाध्यायाय पायिसेट्टिपुत्रेण पार्श्वाह्वयेण मया लिखित्वा दत्तमिद वराङ्गचरितमिति मङ्गलमहा श्री ६ ।

Thus this Ms was written by Pārśva, the son of Pāyisetti, for Annayya Upādhyāya, the son of Pomanna Upādhyāya, with the permission of the contemporary Cārukīrti Panditācārya, at Śrīrangapattana, on Mandavāra, the 14th of the black-half of the month of Kārtika, Śālivāhana Śaka 1658, the name of the year being Nala Śrīrangapattana is the present Seringapatam near Mysore, Cārukīrti is the permanent title of the Bhattāraka of Śravana Bĕlgol Matha, and a salutation to him at the beginning of the fourth canto in this Ms is not without some significance The date corresponds with Saturday, 20th November, A D 1736 So our Ms is 202 years old and comes from Mysore territory This was the first Ms. of *Varāngacarita* that I discovered in 1930, and subsequently wrote a detailed paper on it in the *Annals* of the Bhandarkar Oriental Research Institute, XIV, 61-79

Ma (म) This is a faithful transcript of the palm-leaf Ms of *Varāngacarita* belonging to the Jaina Matha at Śravana Bĕlgol Through the good offices of Mr N ANANTARANGACHAR the palm-leaf Ms has been lately procured for the Oriental Library, Mysore The Ms measures 23½ by 1¼ inches and the written portion 22 by 1¼ inches It contains 109 leaves written on both sides There are six lines on each side and roughly about 90 letters in each line Every chapter opens with Śrī and a salutation to Vītarāga or some Tīrthakara which possibly belongs to the copyist There are lacunae here and there.

The concluding lines of the copyist run thus

स्वस्ति श्रीशकवर्षे १३८० बहुधान्यसंवत्सरे मार्गशिरमासे शुक्लपक्षचतुर्दश्यां रविवारयुक्तायां भल्लातकपुराभिधानमहापत्तने श्रीनेमितीर्थेश्वरमहाचैत्यालये मातृकामनतिक्रम्य यथा स्थितं तथैव लिखितम् । पुस्तकमिद लेखकशिरोमणिना ओडयप्पविप्रेण

लिखितमिदं पुस्तकं तत्सर्वं क्षम्यतां बुधैरिति लेखकस्य मम प्रार्थना ॥ शुभ भवतु ॥ मङ्गलं चास्तु ॥ भद्रं भूयाज्जिनशासनाय ॥ श्रीनेमिनाथाय नमः ॥ श्रीवीरसेनमुनये नमः ॥ ॥

Thus this Ms. was written and finished by the priest Ōdayappa who styles himself as *lekhaka-śiromani*, an expert copyist. at Bhallātakapura, on Sunday the 14th day of the bright half of the month of Mārgaśira in the year Bahudhānya, Śaka 1380. Bhallātakapura is the present Gersoppa[1] which is famous for Joag Falls and which, I am told, possesses Jaina cultural relics in the form of typical temples with beautiful images The date corresponds with Sunday, 19th of November, A D 1458 This Ms is 480 years old

I have not handled this palm-leaf Ms, but my readings etc are based on a faithful transcript of it kindly supplied to me by Pt N ANANTARANGACHAR of the Oriental Library, Mysore

Some more details about Ma and Ka may be noted here. These Mss show a tendency of retaining *visarga* before *k* and *p* where ordinarily it is changed to *s*. Both of them read *sanmāna* for *sammāna*. In canto xxvi, verse No 65 is found only in Ka, and verse No 76, the same as No 81 below, only in Ma In three places arrangement of lines into stanzas, possibly due to the loss of some line or lines, is much confused
i) Between vii 18 and vii 23 there should be in all sixteen lines, but both the Mss have only fourteen lines distributed over three verses Ka puts six lines in No 21 and Ma also shows nearly the same arrangement though two lines are left without numbering after No 21 It is impossible to construe the verses as they stand, so I have shown blank space for lines 3 & 4 in No 19 and then distributed the remaining lines.
ii) In both the Mss. there are only eleven lines between xx 2

1 R NARASIMHACHARYA · *Karnāṭaka Kavicarite* Vol II, p 228

and xx 6 Nos 3 & 4 have four lines each, while No. 5 has only three This arrangement is syntactically impossible and gives no sense I have shown, however, the 4th line of No. 3 as blank which makes the position quite clear iii) Some two lines being lost somewhere the arrangement of verses xxiv 63-72 is much unsatisfactory In verse No 70 Ka has only two lines *svapurārjita varnayanti*, while Ma has only two in No 71 *bahukoti praśāsti* A close study of this portion tempted me to keep the first two lines of No 64 blank and then assign the remaining lines to different verses

There are many identical lacunae in both the Mss, for instance i 62, 70, vi 54, xvi 72, xvii 76, 78, xviii 130, xx 27 xxiv 22, 23, 40, xxv 27, 49, xxix 21, xxxi 48 etc In textual accuracy Ma is superior to Ka, but comparatively there are more lacunae in Ma (for instance xiv 98, xvi 72, xvii 70, 71, 72, 74, 75, 76, 78, 80, 82, 84, 86, xviii 1, 3, 5, xxii 59, 62, xxiv 40 etc), but most of them I could fill by the readings given by Ka Some lacunae in Ka are filled by a subsequent hand, at times even incorrectly For instance in xx 27 there is a gap of two letters, and Ka supplies in the margin a reading *jayaiḥ* which is not quite satisfactory, in xvii 76 Ka has no gap as in Ma, but the reading of Ka is far from being satisfactory From the transcript I see that Ma once gives a *v l* on ix 10, possibly it is from the margin of the palm-leaf Ms The number of cases of Ma filling the gaps of Ka is negligibly small, almost nil.

Compared with Ka, Ma is older by 278 years, it preserves better readings, and it contains less scribal errors though the number of lacunae in it is greater Ma was written at Gersoppa and Ka at Seringapatam thus both of them come from Karnāṭaka They are closely associated with the Jaina Matha at Śravana Belgoḷ in the Mysore territory Ma belonged to that Maṭha before it was brought to Mysore, and Ka was copied with the permission of the contemporary Bhaṭṭāraka of that

Maṭha Ka has one verse not found in Ma (xxvi. 65) ; in some places Ka supplies satisfactory letters and words where Ma has gaps (xvii. 70, 71 etc); and Ka has many readings quite independent of Ma (see for instance the readings on vi. 43, xiii 41, xvi 18, xix 11 etc) These facts are enough to show that Ka is not a direct copy of Ma. Then some other points also will have to be taken into account · between the two Mss there are many common lacunae as noted above , there are some significant errors in both (see vi 19 , vii. 13 ; xii 27 , xiii 40, 58 , xiv 26 , xv 105 , xx. 71 , xxii 69 ; xxiv 4 , xxx 47 etc) , at the opening of canto xxx there is a salutational verse in both possibly belonging to the copyist. These facts indicate that Ka is not absolutely independent of Ma Under these circumstances I am inclined to believe that both Ka and Ma had a common predecessor in an old Ms some generations back The greater number of lacunae in Ma might indicate that the immediate predecessor of Ma was a faulty Ms being eaten by worms etc It is very difficult to say whether any intelligent copyist has filled the gaps in Ka or in its predecessor

2. Text-Constitution

The editor had to work with the limited material supplied by these two palm-leaf Mss which belong to the same family They are distant members of the same group. This limited material too has its own defects Genuine variants as such are very few. Most of the divergent readings are like the guesses and the slips of scribes. When the text is difficult or obscure the number of readings increases We have more variant readings at the beginning of the work than at the close of it :

perhaps many novices studied some opening cantos of *Varāṅgacarita*. In philosophical sections, for instance canto xxiv, the text is obscure in many places and baffles one's wits There are many gaps in the text , variants, even though available, are not of much help , and very often both the Mss unite to commit a palpable error. The work is pretty old , the Ms tradition is insufficient and defective , and there is no commentary available on this work The text is being edited for the first time, and as such I had no opportunities of availing myself of the suggestions of earlier workers Lastly, no other work of this author has come to light, a close study of which would have helped the editor to understand the textual peculiarities in a better manner

Under these circumstances I have proceeded with utmost caution and conservatism By mutually collating Ka and Ma, many scribal, orthographical and other errors were eliminated The spelling and other features of the text are presented in a standardised form Common lacunae are retained In some cases signs of short and long vowels are added by me in square brackets When there was a gap only in one Ms , it has been filled by readings supplied by the other This eclectic method I have adopted, because both the Mss belong to the same family When there was a disagreement, I have adopted a convenient reading in the text and relegated the other to the foot-notes Sometimes it will be seen that meaningless variants are noted with a view that they might be useful to conjecture the correct original When the text is apparently corrupt, I have put question marks in a few cases As far as possible I have not trespassed the material supplied by the Mss , and even in keeping myself within that limit I had to use my discretion now and then When there is an agreement between both the Mss even on plain errors, I have proceeded thus the readings are left as they are, but in the foot-notes, within square brackets, I have suggested what might have

been the probable original of the corrupt readings. Now and then I had occasions to discuss these corrupt readings with many of my friends who were kind enough to make some suggestions here and there Such suggestions together with those that occurred to me later and other points which I had to face in settling the text I have included in the Notes at the end In handling the Mss material such readings do suggest themselves to anyone from the recognised grammatical, metrical and syntactical needs, from the peculiarities of the script, and from the metathetical, haplographical and other errors to which the scribes are often liable I may explain a few cases here by way of illustration In iv. 47 Ka reads *sacalah kṣanatah*, and Ma reads *sa ca laksanatah*, but both of them do not mean anything Taking the sense into consideration and remembering that *c* and *v* could be confounded both in Devanāgarī and Kannada I have suggested [*śavalah*] as the possible correct reading In vii 13 *prakrsta-kārandavaham vasanti* is only a metathetical corruption of [°*kārandava-hamsavanti*] In xii 27 *drastum naram prāni* is certainly a scribal corruption of [*drastum na randhrāni*] as judged from Nos 25-6 above In xx 71 *nrpatayā* is only a contaminated error for [*pṛtanayā*], which gives the necessary sense In xxx 47 *tato'thā puri vāprasamgāh*, which is found in both the Mss, is decidedly a corrupt reading Taking into consideration that *p* and *y* are often confused in this Ms and that *v* could be read for *th*, I have suggested [*tato vāyurivālpasamgāh*] which, I think, gives a suitable sense My emendations in the square brackets and in the Notes are only tentative ; and I do not claim them to be final These suggestions are made more or less to eliminate the errors of copyists and not to improve on the author. As they are put in the foot-notes and separately in the Notes, they do not hinder better suggestions from others. Some of my Śāstric friends suggested to make these corrections freely in the text by relegating the corrupt readings to the foot-notes

and to regularise the grammatical angularities of the text according to *Siddhānta-kaumudī*. But, in view of the antiquity of the work and the insufficient and unsatisfactory character of the material, I have diligently refrained from taking any such steps, which, at this stage, would be a handicap to subsequent workers. I have, however, pointed out some grammatical irregularities in the Notes Thus, in this edition, I have given a faithful record of the text-tradition from the two available Mss and presented the text as satisfactorily as it was possible for me within the limitations of the material

3 Authorship of the Poem

Both the Mss do not mention the name of the author anywhere Neither in the colophons of various cantos nor in the concluding verses of any canto has the author mentioned his name or any personal details Anything like a praśasti is not found in either of the Mss I have not been able to lay my finger on any significant words in the concluding verses of any canto which might indirectly hint the author's name The two words *viśālakīrti* and *rājasiṃha* in i 89 do catch our eye, but there is no need of forcing any special significance out of them, because such words do not occur at the close of other cantos

In the absence of any clue from the text, we shall have to search for some external evidence to settle the authorship of *Varāṅgacarita*

i) Jinasena, in his *Harivaṃśa-purāṇa*[1] (A D 783), refers to *Padmacarita* and *Varāṅgacarita* in these two verses :

1 Māṇikachandra Digambara Jaina Granthamālā Vols 31-2, Bombay 1930

कृतपद्मोदयोद्योता प्रत्यहं परिवर्तिता ।
मूर्तिः काव्यमयी लोके रवेरिव रवेः प्रिया ॥
वराङ्गनेव सर्वाङ्गैर्वराङ्गचरितार्थवाक् ।
कस्य नोत्पादयेद्गाढमनुरागं स्वगोचरम् ॥ I. 34–35.

Thus in the first verse Ravisena is suggested as the author of *Padmacarita*.[1] The second verse is not syntactically connected with the first, and it can be rendered thus 'In whom will not the style of *Varāṅgacarita*, which is pregnant with sense arouse, with all its factors, deep passion for itself, just in the wise of a lovely damsel who arouses, with all her limbs, deep passion for herself—a damsel whose speech has its purpose done through her excellent limbs?' It is a self-sufficient verse describing only the merits of *Varāṅgacarita* without mentioning the name of its author.[2]

ii) Uddyotanasūri, in his *Kuvalayamālā*[3] (A D 778), has a verse like this

---

1 Ibidem Vols 29-30, Bombay Samvat 1985

2 Pt PREMI took these verses together and suggested in his *Vidvadratnamālā* (Bombay 1912), p 43, that Ravisena had written a *Varāṅgacarita* besides his *Padmacarita* Later on in a short article in *Jaina Hitaishi* Vol 15, p 104, and in his Introduction to the edition of *Padmacarita* he quoted the verse from *Kuvalayamālā* with its defective readings. As I have shown elsewhere (*Annals* of the Bhandarkar Oriental Research Institute Vol. XIV, parts i-ii, pp 61-79), the attribution of *Varāṅgacarita* to Ravisena has to be given up for the simple reason that of the two evidences put forth by him one is insufficient since it does not mention the name of the author at all and the second goes completely against him. It gives me great pleasure to note that Pt PREMI, a sportsman-like scholar as he is, has already corrected himself and accepted the view stated above in his Hindi summary of my article which he published in *Jaina Jagat*, February 1933.

3 *Catalogue of Mss. in Jesalmere Bhandārs*, Gaekwad's Oriental Series, Vol XXI, p 42

जेहिं कए रमणिज्जे वरंग-पउमाण चरियवित्थारे ।
कह व ण सलाहणिज्जे ते कइणो **जडिय-रविसेणो** ॥

It is clear from the words *jehiṁ*, *te*, *kaino* that he is referring to two poets, the authors of *Varānga-* and *Padma-carita*, and their names are to be detected in the phrase '*Jadiyaraviseno*' Pt PREMI wavered on the reading of the first part once he read *Jadiya* and a second time *Jaiya*[1] DALAL quotes an extract from *Kuvalayamālā* in his notes on *Kāvyamīmāmsā* of Rājaśekhara, and he also reads *Jadiya*[2] Taking the names respectively, Uddyotanasūri attributes *Padmacarita* to Ravi ṣena and *Varāngacarita* to Jadiya, which appears to be a wrong reading for Jadila, as we see from Dhavala's remark given below

iii) Then Dhavala, in his *Harivamśa* (circa A D 11th century) composed in the Apabhramśa dialect, refers to *Varāngacarita* thus[3]

मुणिमहसेणु सुलोयणु जेण
पउमचरिउ मुणिरविसेणेण ।
जिणसेणेण हरिवंसु पवित्तु
जडिलमुणिणा वरंगचरित्तु ॥

In quite plain terms Dhavala refers to *Sulocana-carita* of Mahāsena, *Padmacarita* of Ravisena, *Harivamśa* of Jinasena and *Varāngacaritra* of Jatilamuni. Though Jinasena is silent on the authorship of *Varāngacarita* Uddyotana and Dhavala are unanimous in attributing one to Jatila Now it remains for us to see whether Jaṭilamuni is the author of our *Varāngacarita* which is completely silent about its author

1 *Jaina Hitaishi* XV p 104, and his Introduction to *Padmacarita* p 3

2 Gaekwad's O Series No I, p 124 of the Notes, 3rd Ed. p 205

3 *Catalogue of Sk & Pk Mss in C P and Berar*, p 764.

iv) Cāmuṇḍarāya, the commander-in-chief and minister of Rācamalla (A.D. 974-84) has composed in Kannada prose one *Trisaṣṭi-śalākāpurusa-carita*, popularly known as *Cāmuṇḍa-rāya-purāna* (A D 978)[1] in which we find a passage like this .

नाल्कनेय कथेयबुदु द्रव्यमु क्षेत्रमुं कालमुं भावमु प्रकृतमुं तीर्थमुं फलमुमेंदु सप्तांगमक्कुं. अवरोळ् द्रव्यवेंबुदु जीवाजीवास्रवसंवरनिर्जरबंधमोक्षमेंब तत्त्वमनुळ्ळुदु. क्षेत्रमेंबुदु त्रैलोक्यं. कालमेंबुदु अतीतानागतवर्तमानात्मक त्रिभेदमु सुषमदुष्षमादि षड्भेदमनुळ्ळुदु भावमेंबुदु कर्मगळ क्षयदिनुपशमदि क्षयोपशमदिनप्पात्मन पर्यायं. प्रकृतमेंबुदु जीवादितत्त्वगळोळगावुदानुमोंदु विवक्षितमप्प वस्तु तीर्थमेंबुदु जिनपति चरित. फलमेंबुदु तत्त्वज्ञान. ऐंदनेय श्रोतृवेंबो **जटासिंहनंद्याचार्यर** वृत्त—

मृत्सारिणीमहिषहंसशुकस्वभावा
मार्जारकङ्कमशकाजजलूकसाम्याः ।
सच्छिद्रकुम्भपशुसर्पशिलोपमानास्ते
श्रावका भुवि चतुर्दशधा भवन्ति ॥

ईंतु प्रशस्ताप्रशस्तात्मकचतुर्दशविकल्प.[2]

The prose passage, it will be seen, is a close paraphrase of *Varāngacarita* i 6-7 , and the quotation is the same as the 15th verse of the first canto There is no doubt that Cāmunda-rāya is writing this portion with the verses of our *Varāngacarita* before him , and it is no wonder, if Cāmuṇḍarāya was tempted to mention the name of the author of that verse The phrase '*Jatāsimhanandyācāryara vrttam*' is not found in some of the Mss used for the Ed. of *Ādipurāna* of Cāmuṇḍarāya, and so the editors have relegated this phrase to the foot-notes A palm-leaf Ms of *Cāmundarāyapurāna* written in Śaka 1427

---

1 Published by Kārnātaka Sāhitya Parishad, Bangalore 1928

2 I have given this extract from an old palm-leaf Ms. belonging to Mr TATYASAHEB PATIL of Nandani which is with me at present. The printed text has some different readings here and there

(A.D. 1505) has this phrase along with the verse quoted, and I do not see any reason to doubt the genuineness of that phrase Thus the author of the above verse, and consequently of our *Varāngacarita,* is Jaṭāsiṁhanandyācārya according to Cāmun-ḍarāya's authority Further, I think, this Jaṭāsimhanandyā-cārya is the same as Jaṭācārya referred to in *Ādipurāna*[1] (c A D 838) by Jinasena thus

काव्यानुचिन्तने यस्य जटा. प्रचलवृत्तयः
अर्थान्स्मानुवदन्तीव **जटाचार्यः** स नोऽवतात् ॥ I. 50

In a marginal note of a Ms of *Ādipurāna* Simhanandin is given as the proper name of Jaṭācārya[2] Not only Jinasena refers to Jaṭācārya but draws a good deal of technical matter from *Varāngacarita* as shown below One is tempted to sur-mise from the above pieces of evidence that the name of our author was Simhanandi, and he was popularly known as Jaṭācarya perhaps from his long matted hair which 'shivered when he was deeply engrossed in his poetic compositions' Cāmundarāya calls him Jaṭā-Simhanandi possibly to distin-guish him from other Simhanandis that flourished before his time Jaṭila means one who has matted hair, and hence we can identify Jaṭācārya with Jaṭila, the latter being the author of *Varāngacarita* according to *Kuvalayamālā* and Apabhraṁśa *Harivaṁśa* Thus in conclusion we can say that this *Varāṅga-carita* is composed by Simhanandi, alias Jaṭā-Simhanandi, who was popularly known as Jaṭila or Jaṭācārya

1 The text is published with Marāṭhī translation (still in-complete) from Kolhapur, with Hindī rendering from Indore and with Kannaḍa translation (partly) once from Bangalore and once from Mysore

2 *Collected Works* of R G Bhandarkar, Vol II, p 272

4. JAṬĀ-SIṀHANANDYĀCĀRYA

Very little do we know about Jaṭā-Sımhanandı, Jaṭācārya or Jatıla In dıfferent centuries there have flourıshed ın Jaına hıerarchy many saınts and authors bearıng the name Sıṁhanandı Takıng a resumé of ımportant epıgraphıc and lıterary references, we can enumerate at least half a dozen Sımhanandıs, and about all of them we have got very scanty ınformatıon. ı) The most famous Sımhanandı, whose name ıs often mentıoned ın later ınscrıptıons and who ıs closely associated wıth the hıstorıcal tradıtıon of Karnātaka, ıs he who helped the two forlorn prınces to found the Ganga dynasty sometıme ın the 2rd century A D or so[1] ıı) At Śravana Bĕlgol there ıs an epıtaph of one Sınganandı who ıs assıgned to cırca Śaka 622 (A D 700)[2] ııı) One Sımhanandı, possıbly belongıng to Kānūrgana, ıs mentıoned ın some of the ınscrıptıons of the fırst quarter of the 12th century A D[3] ıv) Then one Sıṁhanandı, possıbly of the Nandıgana,[4] ıs mentıoned ın some of the ınscrıptıons of the last quarter of the 12th century A D It ıs not unlıkely ıf this reference stands for the famous Sımhanandı No 1 noted above. v) Further one Sımhanandı of Balātkāragana ıs mentıoned ın an ınscrıptıon of A D. 1371 which records the death of hıs pupıl[5] vı) At the tıme of Śrutasāgara, who flourıshed about the begınnıng of the 16th century A D, there was one Sımhanandı, a Bhaṭṭāraka of Mālava terrıtory, accordıng to whose advıce Śrutasāgara wrote hıs com-

1 B LEWIS RICE *Mysore and Coorg from the Inscriptions*, p 31, M S R AYYANGAR & B S RAO *Studies in South Indian Jainism*, p 109

2 *Epigraphia Carnatica* II No 32

3 *E C* VII Shimoga No 57, Ibidem Nos 4 & 64

4 *E. C* V Arsikere No 1 etc

5 *E C* VIII Sorab No 199

mentary on *Mahābhiseka*.[1] vii) Dhavala mentions one Simhanandi who wrote a work on twelve Anuprekṣās, but we do not know anything about him further.[2] The details about various Simhanandis are so scanty that it is often difficult to distinguish one from the other. However the facts noted above are enough to show that there were Simhanandis more than one. Even today the same name is borne by many Jaina monks, and in order to distinguish one from the other the names of their villages etc. are added to their names, for instance, Eděhalli Candrasāgara, Saragūra Candrasāgara and so forth. The name of Simhanandi who played some rôle in the foundation of Ganga dynasty was quite prominent in Karnāṭaka tradition, and it is perhaps to distinguish from him that Cāmundarāya calls our author Jaṭā Simhanandi.

Though his name had lately fallen into oblivion, Jaṭā-Simhanandi is mentioned with reverence for centuries together in Jaina literary tradition preserved in Sanskrit, Prākrit and Kannaḍa texts. According to Uddyotanasūri (A.D. 778) *Varāngacarita* is pleasing and its author Jaṭila worthy of respect. Jinasena I (A.D. 783) refers to *Varāngacarita* as perfect and fascinating. Jinasena II (*c.* A.D. 838) highly compliments the poetic flash of Jaṭācārya. Dhavala (*c.* 11th century A.D.) mentions Jaṭila and *Varāngacarita* in good company. These verses are already given above.

Turning to Kannada literature, Pampa in his *Ādipurāna* (Ed., Mysore 1900) which was completed in Śaka 863 (A.D. 941)[3] respectfully mentions Jaṭācārya in this manner:

1. Māṇikachandra D. J. Granthamālā Vol. 17, p. 7 of the Intro.

2. A. N. Upadhye: *Pravacanasāra* (Bombay 1935) Intro. p. 39 foot-note 1.

3. For the dates of Kannaḍa authors I have mainly followed *Kavicarite* I-III.

आर्यनुत-गृध्रपिंछा-
चार्य-**जटाचार्य**-विश्रुतश्रुतकीर्त्या-
चार्य-पुरस्सरमप्पा-
चार्य-परंपरेयें कुडुगें भव्योत्सवमं ॥ I. 12.

We have seen above how Cāmuṇḍarāya (A D 978) is indebted to *Varāngacarita* and gives a quotation from it plainly mentioning Jaṭā-Simhanandi as its author. Nayasena (A D. 1112), in his *Dharmāmrta* (Ed, Mysore 1924-26), refers to Jaṭā-Simhanandyācārya as an ocean of right conduct and endowed with many merits in the following verse

वर्यलोकोत्तमभोविसुवोडनघरत्युन्नतकोडकुदा-
चार्यचारित्ररत्नाकररधिकगुणमंज्जटासिंहनंद्या- ।
चार्यश्रीकूचिभट्टारकरुदितयशर्मिक्कपेपिगें लोका-
श्चर्यनिष्कर्मरेम्मं पोरमडिसुगें संसारकांतारदिद ॥ I 13.

Pārśvapandita, in his *Pārśvanāthapurāna* (A D 1205), praises the courageous monk Jaṭācārya in the following verse[1] which is somewhat obscure

बिदिरपोदर् तोलेयेनें तू-
गिदोडाबिदिजिनमुनिप-**जटाचार्यर** धै-
र्यद पेपु गेल्दुदु पस-
गदळुर्केयेनेनिसि नेगेदुमिगें मोगयिसिदं ॥ I. 14.

Janna (A D 1209) in his *Anantanāthapurāna* (Ed, Mysore 1930) refers to Jaṭā-Simhanandyācārya as one who has spread the excellent religion both among the princes and peasants in the following verse .

---

1. This verse was kindly supplied to me by Pt. D. L NARASIMHACHAR from a MS. of that work in the Oriental Library, Mysore.

आचारोचित-संयमोपकरण-व्युत्पादकर् शुभ्रपिं
छाचार्यर् चतुरंगुलोद्गमनरूहर् दीप्रभर् कौडकु
दाचार्यर् नृपभृत्यवर्धितसुधर्मर् श्रीजटासिंहणं-
द्याचार्यर् दयेगेय्वरक्कैमगे शुद्धाचारसंपत्तिय ॥ I 13

In verses Nos 14 6 Janna mentions the names of Bhutabali Puṣpadanta Jinasena Virasena Samantabhadra Guṇabhadra Pūjyapada and Akalanka and the 17th verse is a Tripadi which runs thus

वद्यर् जटासिंहणद्याचार्यदींद्र
णद्याचार्यादिमुनिपराकाणूर्ग
णद्यर्पथिवियोळगोल्ल ॥ I 17

Janna suggests here that Jata Simhanandi belonged to Kānur gana but this cannot be taken seriously for the following rea sons Though the origin and history of this Gana are not satisfactorily worked out the earliest mention of K(r)anur gaṇa so far as I know is found in the Bandalike inscription of *c* A D 1074 Janna s statement is not a contemporary evi dence because he flourished some centuries later than Jata Simhanandi W have seen above that one Simhanandi of Kanurgana is mentioned in an inscription of the first quarter of the 12th century A D From this it is not in any way un likely that Janna associated Jata Simhanandi with Kaṇurgaṇa Guṇavarma II (*c* A D 1230) in his *Puṣpadantapurana* (Ed Madras 1933) calls Jata Simhanandi a *muni pungava* i e a prominent monk and tells us that no one could equal him in his pursuit of right path The verse in question runs thus

नडेवळियोळ् तन्न सम
बडेदारु नडेदरिल्ल गडमेंतर्दयु ।
नुडियु नडेदुवो पदुळिके
येडेगे जटासिंहणदि मुनिपुगवना ॥ I 29

1 *E C* VII Shikarpur No 221

Palki-Gundu Inscription, Kopbal (Intro. pp. 17, 22).

' जटासिंगनदि आचार्यर पदव चावय्यं माडिसिदों '

Kamalabhava (*c* A.D 1235) in his *Śāntīśvarapurāṇa* (Ed Mysore 1912) compliments Jaṭa Simhanandi as an outstanding preceptor

कार्यविदर्हद्बल्या
चार्य जटासिंहनंदि नामोद्दामा
चार्यवरगृध्रपिंछा
चार्यर चरणारविंदवृदस्तोत्र ॥ I 19

Mahabalakavi (A D 1254) in his *Neminathapurana* refers to the marvellous influence of the world famous Jaṭa Simhanandi in the following verse

धैर्यपरगृध्रपिंछा
चायर जटासिंहनंदि जगतीख्याता
चार्यर प्रभावमत्या
श्चर्यमद पौगळ्वडब्जजगमसाध्य ॥ I 14

Besides these references mere Simhanandi is mentioned by Aggaḷa (A D 1189) in his *Candraprabhapurana* (Ed. Mysore 1901) by Kumudendu (*c* A D 1275) in his *Ramāyana* (Ed Kolhapur 1936 and by Nagaraja A D 1331) in his *Punyāsrava* but we have no evidence to identify this Simhanandi with Jaṭa Simhanandi in the absence of the qualifying term Jaṭa

Koppala (Nizam state) was once a famous cultural centre it was held in high respect by the Jainas of medieval India and to-day it is a place of great antiquarian interest especially due to numerous inscriptions including that of Asoka[2] On the hill Pālki Guṇḍu adjoining Koppaḷa just near the Asokan inscription we have a pair of foot prints and just below that an inscription of two lines in Old Kannaḍa informs us that

1 This work is not published as yet Mr D L. NARASIMHACHAR kindly sent this verse to me from a Ms of that work in the Oriental Library Mysore

2 N B SHASTRI Kopaṇa Koppaḷa in the *Karnāṭaka Sahitya Parishat patrike* Vol XXII iii pp. 138-54

Cāvayya prepared (i.e got carved) those foot-prints of Jaṭā-siṅganandi-ācārya[1] It is usual with Jainas to commemorate great persons by preparing foot-prints like this especially on the spot where the monks etc breathed their last or where their last remains were consigned to flames Such spots, often with some structure on them, are known as Nisidi[2] Kŏppaḷa or Kopaṇa was not only a great town but a holy place as well which was specially visited by Jaina monks for their Samnyāsa-maraṇa i.e, the Jaina monks spent their last days there and voluntarily submitted to death The foot-prints indicate that Jaṭā-Simhanandi breathed his last at Kŏppaḷa I am inclined to identify our author with him for the following reasons. The name Jatā-Simhanandi, which distinguishes him from other Simhanandis, is there , various references to him in Kannada literature point to the fact that he belonged possibly to Karnāṭaka, which in the days of Nrpatunga, extended from the Kāverī to the Godāvarī , and lastly many prominent saints like Kumārasena were specially attracted to Kopana in their last days, so it is likely that our author also came there for his Sallekhanāmarana

From the above references we can get some glimpses of Jatā-Simhanandi's personality as it impressed the later minds Jatā-Simhanandi belonged possibly to Karnāṭaka He was endowed with the genius of a poet, and was 'a courageous monk of perfect religious conduct' His was an 'outstanding personality of great reputation' As expected of a Jaina monk, he wandered over different parts of the country and preached

---

1 C R KRISHANAMA CHARLU *The Kannada Inscriptions of Kopbāḷ*, Hyderabad Archæological Series No 12, Hyderabad 1935. The photograph of the Inscription is reproduced elsewhere in this volume with the kind permission of the Director of Archæology, Nizam's Government (his letter No 1399, Dated 22-4-1937).

2 See my note on this word in the *Annals of the* B. O R I. Vol XIV p 264.

religious doctrines amongst 'princes and peasants' Almost uniformly he is styled as an Ācārya, i.e, the Preceptor who admits and initiates the novices in the ascetic order His status of an Ācārya would indicate that he lived a fruitful religious life and passed away, possibly at a ripe age, by observing Sallekhanā at Kopana which was considered to be a holy place, and by his remains he added further to its religious sanctity.

5. His Date and other Works

In the light of the references noted above it is not in any way difficult to put a later limit to the age of Jatā-Simhanandi Dates of the authors who refer to him are pretty definite Noting them chronologically, Mahābalakavi (A D 1254), Kamalabhava (*c* A D 1235), Gunavarma (*c* A D. 1230), Janna (A D 1209), Pārśvapaṇḍita (A D. 1205) and Nayasena (A D 1120) mention his name. In the 11th century Dhavala refers to Jatila as well as to his *Varāngacarita* In the 10th century Cāmuṇḍarāya refers to him and draws a quotation from his work, and forty years earlier than that, *Ādipurāna* of Pampa refers to Jaṭācārya. In the 9th century Jinasena II praises the poetic flash of Jaṭācārya in his *Ādipurāna* which was begun about A D 838 In the 8th century Jinasena I refers to *Varāngacarita* in his *Harivamśapurāna* that was completed in A D 783, and just five years earlier than that, in A.D 778, Uddyotanasūri refers to Jaṭila and also to his *Varāngacarita.* From these facts it is quite certain that Jaṭā-Simhanandi must have flourished earlier than A D 778 Thus at the beginning of the last quarter of the 8th century A D. *Varāṅgacarita* was a famous work both in the South and the North and both among Śvetāmbara and Digambara writers To account

for this wide circulation of this work and his fame, we shall have to allow some period between Jaṭila and Uddyotana in view of the travelling and transit conditions of early medieval India.

It is to be highly regretted that Jaṭila does not refer to any earlier author or work, in fact we get no definite clue from this work which would put an earlier limit to his age The entire range of Jaina dogmatics was stereotyped much earlier, and there has not been much advance in later days by way of evolution in the principles etc Many of the earlier texts are lost beyond recovery Under such circumstances one has to be extremely cautious in drawing chronological conclusions based on similar passages dealing with dogmatical details. However a few indications may be noted here

i) The dogmatical sections, viewed as a whole, immediately remind us of *Tattvārthasūtra* of Umāsvāti It is quite likely that a preacher like Jaṭila would freely draw upon a standard work like *T-sūtra* and expose the contents in his work The comparison, which I have drawn below, leaves the impression that *Varāṅgacarita* presupposes *Tattvārthasūtra*

ii) *Varāṅgacarita* xxvi 82-83 closely resemble and remind me of *Svayambhū-stotra*[1] of Samantabhadra Nos 102-3

iii) It may be noted that *Varāṅgacarita* xxvi 99 reminds me of *Āvaśyaka-niryukti* I 22[2] The idea expressed in this verse is quite popular and current So one should not insist on direct borrowing

iv) From the following comparison it is quite plain that Jaṭila is closely following some important discussions so nicely

1. Sanātana Jaina Granthamālā Vol I, Bombay 1905

2 *Sanmatiprakaranam* (Gujarāta-Purātattva-Mandira, Ahmedabad Samvat 1987) p 756 The idea contained in this verse is quite popular Śrutasāgara in his Sanskrit commentary of *Ṣaṭ-Prābhṛta* (Māṇikachandra D. J G, Bombay Samvat 1977) quotes two such verses on pp 25-6

set forth by Siddhasena in his *Sanmati-prakarana* (Ahmedabad Samvat 1987) *Varāngacarita* xxvi 52, 53, 54-55, 57-58, 60, 61-63, 64-65, 69, 70-71 and 72 may be respectively compared with *Sanmati*. i 6, i. 9, i 11-2, i. 17-8, i 21, i. 22-5, i 51-52, iii 47, iii 54-55, iii 53 Siddhasena's *Sanmati-prakarana* has wielded great influence on many later writers Vīrasena and Jinasena freely quote from that work in *Dhavalā* and *Jayadhavalā* commentaries, and Jinasena has paid great compliments to Siddhasena's poetic talents at the beginning of his *Ādipurāna* (I 39) It is not unlikely that Jatila also has drawn material from *Sanmati* Parallels are so close and significant that there can be hardly any doubt that Jaṭila is following Siddhasena The suggestion that Siddhasena might be indebted to Jaṭila has to be dismissed, for quite apparent reasons, without a second's thought

v) The definition of Sāmāyika given in *Varāṅgacarita* xv 122 is the one which is found in the Sanskrit *Sāmāyikapātha* which is quite popular in the Jaina community, but the author of which is not at all known In some printed editions and in many Mss it is found with *Daśabhakti* Tradition attributes Prākrit Bhaktis to Kundakunda and Sanskrit ones to Pūjyapāda [1] It is probable that Pūjyapāda may be the author of this verse, though it is not unlikely that a verse like this might be older still [2]

The dates of the above authors are not finally settled. Samantabhadra can be assigned to c 2nd century A D Relative chronology of Jaina authors gives us the impression that Umāsvāti preceded Samantabhadra On the date of Siddhasena there is no agreement between different scholars the

---

1. A N UPADHYE *Pravacanasāra* Intro. p 26

2 *Varāṅgacarita* reads *samyamah śubhabhāvanā* and *sāmāyikam vratam* for the usual *saṁyame śubhabhāvanā* and *sāmāyikavratam.*

latest period assigned to him is 7th century A D[1] though it is quite likely that he flourished a century or two earlier As to the age of Pūjyapāda, he lived earlier than the last quarter of 5th century A D. All these dates are such that they cannot put a definite earlier limit to the age of Jaṭila It appears to me highly probable that Jaṭila's time cannot be put earlier than 7th century A D Taking both the limits into account I conclude, so far as the present material is concerned, that Jaṭāsiṃhanandi flourished at the close of the 7th century A D.

On palæographic grounds the Kŏppala inscription,[2] which records the name of Jaṭāsiṃganandi with whom I have already identified our author, its Editor opines, 'may be assigned to about 10th century A D' As it is put, it is a proposed conjecture without any attempt at proof Dating by palæography is bound to be a matter of probability, and to make the results

---

1 *Pravacanasāra* Intro p 100 foot-note 4

2 *The Kannada Inscriptions of Kopbāl* (Hyderabad Archæological Series No 12) by C R KRISHNAMA CHARLU is a well edited monograph with the necessary illustrations of Inscriptions etc We earnestly request the Director of Archæology, Nizam's Government, to bring to light other epigraphic records plenty of which, we are told, are scattered all over the Nizam's territory In this monograph there are some minor errors which may be noted here in the interest of epigraphic studies *sanyāsanan=nōntu mudipidar* in line 4 of the Inscription No 2, on p 7, appears to be translated as having vowed renunciation completed (the *vrata*)' but it should be rendered as 'died or ended his life after accepting (the vow of) Sanyāsa (-marana)' Similar expressions are found in Śravan Bĕlgŏla Inscriptions (*E C* II, Nos 8-9, 17-18, 20, 24-5 etc, of the Revised Ed 1923) On p 9 the Editor, it appears, takes Inginīmarana as the name of a place, but it is not correct Inginīmarana or Ingitamarana is a variety of Sanyāsamarana, and its characteristics are described in texts like *Bhagavatī Ārādhanā of Śivārya* See also Sacred Books of the East, Vols XXII & XLV, Jaina Sūtras Part i, p 72, and part ii, p 176

3 See pp 17-8 above

definite one has to invoke the aid of other evidences The inference from the characters of the record is not as definite—and this is all the more true in the case of Kannada characters —as the evidence which I have adduced above for the date of Jaṭāsimhanandi[1] As a layman I think that the period of the inscription can be pushed back by a century or two , *ca, cā va, pa* etc are quite similar to those in an inscription of A D 881 from the same locality , *ja* shows some modernness, but other letters can go to a sufficiently early period , I leave, however, this matter to expert epigraphists If they find that the age of the Kŏppala inscription cannot be taken to the 8th century A D on any account, then here is the alternative : either the author of *Varāngacarita* may not be identified with Jaṭāsimganandi of the inscription, or the place was already famous as the spot of the Samādhi-marana of Jaṭāsimganandi and after some time a zealous house-holder commemorated the spot by carving the foot-prints and recorded that he carved them The evidences about the age of *Varāngacarita* are so definite and the reasons to identify its author with Jaṭāsimganandi of the inscription are so probable that I would be inclined to accept the second alternative The wording of the inscription also is quite favourable, because it predominently refers to the carving of the foot-prints *Varāngacarita* is an amateur production, so Jatila might have composed it earlier in his life The probability of the second alternative can be appreciated by supposing that Jatila died in ripe old age and the proposed date of the inscription can be pushed back by a century or two

Besides *Varāngacarita* no other work of this author is discovered as yet Enthusiastic handling of Sanskrit language,

1. Jaṭāsinganandi of Kopbāl Inscription No. 6 should not be confused with Śrī-Simhanandi of No 7 of the same place for the simple reason that the latter has not got the designation Jaṭā.

exhibition of learned discourses in and out of time and wide parade of dogmatical details perhaps indicate that *Varāngacarita* is an amateur production of the early career of Jaṭila when he had just finished his schooling and what he had studied in Jaina texts and other works was still fresh in his mind It is not unlikely that Jaṭila, with his excellent grounding in Jaina dogmatics, might have composed some treatises discussing Jaina principles This conjecture is occasioned by a quotation in *Amṛtāśiti*[1] a didactic work attributed to one Yogīndra the verse, which is plainly ascribed to Jaṭāsimhanandi and which is not found in our *Varāngacarita*, runs thus

जटासिंहनन्द्याचार्यवृत्तम-

तावत्क्रियाः प्रवर्तन्ते यावद् द्वैतस्य गोचरम् ।
अद्वये निष्कले प्राप्ते निष्क्रियस्य कुत क्रिया ॥

As long as this verse is not traced in any other work, we should proceed with the hypothesis that Yogīndra is quoting from some other work of Jaṭāsimhanandi which has not come to light as yet

6. VARĀNGACARITA . A CRITICAL STUDY

1) ANALYSIS OF THE CONTENTS

The work opens with a salutation to Arhat, his Dharma and his omniscient knowledge Then follows a short discourse on the nature of Kathā-prabandha, the Teacher and the Pupil.

King Dharmasena of the Bhoja family was ruling in Utta-

1. Māṇikachandra D. J. Granthamālā Vol 21, p 98, verse No. 67.

mapura on the bank of Ramyātaṭa in the territory of Vinīta Gunavatī, who was the prominent queen among his three hundred wives, gave birth to a son who was called Varānga (i) Dharmasena in consultation with his ministers married Varānga to ten princesses from great families (ii) Once Varadatta, the chief disciple of Ariṣta Nemi, came to Uttamapura ; and Dharmasena devotionally waited on him with all the members of the retinue. Varadatta delivered to the audience various religious sermons on the following topics · Dharma and Scripture (iii), Karma with its sub-divisions as the cause of Samsāra (iv) , the World and its dimensions and the hellish existence (v) , the sub-human birth (vi) ; the human world (vii-viii) , the celestial grade of existence (ix) ; and Liberation (x) On an inquiry from Varānga, Varadatta explained Mithyātva and Samyaktva, and the prince accepted from him the Anuvratas (xi) Later on king Dharmasena appointed Varānga as the heir apparent to the throne which incident gave rise to jealousy in the minds of his step-mother Mṛgasenā and her son Susena, who, in their plot, were promised assistance by the minister Subuddhi to procure the throne for Susena after somehow getting rid of Varānga Subuddhi appeared like a faithful minister, but he was always waiting for an opportunity to overthrow Varānga Once he trained two horses, one in a proper way and the other in an inverse manner ; and arranged the exhibition of his training in such a way that Varāṅga mounted the inversely trained horse, was carried away into a dense forest, and was thrown off by that rash horse which fell in a well Wandering like an ordinary man, Varāṅga faced manifold difficulties in the forest. He escaped from the jaws of a tiger with the aid of an elephant (xii). He could escape the grip of a crocodile with the divine help of a Yakṣī who taking the shape of a beautiful damsel tried to tempt him, but to her satisfaction he was firm in his vow of celibacy, i.e , fidelity to wedded life, which he had accept-

ed from the saint Varadatta. Then he was imprisoned by hunters, but soon he was released when he cured their Chief's son who was bitten by a serpent (xiii) Once by fighting successfully against Bhillas, he obliged Sāgarabuddhi, the leader of the caravan of merchants, and with him he came to Lalitapura where he lived as Kaścidbhata without disclosing his real name and identity He stayed there like the son of Sāgarabuddhi and was soon installed as the Head of merchants (xiv) This unexpected loss of Varānga caused great sorrow to his father, mother and his wives, who, on hearing the religious discourses of a monk, began to spend their time piously (xv) Once again Kaścidbhata made himself famous by giving a crushing defeat to the king of Mathurā who, out of sheer greed and vanity, marched against the king of Lalitapura (xvi-xvii) Varānga married the royal princess and got half of the kingdom He was firm in his fidelity to married life despite the temptations of Manoramā whom he married later on (xix). Brother Suṣena, who was looking after the kingdom of his father, proved very weak; and his father had to invoke the aid of the king of Lalitapura Varānga took this opportunity, gave a crushing defeat to Bakuleśvara who was marching against his father, and entered his paternal town to the joy of all (xx) He forgave all his offenders, and requested his father to allow him to conquer fresh territories and to establish a new kingdom in the construction of which he would have ample scope for his military exploits He founded a new kingdom with the well-planned town of Ānartapura as its metropolis on the banks of river Sarasvatī The old territory he divided amongst various people He enjoyed varied pleasures in different seasons surrounded by his rich harem (xxi) In response to the question of his chief queen he described to her the duties of lay-followers; and consequently a temple was built and the images of Jina were erected in a great religious pomp (xxii-xxiii) To silence the questions of his ministers, Varānga exposed the flaws

of heretical schools of philosophy and convinced them of the authority of Jina and his doctrines (xxiv-xxv). In order to enlighten the members of the audience, he delivered a lengthy discourse on Jaina dogmatics and mythology (xxvi-xxvii) A son Sugātra was born to him by his queen Anupamā One day the sight of a falling star made him indifferent to the world and its temporary pleasures He convinced Sāgarabuddhi and his father that it was the time for him now to enter the ascetic order and perform penances for the attainment of liberation They too were converted to his view and enlightened (xxviii) He gave a parting advice to prince Sugātra and entered the order of monks accompanied by his queen in the presence of Varadatta who gave them many an instruction The prince Sugātra was put on the throne The queens performed severe penances and reached higher worlds Varāṅga conquered passions etc, gradually subdued the internal and external foes, and attained liberation after destroying all the Karman by meditation of a very high order (xxix-xxxi)

ii) A Dharma-kathā with Kāvya features

From the outline of the contents noted above it is plain that the threads of the story are not in any way intricate It deals with the life of Varāṅga who belonged to the age of Neminātha and Kṛṣṇa Jealousy of the step-mother, wanderings of the hero in the forest and the final restoration of the kingdom these are some points in the story which remind the reader of Rāma's story

In the colophons *Varāṅgacarita* is uniformly called a

dharma-kathā which, according to Haribhadra's definition,[1] is full of religious topics Though the title Mahākāvya is never used by the author, we find here many of the conventional characteristics of a Mahākāvya[2] The work is divided into Sargas or Cantos It opens with a salutation to Ratnatraya consisting of Arhat, Dharma and Omniscience The story belongs to Jaina tradition, Varānga, the hero, being a contemporary of Neminātha, the 22nd Tīrthakara The author plainly tells us that the story illustrates the fruition of four-fold ends, viz, Dharma, Artha, Kāma and Mokṣa (i 22, the Anuṣṭubh verse in the colophons and also xxix 36). The hero possesses the necessary virtues Among the descriptions required in a Mahākāvya we find here the descriptions of cities (i 32-45, xxi 32-49, xxiii 48 ff) seasonal pleasures (xxii 9-20, xxiv 4-9), sports and love festivities (ii 89 ff, xix 32-9, xxiv 1-14), sentiment of love-in-separation (xix. 40-61), marriages (ii 57-73, xix 12-26), birth and rise of princes (xxviii 1-13), state counsel (ii 14-33, xvi 49-74), embassy (xvi 10 ff), advance (xvii 9-25), battle (xiv 8 ff, xvii 36-86, xviii 1-110) and triumph (xviii 110-30) Various classical metres are used in different cantos which are closed with stanzas composed in metres other than the one used throughout the canto Very often the concluding verses of one canto suggest the theme of the next (iii 63, iv 114, viii 69 ix 62 etc) Varānga is a hero possessed of great religious virtues Like a true man of the world, he never fails to fulfil his duties as a prince, as a king etc His virtues are tested in manifold adversities, physical and mental, and he overcomes them all like a noble man. His fight is twofold external, against the enemies of this world; and internal, against Karmic forces And at last he is triumphant

1 *Samarāiccakahā* p 2 (Bibliotheca Indica No. 169).
2. *Kāvyādarśa* i. 13-20.

in every respect The number of cantos is thirty-one, though the convention needs that it should not exceed thirty Though different sentiments find place in this composition, it is the atmosphere of renunciation that pervades the whole work

iii) Dogmatical Details in Varāṅgacarita

Aśvaghoṣa imports into his works many details about Buddhistic ethics and dogmatics, and in fact he makes no secret of the purpose which led to his adopting the Kāvya form Liberation or Mokṣa is the highest aim, but this is not realised by many; so he wants to preach this truth in an attractive garb of a poem[1] If it is so in the case of an artist like Aśvaghoṣa, we should not be surprised if a monk like Jaṭila makes his poem a regular platform for preaching the religious and didactic details Many cantos have been solely devoted to such details, and this would be clear to the readers from the following analysis of the contents of such cantos

Canto iv Karman and its Primary and Secondary types 1-38, their maximum and minimum periods 39-41, the causes of bondage of different Karmas and their fruits 42-104, and the relation between Jīva and Karman etc 105-14

Canto v · Figuration and dimensions of the Universe with the three enveloping Winds 1-8; five states of existence 9; the hell and its regions with their dimensions and climatic conditions etc 9-24; the sinners that go to hell 25-29, multifarious tortures in hells 30-101; the illustration of Kṣudra-

1. *Saundarananda*, XVIII 64

matsya 102-3, and the periods of life in different hells etc. 104-110

Canto vi Varieties of sub-human birth and the miseries therein 1-32, those that go to sub-human birth 33-37, figuration and the duration of life 38-44, and the families and Yonīs therein 45-53

Canto vii Human birth in Bhogabhūmī 1-13, ten wish-fulfilling trees 14-23, those that go to Bhogabhūmī 24-27, Dāna, its varieties and fruits 28-54, and the physical characteristics and pleasures etc in Bhogabhūmī 55-67

Canto xiii Human birth in Karmabhūmī 1-4, rarity of human birth dedicated to religious practices 5-27; description of the demeritorious and meritorious 28-59, and the nature of body and the need of religious life 60-69

Canto ix Heavenly beings and heavens 1-24, those that are destined to go to heaven 25-36, birth, physique, pleasures etc of the gods 37-54, and their periods of life etc 55-62

Canto x Dimensions and description of Liberation 1-10; those that are destined to go to liberation 11-28; special characteristics etc of liberated souls 29-42, and the happiness of Siddhas which is developed after the destruction of Karmas 43-64

Canto xxvi Nature of the Substance with its six kinds 1-5; Jīva or Principle of life 6-13, Pudgala or matter 14-22, Dharma, Adharma, Ākāśa and Kāla 23-32, additional remarks on the substances 33-44, Pramāna and Naya 45-75, Anekāntavāda or Syādvāda 76-90, and the importance of Right Faith among the three Jewels 91-107

Canto xxvii: Time, Numbers etc 1-30; Sixty-three Kāraṇa

Mānuṣas 31-32 , 16 Manus 32-6 ; 24 Tīrthakaras 37-39 , 12 Cakravartins 40-41 ; 9 Vāsudevas and 9 Prativāsudevas 42-44 , Contemporary Tīrthakaras of the Cakravartins 45-48 , the height, period of life etc. of Tīrthakaras etc 49-65 , the previous celestial regions from which they came and were born as Tīrthakaras 66-70 , and their fathers, mothers, donors, places of birth, family, colour, Gotra and the places of liberation 71-94.

These nine Cantos have no connection whatsoever with the main current of the story , and the narration of the events is not going to suffer even if these cantos are omitted There is no doubt that Jaṭila introduces these cantos merely to preach the details of Jaina dogmatics These sections exhibit not only his religious zeal but also his extensive study of Jaina doctrines

Varāngacarita is not a philosophical treatise but only a Purānic Kāvya, so all such discourses are intruders here In some cases it is possible for us to detect the probable sources from which Jaṭila might have drawn his material. Many verses from *Varāngacarita* remind us of some of the Sūtras from *Tattvārthasūtras* of Umāsvāti *Varāngacarita* iv 2-9, 11, 15-23, 24-38, 39-41, 42, 43-44, 49-56, 57-58, 62-65 and 93-103 closely agree with *Tattvārthasūtra* viii 3-6, i 15, i 21-23, 29 viii 7-13 (with *Sarvārthasiddhi*), viii 14-20, viii 1, vi. 10, viii. 7, vi 11-12, vi 13-4, vi 15-27 respectively Similar parallels can be detected in other cantos as well. Some verses agree with the Gāthās of Kundakunda also As shown above many verses from canto xxvi closely follow the gāthās from *Sanmati-prakarana* [1]

Dogmatical details, usually ethical in character, are met with in different contexts of the story . Relation between Jīva

1. See p 21 above.

and Karman and the cause of misery and happiness iii. 38-63 ; Samyaktva and Mithyātva xi. 1-34 , Suicide denounced xv 63 ff , Nature of Samsāra xv 75-105 , Dharma consisting of twelve vows and its fruit xv 106-46 , Duties of a house-holder and the importance of Jina-Pūjā and the construction of a temple xxii 27-79 , Twelvefold reflection and the nature of Samsāra xxviii 31-56 , Mahāvratas, their Bhāvanās, Samitis, Guptis and twelvefold reflection xxxi 75-98 The introduction of such details testifies to the fact that Jaṭila is predominantly a religious teacher and preacher

iv) Polemic Discussions

In places more than one Jaṭila shows polemical tendencies various doctrines of different schools are criticised, and in conclusion the doctrines of Jainism are upheld The text, in such contexts, is much corrupt , and to get at the correct interpretation one has to wait for better Ms material According to different theorists Puruṣa, Īśvara, Kāla, Karman, Daiva, Graha, Niyoga, Svabhāva, Niyata etc are considered as the causes of the destruction, stability and origination of the world (xxiv 17) Against these one-sided views Jaṭila drives his attack Neither Daiva (? Niyoga) nor Deva can control the affairs of man Oblations etc are really eaten by the crow , and how can a god, who is so much greedy about the sacrifice, fulfil the wishes of others (xxiv 22-27) ? As there are so many irregularities and untimely occurrences in the affairs of the world, Kāla cannot be accepted as the controlling agency (Ibid 28-30). It is a sheer self-deception to believe that Planets can do good or bad , if they have such a power, how is it that they themselves suffer ? If they can do

good, how do we explain the facts that Rāma lost his wife, Rāvaṇa lost everything, Bali(n) was punished by Murāri, Kāmadeva was burnt by Pinākin, Maghavān was cursed by Gautama, Dharanīsuta (Graharājah) was bound down by Rāvana, and that Sun and Moon are troubled by planets [apparently when their stars were good] (Ibid 31-6). It is illogical to accept Īśvara as the ruler of the world (Ibid. 37) Svabhāva cannot govern everything, for the visible facts in this world do not warrant such a view (Ibid 38-40). It is disastrous to accept Niyati as the cause (Ibid. 41). If Purusa were the cause, all pious acts would be fruitless (Ibid 42-3) Śūnyavāda would reduce Vijñapti to negation, and then what wise man would remain there to uphold that view (Ibid 44-5)? Further the views that everything is momentary or eternal do not stand to reason, because they are not self-consistent (Ibid 46-7) The doctrine of Pratītyasiddhi too is not warranted (Ibid. 48-50) The view that all the souls are shaped by Paramesthi is not tenable . whether he is all-pervading or occupies a finger, his position is not satisfactory (Ibid 51-2) These views are not absolutely valid, but they are partial view-points They become significant when they are evaluated according to and qualified by Anekānta (Ibid 60-61). It is the Karman which is responsible for the ups and downs of Ātman in Samsāra (Ibid 54 ff, 62 ff.).

In canto xxv Jatila wonders how a theist can defend the manifold Gotras, and attacks the distinction of Varṇa based on birth (1-11) Criticising the priests, he attacks the sacrificial Himsā. Harm unto living beings is a great sin. That the victim sacrificed goes to heaven could have been accepted, only if the relatives of the priest were sacrificed instead If Vedic sacrifice leads to heaven, one does not know who are to go to hell. The followers of Svayambhū (Vṛṣabha) have preached that three years old seeds should be offered as oblation.

A single false word led Vasu to the seventh hell, and it is such a man who is respected by Dvijas. Madhupiṅgala went down to hell due to remunerative hankering (*nidāna*), therefore Vedas which have such associations do not deserve any respect at all. If king Krūra went to hell by offending a Vipra, how is it that these priests who are killing so many beasts in sacrifice, do not go to hell? Happiness cannot result by inflicting pain on others (12-27) It is a degradation of Brāhminhood that priests should go to the royal gates like beggars. Despite the alleged efficacy of their words and rituals, there are manifold mishaps and miseries in this world. Brāhminhood does not depend on mere birth, but it depends on one's being endowed with knowledge, chastity and virtues. Through the strength of righteousness and penance Vyāsa, Vasiṣṭha, Kamatha, Kanṭha, Śakti, Udgama, Drona and Parāśara could attain Brāhminhood (28-44) A touch of anything belonging to Śankara is condemned, but Gangā becomes pure by resting on his head If the water of Gaṅgā has a purificatory effect, how is it that her son Bhīṣma suffered like that at the close of his life (45-50)? Great persons performed penance in certain places, and thereby those spots became holy Kārtikeya performed his penance in Svāmigraha (?), Kumārī at the Southern point, Bhāgirathī became holy due to Bhāgīrathi and Kurukṣetra due to Kuru Lakṣmī performed penance at Śrīparvata, Puṣkara at Śrīpuṣkara, Vṛsabha at Kailāsa and Ariṣṭa Nemi at Ujjayanta (51-59) In conclusion, with a view to establish the Āptatva of Jina (86 ff) the author mentions certain objectionable acts and traits of gods like Rudra, Agni, Brahman, Viṣnu, Indra, Kumāra and Buddha (76-85)

The attack on Kālavāda and other views (xxiv 17 ff), referred to above, reminds us of *Śvetāśvataropanisad* i. 2 and *Sanmatiprakarana* iii 53 Aśvaghoṣa also refers to these heterodox opinions in his *Saundarananda* xvi. 17 and *Buddha-*

carita[1] ix. 46-7, 48-52 (Svabhāva), 53 (Īśvaravāda), also note xvi. 18-27 etc. Possibly the Anekāntavāda of Jainism is attacked by Aśvaghoṣa in *Buddhacarita* xvi. 24 Jaṭila, however, attacks Kṣaṇikavāda, Śūnyavāda and Pratītyasamutpāda of Buddhism, the last of which is explained and upheld by Aśvaghoṣa in *Buddhacarita* xvi 28-43. The attack on non-Jaina deities breathes the same spirit as that expressed by Pātrakesarī in his Stotra.[2]

v) Some Details viewed in Contemporary Socio-Political Back-ground

As I understand the implication of his various statements, Jatilamuni holds before us a pretty prosperous picture of Jainism in the South His attack on the heterodox schools of thought is quite vigorous (xxiv 21-53) He denounces quite enthusiastically the various non-Jaina deities (xxv 74-98), the sacerdotal religion of Vedas, priestly rituals (Ibid 12-49, 60-70) and the Brāhmanic order of society (Ibid 1-11) He taunts the priests how they are often turned away from the royal gates and their burning wrath has no effect whatsoever on the kings (Ibid. 30-33) He sketches the pictures of gorgeous Jaina temples in which images of precious stone are erected and

---

1 I have repeatedly used the model Eds of *Saundarananda* and *Buddhacarita* Parts i & ii (Panjab University Publications) by Dr. E H Johnston His excellent introduction to *Buddhacarita*, part ii, which is a monument of deep and critical study, has been of much help to me in my study of *Varāngacarita* All my references to the text of *Buddhacarita* are, however, to Cowell's Ed. (Oxford 1893) unless otherwise stated

2 Māṇikachandra D. J G Vol 13, pp. 100-130

Pūjās are conducted on a large scale with multifarious rituals (xvi 136 ff, xxii 57 ff, xv 139, xxiii 17 ff) The merit of building temples, erecting images and conducting Pūjās is highly glorified (xxii 46 ff) We are told that scenes from Purānas are painted or carved on the walls of temples, and the picture-scrolls are also referred to (xxii 61 ff, xxiii 93) It is interesting to note that Jatila refers to royal gifts of villages and human services etc to the temples (xxiii 91)

The facts noted above are not without significance, if they are looked at in the light of what we know about Jainism in the South between A D 650 and 750 which dates roughly circumscribe the age of Jatilamuni who flourished in Karnāṭaka This period corresponds with the rule of Chālukya dynasty of Bādāmi By about A D 630 Pulikesi II, the conqueror of Harsavardhana, was the most powerful king that had subjected many a neighbouring state[1] He suffered defeat at the hands of the Pallava king Narasimhavarman of Kāñcī in A D 642, but his son Vikramāditya I inflicted a crushing defeat on the Pallavas and restored the fallen fortunes of his family in A D 655 The Pallava opposition was quieted very well by Vikramāditya II in A D 740 In this Chālukya period Jainism was very much patronised and it was gradually gaining influence It was in A D 634 that Ravikīrti, who had acquired the greatest favour of Pulikesi II, built the Meguti temple and recorded the erection of it in the famous Aihŏlĕ Inscription which has supplied definite later limit to the age of Kālidāsa and Bhāravi[2] Some villages are granted to the temple at the close of the record Grants to the Jaina community have been made by the later kings also[3]

1. V A SMITH *Early History of India* (3rd Ed) p 452 ff, L RICE *Mysore and Coorg* from Inscriptions, London 1909, C HAYAVADAN RAO *Mysore Gazetter* Vol II, etc

2 *Indian Antiquary* VIII for 1879, p 237 ff

3 *Studies in South Indian Jainism*, p 111.

Kadambas of Banavāsi suffered a crushing defeat at the hands of the Chālukya king Pulikesi II; and from A.D 607 onwards there is a short blank period in the Kadamba history. Later on the territory of Banavāsi came under Ālūpa kings Jainism enjoyed a good deal of patronage under Kadamba kings, especially Mrgeśavarman (A D 475-490) and others "Moreover the state of Jaina temples, the ceremonies that were performed in them as mentioned in some inscriptions, and the liberal grants of the kings to meet the expenses of those ceremonies, show that Jainism was really a popular religion in the Kadamba empire and that there were many people who were worshippers of Jinendra"[1] Jainism was becoming a serious rival of Śaivism, it 'grew unchecked during the supremacy of Kadambas' and 'received fresh stimulus in the time of Rāshṭrakūṭas'[2] We do not know the persuasion of Ālūpas, but as the Chālukyas were favourable to Jainism, the religion appears to have maintained its status which it had under the Kadambas even after their fall At the close of the 7th century A D Gangas, who ruled at Gangavādi, appear to have been subordinated by the Chālukyan king Vinayāditya Ganga dynasty was founded under Jaina auspices, and 'Jainism was the state creed in the time of the Gangas, of some of the Rāshtrakūṭas and Kalachūryas and of the Early Hoysaḷas'[3]

Going Southwards, we have seen above how in this period Chālukyas and Pallavas were fighting Pallava power was much weakened by the middle of the 8th century A D Under the Pallavas Kāñcī was a famous centre for the Jainas, and the names of great authors like Samantabhadra (c 2nd century A D) Akalaṅka (c 7th century A D) and others

1 G M. MORAES. *The Kadamba Kula*, p 35
2. Ibidem p 252
3 *Mysore and Coorg*, p. 203

are associated with Kāñcī The site of Jinakāñcī (i.e., Tiruparuttikunrum) is far away from the present sites of Vishṇu and Śiva Kāñcī, and this possibly indicates that Jainism saw its better days on the soil of Conjeevaram long before Śaivas and Vaishṇavas came to power It was in the days of Sundara Pāndya that Jainism received a decided set-back which continued under the later Choḷas who were of Śaiva persuasion. Before this Choḷa persecution, 'Digambara Jainas and Jaina temples were numerous in both the Pallava realm (Dravida) and the Pāndya kingdom (Malakūta)', 'when Hiuen Tsang, the Chinese Pilgrim, visited Southern India in A D 640'[1]

It is in this back-ground of contemporary South Indian history that we have to appreciate the statements of Jaṭila. Even to-day we come across many ancient Jaina temples, some of them converted and some of them in ruins Jaṭila has rightly appealed to the popular zeal of temple-building The idea of the images of precious stones is not a myth, but at Mūdabidri, Humch etc, we actually see such images carved out of precious stones imported into India from across the seas 'Idol worship and temple building on a grand scale in South India have also to be attributed to Jaina influence'[2] The royal patronage gave Jainas an opportunity for vigorous and propagandistic attack on the tenets of non-Jainas Many ruling kings gave lands and villages to Jaina temples, and Jaṭila refers to the gift of 108 villages which may be an exaggeration of the contemporary practice. We have got grants recorded on stone and copper-plates, from Kadamba, Chālukya and other kings As referred to by Jaṭila we find the tendency of carving pictures on the walls as seen in the temples at Mūḍabidri and Haḷebīḍ, and we find wall-paintings in the temple of Tiruparuttikunram or Jinakāñcī. of

1. *Early History of India*, pp 453-4.
2 *Studies in South Indian Jainism*, p. 77.

course some of them are of much later date. At any rate they indicate the practice. The carvings on the outward walls of the temples of Beḷūr and Haḷebīḍ, or the wall-paintings in the Mīnākṣī temple of Madura or the wooden carvings (representing the scenes from *Rāmāyaṇa*) in the temple of Padmanābhapuram in Travancore show that the practice of representing the Purānic scenes in stone, colour or wood was not special to Jainas but was common to South Indian temple art

VI) AŚVAGHOṢA AND JATILA

Among the luminaries of Classical Sanskrit like Aśvaghoṣa, Kālidāsa and Bhāravi, it is by Aśvaghoṣa that Jaṭila is much influenced A comparison of *Varāngacarita* with *Saundaranānda* and *Buddhacarita* shows many a common point Aśvaghoṣa as a Buddhist and Jaṭila as a Jaina have much in common Both of them introduce that ascetic outlook on life Aśvaghoṣa has the philosophy and ethics of Buddhism in the back-ground, while Jaṭila has those of Jainism · the former freely uses various technical terms of Buddhism and the latter those of Jainism Denunciation of body, advantages of human birth, hollowness of worldly pleasures, relation between Dharma, Artha etc. and other topics are discussed from nearly the same point of view by both the authors. Both of them have a tendency of giving illustrations, possibly with a satirical touch, from Brahmanical mythology (*Saundara.* vii. 25, *Varāṅga.* xxv. 78 ff.). We have seen above how the attack against certain heretical schools is common to both.[1] In

1. See pp. 34-5 above.

Saundara. xiv we get the routine of life prescribed for a Buddhistic monk, similarly the two concluding cantos of *Varāṅgaca*. give a good many details of Jaina asceticism. Buddhist Nirvāṇa is explained in *Sn* xvi, while canto x of *Vc* is devoted to the description of Jaina conception of Mokṣa The descriptions of hellish[1] and sub-human tortures are almost alike (*Bc*. xiv 10 ff, 22 ff and *Vc* cantos v & vi) There are many common ideas almost similarly expressed (*Sn*. iv 9 and 11 & *Vc*. xix 37, *Sn* xvi 51 & 66 and *Vc* xxiv 55-6, *Bc* ii. 23 & *Vc* xxviii 9, *Bc* v 37 & ix 41 and *Vc* xxix 17-19; *Bc* viii 76 & *Vc* xv 47, *Bc* ix, 45 & *Vc* xxix 59 ff etc) Aśvaghoṣa uses the simile of the rising sun on the eastern mount twice (*Bc* ii 20, x 15), Jatila introduces the Eastern mountain in his similes at least four times (*Vc* ii 69, iii, 35, xvii 12 & xxiii 45), and once the simile is worded alike by both (*Bc* x 15 & *Vc* xvii 12) Aśvaghoṣa has that famous scene where young ladies are witnessing from the lattices the procession in the street (*Bc* iii 19), Kālidāsa has a similar situation with more details better finished (*Raghuvamśa* vii 11), and I think that Jatila, in sketching a similar scene (*Vc* xviii 118), perhaps shows acquaintance with Kālidāsa's verse Though verse No 118 is not a quite successful imitation of its predecessors, verse No 119, of which I have not come across any counterpart in *Bc*, is worthy of an artist. In Aśvaghoṣa's story Buddha goes out on the Kanthaka horse, while Varānga is carried away by an ill-trained horse. *Varāṅgacarita* has some grammatical peculiarities common with the works of Aśvaghoṣa as noted below And lastly the title of our work reminds us of *Buddhacarita*[2] All these

1 Such descriptions are found in Jaina texts even earlier than Aśvaghoṣa Some of them may have been common to Jainism and Buddhism It is the tendency of introducing such details, which characterises both Aśvaghoṣa and Jaṭila, that may be noted

2 I am aware of the fact, however, that there is an earlier

points taken together give us the impression that Jatila had possibly studied the works of Aśvaghoṣa, whose compositions, in view of the flourishing condition of Buddhism in the South as described by Hiuen Tsang in A D. 641, might have been available in Southern India, though the Mss of *Buddhacarita* and *Saundarananda* known to us belong to Northern India. I have not been able to detect any striking similarities between the works of Kālidāsa and Bhāravi and *Varāngacarita*

VII) VARĀṄGACARITA AND LATER JAINA AUTHORS

So far as our knowledge of Jaina literature goes, *Varāngacarita* is one of the earliest Jaina poems in Sanskrit written in a semi-epic and semi-kāvya style *Padmacarita* of Ravisena was completed in A D 677, perhaps this is the only work which may claim priority, though this point is not yet definitely decided over *Varāngacarita* so far as Jaina epic poems in Sanskrit are concerned There are many Jaina Purānas and Kāvyas in Sanskrit later than *Varāngacarita*, but I have not been able to detect Jaṭila's influence on later authors to any appreciable extent It is a matter of surprise that Jatila is not mentioned by Vādirāja who pays respect to many early authors in his *Pārśvanāthacarita* composed in Śaka 947 (+ 78=A D 1025).[1] If the scarcity of Mss is a good indication, we may suppose that *Varāngacarita* did not get much circulation actually, even though the fame of Jaṭila had spread beyond the bounds of Karnātaka Jinasena, whose reference to Jaṭācārya we have already noted above, has drawn upon

Jaina epic *Paumacariu* of Vimalasūri. Whether *Padmacarita* of Ravisena is earlier or later than *Varāngacarita* is still to be decided.

1. Māṇikachandra D. J. Granthamālā vol. 4.

Varāṅgacarita for a good deal of technical matter which he has produced in his words in *Ādipurāna* (*c.* A.D 838).[1] For instance compare *Vc.* i. 6-7 with *Ādi* i. 122-24, *Vc* i. 10-11 with *Ādi* i. 127-30; *Vc* i 15 with *Ādi* i 139, *Vc* i 16 & 14 with *Ādi* i. 143-44 Cāmundarāya, we have seen above, has taken some material from *Varāṅgacarita* Somadeva (A D 959) in his *Yaśastilakacampū* (Āśvāsa vii, p 332)[2] quotes a verse with the phrase *bhavati cātra ślokaḥ,* and it is the same as *Varāṅgacarita* v 103

viii) Grammatical Peculiarities of Varāṅgacarita

The Ms material at our disposal is limited, the textual tradition of the poem is unsatisfactory, and now and then we come across plain errors of the copyists Under these circumstances it is rather premature to note the grammatical peculiarities of *Varāṅgacarita.* Individual occurrences of striking usages cannot be taken into account, if they are not warranted by metre. Leaving full margin for scribal errors etc. I would note only a few salient points here, which, I hope, would be interesting to a student of Sanskrit grammar

Varāṅgacarita is full of Jaina technical terms many of which with their different shades of significance are not noted in the Sanskrit Dictionaries The meanings of such words, however, can be ascertained by referring to standard works on Jaina dogmatics and terminology[3] Some peculiar words

1 See the footnote No 1, on p 12 above

2 Ed Nirnayasāgara Press, Bombay 1903.

3. *Tattavārthasūtra* with various commentaries, also *Eine Jaina Dogmatik* by H Jacobi in the Zeitschrift der Deutschen Morgenländischen Gesellschaft, 1906, *Dravyasamgraha, Pravacanasāra* etc.

which our author uses are *gona* vi 15 'an ox', a word of Prākrit origin, so also *phulla* ii. 73, *bhinḍa* xii. 85 and *tumba* xxxi. 32. The word *maithuna* xx 75 & xxv 6, which reminds us of Kannada *maiduna* and Marāṭhī *mehunā* is unknown to classical Sanskrit in this sense; and *barkara* xxvii. 17 'a goat' is also rare *addhā* xiv 95 'time' is quite usual in Jaina Prākrit texts *tiraśca* for *tiryag* xxiv 66 reminds us of Prākrit *tiriccha* or *tiraccha* The author uses *sampadā* also for *saṁpad*, see xx 65, 79 and especially xxv 40 Words like *madamba*, *kheda* etc iii 4 often show a Prākritic spelling *krīḍakṛtaṃ* xxx 57 is a strange Sanskritisation of *kīyagaḍaṃ* = *krītakṛtam*. So most of the above words are either Prākritisms or back-formations *sādana* for *sadana* xxi 15, *mṛdvīka* for *mṛdvīkā* xxii 72 and *āvahitā* for *avahitā* xxvii 1 are irregularities perhaps due to metre

There are some words which attract our attention with regard to their genders · *geha* M, i 25, xxi 38, xxii 66, 73; *krodhotthāna* M, iv 68, *jāla* M. vi 52, *vrttānta* N, xv 1; *akṣata* N, xxii 64 There are other cases like *bhūsana* M, xiii. 66; *cūrna* M, xxiii 30; *cakra* M xviii 55 which either agree with the epic usage or are archaisms *prāna* xxix 3 is used in the singular The superlative *tama* is suffixed to substantives. *vaniktama* ii 13, *bandhutama* xix 4 & xx 37, *arthatama* xxix. 62, and once the phrase *taratama* is used like an adjective iv 114

Once we have *Balinah* xxiv. 33 Gen Sg. from Bali, either the author takes Balin (usually Bali) as the name or it is a back-formation from Prākrit. We get the form *svasārah* xx. 90 for *svasṛh* Acc pl *Kratāntah* is used for Voc. Sg xv 47;

Among the reference books the following may be noted: *Jaina Gem Dictionary* (Arrah 1918), *Abhidhāna-Rājendra* (in Sanskrit) in seven Vols. (Ratlam), *Ardha-māgadhī Dictionary* in four Vols. (Indore), *Bṛhat Jaina Śabdārṇava* in Hindī in two Vols. (Surat). etc.

Once *gatīṣu* for *gatiṣu* xxiv 54, we get epic parallels for this, but here it is perhaps due to metre

Many nouns and adjectives are used with the abstractive sense, even though the necessary abstractive suffix or change is absent *adṛśyarūpa* for *adṛśyarūpatva* xiv 20, *gādha* for *gādhatva* xx. 24, *utsuka* for *utsukatva* xx 76, *nirāśraya* for *nirāśrayatva* xxi 63, *ananyakīrti* for *-kīrtitva* xxii 31, *nirmala* for *nirmālya* xxv 45, *malīmasa* for *malīmasatva* xxix 98 On the other hand we have also *vicikitsatā* for *vicikitsā* xxxi 69, *śaraṇyatā* for *śaraṇa* xiii 15, *samvāhanatā* for *samvāhanana* xiii. 87, *sukha-duhkhātmaka* for *sukhaduhkha* xxiv 30 Then we have a form *ārogyatā* viii 53, xxiii 20, which is doubly abstract

It passes one's understanding why sometimes the author prefers the strong grade of the feminine form of the possessive suffix *vat* as in *garvavantyah, viśuddhavantyah* i 59, *śrutavantyaḥ* xv 34, *cetanāvantyah* xv 37, *dhairyavantyah* xxviii 105 If these are not scribal errors, they appear to be contaminated by Prākrit usage All these cases can be corrected without spoiling the metre

Our text abounds in various verbal forms some of which deserve our special attention The Padas, Parasmaipada or Ātmanepada, may be noted in the following forms *bhartsayanti* v 94, also note xviii 41, 44, 76, *ādaduh* xiv 59 and *ādadāti* xxiv 58, *mrgayāmi* xv 134, *prasavanti* xxiv 29, [*vi*]*ksarate* xxiv 57 Then forms like *lapate* iv 83, *pheṣuh* xvii 39, *kampat* xxix 13 etc agree more with the epic usage than with the classical one

The author shows a decided inclination towards the use of Perfect, though the forms of the Imperfect and Aorist are also used Perfect is used even for narrating contemporary events (ii 11), and once it appears to be used even for the first person (xvi 24). In canto iii verses 19-25, the author has as if a regular exercise for the practice of forming desider-

atives for which he shows his fondness like Aśvaghoṣa. It is a regular habit with him to separate the verb of the perfect from its auxiliary by some intervening word, see for instance ii. 50, xi 61-2, 85, xiii 20; xiv 16; xviii 56, xix. 7, 19; xxii 3, 26, xxiii 3, 8, 17, 71; xxviii 79, xxix 25; xxx. 67 At xxiii 17 the verb has a preposition in addition. Aśvaghoṣa has some instances of this separation (*Buddharcarita* ii 19, vi 58 and vii 9), and this practice is sanctioned by Kālidāsa (*Raghuvamśa* ix 61 and xiii 36) Pretty frequently *āsa* is independently used as in the Epics, for instance i 46, xx 54, xxi 33, xxx 27 There is one clear case of double preposition *upopavista* ii 14, xxiii 73, and *adhyadhisṭhita* in xxi 69 may be included in the same category *Upopavista* is used by Aśvaghosa and it is found in *Rāmāyana* also as I have pointed out in the Notes

The author, it appears, has used many irregular forms · *karavāmahe* for *karavāmahai* xxviii 84, [*sasarjuh*] for *sasrjuh* ii 35, *samnidadhyuh* for *samnidadhuh* x 63, *jaghnitha* for *jaghanitha* xiv 51, *juhuh* for *juhuvuh* xxv 15, *mamarduh* for *mamrduh* xxx 21, *cicitsavah* for *cicetisavah* iii 21, *siśamsavah* for *śiśamisavah* iii 23; *samaśnutām* for *samaśnuvānānām* or *samaśnuvatām* iv 114 & v 95; *samvibhājitum* either for *samvibhājayitum* or *samvibhaktum* xxi 58, *susādhayitvā* for *susādhya* xxxi 82 and also note *aviganya* for *aviganayya* xviii. 2, *rantvā* for *ratvā* xv 128, xxii 20, *parimanthya* for *parimathya* xxiv 56 and *ācaksitam* for the usual *ākhyātam* xix 73 are rather rare usages The author shows a tendency, quite normal according to the epic usages, of having a strong grade for the feminine base of the present participle · *bruvantyah* v 61, *rudantyah* xv 36, 39 & xix 44. The form *rudantī* is used by Aśvaghoṣa (*Saundarananda* vi. 6, 35 and *Buddhacarita* ix. 26 JOHNSTON'S Ed.)

Now and then we find that the causal form is used to de-

note the primitive sense . *parīpsayinyah* i 59, *atiśāyayanti* i. 27 *vighātayanti* iv 30, *todayanti* v. 52, *cūṣayanti* v 85 *samślāghayantah* viii. 34, *bhikṣayanti* viii 28, *parīkṣayanti* x. 11, *prativarṣayantau* xiv 12, *samupāsayantah* xxii. 42, also *niranjitānām* xxxi. 41 , and sometimes the primitive is used with causal sense *hṛtvā* viii. 22, *vyābhāsamānāh* ix 38 and *śamitum* xxix 8.

We find that *ut-khan* is used in the sense of *ni-khan* v 48 , and *gai* or *ni-gai* is used in the sense of speaking, see for instance xvi 57, xx 42, 80, 83, and xii 11 Quite ingeniously the author uses *niśāmya* and *niśamya* (ii 37) with their different shades of meaning The roots *nrt* (xiv 4) and *vac* (ii 9 & xxii 53) are transitively used with the cognate accusative ; while some gerunds are standing intransitively, for instance *anubhūya* i 60, *adhiruhya* v 83, *nighṛṣya* xiii 1. *Āssva bhavān* is used for *āstām bhavān* at xx. 31.

In many places the conjunctive *ca* is not rightly placed, see for instance ii 2, iii 36, 47, x 35, xiv 57, xviii 73, xxi 9, xxiii 47 etc Sometimes *ca* or *hi* stands at the beginning of a pāda x 35, xxvii 56 and xxviii 37 At times both *evam* and *itham* (ii 48, xx 21) and both *yadi* and *cet* (xvi 68, xix 80, xx 25, xxiv 22, 28) are used The archaic *amā* for *saha* is quite a favourite with the author (ii. 57, viii. 44, xxiii 6, xxviii 98, xxx 54) He shows a tendency of using the pronominal forms of *tad* etc at times without any definite purpose and at times like a definite article in English, see for instance i 4, viii. 36, xi 65, 72, 75, etc , etc Often *sāhva* is used for *āhva* or *upāhva* viii 1, xx. 27 Now and then *ka* stands like a *svārthe* suffix xi 25, xxiii 30

The author is in the regular habit of using Sāpekṣa compounds which may be tolerated as the sense is not much obscured We have many of them scattered all over the text, see for instance i 39, 46, 53, 69 , ii 1 etc Pāṇini's rule

ānaṅ ṛto dvandve is often violated, see for instance i. 59, xx. 5, xxi. 8, xxviii 60, xxxi. 4 and also my notes thereon. Quite freely the author puts the possessive suffixes to Karmadhāraya compounds, see for instance iii. 58, iv 95, ix. 45, xiii. 25 etc. In some cases he does not use Samāhāra as required by classical convention· *hastyśva-yānāni* iii. 30, *padāti-hastyaśva-rathaih* xvi 31 We may also note forms *savaijayantyah* for *savaijayantīkāh* xviii. 18 and *-netroh* for *-netrkayoh* etc. xviii. 83 About the sequence of words in a compound expression the author is liable to a good deal of laxity, and in this respect he can be compared with his colleagues in Prākrit literature Some of the important deviations I have noted in the Notes , see for instance viii. 18, 40 ; ix. 24 , xi. 33; xii 72 , xiii 1, 31 , xvi 31, xvii. 51 ; xxiii. 26, 56 , xxiv 49 ; xxx 3 ; xxxi. 73 etc

The ordinary rules of Samdhi are uniformly observed. But between the Pādas *a* & *b* and *c* & *d* the author, it appears, does not accept that Samdhi is compulsory We find many such cases which are recorded in the Notes. There are a few cases where hiatus is allowed even in the body of a Pāda viii 39*a*, xiv. 78*d* xvi 81*a* There are two illustrations of abnormal Samdhi *sukṣetre+ajñah=sukṣetrayajñah* xxviii. 42 and *grāme + ekarātram = grāmaikarātram* xxx 45.

In xvii 32 *nṛpātmajā* Nom sg stands for *nṛpātmajayā* Inst sg The classical usage requires that the causals of the roots *ad* and *khād* should govern Inst. ; but here we find that the Acc is used instead v 49, 57 The root *hr* with *pra* governs Acc. see for instance xiv. 31, xvii 44, 61, xviii 70. In i 8-9 the author has illustrated the use of *vinā* with Abl., Acc. and Inst. Instrumental is used for Acc. in xxiii. 101 where we usually want *vara-cūrna-vāsān* etc As in the epic usage, *apeta* governs Inst. viii. 34, vi 51, xvi 50 If the reading is correct, it is a novel usage that Dative is used to convey

the sense of 'instead of' · *Kāścidbhatāya śriyameṣa bhunkte* 'he enjoys glory instead of K' xviii 126. Then Gen is used for Inst xxxi 86, and for Abl which is necessary for comparison xvi. 60 Lastly Loc *tasmin* is used for Acc xiii. 63.

The usage of *samāna-kartrkatva* appears to be violated in the use of Gerund vi 53, also note xv 126 which needs some emendation as suggested in the Notes

Among the numerals used by the author the following ordinals in the colophons of those cantos specially attract our attention *ekādaśama, dvādaśama, trayodaśama, saptadaśama, ekonatrimśatitama, trimśatitama* and *ekatrimśatitama* Also note *caturdaśāni* for *caturdaśa* xxx 4 Some such forms like *ekādaśama, aṣṭādaśama* and *ṣaṣtama* are found in one Ms of *Saundarananda* collated by Dr JOHNSTON for the edition of that work[1]

Some of the specialities of Jatila are the normal usages of the epics, and now and then they are common to Aśvaghoṣa and Jatila I do not claim that I have exhausted all the peculiarities Some space is devoted to them, along with the emendations of certain corrupt passages, in the Notes at the end. A thorough and statistical study with a better text would reveal many more interesting points Then alone it would be possible for us to discriminate between archaisms, special features representing a distinct grammatical tradition, writer's irregularities and scribal slips

IX) METERS IN VARĀNGACARITA

We may enumerate here the various metres used in *Varāngacarita* In view of the bad text-tradition, there are many

1. See *Saundarananda* pp. 82, 142 & 42 in the Variants

defective lines and metrical irregularities Some of them can be emended as shown in the Notes.

Anuṣṭubh (469) : iv 1-112, v. 1-108, xv. 1-144 and xxvi 1-105. One anuṣṭubh verse forms a part of the colophon and it is repeated at the close of all the cantos The Anuṣṭubh of Jaṭila does not reach the polish attained in the classical stage. When events are being narrated, the verses are normally regular But whenever dogmatical enumerations etc are set forth, they read like prose cut into lines There are some pādas containing nine syllables iv. 7*c*, 14*c*, 109*a* ; xv 104*b* ; xxvi, 6*a*, 54*b* . excepting one all of them are enumerative in character , some pādas are metrically defective iv 6*d*, 22*c*, 29*a* etc , and in one place we find a flaw of *yatibhanga* between *c* & *d* iv. 31

Upajāti (1879), a combination of the stanzas of lines of Indravajrā and Upendravajrā with complete Indravajrās and Upendravajrās here and there ii 1-93, iii. 1-61, vi. 1-53, vii 1-65, viii 1-67, ix 1-60, x 1-62, xi. 1-85, xii. 1-84, xiv 1-96, xvi 1-109, xvii. 1-84, xviii 1-128, xix. 1-77, xxii 1-77, xxiii 1-103, xxv 1-96, xxvii. 1-92, xxviii. 1-106, xxix 1-95, xxx 1-73 and xxxi 1-113 Sometimes there is a hiatus in the body of a line viii. 39*a*, xiv. 78*d*, xvi. 81*a* In an Upajāti verse there is a Vaṁśasthā foot xiv. 24*d* The last vowel in the word *upaiti* in xvi. 30*d* followed by *vyaktim* becomes prosodially long against metre At xxii 50*d* *tu* becomes long against metre. At xxvii. 15*a* one syllable is in excess

Drutavilambita (89) : xx. 1-89

Puṣpitāgrā (24) . i. 69-70, iv 113-4, vii. 66-7, xi. 86-7, xiv. 97-98, xvii 85-6, xxiv. 76-77, xxv. 97-8, xxvii. 93-4, xxviii. 107-8 and xxix 96-9 It may be noted that xvii. 85*d* is short by one syllable

Praharṣiṇī (20) ii 94-5, v. 109-10, ix 61-62, xii. 85-88, xv. 145-46, xviii. 129-30 (see the Notes), xxii 78-9, xxx 74-5, xxxi. 114-15 (see the Notes)

Bhujangaprayāta (10) vi 54-5, x 63-4, xiii 88-9 and xxiii 104-7

Mālabhāriṇī (77)[1] viii. 68-69 (see the Notes), xxiv 1-75 Canto xxiv is a chapter of philosophical contents which are often obscure, and the text too is not well preserved. There are many lines which are wanting in some syllables, while some have syllables more than necessary All these irregularities are noted in the Notes and some emendations too are suggested

Mālinī (12) · iii 62-3, xvi 110-111, xix 78-81, xx 90-91 and xxi 79-80

Vasantatilakā (70) i 1-68 and xxvi 106-7

Vaṁśastha (165) xiii 1-87, xxi 1-78 In two places we have Indravaṁśā pādas in a Vaṁśastha verse, see xiii 56*c* and xxi 20*a*

From the above analysis it is plain that the favourite metre of the author is Upajāti as in the case of Aśvaghoṣa As remarked above he does not mind hiatus between *a* & *b* and *c* & *d* of a verse. Often the last syllable of a pāda, though grammatically short, is treated as long for metrical purposes Sometimes hiatus is allowed in the body of a line At xxiv 28*c* a short vowel followed by *kr* is taken as a long vowel

---

1 Though *Buddhacarita* v 1-78 are in Mālabhāriṇī metre, Dr. JOHNSTON calls them Aupacchandasika. Is it that he treats Mālabhāriṇī as a stereotyped variety of Aupacchandasika ?

x) Style of Varāṅgacarita

For two reasons it is difficult to evaluate the style of *Varāṅgacarita* with justice . first, the text-tradition is bad and one is faced with many corrupt passages, and secondly the contents are varied in character, major portion of the work being devoted to dogmatical details and polemic discussions We miss here the delicate ideas, exquisite comparisons, subtle polish and smooth handling of Sanskrit language which characterise Kālidāsa In moral earnestness and religious zeal Jaṭila can be favourably compared with Aśvaghoṣa Dogmatical details have marred the poetic effect of the work The first canto is dignified in its flow, but this tone is not maintained throughout In narrating the events Jaṭila is quite vigorous, and in moral discourses specially at home In some places the author, like a good student, observes the special rules of grammar,[1] while we come across many lapses elsewhere. Thus as the text stands, it leaves the impression of an amateur production Though his descriptions of the palanquin (ii 53 ff) and temple (xxii 57 ff) are rather extravagant, his battle scenes, quite epical in style, are worthy of any great epic poet Jaṭila, like the South Indian architect, takes delight in working out details and details, and is pleased to repeat scenes after scenes Now and then we come across rhyme (xi 45, xix 38, xxi 80, xxii 57-8 and also 59), alliteration (xv. 15), and the repetition of the same syllable to produce a sonorous sound (xxii 7, 21) Here and there we find beautiful verses which testify to the artist and the poet in Jaṭila[2] We may quote some verses

1 *āramati, i* 34, *samavatiṣṭhate* iv. 9, *bhīṣayante* v 94, *saṁkrīdamānā* vi 12 etc

2 Describing the Ms of *Varāṅgacarita* Hiralal remarks · 'It is a Kāvya of high poetic merit' (*Catalogue of Sk and Pk. Mss. in the C. P. & Berar*, p. 689). A friend of mine, a close student of

here.[1]

xi. 66 .

चलत्पताकोज्ज्वलकेशमाला
प्राकारकाञ्चिः स्तुतितूर्यनादा ।
प्रपूर्णकुम्भोरुपयोधरा सा
पुराङ्गना लब्धपतिस्तुतोष ॥

xviii. 14 .

अन्योन्यदन्तांस्तु बलाद्गजेन्द्रा
उत्पाट्य रोषाद्विसवत्क्षणेण ।
स्वलोहितार्द्रैरभिजघ्नुरन्यान्
नीराजनायामिव तैरलातैः ॥

xviii. 65

मानोन्नत नावनत परेभ्यो
दोलायमानभ्रमरावलीकम् ।
शिरः सनाद विनिपत्य भूमौ
प्रफुल्लपद्माकृतिमादधार ॥

The last verse is worthy of any great poet The author inherits many similes from others, but now and then he has his own similes

xviii 119

वातायनेभ्य. खलु पुष्पवर्ष
वराङ्गनाबाहुलता. सलीला. ।
प्रचक्षरुश्चूर्णरजोविमिश्र
वातावधूता इव कामवल्लयः ॥

Classical Sanskrit, to whom I had sent the first form of this text, writes to me . 'The style of the work is charming It is so melodious that one is reminded of Aśvaghoṣa's verses'

1 These verses are quoted here with certain emendations suggested in the Notes.

xxviii. 6 ·

निदाघमासे व्यजनं यथैव
करात्करं सर्वजनस्य याति ।
तथैव गच्छन्प्रियतां कुमारो
वृद्धिं च बालेन्दुरिव प्रयातः ॥

When Jinasena complimented the poetic flash of Jaṭila, I think that he had such verses in view

7. Four Other Varāṅgacaritas

1) Vardhamāna's Varāṅgacarita in Sanskrit

The story of prince Varānga has proved fascinating in later days Vardhamāna composed in Sanskrit verse another *Varāṅgacarita*[1] This poem is a summary of Jaṭila's work with which it has close phraseological agreements in places more than one ; the author only curtails the details of religious sermons and various descriptions, the skeleton of the story remaining the same all the while The incidents and events of the story are narrated in the same order At times proper names are differently spelt. Vardhamāna perhaps implies that he has summarised Jatila's work when he says

गणेश्वरैर्या कथिता कथा वरा ।
वराङ्गराजस्य सविस्तरं पुरा ।
मयापि संक्षिप्य च सैव वर्ण्यते
सुकाव्यबन्धेन सुबुद्धिवर्धिनी ॥

1. Edited with Marāṭhi translation by Pt Jinadas, Sholapur 1927,

Pt. JINADAS writes in his introduction to that edition that Vardhamāna's *Varāngacarita* is the same as the one referred to in *Harivaṁśa* of Jinasena But this view is not correct and cannot be accepted, because it is proved beyond doubt that Jaṭila is the author of *Varāngacarita* referred to by Jinasena

There is no definite evidence as to the date of Vardhamāna who gives meagre information about himself He was a Bhaṭṭāraka belonging Mūlasamgha, Balātkāragana and Bhāratīgaccha, and he had a title *para-vādi-dantipañcānana* I know of two Vardhamānas The first was the Guru of Dharmabhūṣana, the author of *Nyāyadīpikā* If this Vardhamāna is the same as the Guru of Dharmabūsana, then this *Varāngacarita* is composed in the middle of the fourteenth century A D at the earliest, because the date of Dharmabhūṣana is given as *c* A D 1600 by VIDYABHUSHAN[1] and A D 1385 by PATHAK[2] The second Vardhamāna is the author of Humch inscription, and his date is about A D 1530 according to RICE[3] It is important to note that this second Vardhamāna belonged to Balākāragana Under these circumstances this *Varāngacarita* cannot be taken earlier than 13th century A D

From the 13th century onwards the references to either Jaṭāsiṁhanandi or his *Varāngacarita* become scarce. If it is not an accident, the probable reason might have been that the *Varāṅgacarita* of Vardhamāna came to be popular It is this work, and not Jaṭila's *Varāngacarita,* which is at the basis of Kannaḍa and Hindī versions noted below.

---

1 *Indian Logic* Mediaeval School, p. 54
2. *Annals* of the B O R. I Vol XII, iv, p. 376
3. *E C.* VIII Nagar No. 46.

ii) DHARAṆIPAṆḌITA'S VARĀṄGACARITA IN KANNAḌA

There is one *Varāṅgacarita* in Kannaḍa written by Dharaṇi Paṇḍita who flourished about A D 1650 He was a native of Viṣṇuvardhanapura It is composed in a popular Kannaḍa metre known as Bhaminī-ṣaṭpadi He says that his work is based on previous compositions From the fact that he mentions one Vardhamānayati along with other previous authors, it appears that Vardhamāna's *Varāṅgacarita* was his authority. The Ms of this work noticed by R NARASIMHACHARYA is incomplete containing only eight chapters [1]

iii) LĀLACANDA'S VARĀṄGACARITA IN HINDĪ

Through the courtesy of Pt PANNALAL JAINA, Delhi, I received a paper Ms belonging to Lālā Harasukharāyaji Jaina Pustakālaya, Mandira Pañcāyatī, Delhi It is written on Aśvina Śuddha 3, Sunday, Samvat 1905 It contains a metrical Hindī version, in 13 cantos, of the Sanskrit *Varāṅgacarita* of Vardhamāna noted above. From the concluding verses we learn that the work of Vardhamāna, being in Sanskrit, could not be followed by all, and hence there was the need of rendering it into Bhāṣā, i e., the earlier stage of Hindī At Atera, in the territory of Bhadāvara (now in the Gwalior State) there lived a Bhaṭṭāraka Viśvabhūṣana by name His disciple was Brahmasāgara of the Agravāla family He went to Girnar on pilgrimage, and on his way back halted at Hiṇḍaun where many pious house-holders resided. He had a disciple in Pāṇḍe Lālacanda who translated the Sanskrit work into Bhāṣā so that all

1. *Karṇāṭaka Kavicarite* vol. II p. 417 ff.

might read it This was not possible for him without somebody's aid for which there arrived an opportunity Nathamala, son of Sobhācanda, of Bilālā Gotra, left Āgrā and came to stay at Hirāpur and rendered much assistance in the composition of this work The author quite modestly states that he composed this work not to parade his learning, but for merit and for the benefit of other house-holders The work was finished in Samvat 1827, 5th day of Māgha Śukla, Saturday, i.e. A.D 1769, 11th February

Besides *Varāṅgacarita*, it is reported[1] that Lālacandra composed many other works in Hindī such as *Ṣatkarmopadeśaratnamālā* (Samvat 1818), *Vimalanātha-purāna, Śikharavilāsa, Samyktva-kaumudī, Āgamaśataka* and some other books on rituals.

iv) KAMALANAYANA'S VARĀNGACARITA IN HINDĪ

From a Ms containing 67 pages (7″ × 11″) with eleven lines on each page Pt KAMATA PRASAD JAINA, Aliganj, has kindly sent to me some relevant extracts from the Hindī *Varāṅgacarita* of Kamalanayana of Mainapurī As noted in the concluding colophon, it is a metrical rendering of the Sanskrit work of Vardhamāna

Kamalanayana was a resident of Mainapurī. He belonged to Yaduvamśa and Buḍhela caste , his surname was Nagarābāra and his Gotra was Kāśyapa His grandfather Nandurāma was a prominent Banker of that place, while his father Haracandadāsa was a physician Kamalanayana had an elder brother Kṣitipati by name He finished this *Varāṅgacarita* in Samvat 1872, i e A D 1814, Jyeṣṭha Śuddha Paurṇimā

---

1. *Jaina Hittaishi* Vol. XIII p. 26.

अँग्रेजी प्रस्तावनाका सार

१ सम्पादनमें उपयुक्त सामग्री

ताड़पत्रकी जिन दो प्रतियोंके आधारपर वराङ्गचरितके इस संस्करणका सम्पादन किया गया है उनका परिचय निम्न प्रकार है—

क—यह प्रति कोल्हापुरके श्रीलक्ष्मीसेन-मठकी है। इसमें १४४ पत्र हैं, प्रत्येक पृष्ठमे ८ पक्तियाँ और प्रत्येक पक्तिमे लगभग ५५ अक्षर। लिपि कनड़ी है, और अक्षर सुन्दर हैं। यह प्रति अच्छी हालतमे है, केवल एक पत्र टूटा हुआ है। इकतीसवे सर्गके अतिम वाक्यसे पता चलता है कि यह प्रति शक सम्वत् १६५८ मे लिखी गई थी। अतः यह आजसे २०२ वर्ष पहलेकी है। सन् १९३० मे मैने इस प्रतिको खोज निकाला था और उसके आधारपर एक विस्तृत निबन्ध लिखकर भण्डारकर प्रा० वि० मन्दिर पूनाकी पत्रिका जिल्द १४ मे प्रकाशित किया था।

म—यह प्रति श्रवणबेल्गोलके जैन मठकी है और इस समय मैसूर लायब्रेरीमें है। इसमें १०९ पत्र, प्रत्येक पत्रके दोनो ओर छ छ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्तिमें लगभग नब्बे अक्षर हैं। इसका लेखनकाल शक सं० १३८० है, अर्थात् यह प्रति ४८० वर्ष प्राचीन है। मुझे इसकी मूल प्रति तो नही मिल सकी, किन्तु ओरियन्टल लायब्रेरी मैसूरके पं० एन० अनन्तरङ्गाचारियरकी कृपासे इसकी एक प्रतिलिपि मिल गई थी। उसीपरसे पाठान्तर वगैरह लिये गये हैं।

'क' प्रतिसे तुलना करनेपर ज्ञात होता है कि 'म' प्रति उससे २७८ वर्ष प्राचीन है, इसके पाठान्तर उससे अच्छे हैं। यद्यपि इसमें धब्बे और छूटे हुए पाठ वगैरहकी बहुतायत है, तथापि लेखककी असावधानीसे होनेवाली अशुद्धियाँ 'क' प्रतिसे कम हैं। 'म' प्रति गेरसप्पा नामक स्थानमें लिखी गई थी और 'क' प्रति सेरिङ्गपट्टनमें। अतः दोनों प्रतियोंका जन्म कर्नाटक प्रान्तमें ही हुआ है। इन दोनों प्रतियोंका श्रवणबेल्गोलके जैन मठके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। 'म' प्रति उक्त जैन मठसे ही मैसूरकी लायब्रेरीमें लाई गई है और उक्त मठके

तत्कालीन भट्टारककी आज्ञासे 'क' प्रति लिखी गई है। 'क' प्रतिका एक पद्य 'म' (२६-६५) प्रतिमें नहीं मिलता। 'क' प्रतिमें कुछ स्थानोंमें उपयोगी अक्षर और पद पाये जाते हैं, जब कि 'म' प्रतिमे वे स्थान छूटे हुए हैं। तथा 'क' प्रतिमें कई स्वतंत्र पाठ भी हैं। इन बातोंसे पता चलता है कि 'क' प्रति सीधे 'म' प्रतिसे नहीं की गई है। किन्तु इनके विपरीत भी कुछ बातें उल्लेखनीय हैं। जैसे—दोनों प्रतियोंमे बहुतसे छूटे हुए पाठ समान हैं, दोनोंमे कुछ ऐसी अशुद्धियाँ हैं, जो कुछ मतलब नहीं रखती हैं, ३० वें सर्गके प्रारम्भमे दोनों प्रतियोंमे एक नमस्कारात्मक पद्य है, जो सम्भवतः लेखककी कृपाका फल है। इन बातोंसे प्रतीत होता है कि 'क' प्रति 'म' प्रतिसे बिल्कुल स्वतन्त्र नहीं है। उक्त सभी बातोंको दृष्टिमे रखते हुए मेरा मत यह विश्वास करनेकी ओर झुकता है कि कुछ पीढियाँ पहले दोनो प्रतियोंका आदर्श एक ही प्रति थी। 'म' प्रतिके आदर्शमे कीटक आदिसे बहुत त्रुटियाँ हो गई होगीं ऐसा जान पड़ता है। यह कहना कठिन है कि 'क' प्रतिमें छूटे हुए पाठोंकी पूर्ति किसी बुद्धिमान् लेखकने की है अथवा उसकी आदर्श प्रतिमे ही ऐसा था।

२ मूलका संगठन

उक्त दो प्रतियोंके आधारपर ही सम्पादकको अपना कार्य करना पड़ा है, जब कि मूल त्रुटित और अशुद्ध है और उपयोगी पाठान्तरोंकी संख्या कम है। उदाहरणके लिये, इसके दार्शनिक विभागमें २४ वाँ सर्ग कई स्थानोमे अतिगूढ़ है और पाठककी बुद्धिको चक्करमें डाल देता है। इसके सिवाय बहुतसे स्थानोपर पाठ छूटे हुए हैं और पाठान्तर कामके होनेपर भी विशेष सहायता नहीं करते। ग्रन्थ अति प्राचीन है, प्राप्त प्रतियाँ सदोष हैं और इसकी कोई टीका भी उपलब्ध नहीं है। ग्रन्थ ही प्रथम बार प्रकाशित हो रहा है। इसके रचयिताकी कोई दूसरी कृति भी उपलब्ध नहीं है, जिसके अध्ययनसे सम्पादक वराङ्गचरितकी विशेषताओंका अच्छी तरह समझनेमें सहायता प्राप्त कर सकता। इन सब परिस्थितियोंके बीचमें बड़ी सावधानताके साथ मुझे अपना कार्य करना पड़ा है। 'क' और 'म' प्रतिका परस्परमें मिलान करके बहुत-सी अशुद्धियोंको निकाल दिया है। अक्षर विन्यास तथा इतर विशेषताओंको एक सन्मान्य रूपमें रक्खा है। जो रिक्त स्थान तथा धब्बे वगैरह दोनों प्रतियोंमें साधारण हैं, उन्हें कायम रक्खा है। कहीं कहीं दीर्घ और

ह्रस्व स्वरोंके चिह्नोंको मैंने ब्रेकेटमें रखा है। जो पाठ केवल एक ही प्रतिमें छूट गया था उसे दूसरी प्रतिसे ले लिया है, क्यों कि दोनों प्रतियांकी प्राचीन परम्परा एक ही है। जहाँ दोनों प्रतियोंमें पाठ-भेद है, वहाँ उपयुक्त पाठको मैंने मूलमें दिया है और दूसरेको टिप्पणमें। अशुद्ध पाठ रहनेपर हमको जो सूचनायें करनी थीं वे पाद-टिप्पणीमें स्क्वेअर कंसमे दी गई हैं, और कई टिप्पणीमें दी गई हैं। शुद्ध-पाठकी प्राप्तिके वास्ते यह हमारा तुच्छ प्रयत्न है। हमारी भूल हो तो, विद्वान् आगे सुधार सकते हैं। कहीं कहीं अर्थशून्य पाठान्तर भी इस लिये दे दिये हैं कि उनसे शुद्ध पाठका अनुमान करनेमे सहायता मिल सकेगी। जहाँतक सम्भव हो सका मैंने उपलब्ध सामग्रीका अतिक्रमण नहीं किया है और अपनेको सीमामें रखकर ही अपने विवेकका उपयोग किया है।

३ वराङ्गचरितके रचयिता

दोनों प्रतियोंमें किसी भी स्थलपर उसके कर्ताका नाम नहीं लिखा है। तथा न तो विभिन्न सर्गोंकी सन्धियोंमे और न किसी सर्गके अन्तिम पद्यमें ही ग्रन्थकारने अपना नाम वगैरह दिया है। किसी सर्गके उपसंहारात्मक पद्यमें भी मुझे कोई ऐसा शब्द न मिल सका, जो रचयिताके नामपर परम्परया प्रकाश डाल सके। प्रथम सर्गके ८९ वें पद्यमें विशालकीर्ति और राजसिंह नाम आये हैं, किन्तु इनसे बलात् किसी अभिप्रायको निकालनेकी आवश्यकता नहीं है, क्यों कि अन्य सर्गोंके अन्तमें इस प्रकारके शब्द नहीं आते। अतः ग्रन्थसे उसके कर्ताके बारेमें कोई सहायता न मिलनेपर हमें बाहरसे ही प्रमाणोंकी खोज करना होगी।

(१) जिनसेनने अपने हरिवंशपुराण (ई० ७८३) के निम्नलिखित दो पद्योंमें पद्मचरित और वराङ्गचरितका उल्लेख किया है--

> कृतपद्मोदयोद्योता प्रत्यहं परिवर्तिता।
> मूर्तिः काव्यमयी लोके रवेरिव रवेः प्रिया ॥३४॥
> वराङ्गनेव सर्वाङ्गैर्वराङ्गचरितार्थवाक्।
> कस्य नोत्पादयेद्गाढमनुरागं स्वगोचरम् ॥ ३५ ॥ प्र० स०।

इनमेंसे प्रथम श्लोकमें रविषेणके पद्मचरितका उल्लेख है। दूसरे श्लोकका

१ माणिकचन्द्र जैन-ग्रंथमाला बम्बई पुष्प ३१-३२।

२ „ „ पुष्प २९-३०।

प्रथम श्लोकके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, और उसका अनुवाद इस प्रकार हो सकता है—' सुन्दरी नारीकी तरह वराङ्गचरितकी अर्थपूर्ण रचना अपने गुणोंसे किसके हृदयमें अपने प्रति गाढ़ अनुराग उत्पन्न नहीं करती ? ' यह एक स्वतंत्र श्लोक[2] है और इसमें कर्ताका नाम दिये बिना केवल वराङ्गचरितका गुणगान किया है।

(२) उद्योतनसूरिकी कुवलयमाला[3] में (ई० ७७८) एक गाथा निम्न प्रकार है—

जेहिं कए रमणिज्जे वरंग-पउमाण-चरियवित्थारे ।
कह व ण सलाहणिज्जे ते कइणो जडिय-रविसेणो ॥

इस गाथाके ' जेहि ' ' ते ' और ' कइणो ' पदोंसे स्पष्ट है कि ग्रन्थकारने दो कवियोंका उल्लेख किया है, जिनमेंसे एक पद्मचरितके कर्ता हैं और दूसरे वराङ्गचरितके, और उनके नाम ' जडिय-रविसेणो ' पदके द्वारा बतलाये हैं। इस पदके प्रथम भागके बारेमें श्रीयुत प्रेमीजी कुछ अस्थिरचित्त थे, क्योंकि एक स्थानपर उन्होंने ' जडिय[3] ' पाठ दिया था और दूसरेपर ' जइय[3] '। राजशेखरकी काव्य[4]-मीमांसापर टिप्पण करते हुए श्रीयुत दलालने कुवलयमालासे एक अवतरण दिया है और उन्होंने भी ' जडिय ' पाठको ही स्थान दिया है। उद्योतनसूरिने पद्मचरितको रविषेणका बतलाया है और वराङ्गचरितको ' जडिय 'का। किन्तु, जैसा कि नीचे दिये गये धवल कविके उल्लेखसे स्पष्ट है, ' जडिय ' पाठ ' जडिल 'के स्थानमें प्रयुक्त हुआ है और वह अशुद्ध है।

---

१ श्रीयुत प्रेमीजीने इन दोनों श्लोकोंको युग्मश्लोक समझकर अपनी विद्वद्रत्नमालामें लिखा है कि रविषेणने पद्मचरितके सिवाय वराङ्गचरित भी बनाया था। बादको पद्मचरितकी प्रस्तावनामें उन्होंने कुवलयमालाकी गाथाको अशुद्ध पाठके साथ उद्धृत किया। जैसा कि मैंने भा० प्रा० वि० की पत्रिका, जि० १४, पृ. ६१–७९ में लिखा है, वराङ्गचरित रविषेणका नहीं है। मुझे हर्ष है कि प्रेमीजीने अपने भ्रमको स्वीकार करके उक्त मतको मान लिया है।

२ जयसलमेर-भण्डारका कैटलॉग (बड़ौदा-सिरीज) पृ० ४२।

३ जैनहितैषी भाग १५, पृ. १०४ और पद्मचरितकी प्रस्तावना पृ० ३।

४ गा. सिरीज बड़ौदा नं. १, टिप्पणका पृ० १२४।

(३) धवल कवि अपने अपभ्रंश भाषाके हरिवंशमें (ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीके लगभग) वराङ्गचरितका उल्लेख इस प्रकार करते हैं—

मुणिमहसेणु सुलोयणु जेण पउमचरिउ मुणिरविसेणेण ।
जिणसेणेण हरिवसु पवित्तु जडिलमुणिणा वरंगचरित्तु ॥

धवल कविने बिल्कुल स्पष्ट रीतिसे महासेनके सुलोचनाचरितका, रविषेणके पद्मचरितका, जिनसेनके हरिवंशपुराणका और जटिलमुनिके वराङ्गचरितका उल्लेख किया है। यद्यपि जिनसेन वराङ्गचरितके कर्ताके बारेमे चुप हैं, किन्तु उद्योतन और धवल उसे जटिलका बतलाते हैं। अब हमे यह देखना है कि क्या जटिलमुनि हमारे वराङ्गचरितके रचयिता हैं?

(४) राचमल्लके (ई० ९७४–८४) मंत्री और सेनापति चामुण्डरायने कन्नड़ गद्यमे 'त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित'की रचना की है जो चामुण्डरायपुराण[1] (ई० ९७८) के नामसे प्रसिद्ध है। इसका एक गद्यांश वराङ्गचरितके प्रथम-सर्गके छठे और सातवे श्लोकका व्याख्यानमात्र है, और उसके बाद 'जटासिंह-नन्द्याचार्यर वृत्तम्' करके जो श्लोक उद्धृत है, वह वराङ्गचरितके प्रथमसर्गका १५ वाँ पद्य है। अतः इसमे कोई सन्देह नहीं कि चामुण्डरायके सामने हमारा वराङ्गचरित था। शक सं० १४२७ (ई० १५०५) में लिखी गई चामुण्डराय-पुराणकी ताडपत्रकी एक प्रतिमे वराङ्गचरितके उद्धृत पद्यके साथ उक्त पद मौजूद है और उसकी मौलिकतामे सन्देह करनेका मैं कोई कारण नहीं देखता। अतः चामुण्डरायके उल्लेखके अनुसार उक्त उद्धृत पद्यके कर्ता जटासिंहनन्द्याचार्य हैं, और यत. वह पद्य वराङ्गचरितका है अतः उसके कर्ता भी वही हैं। मेरे विचारमे यह जटासिंहनन्द्याचार्य ही जटाचार्य है, जिनका उल्लेख आचार्य जिनसेनने अपने आदिपुराणमे (ल० ई० ८३८) इस प्रकार किया है—

काव्यानुचिन्तने यस्य जटाः प्रचलवृत्तयः ।
अर्थान्स्मानुवदन्तीव जटाचार्यः स नोऽवतात् ॥ १–२० ॥

आदिपुराणकी एक प्रतिके कोनेमे जटाचार्यका असली नाम सिंहनन्दि लिखा[3]

१ सी. पी. और बरारकी संस्कृत और प्राकृतकी प्रतियोंका कैटलॉग, पृ. ७६४।

२ कर्नाटक साहित्य-परिषद् बंगलौरके द्वारा प्रकाशित।

३ आर. जी. भण्डारकरके संगृहीत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ. २७२।

है। जिनसेनने जटाचार्यका केवल उल्लेख ही नहीं किया किन्तु उनके वराङ्गचरितसे बहुत-सी सामग्री भी ली है। इन सब प्रमाणोंके आधारपर कोई भी व्यक्ति यह अनुमान कर सकता है कि हमारे ग्रन्थकारका नाम सिंहनन्दि था और वे जटाचार्यके नामसे प्रसिद्ध थे। सम्भवतः इसका कारण यह था कि वे जटाएँ रखते थे, और जब वे अपनी काव्य-रचनामें तल्लीन हो जाते थे तो उनकी जटाएँ चंचल हो उठती थीं। सम्भवतः सिंहनन्दि नामके किसी अन्य व्यक्तिसे भेद करनेके लिये ही चामुण्डरायने जटासिंहनन्दि नामका प्रयोग किया है। जे जटाएँ रखता है उसे जटिल कहते हैं, अतः हम जटिल और जटाचार्यको एक व्यक्ति मान सकते हैं, और कुवलयमाला तथा अपभ्रंश भाषाके हरिवंशके अनुसार जटिल वराङ्गचरितके रचयिता हैं। इस प्रकार निष्कर्षके तौरपर हम कह सकते हैं कि इस वराङ्गचरितको सिंहनन्दि उपनाम जटा-सिंहनन्दिने बनाया था, जो जटिल अथवा जटाचार्यके नामसे प्रसिद्ध थे।

४ जटासिंहनन्द्याचार्य

जटासिंहनन्दि, जटाचार्य अथवा जटिलके बारेमें हम बहुत कम जानते हैं। विभिन्न शताब्दियोंमें सिंहनन्दि नामके बहुतसे जैन साधु और ग्रन्थकार हो गये हैं। मुख्य मुख्य स्मारक लेखों और साहित्यिक उल्लेखोंके आधारपर हम कमसे कम आधे दर्जन सिंहनन्दियोंको गिना सकते हैं, किन्तु उन सभीके बारेमें हमें बहुत ही कम जानकारी हो सकी है। (१) सबसे प्रसिद्ध सिंहनन्दि वे हैं, जिनका नाम बादके शिलालेखोंमें प्रायः आता है, जो कर्नाटक प्रान्तकी ऐतिहासिक परम्परासे घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं, तथा जिन्होंने ईसाकी दूसरी शताब्दीमें गङ्गवंशकी नींव डालनेमें दो अनाथ राजकुमारोंकी सहायता की थी। (२) श्रवणबेल्गोलमें एक सिंहनन्दिका समाधि-लेख है, जो शक सं ६२२ (ई० ७००) के लगभग हुए हैं। (३) ईसाकी बारहवीं शताब्दीके पूर्वार्धके कुछ शिलालेखोंमें एक सिंहनन्दिका उल्लेख है जो सम्भवतः काणूरगणके थे। (४) ईसाकी बारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धके कुछ शिलालेखोंमें एक सिंहनन्दिका उल्लेख है जो सम्भवतः नन्दिगणके थे। (५) १३७१ ई० के एक शिलालेखमें बलात्कारगणके एक सिंहनन्दिका उल्लेख है। (६) श्रुतसागर सूरि (ईसाकी सोलहवीं शताब्दीके लगभग) के समयमें एक सिंहनन्दि हुए हैं, जिनके

उपदेशसे श्रुतसागरने महाभिषेककी टीका लिखी थी। (७) धवलने एक सिंहनन्दिका उल्लेख किया है, जिन्होने द्वादश-अनुप्रेक्षापर कोई रचना की थी। इन सिंहनन्दियोंके बारेमें जो कुछ जानकारी प्राप्त होती है, उसके आधारपर उनकी समानता या असमानताका निर्णय कर सकना शक्य नहीं है। गङ्गवंशकी नींव डालनेमें सहायता करनेवाले सिंहनन्दि कर्नाटक प्रान्तमें खूब प्रसिद्ध हैं और सम्भवतः उन्हींसे भेद करनेके लिये चामुण्डरायने हमारे ग्रन्थकारका जटा सिंह-नन्दिके नामसे उल्लेख किया है ऐसा मालूम पड़ता है।

यद्यपि जटासिंहनन्दिका नाम बादमे विस्मृत हो गया, किन्तु संस्कृत, प्राकृत और कन्नड़ भाषाके जैनसाहित्यमें उनका स्मरण बड़े आदरके साथ किया गया है। उद्योतनसूरि, जिनसेन प्रथम, जिनसेन द्वितीय तथा धवलने जटिल अथवा जटाचार्य और उनके वराङ्गचरितका स्मरण किया है। कन्नड़ साहित्यमें, पम्पकविने अपने आदिपुराणमें (ई. ९४१), धर्मामृतमें नयसेनने (ई.१११२), पार्श्वपण्डितने अपने पार्श्वपुराणमें (ई. १२०५), जन्नने अपने अनन्तनाथपुराणमें (ई. १२०९), गुणवर्म द्वितीयने अपने पुष्पदन्त-पुराणमें (ई. १२३० के लगभग), कमलभवने (ई. १२३५ के लगभग) अपने शान्तीश्वरपुराणमें, महाबलकविने अपने नेमिनाथपुराणमें (ई. १२५४) जटासिंहनन्दिका उल्लेख किया है। इसके सिवाय अग्गलने (ई. ११८९) चन्द्रप्रभपुराणमें, कुमुदेन्दुने (ई. १२७५ के लगभग) अपनी रामायणमें और नागराजने (ई. १३३१) अपने पुण्यास्रवमें सिंहनन्दिका स्मरण किया है। किन्तु 'जटा' विशेषणके बिना इस सिंहनन्दिको हम जटासिंहनन्दि नहीं ठहरा सकते।

किसी समय निजाम स्टेटका कोप्पल ग्राम, जिसे कोपण भी कहते हैं, संस्कृतिका एक प्रसिद्ध केंद्र था। मध्यकालीन भारतमें जैनोंमें इसकी अच्छी ख्याति थी और आज भी यह स्थान पुरातत्त्वप्रेमियोंका स्नेह-भाजन बना हुआ है। इसके निकट पल्लकी गुण्डु नामकी पहाड़ीपर, अशोकके शिलालेखके समीपमें, दो पदचिह्न अङ्कित हैं। उनके ठीक नीचे पुरानी कनड़ीमें दो लाईनका एक शिलालेख है जिसमें लिखा है कि चावय्यने जटासिंहनन्द्याचार्यके पदचिह्नोंको तैयार कराया। इसका छायाचित्र इस पुस्तकके आरंभमें दिया गया है। किसी महान् व्यक्तिकी स्मृतिमें, मुख्यतया उस स्थानपर जहाँ किसी साधु वगैरहने

समाधिमरण किया है, पद-चिह्न स्थापित करनेका रिवाज जैनोंमें बहुत प्रचलित है। अतः उक्त पद-चिह्न यह बतलाते हैं कि जटासिंहनन्द्याचार्यने कोप्पलमें समाधिमरण किया था। ये जटासिंहनन्दि हमारे ग्रन्थकार ही जान पड़ते हैं, क्यों कि एक तो जटासिंहनन्दि नाम इतर सिंहनन्दियोंसे भेदका सूचक है। दूसरे, कन्नड़साहित्यमें जटासिंहनन्दिके विविध उल्लेखोंसे यह प्रमाणित होता है कि वे कर्नाटकके अधिवासी थे। तीसरे, कुमारसेन सरीखे बहुतसे मुख्य मुख्य साधु अपने अन्तिम दिनोंमें कोप्पलमें आकर बसे थे। अतः यह सम्भव है कि हमारे ग्रन्थकार भी वहाँ सल्लेखनामरणके लिये आये हों।

५ उनका समय और अन्य रचनाएँ

ऊपर बतलाये गये उल्लेखोंके आधारपर जटासिंहनन्दिके समयकी अन्तिम अवधि निर्धारित कर सकना कठिन नहीं है। जिन ग्रन्थकारोंने उनका स्मरण किया है, उनका समय सुनिश्चित है। १३ वीं और १२ वीं शताब्दीके ग्रन्थकारोंके सिवाय, ११ वी शताब्दीमें धवलने जटिल और उनके वराङ्गचरितका उल्लेख किया है। १० वी शताब्दीमें चामुण्डरायने उनका उल्लेख किया है और उनके वराङ्गचरितसे एक पद्य उद्धृत किया है। उनसे ४० वर्ष पूर्वके पम्पके आदिपुराणमें जटाचार्यका उल्लेख है। ९ वी शताब्दीमें जिनसेन द्वितीयने अपने आदिपुराणमें जटाचार्यके कवित्वकी प्रशंसा की है। ८ वी शताब्दीमें जिनसेन प्रथमने अपने हरिवंशपुराणमें (ई० ७८३) वराङ्गचरितका उल्लेख किया है और हरिवंशसे ठीक पाँच वर्ष पूर्वकी कुवलयमालामें उद्योतन-सूरिने जटिल और उनके वराङ्गचरितका उल्लेख किया है। इन उल्लेखोंसे यह बिल्कुल सुनिश्चित है कि जटासिंहनन्दि ई० ७७८ से अवश्य पहले हुए है, क्यों कि ईसाकी आठवीं शताब्दीके अन्तिम चरणके प्रारम्भके समय वराङ्गचरित उत्तर और दक्षिण भारतमें तथा श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थकारोंमें प्रसिद्ध हो चुका था। मध्यकालीन भारतमें गमनागमनके साधनोंको दृष्टिमें रखते हुए, इस ग्रन्थकी ख्याति और विस्तृत प्रसारका लेखा-जोखा बैठानेके लिये हमें जटिल और उद्योतनसूरिके मध्यमें लम्बे समयका अन्तराल रखना होगा।

यह बड़े दुःखकी बात है कि जटिलने अपने ग्रन्थमें किसी भी पूर्ववर्ती ग्रन्थकारका उल्लेख नहीं किया। अतः हमें वराङ्गचरितसे उनके समयकी आदि अवधिका कोई निश्चित सूत्र नहीं मिलता। सम्पूर्ण जैनसिद्धान्त बहुत प्राचीन

समयमें ही क्रमबद्ध हो चुके थे और बादमें उनमें कोई विशेष परिवर्तन वगैरह नहीं हुआ। तथा, बहुतसे प्राचीन ग्रन्थ लुप्त हो चुके हैं। इन परिस्थितियोंके बीचमे, वराङ्गचरितमे वर्णित सिद्धान्तोकी एकवाक्यताके आधारपर समय निर्णय करनेमें मुझे बहुत सावधान रहना होगा। तथापि नीचे प्रयत्न किया जाता है—

(१) वराङ्गचरितके सैद्धान्तिक वर्णनको देखकर उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रका स्मरण हो आता है। यह सर्वथा सम्भव है कि जटिलके समान धर्मोपदेष्टा तत्त्वार्थ-सूत्र सरीखे मान्य ग्रन्थका आलोडन करके उसका सार अपने ग्रन्थमे निबद्ध करे।

(२) वराङ्गचरितके २६ वे सर्गके ८२–८३ श्लोक समन्तभद्रके स्वयम्भू-स्तोत्रके १०२–३ श्लोकोंकी याद दिलाते हैं।

(३) नीचेकी तुलनासे बिल्कुल स्पष्ट है कि जटिलने सिद्धसेनके सन्मति-प्रकरणमें वर्णित कुछ मुख्य मुख्य चर्चाओका अनुकरण किया है। वरागचरितके २६ वे सर्गके श्लोक ५२, ५३, ५४–५५, ५७–५८, ६०, ६१-६३, ६४–६५, ६९, ७०–७१ और ७२ की तुलना क्रमशः सन्मतिके प्रथम काण्डकी गाथा, ६, ९, ११–१२, १७–१८, २१, २२–२५, ५१–५२, तथा तीसरे काण्डकी गाथा ४७, ५४-५५ और ५३के साथ की जा सकती है।

(४) वरागचरित (स० १५, श्लो० १२२) में वर्णित सामायिककी व्याख्या वही है जो संस्कृत सामायिक पाठमे पाई जाती है। सामायिकपाठके कर्ताका पता अभी तक नहीं चल सका है। कुछ मुद्रित प्रतियोमे और बहुत-सी लिखित प्रतियोमे यह दशभक्तिके साथ जुड़ा हुआ है। प्रचलित परम्पराके आधारपर प्राकृत दशभक्तिको कुन्दकुन्दरचित माना जाता है और संस्कृत दशभक्तिको पूज्यपादरचित। अतः सम्भव है कि सामायिक पाठ पूज्यपादका बनाया हुआ हो।

इन ग्रन्थकारोंका समय सुनिश्चित नहीं है। समन्तभद्रको ईसाकी दूसरी शताब्दीके लगभगका विद्वान् माना जाता है। जैनसप्रदाय बतलाती है कि उमास्वाति समन्तभद्रके पूर्ववर्ती हैं। सिद्धसेनके समयके बारेमे भी विद्वानोमें मत-भेद है। उनके समयकी अन्तिम अवधि ईसाकी सातवीं शताब्दी मानी गई है। पूज्यपाद पाँचवीं शताब्दीके अन्तिम चरणसे पहलेके विद्वान् हैं। इन सभी आचार्योंका समय ऐसी परिस्थितिमें है कि उनके आधारपर जटिलकविके समयकी आदि अवधि निश्चित नहीं की जा सकती, किन्तु यह बहुत कुछ सम्भव है कि

जटिलकवि ईसाकी सातवीं शताब्दीसे पहलेके विद्वान् नहीं हो सकते। उपलब्ध प्रमाणोंके आधारपर मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि जटासिंहनन्दि आचार्य ईसाकी सातवीं शताब्दीके अन्तमें हुए हैं।

लिपि वगैरहके आधारपर उसके संपादकने कोप्पळवाले शिलालेखका समय ईसाकी दसवीं शताब्दीके लगभग बतलाया है। किन्तु यह केवल अनुमानमात्र है, और लिपि वगैरहके आधारपर जो अनुमान किया जाता है वह उतना निश्चित नहीं होता, जितना कि वे प्रमाण, जो मैंने जटासिंहनन्दिका समय निर्णीत करनेके लिये ऊपर दिये हैं। मेरा अनुमान है कि उक्त शिलालेखका समय एक या दो शताब्दी पूर्व होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हो सकता तो शिलालेखके जटासिंहनन्दि और वराङ्गचरितके कर्ता जटासिंहनन्दि दोनों एक व्यक्ति नहीं हो सकते, या फिर जनश्रुतिके आधारपर बादको किसी गृहस्थने जटासिंहनन्दिके चरण-चिह्नोंकी स्थापना करके उसपर शिलालेख अङ्कित करा दिया है। वराङ्गचरितके समयके बारेमें जो प्रमाण ऊपर दिये हैं, वे इतने सुनिश्चित हैं, और वराङ्गचरितके कर्ता और शिलालेखके जटासिंहनन्दिका ऐक्य निर्धारित करनेमें जो युक्तियाँ दी हैं, वे इतनी संभाव्य हैं कि ऊपरकी दो बातोंमेंसे मुझे दूसरी बातकी ओर ही झुकना पड़ता है। शिलालेखकी शब्द-रचना भी दूसरी बातके ही पक्षमें है, क्योंकि उसमें विशेषतः चरणचिह्न स्थापित करनेका ही उल्लेख है।

इस ग्रन्थकारका वराङ्गचरितके सिवाय कोई दूसरा ग्रन्थ अभीतक उपलब्ध नहीं हो सका है। किन्तु ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने अन्य ग्रन्थ भी बनाये थे, क्योंकि योगीन्द्ररचित अमृताशीतिमें जटासिंहनन्दिके नामसे एक श्लोक उद्धृत है, जो वराङ्गचरितमें नहीं पाया जाता। श्लोक निम्न प्रकार है—

जटासिंहनन्द्याचार्यवृत्तम्—

तावत्क्रियाः प्रवर्तन्ते यावद्द्वैतस्य गोचरम्।
अद्वये निष्कले प्राप्ते निष्क्रियस्य कुतः क्रिया॥

६ वराङ्गचरितका तुलनात्मक अनुशीलन

१ वराङ्गचरितकी कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—विनीतदेशमें रम्या नदीके तटपर उत्तमपुर नामका एक नगर था। उसमें भोजवंशका राजा धर्मसेन

१ माणिकचन्द्र-जैन-ग्रन्थमाला पु० २१, पृ० ९८।

राज्य करता था। उसकी पटरानीका नाम गुणवती था। गुणवतीके एक पुत्र पैदा हुआ। उसका नाम वराङ्ग रखा गया। राजा धर्मसेनने अपने मंत्रियोंसे परामर्श करके उत्तम कुलकी दस राजकुमारियोंके साथ वराङ्गका विवाह कर दिया। एक बार अरिष्टनेमिके प्रधान शिष्य वरदत्त उत्तमपुरमें पधारे। राजा धर्मसेन अपने मंत्रियों वगैरहके साथ उनके दर्शनार्थ गया। वरदत्तने उन्हें उपदेश दिया। वराङ्गके पूछनेपर वरदत्तने सम्यक्त्व और मिथ्यात्वका स्वरूप समझाया और राजकुमारने उनसे अणुव्रत ग्रहण किये। कुछ समयके बाद राजाने वराङ्गको युवराजपद प्रदान किया। इससे वराङ्गकी विमाता मृगसेना और उसका पुत्र सुषेण वराङ्गसे डाह करने लगे। सुबुद्धि नामके मंत्रीने उनसे वादा किया कि वह जिस किसी तरह वराङ्गको धता बता कर सुषेणको राज्य-सिंहासन दिलानेमें उनकी सहायता करेगा। प्रत्यक्षमें सुबुद्धि एक स्वामिभक्त मंत्रीकी तरह व्यवहार करता था, किन्तु परोक्षमें वह सर्वदा वराङ्गका पाँसा पलटा देनेके लिये अवसरकी प्रतीक्षामें रहता था। एक बार उसने दो घोड़ोंको सिखा पढा कर तैयार किया। उनमेंसे एक घोड़ेकी शिक्षा ठीक रीतिसे हुई थी और दूसरेको पूरा शैतान बना दिया गया था। घोड़ोंके प्रदर्शनके समय मंत्रीने ऐसा प्रबन्ध किया कि वराङ्ग उस शैतान घोड़ेपर सवार हो गया और उस घोड़ेने कुमारको एक घने जङ्गलमें ले जाकर पटक दिया। जंगलमें वराङ्गको बहुतसे कष्टोंका सामना करना पड़ा। एक बार एक हाथीकी सहायतासे उसने एक व्याघ्रके मुखसे अपनी जान बचाई। एक यक्षीने एक सुन्दर कुमारीका रूप धारण करके वराङ्गको लुभाना चाहा, किन्तु वह टससे मस नहीं हुआ। इसके बाद उसे शिकारियोंने कैद कर लिया, किन्तु शीघ्र ही उसका छुटकारा हो गया, क्यों कि उसने उनके मुखियाके पुत्रको, जिसे साँपने काट लिया था, अच्छा कर दिया। एक बार भीलोंसे लड़कर उसने व्यापारियोंके एक संघकी रक्षा की। इससे व्यापारियोंका मुखिया सागरबुद्धि उसका बहुत कृतज्ञ हुआ। वह उसके साथ ललितपुर चला आया और अपनेको छिपाकर कश्चिद्भटके नामसे वहाँ रहने लगा। उधर वराङ्गके अचानक लापता हो जानेसे उसके माता पिता और स्त्रियाँ बहुत दुखी हुई और एक मुनिके उपदेशसे प्रबुद्ध होकर अपना समय धर्मध्यानमें बिताने लगीं।

एक बार मथुराके राजाने ललितपुरके राजापर चढ़ाई की, और कश्चिद्भट

नामधारी वराङ्गने उसे मार भगाया। इससे प्रसन्न होकर ललितपुरके राजाने उससे अपनी कन्याओंका विवाह कर दिया और उसे आधा राज्य दे दिया। उधर उसका भाई अपने पिताके राज्यकी देख भाल करता था। किन्तु वह बहुत ही बलहीन साबित हुआ। एक बार उसके राज्यपर राजा बकुलेश्वरने चढ़ाई की। उसके पिताने ललितपुरके राजासे सहायताकी याचना की। वराङ्गने इस अवसरसे लाभ उठाया और बकुलेश्वरको हराकर अपने पिताके नगरमे प्रवेश किया। उसने अपने सभी विरोधियोंको क्षमा कर दिया। उसने पितासे प्रार्थना की कि वह उसे नये देशोंको जीतकर एक नया राज्य स्थापित करनेकी आज्ञा प्रदान करे, क्यों कि ऐसा करनेमे उसे अपनी वीरता दिखानेके लिये विस्तृत क्षेत्र मिल सकेगा। उसने एक नये साम्राज्यकी स्थापना की और सरस्वती नदीके किनारेपर आनर्तपुरको अपनी राजधानी बनाया। एक दिन अपनी पटरानीके प्रश्नके उत्तरमे उसने उसे गृहस्थधर्म समझाया। फलस्वरूप एक मन्दिरका निर्माण कराया गया और उसमे बड़ी धूमधामके साथ जिन-बिम्बकी स्थापना हुई। रानी अनुपमासे उसके सुगात्र नामका एक पुत्र पैदा हुआ। एक दिन आकाशमे वराङ्गने एक टूटते हुए तारेको देखा और उसे संसारके भोगोंसे वैराग्य हो गया। अपने पुत्र सुगात्रको राज्य-भार सौंपकर अपनी रानीके साथ वरदत्त मुनिसे उसने जिनदीक्षा ले ली और आठों कर्मोंको नष्ट करके मुक्तिको प्राप्त किया।

२ धर्म-कथा और काव्य-ग्रन्थ—वराङ्गचरितकी सन्धियोंमे उसे धर्म-कथा बतलाया है। हरिभद्रकी परिभाषाके अनुसार धार्मिक चर्चाओंसे परिपूर्ण ग्रन्थको धर्मकथा कहते हैं। यद्यपि ग्रन्थकारने अपनी रचनाको महाकाव्यकी उपाधि नहीं दी है, तथापि उसमे महाकाव्यकी बहुत-सी विशेषताएँ पाई जाती हैं। एक तो सर्गका विभजन है। दूसरे महाकाव्यमे जिन वस्तुओंका वर्णन आवश्यक है, उनमेसे नगर, ऋतु, केलि, विरह, विवाह, राजकुमारोंका जन्म और उत्थान, युद्ध, विजय आदिका वर्णन वराङ्गचरितमे वर्तमान है। तीसरे, विभिन्न सर्गोंमें विभिन्न छन्दोंका उपयोग किया गया है; और सर्गके अन्तिम पद्यकी रचना उसी छन्दमे नहीं की गई है, जिससे पूरा सर्ग रचा गया है। चौथे, उसका नायक वराङ्ग बड़ा दानशूर और धर्मात्मा है। एक सच्चे पुरुषकी तरह वह अपने कर्तव्यके

१ समराइच्चकहा पृ. २।

पालनमें कभी भी प्रमाद नहीं करता। उसके ऊपर अनेक शारीरिक और मानसिक विपत्तियाँ आती हैं, किन्तु एक वीर पुरुषकी तरह वह उनका सामना करता है। उनके युद्धोंको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है—एक बाह्य अर्थात् दुनियाके दुश्मनोंके विरुद्ध और दूसरा आन्तरिक अर्थात् अन्तरंग काम क्रोध आदि दुश्मनोंके विरुद्ध। दोनों ही युद्धोंमें वह विजयी रहता है।

३ वराङ्गचरितमें सैद्धान्तिक विवेचन—अश्वघोषने अपने ग्रन्थोंमें बौद्ध आचार-विचारोंका खूब वर्णन किया है। मनुष्य-जीवनका सर्वोच्च ध्येय मोक्ष है, किन्तु बहुतोंने उसे भुला दिया है। अतः अश्वघोषने अपनी मोहक कविताके द्वारा उस ध्येयका उपदेश देनेका प्रयत्न किया है। इस प्रकार जब अश्वघोष सरीखा कलाविद् ऐसा कर सकता है, तब जटिल सरीखा साधु यदि अपनी काव्य-धाराको धार्मिक और सैद्धान्तिक विषयोंके उपदेश करनेका स्रोत बनाता है तो हमें अचरज नहीं करना चाहिये। वराङ्गचरितके बहुतसे सर्गोंमें इस प्रकारका वर्णन मिलता है। चौथेसे लेकर दसवें तक पाँच सर्ग तथा छब्बीसवाँ और सत्ताईसवाँ सर्ग कथाके मुख्य प्रसंगसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते। यदि इन सर्गोंको ग्रन्थसे निकाल दिया जाय तो घटनाओंके वर्णनको कोई क्षति नहीं पहुँच सकती। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जटिल कविने जैन-सिद्धान्तोंका निरूपण करनेके लिये ही उक्त सर्गोंका निर्माण किया है। इन सर्गोंसे कविके केवल धार्मिक उत्साहका ही पता नहीं चलता किन्तु जैनधर्मविषयक विस्तृत अध्ययनका भी पता चलता है। कथानकके विविध प्रसंगोंमें जैनधर्मके जिन आचारों और विचारोंका वर्णन मिलता है, उनमेंसे कुछ निम्न प्रकार हैं—जीव और कर्मका सम्बन्ध, सुख और दुःखका कारण, सम्यक्त्व और मिथ्यात्व, संसारका स्वरूप, गृहस्थका कर्तव्य, जिनपूजा और जिनमन्दिर निर्माणका महत्त्व, महाव्रत और उनकी भावनाएँ, समिति, गुप्ति, आदि आदि। इस प्रकारके वर्णन इस बातके साक्षी हैं कि जटिल कवि एक धार्मिक शिक्षक और उपदेष्टा थे।

४ इतर मतोंकी आलोचना—जटिल कविने अनेक स्थलोंपर इतर मतोंकी आलोचना करके अन्तमें जैन सिद्धान्तका समर्थन किया है। विभिन्न मतोंके अनुसार पुरुष, ईश्वर, काल, कर्म, दैव, ग्रह, नियोग, स्वभाव, नियति वगैरह संसारके प्रलय, स्थिति और उत्पत्तिके कारण माने जाते हैं। जटिल

कविने इन सभी एकाङ्गी दृष्टिकोणोंपर आक्रमण किया है। उनका कहना है कि दैव या देव मनुष्योंके कार्योंका नियामक नहीं हो सकता। देवताको प्रसन्न करनेके लिये जो बलि वगैरह दी जाती है, उसे कौवे खा जाते हैं। बलिका इच्छुक देवता दूसरोंकी मनोकामना कैसे पूर्ण कर सकता है? यतः संसारके कार्योंमे इतनी अधिक अव्यवस्था और आकस्मिकता है अतः कालको भी उसका नियामक नहीं माना जा सकता। यह विश्वास करना कि ग्रह अच्छा और बुरा करते हैं, केवल आत्म-वञ्चना है। क्यों कि यदि उनमे यह शक्ति होती तो चाँद और सूरजको ग्रहोंके कारण कष्ट क्यों उठाना पड़ता? ईश्वरको सृष्टिका कर्त्ता-धर्ता मानना तर्कविरुद्ध है। स्वभाव भी प्रत्येक कार्यका नियामक नहीं हो सकता, क्यों कि संसारमे जो कुछ दखा जाता है उससे उसका समर्थन नहीं होता। इसी तरह नियति भी ससारका नियामक नहीं हो सकती। यदि पुरुषको संसारका कारण माना जायगा तो समस्त धार्मिक कृत्य निष्फल हो जायँगे। इसी तरह शून्यवाद, विज्ञप्तिवाद और प्रतीत्यसिद्धिवाद भी ठीक नहीं हैं। उक्त सभी मत आंशिक दृष्टिकोण हैं। उनमें अनेकान्तकी योजना करनेपर वे सार्थक हो सकते हैं।

जटिल कविने जन्मना वर्ण-व्यवस्था माननेका खण्डन किया है। पुरोहितोंकी आलोचना करते हुए उन्होंने वैदिक हिंसाका घोर विरोध किया है, और लिखा है कि दूसरोंको दुःख देनेसे सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती। ब्राह्मणत्व केवल जन्मपर निर्भर नहीं है किन्तु विद्वत्ता सत्यता और साधुशीलतापर निर्भर है। धर्माचरण और तपस्याके बलपर ही व्यास, वसिष्ठ, कमठ, कण्ठ, शक्ति, उद्गम, द्रोण और पराशर ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सके। कविने रुद्र, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, कुमार और बुद्धके देवत्वकी भी समीक्षा की है। अश्वघोषने अपने बुद्ध-चरितमें सम्भवतः अनेकान्तवादका खण्डन किया है। जटिलने भी बौद्धोंके क्षणिकवाद शून्यवाद और प्रतीत्य-समुत्पादवादका खण्डन किया है।

५ तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितिका दिग्दर्शन—वराङ्गचरितके विविध वर्णनोंके बारेमें, जहाँतक मैं समझ सका हूँ, जटिल मुनिने दक्षिण भारतके जैनधर्मका एक सुन्दर चित्र हमारे सामने रख दिया है। उन्होंने जैनेतर देवी-देवताओंकी, वेदोंके याज्ञिक धर्मकी और पौरोहित्य विधि-विधानकी खूब खबर ली है। उन्होंने पुरोहितोंको ताना दिया है कि किस प्रकार

वे राजद्वारोंसे निकाल दिये जाते थे और उनका क्रोध राजाओंपर कुछ भी असर न करता था। उन्होंने जैन मन्दिरों, जैन मूर्तियों और जैन महोत्सवोंका सुन्दर चित्रण किया है। उनके लेखसे यह भी पता चलता है कि मन्दिरोंकी दीवारोंपर पौराणिक उपाख्यान चित्रित किये जाते थे। उन्होंने राज्योंकी ओरसे मन्दिरोंको ग्राम वगैरह दिये जानेका भी उल्लेख किया है।

जटिल मुनि कर्नाटक देशके निवासी थे और मोटे तौरपर उनके समयकी सीमा ई० ६५० से ७५० तक है। अतः ऊपर लिखी बातोंको यदि दक्षिण भारतमे जैनधर्मकी तत्कालीन परिस्थितिके प्रकाशमें देखा जाय तो ये निरर्थक मालूम नहीं होगी। उस समय बादामीके चालुक्य वंशका राज्य था। ई०६३० के लगभग हर्षवर्धनका विजेता पुलकेशी द्वितीय सबसे अधिक शक्तिशाली राजा था। किन्तु ई० ६४२ में उसे काञ्चीके पल्लव राजा नरसिंहवर्माके द्वारा परास्त होना पड़ा। परन्तु उसके पुत्र विक्रमादित्य प्रथमने पल्लवोंको हराकर ई० ६५५ मे अपने वंशकी गिरती हुई मर्यादाकी रक्षा की। ई० ७४० में विक्रमादित्य द्वितीयने पल्लवोंके विरोधको अच्छी तरह शान्त कर दिया। इस चालुक्य-कालमें जैनधर्मका खूब प्रसार हुआ। उसी समय ई० ६३४ में रविकीर्तिने जिसने पुलकेशी द्वितीयसे बहुत अधिक साहाय्य प्राप्त किया था, मेगुटीका मन्दिर बनवाया और प्रसिद्ध ऐहोळे शिलालेखमें उसका उल्लेख किया।

चालुक्यनरेश पुलकेशी द्वितीयके हाथोंसे बनवासी कदम्बोंने गहरी हार खाई। ई० ६०७ से आगे कदम्बवंशके इतिहासका कुछ समय अन्धकारमय है। बादको बनवासी प्रदेश आलूप नरेशोंके हाथमें आया। कदम्ब नरेशोंके विशेषतया मृगेश वर्मा (ई० ४७५–४९०) के समयमें जैनधर्मने बड़े अच्छे दिन देखे। उस समय जैनमन्दिरोंको मिली हुई जमींदारी, तत्कालीन शिलालेखोंमें वर्णित महोत्सव और उन महोत्सवोंके व्ययके लिये राजाओंके द्वारा दी गई उदार सहायतासे प्रकट है कि कदम्ब-साम्राज्यमें जैनधर्म एक सर्वप्रिय धर्म था, और वहाँकी अधिकतर जनता जिनेन्द्रको पूजती थी। उस समय यह शैवधर्मका एक जबर्दस्त प्रतिरोधी हो रहा था। राष्ट्रकूटोंके समयमें इसे नया बल मिला।

१ देखो, जी. एम. मोरेसका 'कदम्बकुल' पृ. ३५।

२ „ „ „ पृ. २५२।

आलूपोंके मतसे हम अनजान हैं। किन्तु चूँकि चालुक्य जैनधर्मके सहायक थे, इसलिए कदम्बोंका पतन हो जानेके बाद भी जैनधर्मका वही रूप रहा जो कदम्बोंके समयमें था। सातवी शताब्दीके अन्तमे चालुक्यनरेश विनयादित्यने गंग-वंशको अपने अधीन कर लिया। गंग-वंशकी प्रतिष्ठा जैनोंके संरक्षणमे हुई थी और गंग-नरेश, कुछ राष्ट्रकूट, और कलचुरी-नरेश तथा प्राचीन होयसल नरेशोंके समयमें जैनधर्म राजधर्म था।

ऊपर हम देख चुके हैं कि उस समय चालुक्य और पल्लव किस प्रकार लड़ रहे थे। आठवीं शताब्दीके मध्यमें पल्लवोंकी शक्ति बहुत क्षीण हो गई थी। पल्लवोंके समयमें काञ्ची जैनोंका एक प्रसिद्ध केन्द्र था। समन्तभद्र, अकलंक तथा अन्य जैनाचार्य काञ्चीके साथ सम्बद्ध थे। वर्तमान विष्णुकाञ्ची और शिवकाञ्ची विभागसे जिनकाञ्चीका स्थान बहुत दूर है। वह बतलाता है कि शैव और वैष्णवोंके आधिपत्यसे बहुत पहले काञ्चीवरम्की भूमिमे जैनधर्मने बहुत अच्छे दिन देखे थे। किन्तु सुन्दर पाण्ड्यका समय जैनधर्मकी अवनतिका समय था और वह अवनति शैवधर्मानुयायी चोल-वंशके समयमे भी जारी रही। चोलोंसे पहले, ई० ६४० मे जब चीनी यात्री ह्यूनत्साग दक्षिणमें गया था तो उस समय पल्लव-राज्य और पाण्ड्य-राज्यमें बहुतसे दिगम्बर जैन और जैनमन्दिर थे।

दक्षिण भारतके इस इतिहासके घटनाक्रमको दृष्टिमे रखते हुए हमें जटिलकविके वर्णनोंपर विचार करना ही पड़ता है। आज भी हम बहुतसे प्राचीन जैनमन्दिर देखते हैं, जिनमेंसे कुछ परिवर्तित कर दिये गये हैं और कुछ खण्डहर हो गये हैं। जटिलकविने मन्दिर-निर्माणपर बहुत जोर दिया है। बहुमूल्य रत्नोंकी मूर्तियाँ बनवानेका उनका विचार कोरी कल्पना ही नही है। मूडबिद्री, हूमच वगैरहमे हम बहुमूल्य रत्नोंकी मूर्तियाँ देखते हैं। ये रत्न समुद्र-पारसे हिन्दुस्तानमें लाये गये थे। दक्षिण भारतमें मूर्ति-पूजा और मन्दिर-निर्माणका आधिक्य जैनधर्मके प्रभावका ही फल है। बहुतसे राजाओंने जैनमन्दिरोंको जमीन और ग्राम दानमें दिये हैं। जटिल कविने १०८ ग्रामोंके दानका जो उल्लेख किया

१ 'मैसोर अॅण्ड कुर्ग, पृ. २०३।

२ 'अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया,' पृ. ४५३–४।

३ 'स्टडीज इन साउथ इण्डियन जैनिज्म,' पृ. ७७।

है, वह तत्कालीन परम्पराका एक अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन हो सकता है। कदंब, चालुक्य और इतर नरेशोंके द्वारा दिये गये दानोंका उल्लेख शिला-लेखों और ताम्रपत्रोंमें मिलता है। जटिलके लेखके अनुसार दीवारोंपर चित्र अङ्कित करनेकी पद्धति भी दक्षिणमें पाई जाती है, जैसा कि मूडबिद्री, हलेबीड और जिनकाञ्ची या तिरुपरुत्तिकुनरम्के मन्दिरोंमें देखा जाता है। यद्यपि उनमेंसे कुछ मन्दिर बहुत बादके हैं, किन्तु वे प्रचलित रिवाजको बतलाते हैं।

६ **अश्वघोष और जटिल**—जटिल कविपर अश्वघोषका विशेष प्रभाव है। सौन्दरनन्द और बुद्ध-चरितके साथ वराङ्गचरितकी तुलना करनेपर बहुत-सी समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। अश्वघोष बौद्ध आचार-विचारके पक्षपाती हैं और जटिल जैन आचार-विचारके। अश्वघोषने बौद्ध पारिभाषिक शब्दोंका स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग किया है और जटिलने जैन पारिभाषिक शब्दोंका। मनुष्य जन्मके लाभ, सासारिक सुखोंकी असारता, धर्म अर्थ वगैरहका पारस्परिक सम्बन्ध आदि बातोंके चित्रणमे दोनों ग्रन्थकारोंकी एक ही दृष्टि पाई जाती है। दोनों ही ग्रन्थकार ब्राह्मण-पुराणोंसे उदाहरण देते हैं। सौन्दरनन्दके १४ वें परिच्छेदमें बौद्ध साधुके नित्यकर्मका वर्णन है। वराङ्ग-चरितके भी अन्तिम दो सर्गोंमें जैन-साधुके आचारोंका वर्णन है। सौन्दरनन्दके १६ वे परिच्छेदमे बौद्ध सम्मत निर्वाणका स्वरूप बतलाया गया है, वराङ्गचरितके भी दसवे सर्गमे मोक्षविषयक जैन मान्यताका वर्णन है। वरागचरितमें कुछ व्याकरणसम्बन्धी विशेषताएँ पाई जाती हैं, जो अश्वघोषकी रचनामे भी वर्तमान हैं। कई जगह उपमा, विचार और शब्द-साम्य भी है। वरागचरित नाम भी बुद्ध-चरितका स्मरण करा ता है। इनके सिवाय कुछ अन्य भी समानताएँ हैं। इस सब समानताओपर दृष्टि डालनेसे ऐसा प्रतीत है कि जटिल-कविने अश्वघोषके ग्रन्थोको देखा था, क्यों कि ह्यून्त्सागके उल्लेखके अनुसार उस समय दक्षिणमें बौद्धधर्मकी अच्छी हालत थी। अतः दक्षिण भारतमें अश्वघोषकी रचनाएँ उपलब्ध रही होंगीं। किन्तु सौन्दरनन्द और बुद्ध-चरितकी जो प्रतियाँ प्रकाशमे आई हैं, वे उत्तर भारतमे ही मिली हैं। कालिदास और भारविकी रचनाओंमें और वराग-चरितमें कोई साम्य नहीं मिलता है।

७ **वराङ्गचरित और उत्तरकालीन ग्रन्थकार**—जहाँतक हम जैनसाहित्यसे परिचित हैं, वराङ्गचरित पुराण और काव्यके मिश्रणकी

शैलीमें रचे गये अति प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमेसे है। रविषेणने अपना पद्मचरित ई. ६७७ में समाप्त किया था। संस्कृतके जैन पौराणिक काव्योंमें सम्भवतः केवल यही एक ऐसा ग्रन्थ है जो वराङ्गचरितके पूर्वज होनेका दावा कर सकता है। किन्तु अभी यह बात निश्चित रीतिसे नहीं कही जा सकती। संस्कृतमे वराङ्गचरितसे पीछेके बहुतसे जैन पुराण और काव्य वर्तमान हैं। किन्तु मुझे उनपर जटिल-कविका कोई विशेष प्रभाव प्रतीत नहीं होता। वादिराजने अपने पार्श्वनाथ-चरितमें बहुतसे ग्रन्थकारोंका स्मरण किया है किन्तु अचरज है कि उन्होंने जटिलकविका स्मरण नहीं किया। यदि वराङ्ग-चरितकी प्रतियोंका कम परिणाममें पाया जाना किसी बातका सूचक है तो हम अनुमान कर सकते हैं कि यद्यपि जटिल कविकी ख्याति कर्नाटकसे बाहर भी फैली थी, तथापि वराङ्ग-चरितका अधिक प्रचार नहीं हो सका था। जिनसेनने वराङ्गचरितसे बहुत सी बातें लेकर उन्हे आदिपुराणमें अपने शब्दोंमें निबद्ध किया है। उदाहरणके लिये—वरा० १,६–७ और आदि० १,१२२–२४, वरा० १,१०–११ और आदि० १,१२७–३०, वरा० १,१५ और आदि० १,१३९, वरा० १,१६ और आदि० १,१४३–४४ की परस्पर तुलना करनी चाहिये। चामुण्डरायने, जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं, वराङ्गचरितसे कुछ सामग्री ली है। सोमदेवने (ई. ९५९) अपने यशस्तिलकचम्पू (आ० ७ पृ. ३३२) मे 'भवति चात्र श्लोकः' लिखकर एक पद्य उद्धृत किया है, जो वराङ्गचरितके पाँचवें सर्गका १०३ वाँ श्लोक है।

८ वराङ्गचरितमें व्याकरणसम्बन्धी विशेषताएँ—कुछ विशेष शब्द, जिनका ग्रन्थकारने उपयोग किया है, निम्न प्रकार हैं—'गोण'=बैल (६, १५)। इस शब्दका मूल प्राकृत है। 'फुल्ल' (२, ७३), 'भिण्ड' (१२, ८५) और 'तुम्ब' (३१, ३२) शब्द भी इसी प्रकारके हैं। 'मैथुन' (२१, ७५ और २५, ६) जो कन्नड़के 'मैदुन' और मराठीके 'मेहुणा' का स्मरण कराता है, प्राचीन संस्कृतमे इस अर्थमें व्यवहृत नहीं हुआ है। बर्कर=बकरा (२७, १७) शब्द भी अप्रसिद्ध है। अद्धा=काल शब्द प्राकृत भाषाके जैन ग्रन्थोंमें काफी मिलता है। 'तिरश्च' शब्द प्राकृत भाषाके 'तिरिच्छ, या 'तिरच्छ' शब्दका स्मरण कराता है। 'सम्पद्'के स्थानमें 'सम्पदा' शब्दका प्रयोग किया है। 'सदन' के लिये 'सादन'

'मृद्वीका'के लिये 'मृद्वीक' और 'अवहिता' के लिये 'आवहिता' का प्रयोग सम्भवतः छन्दकी वजहसे करना पड़ा है, ऐसा मालूम होता है।

कुछ शब्दोंका लिङ्ग ध्यान देने योग्य है—गेह, जाल, भूषण, चूर्ण और चक्र शब्दको पुल्लिंगमें रक्खा है, और अक्षत और वृत्तान्त शब्दको नपुंसक लिङ्गमें। संज्ञा शब्दोंके साथ 'तम' प्रत्ययका प्रयोग किया है यथा—वणिक्तम, बन्धुतम, अर्थतम। एक जगह (४, ११४) 'तरतम' शब्दका प्रयोग विशेषणके तौरपर किया है। बहुतसे संज्ञावाचक और विशेषणवाचक शब्दोंका प्रयोग भाववाचकके रूपमे किया है, फिर भी उसके साथ भाववाचक प्रत्यय नहीं जोड़ा गया है।

कुछ धातुरूप ध्यान देने योग्य हैं—भर्त्सयन्ति, आददुः, आददाति, मृगयामि, प्रसवन्ति इत्यादि। एक दो स्थानोंपर डबल उपसर्गोंका भी उपयोग मिलता है यथा—उपोपविष्ठ, अध्यधिष्ठित। अश्वघोषने भी 'उपोपविष्ट'का प्रयोग किया है और यह रामायणमे भी मिलता है। ऐसा मालूम होता है कि जटिल कविने बहुतसे अनियमित रूपोंका भी व्यवहार किया है यथा—'ससृजुः'के लिये 'ससर्जुः', 'सन्निदधुः'के लिये 'सन्निदध्युः', 'जघनिथ'के लिये 'जघ्निथ', 'जुहुवुः'के लिये 'जुहुः', 'ममृदुः'के लिये 'ममर्दुः', 'समश्रुवानानाम्' या 'समश्नुवताम्'के लिये 'समश्नुताम्', 'संविभाजयितुम्' या 'संविभक्तुम्' के लिये 'संविभाजितुम्', 'सुसाध्य'के लिये 'सुसाधियत्वा', 'अविगणय्य'के लिये 'अविगण्य' 'रत्वा'के लिये 'रंत्वा' और 'परिमथ्य'के लिये 'परिमंथ्य'। कहीं कहीं मूल धात्वर्थमें णिजन्तका प्रयोग किया है। सजातीय कर्मकारकके साथ नृत् और वच् धातुका सकर्मक रूपसे प्रयोग किया है। किसी किसी श्लोकमें 'एवम्' और 'इत्थम्' तथा 'चेत्' और 'यदि' दोनोका प्रयोग किया है। आह्न अथवा उपाह्नके बदलेमें 'साह्न' शब्दका व्यवहार किया है। ग्रन्थमें सापेक्ष समासोंका बाहुल्य है। पाणिनिके सूत्र 'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे (६-३-२५) की उपेक्षा की गई है। कहीं कहीं ग्रन्थकारने समाहारका प्रयोग नहीं किया है, जो प्राचीनोंके मतसे आवश्यक था। यथा—हस्त्यश्वयानानि, पदातिहस्त्यश्वरथैः। 'सवैजयन्तीकाः' के स्थानमें 'सवैजयन्त्यः' और 'नेतृकयोः'के स्थानमें 'नेत्रोः' का प्रयोग भी ध्यान देने योग्य है। सन्धिके साधारण नियमोंका ध्यान रक्खा गया है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम और द्वितीय तथा तृतीय और चतुर्थ चरणके मध्यमें

ग्रन्थकार सन्धिको अनिवार्य नहीं समझते थे। अनियमित सन्धिके दो उदाहरण इस प्रकार हैं—सुक्षेत्रे+अज्ञः=सुक्षेत्रयज्ञः और ग्रामे+एकरात्रम्=ग्रामैकरात्रम्। कारकोंके प्रयोगमें भी वैचित्र्य है। उक्त प्रयोगोंकी कुछ विशेषताएँ महाभारत और रामायणके लिये साधारण वस्तु हैं और उनके सम्बन्धमें कहीं कहीं जटिल और अश्वघोषमें ऐकमत्य है।

९ **वराङ्गचरितके छन्द**—वराङ्गचरितमे निम्न छन्दोका उपयोग किया गया है—अनुष्टुभ्, उपजाति, द्रुतविलम्बित, पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी, भुजङ्गप्रयात, मालभारिणी, मालिनी, वसन्ततिलका, और वंशस्थ। अश्वघोषकी तरह जटिल कविको भी उपजाति छन्द विशेष प्रिय था, जैसा कि ग्रन्थसे स्पष्ट है। वराङ्गचरितकी उपलब्ध प्रतियोंमे बहुतसे पाद दोषपूर्ण हैं। छन्दसम्बन्धी अनियमितता भी दृष्टिगोचर होती है। यथा—अनुष्टुभ् छन्दके कुछ चरणोमे नौ मात्राएँ हैं। एक उपजाति छन्दमे एक चरण वंशस्थ वृत्तका है। मालभारिणी पद्योंकी कुछ पङ्क्तियोमे मात्राएँ कम हैं, और कुछमे अधिक। इत्यादि

१० **वराङ्गचरितकी शैली**—दो कारणोंसे वराङ्गचरितकी शैलीके बारेमे न्यायपूर्वक कुछ कह सकना कठिन है। एक तो उपलब्ध प्रतियाँ ठीक नहीं हैं, उनमे बहुतसे वाक्य बिगड गये हैं, दूसरे ग्रन्थके मुख्य भागको सैद्धान्तिक वर्णन और वाद-विवादने घेर रक्खा है। वराङ्गचरितमे कालिदासकी तरह न तो सुन्दर कल्पनाएँ ही हैं, न परिपूर्ण उपमाएँ और न संस्कृतभाषाका सरस प्रवाह। सैद्धान्तिक वर्णनसे ग्रन्थके काव्योचित भावको हानि पहुँची है। प्रथमसर्गमें जिस काव्य-प्रवाहके दर्शन होते हैं, वह अन्त तक एक-सा नही बहा है। घटनाक्रमका चित्रण करनेमें तथा नैतिक उपदेश देनेमें जटिल कवि पटु हैं। यद्यपि उनका पालकी[1] और मन्दिरका[2] वर्णन बोजड या क्लिष्ट है, किन्तु युद्धके दृश्य एक महान् पौराणिक कविके अनुरूप हैं। दक्षिणके शिल्पशास्त्रियोंकी तरह जटिल कवि दृश्योंका चित्रण करनेमें खूब आनन्द लेते हैं। ग्रन्थमें जहाँ तहाँ सुन्दर पद्य दृष्टिगोचर होते हैं। कविने बहुत-सी उपमाएँ अपने पूर्वजोंसे ली हैं, किन्तु उनकी अपनी उपमाएँ भी प्रशंसाके योग्य हैं। यथा—

---

१ वरा० २, ५३। २ वरा० २२, ५७।

निदाघमासे व्यजनं यथैव करात्करं सर्वजनस्य याति ।
तथैव गच्छन् प्रियता कुमारो वृद्धिं च बालेन्दुरिव प्रयातः ॥२८,६०॥

सम्भवतः इस प्रकारकी उपमाओंपर मुग्ध होकर ही जिनसेनने जटिलमुनिकी कवित्वशक्तिका समादर किया था ।

७ चार अन्य वराङ्गचरित

१ वर्धमान कविका संस्कृत वराङ्गचरित[1]

उत्तरकालमें राजकुमार वराङ्गकी कथा बहुत रुचिकर सिद्ध हुई और वर्धमान कविने संस्कृत पद्योंमें दूसरे वराङ्गचरितकी रचना की । यह चरित जटिलके वराङ्गचरितका संक्षिप्त रूप है । अनेक स्थलोंपर दोनोंकी शब्द रचनामें साम्य है । वर्धमान कविने केवल धार्मिक उपदेशो और विविध वर्णनोंकी काँट छाँट की है, किन्तु कथानककी रूप रेखा ज्योंकी त्यों रहने दी है । वर्धमान कविने लिखा है—

गणेश्वरैर्या कथिता कथा वरा वराङ्गराजस्य सविस्तरं पुरा ।
मयापि संक्षिप्य च सैव वर्ण्यते सुकाव्यबन्धेन सुबुद्धिवर्धिनी ॥

इससे संभवतः उनका यही आशय है कि उन्होंने जटिल कविके ग्रन्थको संक्षिप्त किया है । वर्धमान कविके वराङ्गचरितकी प्रस्तावनामें पं० जिनदासने लिखा है कि यह वराङ्गचरित वही है, जिसका उल्लेख जिनसेनके हरिवंशपुराणमे है । किन्तु यह मान्य नहीं किया जा सकता, क्यों कि ऊपर यह निश्चित रीतिसे प्रमाणित किया गया है कि जिनसेनके द्वारा उल्लिखित वराङ्गचरितके कर्ता जटिल कवि हैं ।

वर्धमान कविका समय निर्णीत करनेके लिये कोई निश्चित प्रमाण नहीं है । क्योंकि उन्होंने अपने बारेमे बहुत ही कम लिखा है । वे मूलसंघ, बलात्कारगण और भारती गच्छके भट्टारक थे और परवादिपञ्चानन उनकी उपाधि थी । मैं वर्धमान नामके दो व्यक्तियोंको जानता हूँ । उनमेंसे एक न्यायदीपिकाके कर्ता धर्मभूषणके गुरु थे । यदि यही वर्धमान प्रकृत वर्धमान हैं तो वराङ्गचरित अधिकसे अधिक ईसाकी चौदहवीं शताब्दीके मध्यमें रचा गया है क्यों कि धर्मभूषणका समय विद्याभूषणने[2] ई. १६०० के लगभग और पाठकने[3] ई. १३८५

१ यह चरित मराठी अनुवादके साथ प्रकाशित हो चुका है ।

२ इन्डियन लॉजिक, मिडियावल स्कूल पृ. ५४ ।

३ भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्युट पूनाकी पत्रिका, जि. १२, ४, पृ. ३७६ ।

बतलाया है। दूसरे वर्धमान हूमच शिलालेखके रचयिता हैं। उनका समय राईस-साहबके अनुसार १५३० ई. के लगभग है। इनके सम्बन्धकी एक बात उल्लेखनीय है कि यह बलात्कारगणके अनुयायी थे। वर्तमान दशामें यह वराङ्गचरित ईसाकी तेरहवीं शताब्दीसे पहलेका नहीं हो सकता। १३ वीं शताब्दीके बाद जटा-सिंहनन्दि और उनके वराङ्गचरितका उल्लेख बहुत कम देखनेमे आता है। यदि यह एक आकस्मिक घटना नहीं है तो इसका संभाव्य कारण यही हो सकता है कि वर्धमान कविके वराङ्गचरितका अच्छा प्रचार हो गया था। आगे वराङ्ग-चरितके जिन कन्नड़ और हिन्दी भाषान्तरोंका उल्लेख किया जाता है उनका आधार वर्धमान कविका ही वराङ्गचरित है।

२ कन्नड़ वराङ्गचरित

एक वराङ्गचरित कनड़ी भाषामे धरणि पण्डितने बनाया है। ये पण्डित ई० १६५० के लगभग हुए थे, और विष्णुवर्धनपुरके निवासी थे। यह चरित कनड़ी भाषाके भामिनी षट्पदी नामक प्रसिद्ध छन्दमे रचा गया है। रचयिताका कहना है कि पूर्व रचनाओंके आधारपर इसकी रचना की गई है। असलमें ग्रन्थकारने अन्य पूर्ववर्ती ग्रन्थकारोंके साथ साथ एक वर्धमान यतिका भी उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि वर्धमानका वराङ्गचरित उनकी रचनाका आधार है। इस ग्रन्थकी एक प्रति आर० नरसिंहाचार्यको मिली है किन्तु वह अपूर्ण है, उसमें केवल आठ परिच्छेद हैं।

३ हिन्दी वराङ्गचरित

लाला पन्नालालजी देहलीकी सज्जनतासे इस ग्रन्थकी एक प्रति मुझे प्राप्त हुई थी। यह प्रति लाला हरसुखराय जैन पुस्तकालय, मन्दिर पञ्चायती, देहलीकी है। इसका लेखन-काल सम्वत् १९०५ है। हिन्दी छन्दोंमें इसकी रचना हुई है। अन्तिम पद्यमें लिखा है कि संस्कृतमे होनेके कारण सब लोग वर्धमान कविके वराङ्गचरितको नहीं समझ सकते, इस लिये इसका भाषानुवाद करनेकी आवश्यकता हुई। भदावर प्रान्तके (ग्वालियर स्टेट) अटेर नामक स्थानमे विश्वभूषण नामके भट्टारक रहते थे। उनके शिष्यका नाम ब्रह्मसागर था। एक बार यात्राके लिये वे गिरनार गये और लौटते समय, मार्गमें, हिंडौनमे ठहरे। वहाँ बहुतसे धार्मिक गृहस्थ रहते थ। उनके एक शिष्य पाण्डे लालचन्द थे।

१ एपिग्राफिका कर्नाटिका ८, नगर नं. ४६।

उन्होंने सबके उपकारके लिये संस्कृतसे भाषासे अनुवाद किया। उनके इस कार्यमें शोभाचन्दके पुत्र नथमलने बहुत सहायता दी और माघशुक्ला पंचमी सम्वत् १८२७ को यह ग्रन्थ समाप्त हुआ।

४ दूसरा हिन्दी वराङ्गचरित

कमलनयनके हिन्दी वराङ्गचरितके कुछ प्रासङ्गिक अंश बाबू कामताप्रसादजीके द्वारा प्राप्त हुए थे। अन्तिम सन्धिसे पता चलता है कि वर्धमान कविके संस्कृत वराङ्गचरितका यह छन्दोबद्ध भाषानुवाद है। कमलनयन मैनपुरीके निवासी थे। वे यदुवंशी बुढ़ेले थे। उन्होंने ज्येष्ठ शुद्ध पूर्णिमा सम्वत् १८७२ में इस ग्रन्थको समाप्त किया था।

स्याद्वाद जैन विद्यालय
बनारस
कार्तिकी पूर्णिमा
वी. नि. सं. २४६५

हिन्दी अनुवादक—
कैलाशचन्द्र शास्त्री

---

१ वराङ्गचरितकी अँग्रेजी प्रस्तावनाका यह अविकल अनुवाद नहीं है। इसमें अंग्रेजी न जाननेवाले हिंदी पाठकोंके लिये उसके मुख्य मुख्य आवश्यक अंशोंका सार दे दिया गया है। विशेष विस्तार और प्रामाणिक संकेत आदि जाननेके इच्छुक श्रीयुत उपाध्यायजीकी अंग्रेजी प्रस्तावनासे जान सकते हैं।

—अनुवादकर्ता

विषयानुक्रमः

सर्गः १

१–५ रत्नत्रयनमस्क्रियारूपं मङ्गलाचरणम्। ६–८ कथाप्रबन्धस्य सप्ताङ्गानि। ८–२२ उपदेशस्य वक्तृश्रोतृगुर्वादिसंबन्धि च विवेचनम्। २३–३१ विनीत-विषयवर्णनम्। ३२–४५ रम्यातटस्य वर्णनम्। ४६–५४ श्रीधर्मसेनभूपस्य वर्णनम्। ५५–६२ अन्तःपुरवर्णनम्। ६३–६७ गुणवतीवर्णनम्। ६८–७० राज्ञः सुखोपभोगादिवर्णनम्।

सर्गः २

१–७ वराङ्गस्य जन्म गुणवर्णनं च। ८–१३ तद्विवाहप्रस्तावे श्रेष्ठीवचनम्। १४–३३ तद्विषये मन्त्रिमुख्याना विचाराः। ३४–५० दूतप्रेषणं राज्ञा संमतिश्च। ५१–५६ कल्याणमहोत्सवे शिबिकावर्णनम्। ५७–६३ राज्ञा राजकुमारीणा चागमनम्। ६४–६९ श्रीमण्डपवर्णनम्। ७०–७३ विवाहस्नपनादिवर्णनम्। ७४–८५ जनानां विविधविचाराः। ८६–८८ पाणिग्रहणं विसर्जनं च। ८९–९५ वराङ्गस्य सुखोपभोगादिवर्णनम्।

सर्गः ३

१–८ वरदत्तमुनेर्वर्णनं, उत्तमपुरे विहारश्च। ९–११ उद्यानपालस्य राज्ञो विज्ञापनम्। १२–३२ सान्तःपुरस्य राज्ञो नगरजनाना च निर्गमः। ३३–३७ मुनिभ्यो वन्दनादि। ३८–४२ राज्ञो जीवाजीवसंबन्धिनी पृच्छा। ४३–६३ सुखदुःखकारणमधिकृत्य वरदत्तमुनेरुपदेशः।

सर्गः ४

१–८ कर्मणो मूलोत्तरप्रकृतयः। ९–२३ ज्ञानावरणम्। २४–२५ दर्शनावरणम्। २५–२६ वेदनीयम्। २७–३२ मोहनीयम्। ३३–३४ आयुष्कम्। ३५ नाम। ३६ गोत्रम्। ३७–३८ अन्तरायः। ३९–४१ कर्मणा परा जघन्या च स्थिती। ४२–१०४ बन्धहेतवः, बन्धकारणानि कर्मफलं च। १०५–११४ जीवकर्मणोः संबन्धादिवर्णनम्।

सर्गः ५

१–४ लोकस्वरूपम् । ५–८ वातवलयाः । ९–१६ नारकी गतिः, नरकाणां नामानि प्रभेदाश्च । १७–२५ तत्र शीतोष्णादिसुखदुःखविचारः । २६–२९ नरकगामिना निर्देशः । ३०–१०१ नरकेषु जीवाना कर्माणुसारेण दण्डविधान-वर्णनम् । १०२–१०३ क्षुद्रमत्स्यस्योदाहरणम् । १०४–११० आयुःप्रमाणं सुखाभावश्च ।

सर्गः ६

१–३२ तिर्यग्गतेर्भेदास्तत्र दुःखवर्णनं च । ३३–३७ तिर्यग्गतिगामिना निर्देशः । ३८–४४ शरीराकृतिः, आयुःप्रमाणं च । ४४–५५ कुलयोनि-संख्यादिवर्णनम् ।

सर्गः ७

१–१३ मानुषजातिविचारे भोगभूवर्णनम् । १४–२३ दशविधकल्पवृक्षाः । २४–२७ भोगभूगामिनां निर्देशः । २८–५४ दानविचारे तद्भेदफलादिवर्णनम् । ५५–६७ भोगभूमौ शरीरलक्षणसुखोपभोगादिवर्णनम् ।

सर्गः ८

१–४ कर्मभूमावनार्या आर्याश्च । ५–२७ धर्मान्वितस्य मनुष्यजन्मनो दुर्लभत्वम् । २८–३९ अपुण्यभाजा वर्णनम् । ४०–५९ पुण्योपेताना वर्णनम् । ६०–६९ धर्माचरणस्यावश्यकता शरीरस्वरूपश्च ।

सर्गः ९

१–११ देवलोका देवलोकवासिनश्च । २२–२४ विमानवर्णनम् । २५–३६ देवलोकगामिना निर्देशः । ३७–५४ देवानां जन्मवपुर्वेषविलासादिवर्णनम् । ५५–६२ आयुःप्रमाणादिवर्णनम् ।

सर्गः १०

१–४ मोक्षस्य बाहुल्यादिवर्णनम् । ६–१० मोक्षवर्णनम् । ११–२८ मोक्ष-गामिनां सोदाहरणं वर्णनम् । २९–४२ सिद्धानामूर्ध्वगमनादिविशिष्टगुणवर्ण-नम् । ४३–६४ सिद्धानां क्षायिकसुखस्य वर्णनम् ।

सर्गः ११

१–३ सम्यक्त्वमिथ्यात्वादिविषये वराङ्गस्य प्रश्नः । ४–१२ मिथ्यात्वस्य सप्त भेदाः । १३–१६ मिथ्यात्वनाशेन परंपरया मोक्षः । १७–३४ सम्यग्दर्शनं तद्भेदवर्णनं च । ३५–४० वराङ्गेण कृतमनुव्रतग्रहणम् । ४१–५२ वराङ्गस्य पुरागमनं व्रतानुचरणम् । ५३–६५ मन्त्रिविज्ञापनानुसारेण वराङ्गस्य युवराजपट्टाभिषेकः । ६६–७२ नगरवासिनामानन्दः । ७३–८७ अन्येषां राजपुत्राणामसूयावचनानि मन्त्रिभिस्तन्निवारणं च ।

सर्गः १२

१–३ यौवराज्याभिषेके नरेन्द्रपत्नीना संतोषः । ४–६ सुषेणमातुर्मृगसेनायास्तु चित्तसक्षोभः । ७–१० विविक्तदेशे सुषेणस्य धिःकारः । ११–२३ यौवराज्ये सुषेणमास्थापयितुं सुबुद्धिमन्त्रिणे विज्ञापनं तत्सम्मतिश्च । २४–२८ सुबुद्धिना वराङ्गस्य छिद्रान्वेषणम् । २९–४४ मायाप्रयोगेन हयोत्तमयोर्विनयनं कुमारहरणं चैकेनाश्वेन । ४५–५७ कुमारस्य चिन्ता, अश्वस्य कूपे पतनं, प्राकृतमनुष्यवच्च वराङ्गस्यारण्ये भ्रमणम् । ५८–७० गजेन्द्रसाहाय्येन वराङ्गस्य व्याघ्रादात्मविमोचनम् । ७१–८८ क्षुधाभिभूतस्य सरः प्रति गमनं पूर्वसुखादिस्मरणं च ।

सर्गः १३

१–३ स्नानकाले तस्य नक्रेण कृतं ग्रसनम् । ४–१८ प्राक्कृतकर्मचिन्ता, महाव्रतग्रहणं जिनस्तुतिश्च । १९–२३ जिनप्रसादाद् यक्ष्या कृतं तस्य विमोचनम् । २४–३५ वराङ्गनारूपया यक्ष्या वराङ्गव्रतपरीक्षा । ३६–३१ स्वदारसंतोषव्रते तस्य दृढत्वं, यक्ष्याश्च साभिनन्दन प्रतिगमनम् । ४२–५७ अरण्ये वराङ्गस्य पुलिन्दाना बाधा बन्धनदुःखं च । ५८–६८ पुलिन्दकुमारस्य विषदोषनिवारणेन तद्विमोचनम् । ६९–८९ वराङ्गस्य सार्थिकबाधा सार्थपतिना कृतं स्वागतं च ।

सर्गः १४

१–७ सवराङ्गस्य सार्थसमूहस्य पुलिन्दबाधा । ८–२५ पुलिन्दकाना वणिजा च घोरयुद्धं, तत्र वणिक्सेनापराभवः । २६–४५ वराङ्गेन पराक्रमपूर्वकं कृतः पुलिन्दसेनाविनाशः । ४६–५३ वराङ्गस्य मूर्च्छा सार्थपतेश्च विलापः । ५४–६० प्रतिलब्धसंज्ञस्य वराङ्गस्य सर्वैः कृतं सन्मानपूर्वकं चाभिनन्दनम् । ६१–६३ कश्चि-

द्भटनाम्नो वराङ्गस्य सर्वत्र यशोविस्तारः । ६४–७२ सार्थपतिसागरवृद्धिना सह नगरं प्रति गमन तत्र सन्मानश्च । ७३–८० स्वगृह इव तत्र वासः सुखेन काल-व्ययश्च । ८१–८५ वणिक्कुमारैः कश्चिद्भटस्य वणिक्प्रभुत्वे स्थापनम् । ८६–९८ पुरवासिनां तमधिकृत्य विचारास्तस्य ललितपुरे सुखेन कालगमनम् ।

सर्गः १५

१–२२ अश्वेनापहृते कुमारे राज्ञो दुःखम्, उत्तमपुरे सर्वत्र निराशा च । २३–४७ मातुः प्रियाङ्गनाना च शोकविलापादिवर्णनम् । ४८–६२ प्रियाङ्गनानां पावकप्रवेशनाय श्वशुरान्तिके विज्ञप्तिः । ६३–६९ सर्वज्ञवचननिवेदनेन तासा निरोधन धर्माचरणाय विज्ञप्तिश्च । ७०–७४ मुनिपतेरुपदेशः । ७५–१०५ संसारस्वरूपवर्णनम् । १०६–१३१ द्वादशव्रतात्मकस्य धर्मस्य तत्फलस्य विवेचनम् । १३२–१४६ व्रतग्रहणानन्तरं तासां जिनपूजादौ कालव्ययः ।

सर्गः १६

१–२९ मधुराधिपललितपुराधिपयोर्गजनिमित्तो विग्रहः । ३०–४५ नरपति-समेतस्येन्द्रसेनस्य ललितपुरं प्रति प्रयाणम् । ४६–७४ परचक्रभीत्या प्रजाना ललितपुरप्रवेशनं राज्ञो मन्त्रिभिः सह मन्त्रविधिः । ७५–७८ राज्ञः सभासमक्षे युद्धाय शासनं नगरे च घोषणा । ७९–९० अस्मिन् प्रस्तावे कश्चिद्भटस्य विचाराः । ९१–९९ कश्चिद्भटस्य सागरवृद्धिं प्रति युद्धगमनविषये विज्ञप्तिः, तस्योपदेशश्च । १००–१११ सर्वानुमत्या कश्चिद्भटस्य समराय गमनम् ।

सर्गः १७

१–८ कश्चिद्भटे राज्ञो विश्वासस्तस्मै दत्तं चाभिवचनम् । ९–२५ युद्धशासनं प्रयाणवर्णनं च । २६–३५ कश्चिद्भटमुद्दिश्य पुरवासिना मनोगतानि । ३६–८६ सैन्यशोभा युद्धवर्णनं च ।

सर्गः १८

१–२४ इन्द्रसेनदेवसेनयोर्युद्धम्, विजयस्य शौर्यं सेनाभङ्गश्च । २५–३८ कश्चिद्भटोपेन्द्रसेनयोः संवादो वाक्कलहश्च । ३९–६३ तयोर्युद्ध तस्य वर्णनं च । ६४–१०९ इन्द्रसेनदेवसेनयोः परस्परं युद्धम्, कश्चिद्भटस्यागमनं, इन्द्रसेनबल-विनाशश्च । ११०–१३० सर्वत्र जयजयकारः, कश्चिद्भटस्य सानन्दं नगरप्रवेशश्च ।

सर्गः १९

१–७ कन्याप्रदानं प्रति राज्ञा कृतः कश्चिद्भटस्य वंशविमर्शः कश्चिद्भटस्य विनयपूर्णवचासि च । ८–११ स्ववचनपालनाय राज्ञे मन्त्रिणा विज्ञप्तिः, कश्चिद्भटसुनन्दाविवाहस्य निश्चयश्च । १२–२६ ललितपुर्यां विवाहसंभारादिवर्णनम् । २७-३१ तयोर्दर्शने पुरवासिना मनोगतानि । ३२-३९ सुनन्दाकश्चिद्भटयोर्विलासः । ४०–४४ कश्चिद्भटदर्शनेन मनोरमायाः कामबाधा । ४५–६१ कश्चिद्भटस्यान्तिके दूतीगमनं तस्य च स्वदारसतोषव्रते स्थैर्यम् । ६२–७१ परस्परसंलापानन्तरं कश्चिद्भटस्य विवाहायानुमतिः । ७२–८१ दूत्या कृतं मनोरमायाः सात्वनम् ।

सर्गः २०

१–६ वाजिनापहृते कुमारे सुषेणस्य यौवनराज्याभिषेकः । ७–११ परचक्रागमे सुषेणपराभवः । १२–२७ वृद्धपितुः शोकः, साहाय्यार्थं ललितपुराधिपतेर्विज्ञप्तिश्च । २८–३८ राज्ञा कश्चिद्भटस्य कृतं निवेदनं, पितुः साहाय्यार्थं गन्तुं विज्ञप्तिश्च । ३९-४५ कन्याशतेन मनोरमया च विवाहः । ४६-६४ सागरवृद्धिना सेनया च सह वराङ्गस्य स्वविषयं प्रति गमनम् । ६५-७४ वराङ्गस्य प्रत्यागमे राज्ञः परमानन्दः । ७५–७८ बकुलेश्वरपरिभवानन्तरं पुरप्रवेशाय वराङ्गस्य निश्चयः । ७९–८० बकुलेश्वरस्य पलायनम् । ८१–९१ वराङ्गस्य पुरप्रवेशः स्वजनसमागमश्च ।

सर्गः २१

१–४ पूर्वार्जितकर्मशक्तिः । ५–१७ देवसेनस्य प्रतिनिवर्तनं वराङ्गस्य च न्यायमार्गेण राज्यपालनं क्षमाभावश्च । १८–२५ नवराज्यनिवेशनाय पितुः समीपे इच्छाप्रदर्शनं तत्संमतिश्च । २६–३१ सरस्वतीनदीतीरे आनर्तपुरस्थापनम् । ३२–४९ आनर्तपुरादिवर्णनम् । ५०–५४ सागरवृद्धेरपि नृपाभिषेकः । ५५–७५ राज्यविभजनं, बकुलेश्वरपुत्रीग्रहणेन तस्यानुग्रहः । ७६–८१ वराङ्गस्य सुखेन राज्यपालनम् ।

सर्गः २२

१–२० धर्मेण भूमिं पालयतो वराङ्गस्य षड्ऋतुषु सुखोपभोगवर्णनम् । २१-२६ आत्मकर्तव्यमुद्दिश्य राज्ञे देव्या कृतः प्रश्नः । २७–५४ गृहिधर्मवर्णनं तत्रापि जिनपूजामहत्त्वं च । ५५–७९ जिनालयकरणं तद्वर्णनं च ।

सर्गः २३

१–४७ विधिपूर्वकं जिनेन्द्रबिम्बस्थापनपूजादिवर्णनम् । ४८–७३ तत्काले नगरशोभा राज्ञो जिनालयं प्रति गमनं, जिनपूजाप्रतिमास्थापनादिवर्णनं च । ७४–८३ मुनिमुखेन पूजाफलवर्णनम् । ८४-८७ मुनेः स्तुत्यान्वितमाशीर्वचनम् । ८८–९३ राज्ञो दानादिधर्माचरणम् । ९४–१०७ अष्टाह्निकादिपूजावर्णनम् ।

सर्गः २४

१–१४ राज्ञो विषयोपभोगादिवर्णनम् । १५–२० पुरुषादिवादमधिकृत्य राज्ञो मन्त्रिवर्गस्य पृच्छा । २१–५३ दैवनियोगदेवकालग्रहस्वभावेश्वरनियति-पुरुषशून्यवादादिनिराकरणम् । ५४–६१ कर्मवादस्य स्थापनमनेकान्तयुक्त्या विवेचनं च । ६२–७७ शुभाशुभकर्मफलवर्णनम् ।

सर्गः २५

१–११ ईश्वरकर्तृत्ववर्णादिवादविचाराः । १२–२७ वेदोपदिष्टयज्ञहिंसायाः सोदाहरणं निराकरणम् । २८–४९ द्विजातिश्रेष्ठत्वस्य वैदिककर्मणा विविधलोक-वादाना च वैयर्थ्यम् । ५०–५९ विविधतीर्थाना वर्णनम् । ६०–७० द्विजाति-दानपितृबलीत्यादीना वैयर्थ्यम् । ७१–७३ हेतुवादविचारः । ७४–९८ आप्त-मीमांसायां परदेवताना दोषाविष्करणेन जिनानामर्हतामाप्तत्वसिद्धिः ।

सर्गः २६

१–३ द्रव्यगुणपर्यायनिर्देशः । ४–१३ षड्द्रव्यप्रस्तावे जीवविचारः । १४–२२ षड्विधपुद्गलविचारः । २३–३२ धर्माधर्मकालाकाशविचारः । ३३–४४ परिणामत्वादिद्रव्यलक्षणविवेचनम् । ४५–७५ प्रमाणनयविवेचनम् । ७६–९० अनेकान्तात्मकस्याद्वादस्य विवेचनम् । ९१–१०७ रत्नत्रयस्य विवेचने दर्शनस्य श्रेष्ठत्वम् ।

सर्गः २७

१–३० प्रथमानुयोगप्रस्तावे कालसंख्याभेदादिविवेचनम् । ३१–३२ त्रिषष्टि-कारणमानुषाः । ३२–३६ षोडश मनवः । ३७–३९ चतुर्विंशति तीर्थंकराः । ४०–४१ द्वादश चक्रवर्तिनः । ४२–४४ नव वासुदेवा नव प्रतिप्रतिवासुदेवाश्च । ४५–४८ चक्रवर्तिना तीर्थनिर्देशः । ४९–६३ तीर्थंकराणामुत्सेधायुरान्तर-

कालविवरणम् । ६४–६५ तीर्थव्युच्छेदनिर्देशः । ६६–७० तीर्थंकराणा पूर्वजन्मविमाननामानि । ७१–७३ पितृनामानि । ७४–७७ जिनमातरः । ७७–८० दानपतयः । ८१–९४ जन्मस्थानवंशवर्णगोत्रमुक्तिस्थानादिनिर्देशः ।

सर्गः २८

१–५ अनुपमादेव्याः सुगात्रस्य जन्म । ६–१३ सुगात्रस्य वर्णनं राजपुत्रैश्च कलाशिक्षणम् । १४–२३ वराङ्गस्य वैभवादिवर्णनम् । २४–३० उल्कापतन-दर्शनेन वैराग्योत्पत्तिः । ३१–५६ द्वादशानुप्रेक्षाभावनम्, मृत्योर्ध्रुवत्वं संसारानित्यता च । ५७–६४ सुगात्ररक्षणाय सागरवृद्धये विज्ञप्तिः, तपश्चरणे च निश्चयः । ६५–६९ परिपाकतिक्तमिदमिति सागरवृद्धिवचनानि । ७०–७८ वराङ्गस्य पुनरुपदेशः, सागरवृद्धिरपि तपश्चरणाय सिद्धः । ७९–८८ वराङ्गस्य वैराग्य-श्रवणेऽन्तःपुरस्य विलपनानि वचनानि च । ८९–१०८ वराङ्गवचनश्रवणेन देवीना प्रव्रजनम् ।

सर्गः २९

१–९ वराङ्गं वैराग्यान्निवर्तयितुं उपदेशः । १०–३० तपश्चर्याया अयमेव काल इति वराङ्गस्य प्रत्युत्तरेण पितुः प्रबोधनम् । ३१–४२ सुगात्राय वराङ्गस्योपदेशवचनानि । ४३–४८ सुगात्रस्य राज्याभिषेकवर्णनम् । ४९–५५ जिनपूजानन्तरं शिबिकायां वराङ्गस्य परिनिष्क्रमणम् । ५६–७२ पौरजनानां निन्दास्तुतयः । ७३–९९ वराङ्गस्य सहपरिवारस्य वददत्तमुनेः सन्निधौ प्रव्रजनं तपश्चरणं च ।

सर्गः ३०

१–९ जीवादिविवेचनात्मको मुनेरुपदेशः । १०–२५ वराङ्गस्य कषायादि-विजयवर्णनम् । २६–७५ तस्य विहारवसतिव्रतध्यानयात्रोपवासभिक्षालब्ध्यादि-वर्णनम् ।

सर्गः ३१

१–१५ वराङ्गपत्नीनां तपोवर्णनम् । १६–१९ वराङ्गस्य महाव्रतग्रहणं स्वाध्यायादितपश्चरणं च । २०–४३ तस्य रत्नत्रयाराधनकषायविजयेन्द्रियसंयमादि-

वर्णनम् । ४४–५५ तस्य विहारवसतियोगप्रतिमादिवर्णनम् । ५६–६७ आलोचनावन्दनादिपूर्वकं प्रायोपयानग्रहणं चतुर्विधाराधनासेवनं च । ६८–७४ सम्यक्त्वशुद्धिर्विविधतपश्चरणानि च । ७५–८० पञ्चमहाव्रतानि तेषां पञ्चविंशतिर्भावनाश्च । ८१–८५ व्रतसमितिगुप्त्यादिपालनम् । ८६–९८ द्वादशानुप्रेक्षाः । ९९–१०८ ध्यानप्रस्तावे वराङ्गस्य आत्मतत्त्वचिन्तनं शुक्लध्यानं च । १०९–११३ वराङ्गस्य निर्वाणप्राप्तिरन्येषां सुरलोकादिगमनम् । ११४–११५ उपसंहार. ।

श्रीवीतरागाय नमः

वराङ्गचरितम्

[प्रथमः सर्गः]

अर्हन्त्रिलोकमहितो हितकृत्प्रजानां
धर्मोऽर्हतो भगवतस्त्रिजगच्छरण्यः ।
ज्ञानं च यस्य सचराचरभावदर्शि
रत्नत्रयं तदहमप्रतिमं नमामि ॥ १

येनेह मोहतरुमूलमभेद्यमन्यै-
रुत्पाटितं निरवशेषमनादिबद्धम् ।
यस्यर्द्धयस्त्रिभुवनातिशयास्त्रिधोक्ताः
सोऽर्हञ्जयत्यमितमोक्षसुखोपदेशी ॥ २

प्राप्येत येन नृसुरासुरभोगभारो
नानातपोगुणसमुन्नतलब्धयश्च ।
पश्चादतीन्द्रियसुखं शिवमप्रमेयं
धर्मो जयत्यवितथः स जिनप्रणीतः ॥ ३

ज्ञानेन येन जिनवक्त्रविनिर्गतेन
त्रैलोक्यभूतगुणपर्ययसत्पदार्थाः ।
ज्ञाताः पुनर्युगपदेव हि सप्रपञ्चं
जैनं जयत्यनुपमं तदनन्तरं तत् ॥ ४

अर्हन्मुखागतमिदं गणदेवदृष्टं
सद्धर्ममार्गचरितं परया विशुद्ध्या ।
संशृण्वतः कथयतः स्मरतश्च नित्य-
मेकान्ततो भवति पुण्यसमग्रलम्भः ॥ ५

---

१ क श्रीमदादिब्रह्मणे नमः । निर्विघ्नमस्तु ।, म श्रीवासुपूज्याय नमः ।

द्रव्यं फलं प्रकृतमेव हि सप्रभेदं
क्षेत्रं च तीर्थमथ कालविभागभावौ[1] ।
अङ्गानि सप्त कथयन्ति कथाप्रबन्धे
तैः संयुता भवति युक्तिमती कथा सा ॥ ६

द्रव्याणि षड् भगवताभिहितानि तानि
क्षेत्रं तथा त्रिभुवनं विविधश्च[2] कालः ।
तीर्थं जिनेन्द्रचरितं प्रकृतं हि वस्तु
ज्ञानक्षयोपशमजौ फलभावकल्पौ[3] ॥ ७

धातुः स काञ्चनमयः क्रियया विहीनः
कालान्तरादपि न याति सुवर्णभावम् ।
एवं जगत्यमितभव्यजनश्चिरेण
नालं भवाद् व्रजितुमत्र विनोपदेशात् ॥ ८

दीपं विना नयनवानपि संदिदृक्षु-
र्द्रव्यं यथा घटपटादि न पश्यतीह ।
जिज्ञासुरुत्तममतिर्गुणवांस्तथैव
वक्त्रा विना हितपथं निखिलं न वेत्ति ॥ ९

सर्वज्ञभाषितमहार्नेदधौतबुद्धिः
स्पष्टेन्द्रियः स्थिरमतिर्मितवाङ्मनोज्ञः ।
मृष्टाक्षरो जितसभः प्रगृहीतवाक्यो
वक्तुं कथां प्रभवति प्रतिभादियुक्तः ॥ १०

---

१ म °विभागभागा. २ [त्रिविधश्च]. ३ भ °शमजा···कल्पा. ४ म महार्णव.

सत्कारमैत्र्यवनभैषजसंश्रयादी-
न्वक्ताऽनपेक्ष्य जगतात्युपकारहेतुम्[1] ।
निष्केवलं हितपथं[2] प्रवदन्वदान्यः
श्रोतात्मनोरुपचिनोति फलं विशालम् ॥ ११
जन्मार्णवं कथमयं तरतीति योऽत्र
संभावयत्यतुलधीर्मनसा दयालुः ।
संसारघोरभयदुःखमनादिबद्धं
तस्य क्षयं व्रजति साध्विति वर्णयन्ति ॥ १२
श्रेयोऽर्थिना हि जिनशासनवत्सलेन
कर्तव्य एव नियमेन हितोपदेशः ।
मोक्षार्थिना श्रवणधारणसत्क्रियार्था
योज्यास्तु ते मतिमता सततं यथावत् ॥ १३
शुश्रूषताश्रवणसंग्रहधारणानि
विज्ञानमूहनमपोहनमर्थतत्त्वम् ।
धर्मश्रवार्थिषु सुखाभिमुखेन[3] नित्य-
मष्टौ गुणान्खलु विशिष्टतमा वदन्ति ॥ १४
मृत्सारिणीमहिषहंसशुकस्वभावा
मार्जारकङ्कमशकाजजलूकसाम्याः ।
सच्छिद्रकुम्भपशुसर्पशिलोपमाना-
स्ते श्रावका भुवि चतुर्दशधा भवन्ति ॥ १५
श्रोता न चैहिकफलं प्रतिलिप्समानो
निःश्रेयसाय मतिमांश्च मतिं विधाय ।

---

१ [जगदत्युपकारहेतुम्]. २ क हितपदं. ३ म सुखादिमुखेन.

यः संशृणोति जिनधर्मकथामुदारां
पापं प्रणाशमुपयाति नरस्य तस्य ॥ १६
प्राज्ञस्य हेतुनयसूक्ष्मतरान्पदार्थान्
मूर्खस्य बुद्धिविनयं च तपःफलानि ।
दुःखार्दितस्य जनबन्धुवियोगहेतुं
निर्वेदकारणमशौचमशाश्वतस्य ॥ १७
लुब्धस्य शीलमधनस्य फलं व्रतानां
दानं क्षमा च धनिनो विषयोन्मुखस्य ।
सद्दर्शनं व्यसनिनो जिनपूजनं च
श्रोतुर्वशेन कथयेत्कथको विधिज्ञः ॥ १८
संसारसागरतरङ्गनिमग्नजीवान्
सज्ज्ञाननावमधिरोप्य सुखेन नीत्वा ।
सद्धर्मपत्तनमनन्तसुखाकरं यत्
तत्प्रापयन्ति गुरवो विदितार्थतत्त्वाः ॥ १९
जन्माटवीषु कुटिलासु विनष्टमार्गान्
येऽत्यन्तनिर्वृतिपथं प्रतिबोधयन्ति ।
तेभ्योऽधिकः प्रियतमो वसुधातलेऽस्मिन
कोऽन्योऽस्ति बन्धुरपरः परिगण्यमानः ॥ २०
राज्यार्धराज्यपृथुचक्रधरोरुभोगान्
भौमेन्द्रकल्पपतिनामहमिन्द्रसौख्यम् ।
क्लेशक्षयोद्भवमनन्तसुखं च मोक्षं
संप्राप्नुवन्ति मनुजा गुरुसंश्रयेण ॥ २१

---

१ म विनयश्च. २ म कथकोविदज्ञः.

तेभ्यो नमः प्रयतकायमनोवचोभिः
कृत्वा जगत्त्रयविभूतिशिवंकरेभ्यः ।
धर्मार्थकामसहितां जगति प्रवृत्तां
वक्ष्ये कथां शृणुत मोक्षफलावसानाम् ॥ २२
आसीद्दिवो निजगुणैर्द्दियमादधानः
पुंसां समुन्नतधियां स निवासभूमिः ।
भोगश्रियः[1] कुरुभुवः प्रतिबिम्बभूतो
नाम्ना विनीतविषयः ककुदं पृथिव्याम् ॥ २३
लोकस्य सारमखिलं निपुणो[2] विचिन्त्य
सत्संनिवासभुवनैकमनोरथेन ।
यं निर्ममे स्वयमुदाहृतरत्नसारं
धर्मार्थकामनियमाच्च निधिं विधाता ॥ २४
यस्मिन्दिशश्च रहितालि[3] विपिञ्जराभा
यन्नार्त इक्षुवनपीलितदुःप्रचाराः (?) ।
रक्तोत्पलामलदलैरुपहारितास्ते
कालागरुप्रततधूपवहाश्च गेहाः ॥ २५
यस्मिन्वनानि फलपुष्पनताग्रशाखा-
विभ्राजितानिलविकम्पिमहीरुहाणि ।
स्वाद्वम्बुकोमलतृणानि दिवा निशीथे
घोषाः प्रतिध्वनितमन्द्रगुणा गुणाढ्याः ॥ २६
सन्तो नरा युवतयश्च विदग्धवेषा
रागोत्तरासु सकलासु कलास्ववाह्याः ।

१ म भोगश्रिया. २ [निपुणं]. ३ [हरिताल°]. ४ [पन्थान].

अन्योन्यरञ्जनपराः सततोत्सवाश्च
सौख्येन किन्नरगणानतिशाययन्ति ॥ २७
देशान्विहाय हि पुराध्युषितान्कलज्ञाः[1]
शिल्पावदातमतयश्च नटा विटाश्च ।
रङ्गोपजीवनपराः पुरुषाः स्त्रियश्च
यस्मिन्पुनर्बहुविशेषगुणा वसन्ति ॥ २८
रत्नोपलाग्रपरिचुम्बितमेघमालो
नानादरीमुखविनिःसृतनिर्झरौघः ।
सौम्याचलः फणिमणिक्षपितान्धकार-
स्तस्मिन्बभूव हिमवानिव तुङ्गकूटः ॥ २९
यस्मिन्सदा गरुडकिन्नरपन्नगानां
गन्धर्वसिद्धतुषितामरचारणानाम् ।
आक्रीडनानि विविधानि मनोहराणि
सोद्यानकाननगुहागहनेष्वभूवन् ॥ ३०
तस्मात्पतङ्गजविषाणविपाटितोरु-[2]
पाषाणगह्वरविजृम्भितपन्नगेन्द्रान्[3] ।
कादम्बसारसगणैरुपसेव्यमाना
रम्या नदी प्रभवति प्रथिता धरायाम् ॥ ३१
वाताहतद्रुमपतत्कुसुमोपहारे
मत्तभ्रमद्भ्रमरगीतरवाभिधाने ।
तस्यास्तु दक्षिणतटे समभूमिभागे
रम्यातटं पुरमभूद्भुवि विश्रुतं तत् ॥ ३२

१ [कलाज्ञाः]. २ [तस्मान्मतंगज°]. ३ [पन्नगेन्द्रात्].

रम्यानदीतटसमीपसमुद्भवत्वाद्
रम्यातटं जगति रम्यं हि नाम रूढम् ।
तस्यैव नाम कृतवृद्धिगुणान्समीक्ष्य
अन्वर्थमुत्तमपुरं पटुभिर्द्वितीयम् ॥ ३३
अभ्यन्तरस्य नगरस्य बहिःप्रदेशः
कान्तो यतो भवति कान्तपुरं तदेव ।
पद्मालया सततमारमतीति यस्मा-
ल्लक्ष्मीपुरं बुधजनैः कथितं पुरं तत् ॥ ३४
उद्यानपर्वतवनान्तरितप्रदेशै-
र्वापीतडागवरपुष्करिणीह्रदैश्च ।
दिग्देवदेवगृहरम्यसभाप्रपाभि-
र्वाह्यं पुरः परपुरश्रियमादधार ॥ ३५
आवेष्ट्य तत्पुरवरं परिखाऽवतस्थे
द्वीपं यथा जलनिधिर्लवणाम्बुगर्भः ।
माहीमयोऽभ्युदितशैलसमानशालः
प्रोद्भिद्य भूतलमिवाभ्यधिकं रराज ॥ ३६
प्रासादकूटवलभीतटगोपुरैः स्वै-
रत्युच्छ्रितध्वजविचित्रचलत्पताकैः ।
आरामकल्पतरुगुल्मलताप्रतानै
रुद्धातपं पुरमभूद्गिरिभित्तिभिश्च ॥ ३७
संगीतगीतकरतालमुखप्रलापै-
र्वीणामृदङ्गमुरजध्वनिमुद्गिरद्भिः ।

१ [यस्य]. २ [कृतमृद्धिगुणान्]. ३ म °प्रभाभि.

हर्म्यैरनेकपरिवर्धितभूमिदेशे
विन्यस्तचित्रबलिभिः सततं रराज ॥ ३८

भूशैलतोयविविधाकरजातपण्यं[1]
मुक्ताप्रवालतपनीयमनेकभेदम् ।
यच्च दुर्लभतमं परराजधान्यां
तस्मिन्पुरे प्रतिवसत्सुलभं च वस्तु ॥ ३९

न्यायार्जितद्रविणतैककुटुम्बपूर्णं
सर्वर्तुसौख्यसहितं परमर्द्धियुक्तम् ।
उद्घाटितापणमुखेषु निरन्तरेषु
नक्तं दिवं क्रयपरिक्रयसक्तमर्त्यम् ॥ ४०

नैकप्रकारमहिमोत्सवचैत्यपूजा-
दानक्रियास्नपनपुण्यविवाहसंगः ।
अन्योन्यगेहगमनागमनो जनौघ-
स्तस्मिन्पुरे प्रतिदिनं ववृधे यथावत् ॥ ४१

शब्दार्थहेतुगणितादिविशेषयुक्ता
ज्ञानप्रभावितिमिरीकृतधीमनस्काः[2] ।
सद्धर्मशास्त्रकुशलाः सुलभा मनुष्या
यत्रारराजुरधिकं सततप्रमोदाः ॥ ४२

वृद्धाः समेषु तरुणाश्च गुरूपदेशे
वेश्याङ्गनासु[3] सुललिताः समदा युवानः ।

---

१ क °पुण्यं. २ क °प्रभावितमिरी°, म °प्रभावतिमिरी°. ३ [वेश्याङ्गनासु ललिताः].

त्यागेष्वथार्जितधनाः प्रमदाः प्रियेषु
वस्त्वन्तरे रतिमुपेयुरथानुरूपम् ॥ ४३
पाषण्डिशिल्पिबहुवर्णजनातिकीर्णं
रत्नापगाजलनिधिः सुरलोककल्पम् ।
प्रज्ञातिमुग्धधनिनिर्धनसज्जनेष्टं
चोरारिमारिपरचक्रकथा न तत्र ॥ ४४
नीरोगशोकनिरुपद्रवनिर्भयत्वा-
दस्मिञ्जनः सुरसुखं मनसाऽवमेने ।
किं वा पुरस्य बहुवर्णनया नराणा-
मिष्टेन्द्रियार्थपरिभोगसुखावहस्य ॥ ४५
तस्येश्वरः प्रथितभोजकुलप्रसूतो
धर्मार्थकामनिपुणो विनिगूढमन्त्रः ।
न्यायेन लोकपरिपालनसक्तबुद्धिः
श्रीधर्मसेन इति भूपतिरास नाम्ना ॥ ४६
यः कामिनीजनमनोहरचारुमूर्ति-
र्नौकावहप्रथितलब्धविशुद्धकीर्तिः ।
शक्तित्रयप्रतिविशेषहतप्रजार्तिः
शास्त्रोपदिष्टवचसाऽप्रतिमानवृत्तिः ॥ ४७
श्रीमान्प्रभिन्नकटवारणतुल्यगामी
रक्ताम्बुजच्छविहरामलपाणिपादः ।
आख्यायिकागणितकाव्यरसाद्यभिज्ञो
नित्यं पराभिगमनीयगुणावतंसः ॥ ४८

पहले ४० वें पद्य पढ़ें

नैकाहव

४८

---

१ म जलनिधेः सुरलोकजल्पम्. २ म नीराग...निर्भयत्वान्यस्मिन्.

वृद्धोपसेवनरतिर्दृढसौहृदश्च
त्यक्तप्रमादमदमत्सरमोहभावः ।
सत्संग्रहः स्थिरसखः प्रियवागलोभः
प्रागल्भ्यदाक्ष्यसहितो हितबन्धुवर्गः ॥ ४९
रूपेण काममथ नीतिबलेन शुक्रं[1]
कान्त्या शशाङ्कममरेन्द्रमुदारकीर्त्या ।
दीप्त्या दिवाकरमगाधतया समुद्रं
दण्डेन दण्डधरमप्यतिशिश्य एव ॥ ५०
यस्याज्ञया स्वपथमुत्क्रमितुं न शेकु-
र्वर्णाश्रमा जनपदे सकले पुरे वा ।
पाषण्डिनः स्वसमयोपविनीतमार्गाः
सोऽतीव बालबुधवृद्धतमान्बभार ॥ ५१
यस्याहितं प्रकुरुते मनसापि कश्चित्
किंचित्क्वचित्पुरुषमर्थमनर्थकं वा ।
क्षुत्क्षीणभुग्ननयनोदरवक्त्रदण्डः
स्थातुं हि तस्य विषये न शशाक मर्त्यः ॥ ५२
युद्धेषु भिन्नकटवारणगण्डलेखा-
संप्रस्रुतैः शमितधूलिषु दानतोयैः ।
वाक्येषु बृंहितमदान्प्रतियोद्धुकामान्
यः सद्य एव हि रिपून्विमदीचकार ॥ ५३
चेतांसि बद्धदृढवैरवतां नराणा-
मभ्यन्तरप्रकृतिकस्य जनस्य वापि ।

१ म युक्तं. २ [°परुष°].

स्वाभाविकैर्विनयजैश्चरितैरुदारै-
र्योऽरञ्जयद् भृशमथ स्वगुणैर्नरेन्द्रः ॥ ५४
ताराधिपः कुमुदषण्डविकासदक्षैः
शीतैः करैर्नभसि संविबभौ यथैव ।
नित्यं प्रियाकुमुदषण्डवचोमयूखै-
र्मह्यां तथैव वसुधाधिपपूर्णचन्द्रः ॥ ५५
आफुल्लचारुविमलाम्बुरुहाननस्य
आजानुलम्बपरिपीनभुजद्वयस्य ।
श्रीवक्षसः खलु मृगेन्द्रपराक्रमस्य
स्वान्तःपुरं पुरपतेस्त्रिशतीबिभूव ॥ ५६
युक्ताधिरोहपरिणाहसमन्विताङ्ग्यो
हंसीस्वनाः सुगमनग्रहणस्वभावाः ।
लज्जावपूर्विनयविभ्रमचारुवेषा-
स्तुल्यावलोकननिरन्तरसौहृदाश्च ॥ ५७
फुल्लारविन्दवदना वरचारुनेत्राः
फुल्लारविन्दकुसुमोरुशुचित्वगन्धाः ।
फुल्लारविन्दवरकान्तिगुणावदाताः
फुल्लारविन्दवरकोमलपाणिपादाः ॥ ५८
सर्वाः स्त्रियः प्रथमयौवनगर्ववन्त्यः
सर्वाः स्वमातृपितृगोत्रविशुद्धवन्त्यः ।
सर्वाः कलागुणविधानविशेषदक्षाः
सर्वा यथेष्टमुपभोगपरीप्सयिन्यः ॥ ५९

१ म कुमुदखण्ड. २ क °परिणाम°.

चातुर्यहावगतिविभ्रमसत्क्रियाभी
रूपेण ता द्युतिमतातिमनोहरेण।
सत्यन्तरे समनुकूलतयानुभूय
राज्ञो मनस्यधिगता वनितास्तदासन् ॥ ६०
हासेन वा मधुमदेन सगर्वितेन
रागेण वाथ कलुषीकृतचेतसा वा।
अन्योन्यमर्मपरिहासकथाभिरामा
राज्ञः स्त्रियस्त्विति कथा न बभूव लोके ॥ ६१
धर्मप्रियस्य रतिनीतिविशारदस्य
सामान्यदृष्ट्यभिनिवि[ष्ट ⌣⌣] तायात् ?
नात्युद्धताः समसुखाः पतिवत्सलाश्च
शीलानुरक्तहृदया वनिता विनीताः ॥ ६२
तासु क्षितीन्द्रहृदयप्रियकारिणीषु
माधुर्यकान्तिललितप्रतिभान्वितासु।
रेजे भृशं गुणवती क्षितिपाङ्गनासु
तारागणेषु विमलेष्विव चन्द्रलेखा ॥ ६३
शुद्धान्वया रुचिरभूषणभूषिताङ्गी
कामैकभारवति[1] कर्कशजातरागा (?)।
स्निग्धा हिता शुचिमती मितवाक्सुदक्षा
भूमीश्वरस्य हृदयं स्वगुणैर्बबन्ध ॥ ६४
या धर्मसेननयनामृतरूपशोभा
तस्मै वचःश्रवणपथ्यहितानुवाक्या।

१ [कामैकभारपति°]. २ [समसुखाः].

तद्गात्रचित्तरतिकारणवेषचेष्टा
तेनाभवत्सुरतनाटकनायिका सा ॥ ६५

तस्यास्तदाङ्गममलेन्दुनिभाननायाः
पीनोन्नतस्तनतटार्पितचन्दनायाः ।
आश्लिष्य कामशरताडनविह्वलायाः
प्रीतिं परामुपजगाम पतिर्धरायाः ॥ ६६

सा चापि तस्य वदनं नयनातिकान्त-
माकृष्य सीधुरसिना वदनाम्बुजेन ।
भूयश्चुचुम्ब मदनातुरमन्दचेष्टा-
पूर्वं प्रियव्रणितपाटलविभ्रमोष्ठी ॥ ६७

ताभ्यां यथेष्टमभिसंहितमन्मथाभ्यां
तुल्यानुरागरतिवर्धनसत्क्रियाभ्याम् ।
अन्योन्यचित्तपरिपोषणतत्पराभ्यां
प्राप्तं नृजन्मचिरजीवितयोः फलं तत् ॥ ६८

अनुपरतमृदङ्गमन्द्रनादे
मणिकिरणैरवभासितान्धकारे ।
षड्ऋतुसुखगृहे विशालकीर्ति-
र्वरवनिताभिररंस्त राजसिंहः ॥ ६९

इति नगरनरेन्द्र [—ᴗ] भार्याः
प्रथमतरं कथिताः कथाप्रबन्धात् ।

१ म °मनलेन्दु°.

श्रुतिपथसुखदं निगद्यमानं
तत उपरि प्रकृतं निशामयध्वम् ॥ ७०

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
जनपदनगरनृपतिनृपपत्नीवर्णनो नाम
प्रथमः सर्गः

[द्वितीयः सर्गः]

धर्मेण संप्राप्तमनोरथस्य श्रीधर्मसेनस्य नरेश्वरस्य ।
प्रियाङ्गनायां स वराङ्गनामा जज्ञे कुमारो गुणपूर्वदेव्याम् ॥ १
यस्मिन्प्रसूतेऽभिननन्द राष्ट्रं पितुश्च मातुर्ववृधे प्रहर्षः ।
भयं रिपूणामभवत्तदैव दुद्राव शोकः स्वजनस्य तस्य ॥ २
अन्योन्यहस्तैः प्रतिनीयमानो बालेन्दुवद् वृद्धिमुपाजगाम ।
कलाप्रलापं वदनारविन्दं संप्रेक्ष्य भूपो न ततर्प लोकः ॥ ३
अनेकसल्लक्षणलक्षिताङ्गः प्रतापकान्तिद्युतिवीर्ययुक्तः ।
विद्वत्सहायो मतिमान् दयालुः प्रजाहितार्थाय कृतप्रयासः ॥ ४
देवेषु पूजां गुरुषु प्रणामं पराक्रमं शत्रुषु सत्सु मैत्रीम् ।
पात्रेषु दानं च दयां प्रजासु विद्यासु रागं सततं चकार ॥ ५
शब्दार्थगन्धर्वकलालिपिज्ञो हस्त्यश्वशास्त्राभ्यसनप्रसक्तः ।
व्यपेतमायामदमानलोभस्तत्याज सप्त व्यसनानि धीमान् ॥ ६
कदाचिदभ्यस्य गजाश्वशास्त्रमृद्ध्या महत्या नगरीं प्रविश्य ।
प्रणम्य भक्त्या पितरौ यथावत्तस्थौ पुरस्ताद्विनयानताङ्गः ॥ ७

---

१ [कलप्रलाप].

समीक्ष्य तौ पुत्रगुणानुदारान् रूपं वपुस्तन्नवयौवनं च ।
काचिद्भवेदस्य समानरूपा वपुष्मतीति स्मरतः स्म सद्यः ॥ ८
तस्मिन्स्वकाले स्वयमेव कश्चिच्छ्रेष्ठी पुरस्यास्य कुमारभक्त्या । य
अतर्कितोपस्थितजातरागः समाहितात्मेत्थमुवाच वाचम् ॥ ९
कुलेन शीलेन पराक्रमेण ज्ञानेन धर्मेण नयेन चापि ।
समृद्धपुर्याः पतिरुत्तमश्रीर्भवत्समानो धृतिषेणराजा ॥ १०
अतुल्यनामा (?) किल तस्य भार्या विशालवंशा वरधर्ममूर्तिः । श्य
तयोः सुता कीर्तिगुणोपपन्ना बभूव नाम्नानुपमा विनीता ॥ ११
विभूषणानामतिभूषणेन विरूपतामानवयौवनेन । पितानो
किमत्र तद्वर्णनयातिमात्रं सा देवकन्या स्वयमागतैव ॥ १२
श्रुत्वा वचस्तस्य वणिक्तमस्य सोऽत्यर्थमर्थानुगतं मनोज्ञम् ।
तं पूजयित्वा विधिवत्ततस्तां स्वां मन्त्रशालां पुनराविवेश ॥ १३
ते मन्त्रिमुख्या विदितार्थतत्त्वा अनन्तचित्राजितदेवसाह्वाः ।
आहूतमात्रा वसुधेश्वरेण यथाविधस्थानमुपोपविष्टाः ॥ १४
सत्कृत्य तान्स्मेरमुखः स राजा प्रोवाच वाचं मधुरार्थगर्भाम् ।
आपूर्यते यौवनमात्मसूनोः कृष्णेतरे पक्ष इवेन्दुबिम्बम् ॥ १५
व्यायामविद्यासु कृतप्रयोगो नीतौ कृती सर्वकलाविधिज्ञः ।
वृद्धोपसेवाभिरतिर्हितात्मा सुबुद्धिमान् पौरुषवान्कुमारः ॥ १६
संभाव्यरूपः स्वगुणैर्महीनः पुष्पैः फलानामिव जन्मवेत्ता ।
रूपश्रियानङ्ग इव द्वितीयस्तदस्य चिन्त्यं खलु दारकर्म ॥ १७

---

१ म काचिद्भवेदप्यसमान° २ [तस्मिंश्च काले]. ३ [धृतिषेणराजः]. ४ [विरूपताया नव°]. ५ म अनन्तचित्रांजित°, [°धीवराह्वाः]. ६ म गीतौ. ७ म कृतिः.

श्रुत्वा वचस्तस्य नराधिपस्य ते मन्त्रिणो राजसुतानुरक्ताः ।
प्रीत्या नरेन्द्रं प्रशशंसुरुच्चैः समञ्जसं साधु वचस्तवेति ॥ १८
तेषां पुरस्तात्स्वमनोगतार्थं राज्ञे तदा व्याहृतवाननन्तः ।
अन्या न तुल्याभिजनानुरूपां तां देवसेन्यां प्रविहाय कन्याम् ॥१९
वैवाहिकी नः कुलसंततिः सा स्थिरा च मैत्री ननु मातुलत्वात् ।
तस्मादहं योग्यतया तयाशु सुनन्दयेच्छामि विवाहकर्म ॥ २०
श्रुत्वा ततोऽनन्तवचोऽजितस्तु जगाद वाक्यं पुनरन्यदेव ।
यत्प्रोक्तमेतेन वचस्तदस्मान्न प्रीणयत्येवमयुक्तिमत्त्वात् ॥ २१
जनस्य सर्वस्य हि भर्तृबन्धुः स्वाभाविकं मित्रमकृत्रिमत्वात् ।
यत्कृत्रिमं स्यात्फलवच्च मित्रमुदारमेतत्करणीयमस्य ॥ २२
वचोऽजितेनाभिहितं निशम्य स चित्रसेनो गिरमित्युवाच ।
को देवसेनादितरः पृथिव्यां नरेश्वरः पक्षबलर्द्धिमान्स्यात् ॥ २३
असंहितं प्राकुलमुत्तमं च संधित्स्यमानं बलिना परेण ।
नोपैति विश्रम्भमुपैति शङ्कां प्रयोजने विक्रियते च भूयः ॥ २४
न सा सुनन्दा परिणीयते चेत्स्यान्मित्रभेदः स हि दोषमूलः ।
यस्यापचारेण च यान्ति मित्राण्यमित्रतां वै न तु कार्यवित्सः ॥ २५
तां चित्रसेनाभिहितां विचित्रां वाणीं निशम्योत्तमधीश्चतुर्थः ।
प्रत्यब्रवीन्नीतिमतानुसारी वचोऽर्थसंपत्तिगुरुत्वबुद्ध्या ॥ २६
अभूतपूर्वोत्तमसौहृदस्य बलीयसस्तुल्यबलेन योगे ।
दोषा यतस्तेन खलूपदिष्टास्ते दूरनष्टा नयमार्गवृत्त्या ॥ २७
दारेषु मातर्यथ भृत्यवर्गे सुते पितर्यन्यतमे जने वा ।
विश्रम्भयोगो न तु तादृशः स्याद्यादृग्दृढे मित्र उदारबुद्धौ ॥ २८

१ क प्रशशेकुरुच्चैः. २ [देवसेना]. ३ क अमन्त्रता.

मित्रं बलीयः स्वनुरागि पुंसामलभ्यमन्यत्र हि दैवयोगात् ।
तल्लभ्यते चेद्बलिना समग्रा वसुन्धरा हस्तगतैव तस्य ॥ २९

विरक्तभृत्यान्यतिदीर्घसूत्राण्यल्पानि मित्राण्यतिदूरगानि ।
संबन्धमात्राभिनिविष्टबुद्धेः कियच्चिरं[1] तस्य नृपस्य राज्यम् ॥ ३०

अष्टाविमे भूपतयः प्रधाना धर्मार्थषड्भागभुजः[2] पृथिव्याम् ।
यैर्भ्राजते संनिहितैर्धरित्री द्यौरष्टभिस्तैरिव दिग्गजेन्द्रैः ॥ ३१

महीमहेन्द्रोऽथ महेन्द्रदत्तो द्विषंतपश्चापि यथार्थनामा ।
सनत्कुमारो मकरध्वजोऽपि समुद्रगुप्तो विनयंधरश्च[3] ॥ ३२

वज्रायुधश्चक्रभृता समानः पराक्रमैश्वर्यवपुर्गुणेन ।
मित्रंसहश्चापि हि देवसेनात्किं वाधिकास्ते न भवेयुरीशाः ॥ ३३

वचांसि तेषां स निशम्य राजा स्वतर्कितात्क्रान्तविजृम्भितानि ।
प्रशस्य तान् राज्यधुरंधरांश्च वैदेहकोक्तं पुनराचचक्षे ॥ ३४

ते चापि राज्ञां समुदीरितार्थां गिरं निशम्यानुमतिं प्रकृत्य[4] ।
विवाहतन्त्राविकृतान्सलेखान्प्रत्येकशो दूतवरान्ससर्ज (?) ॥ ३५ धि

तेषामथैको गुणवांस्तु दूतः पतिं समासाद्य समृद्धपुर्याः ।
प्रदर्श्य लेखं प्रियवाक्यगर्भं व्याजिज्ञपद्वाचिकमर्थयुक्तम् ॥ ३६

निशाम्य लेखं च वचो निशम्य मुदाब्रवीत्तच्च तथेति राजा ।
विज्ञाय वागिङ्गितदानमानैः स्वकार्यसिद्धौ मतिमादधे सः ॥ ३७

ततो नृपेणाप्रतिपौरुषेण वचोहरः सामयुतैर्वचोभिः ।
विसर्जितः साधु कृतात्मकृत्यो येनागतस्तेन पथा निवृत्तः ॥ ३८

---

१ म कियच्चरं. २ म धर्मार्थि°. ३ म विनयंवरश्च. ४ म प्रकृत्वा.

दूताः परे तेऽपि च संनिवृत्ताः पतिः स्वमारोपितकार्यभाराः[1] ।
राज्ञे समूचुः स्वमतप्रसिद्धिं[2] प्रमोदपूर्वां गमनप्रतीक्ष्णाम्[3] ॥ ३९
प्रत्यागतानां स वचोहराणां निशम्य वाणीं च समीक्ष्य लेखम् ।
स्वान्मन्त्रिणो मन्त्रविनिश्चयज्ञान् शशास राजा धृतिषेणपार्श्वम्[4] ४०
तैः संव्रजद्भिर्बहुबन्धुमित्रैः सहैव याता नरदेवसेना ।
बभौ चतुर्भिर्नृपमन्त्रिमुख्यैः सुरेन्द्रसेनेव च लोकपालैः ॥ ४१
व्यतीत्य देशान्बहुरत्नकोशं पुरं समासाद्य गुणप्रकाशम् ।
विलोकमाना विविशुर्विभूत्या विलोक्यमानास्त्वथ पौरवर्गैः ॥ ४२
संप्राप्य राजालयमुत्तमर्द्धौ सामन्तसेनानिचितान्तरालम् ।
तद्द्वारपालैरुपनीयमानाः सिंहासनस्थं ददृशुर्नरेन्द्रम्[5] ॥ ४३
अभ्यागतानाप्ततमान्विलोक्य वाग्दानमानैरभिपूज्य सम्यक् ।
नराधिपः प्रश्नकुतूहलेन पप्रच्छ तान्प्राग्विदितार्थतत्त्वः ॥ ४४
श्रीधर्मसेनेन यथोपदिष्टाः पृष्टाः पुनस्ते धृतिषेणनाम्ना ।
सामप्रयोगैरुपनीतमर्थं स्वकार्यसिद्ध्यर्थममुं समूचुः ॥ ४५
नृपोत्तमः शान्तरिपुर्जितात्मा वयोऽधिकस्तुल्यतमः कुलेन ।
श्रीधर्मसेनो धृतराजवृत्तः स सादरः कौशलमाचचक्षे ॥ ४६
तस्यात्मजः कान्ततमः प्रजानामुदारवृत्तः शुचिमान्नयज्ञः ।
जामातृतां प्राप्तुमनाः कुमारो महीपते ते चरणौ ननाम ॥ ४७
तेषां वचो वाक्यविदां निशम्य समर्थ्य[5] सम्यङ्नृपतिस्तदानीम् ।
संचिन्त्य कन्यावयसस्समाप्तिं तेभ्योऽनुमत्यैवमवोचदित्थम्[6] ॥४८

---

१ [पत्या समारोपित°]. २ म स्वमतप्रसिद्धं. ३ [गमनप्रतीक्षाम्]. ४ क नृपेन्द्रम्. ५ [संमथ्य]. ६ क अनुमित्येवम्.

कन्यापि तेनैव समानकल्पा कलागुणैश्चापि वयोवपुर्भ्याम् ।
स चापि तस्या यदि युक्तरूपः किमन्यदिष्येत तयोर्नृलोके ॥ ४९
इत्येवमुक्त्वा नृपतिः सहर्षो दित्सुः सुतामुत्पलपत्रनेत्राम् ।
पुरोहितामात्यसमान्विदग्धानाह्वाययाह्वार्यविदो[1] बभूव ॥ ५०
समेत्य तैर्मन्त्रितमन्त्रिभिश्च कन्याप्रदानं प्रति निश्चितार्थः ।
यथाधिकाराधिकृतान्स भृत्यान् शशास कल्याणमहोत्सवाय ॥५१
कृत्वा स कल्याणविधिं विधिज्ञो दरिद्रदीनेषु धनं विसृज्य ।
स्वया विभूत्या परया नरेन्द्रः कन्यां पुरस्कृत्य मुदा प्रतस्थे ॥ ५२
जलप्रभाभिः कृतभूमिभागां प्राचीनदेशोपहितप्रवालाम् ।
सर्वार्जनोपात्तकपोतपालीं वैडूर्यसव्यानवतीं परार्ध्याम् ॥ ५३
हेमोत्तमस्तम्भवृतां विशालां महेन्द्रनीलप्रतिबद्धकुम्भाम् ।
तां पद्मरागोपगृहीतकण्ठां विशुद्धरूपोन्नतचारुकूटाम् ॥ ५४
द्विजातिवक्त्रोद्गलितप्रलब्धां[2] मुक्ताकलापच्छुरितान्तरालाम् ।
मन्दानिलाकम्पिचलत्पताकामात्मप्रभाहेपितसूर्यभासम् ॥ ५५
नानाप्रकारोज्ज्वलरत्नदण्डां विलासिनीधारितचामराढ्याम्[3] ।
आरुह्य[4] कन्यां शिबिकां पृथुश्रीः पुरीं विवेशोत्तमनामधेयाम् ॥ ५६
श्रीधर्मसेनप्रहितैश्च दूतैर्निवेदिताः प्रागवनीन्द्रचन्द्राः ।
आकृष्यमाणास्तु वराङ्गपुण्यैः प्रतस्थिरे स्वाभिरमा सुताभिः ॥५७
सुवर्णकक्षोपहितान् गजेन्द्रान् रथांश्च नानाकृतिचित्रवर्णान्[5] ।
सचामरापीलधरांस्तुरङ्गान्नृपाः समारुह्य पथि प्रजग्मुः ॥ ५८

---

१ [आह्वाय्य (आहूय वा) बह्वर्थविदो]. २ [°गलितप्रलम्ब°].
३ [°चामरादयाम्°]. ४ [आरोह्य]. ५ म नागाकृति°.

वपुष्मती विन्ध्यपुरेश्वरस्य महेन्द्रदत्तस्य सुता बभूव ।
द्विषंतपः सिंहपुराधिपस्तु यशोवती तस्य सुतेन्दुवक्त्रा ॥ ५९

सनत्कुमारस्य मनोज्ञरूपा वसुंधरापीष्टपुराधिपस्य ।
अनङ्गसेना मकरध्वजस्य राज्ञः सुता श्रीमलयेश्वरस्य ॥ ६०

प्रियव्रता चक्रपुराधिपस्य समुद्रदत्तस्य समग्ररूपा ।
वज्रायुधो नाम गिरिव्रजेशस्तस्य प्रियायामभवत्सुकेशी ॥ ६१

मित्रंसहकोशलराजकन्यापतिः स्मृता तस्य हि विश्वसेना ।
अङ्गाधिपस्य प्रियकारिणीति बभूव पुत्री विनयंधरस्य ॥ ६२

नरेन्द्रकन्या धृतिषेणपुत्र्या सहैव रूपादिगुणैः समानाः ।
दिग्भ्यस्तथाष्टाभ्य उदारवृत्ता आजग्मुरष्टाविव दिक्कुमार्यः ॥६३

नृपाज्ञया राजगृहस्य मध्ये नरेन्द्रसूनोरभिषेचनाय ।
श्रीमण्डपं कामकरण्डकाख्यं सत् कारितं नेत्रमनोऽभिरामम् ॥ ६४

महेन्द्रनीलैर्मणिभिर्विनद्धं महीतलं हेममयी च भित्तिः ।
कपोतपाली रजतैरुपेता सौवर्णमन्तःफलकं प्रकल्प्तम् ॥ ६५

स्तम्भास्तु सर्वे तपनीयगर्भा बहिर्बृहद्रत्नमणिप्रकल्प्याः । कृताः
द्वारं सुबद्धं खलु सर्वरत्नैर्जाम्बूनदाविष्कृतमिन्द्रकूटम् ॥ ६६

क्वचित्क्वचिल्लम्बितहेममालं प्रवालरत्नद्युतिमिश्रजालम् ।
मुक्ताकलापाञ्चितदामलीलं रराज पर्यन्तविचित्रसालम् ॥ ६७

प्रवालमुक्तामणिभिर्विचित्रैर्विन्यस्तनानाविधभक्तिचित्रा ।
भ्रमद्भिरेफाहतकेसरेण पुष्पोपहारेण रराज भूमिः ॥ ६८

१ क मित्रंसहा, [मित्रंसहः]. २ म विनयंवरस्य. ३ म विनन्द. ४ [प्रकल्प्तीः].

स्वाभाविकश्चाप्रतिकान्तरूपो माङ्गल्यकर्मण्यभिसंस्कृताङ्गः ।
सिंहासनस्योपरि संनिषण्णो बभौ शशीवोदयपर्वतस्थः[1] ॥ ६९

अष्टाभिराभिर्भुवि सुन्दरीभिर्मनोहराङ्ग्या सुतया सदृश्या ।
श्रेष्ठ्यग्रपुत्र्या धनदत्तया च समं कुमारो दशभिर्वराङ्गैः[2] ॥ ७०

हैमैर्घटैर्गन्धविमिश्रतोयैर्ग्रीवाभिसद्वेष्टितदामलीलैः ।
पद्मोत्पलाच्छादितवक्त्रशोभैर्वसुन्धरेन्द्राः स्नपयांबभूवुः[3] ॥ ७१

अन्ये च तेषां नृपमन्त्रिमुख्या अनन्तचित्राजितदेवसाह्वाः[4] ।
कुम्भैर्ज्वलद्रत्नमयैरनेकैः शुद्धाम्बुपूर्णैश्च समभ्यषिञ्चन् ॥ ७२

पौरप्रधाना नरदेवभक्त्या ते पार्थिवैः फुल्लफलाक्षमिश्रैः ।
घटैश्च नानाविधवर्णतोयैः पदाभिषेकं सुतनोः प्रचक्रुः ॥ ७३

समेत्य सम्यग्बहुबन्धुवर्गा रागोद्धता मङ्गलजातहर्षाः ।
यन्त्रैरनेकैर्वरवर्णपूर्णैरन्योन्यगात्राण्यभिचिक्कुदुस्ते[5] ॥ ७४

केचिच्छशंसुर्नृवरं वराङ्गं महीपतीनां तनयाश्च केचित् ।
अन्योन्ययोग्या इति केचिदूचुराश्चर्यमन्ये परमं प्रजग्मुः ॥ ७५

वराङ्गनामानमनङ्गलीलं क्षितीन्द्रपुत्र्यश्च मनोज्ञरूपाः ।
समीक्ष्य बन्धूनपि हर्षपूर्णान्पौरान्समेतान् कथयांबभूवुः ॥ ७६

इमे वयं चापि हि जीवलोके समाननेत्रोदरपाणिपादाः ।
ऐश्वर्यकान्तिद्युतिवीर्यरूपैः कथं विशिष्टा इति केचिदूचुः ॥ ७७

किं न श्रुतं वाक्यमिदं भवद्भिर्जगत्यसाधारणहेतुभूतम् ।
स्वकर्मनिष्पत्तिफलप्रपञ्चं दुःखं सुखं वेति च लोकसिद्धम् ॥ ७८

---

१ म शरीरोदय°. २ [समं कुमारं दशभिर्वराङ्गम्]. ३ [युग्मम्]. ४ [°धीवराह्वाः]. ५ [अभिचिक्लिदुस्ते].

धर्मात्सुखं पापफलाच्च दुःखं सुखं स्वपश्चेन्द्रियकामलब्धिः ।
दुःखं पुनस्तद्विपरीतमुक्तमितीह सर्वैरपि किं न वेद्यम् ॥ ७९
पूर्वं त्वकृत्वा सुकृतं नरा ये परश्रियं प्राप्तुमटन्ति[1] मूढाः ।
तेषां श्रमं केवलमेव लोके हास्यं महत्तच्च विपाकतिक्तम् ॥ ८०
तथापि कर्माणि बहूनि तानि शुभप्रदानान्यशुभप्रदानि ।
ऐकान्तिकं यन्निरुपद्रवं च सुखं लभन्ते कथमत्र जीवाः ॥ ८१
दानं तपः संयमदर्शनानि शौचं दमो भूतदया च मैत्री ।
क्षान्तिश्च सत्यं समता ह्यसंग इत्येवमाद्यं सुखहेतुभूतम् ॥ ८२
जन्मान्तरे तप्ततपःप्रभावात्सत्पात्रदानाज्जिनपूजनाच्च ।
प्राणानुकम्पोद्भवभावनाया जन्मन्यथास्मिन्सुखिनो भवन्ति ॥ ८३
किमत्र चित्रैर्बहुभिः प्रलापैः सुखार्थिभिः पापरतिर्विहेया ।
पापं पुनर्जीवविहिंसनेन तन्मूलतो दुःखमवाप्नुवन्ति ॥ ८४
श्रुत्वा वचो धर्मपथानपेतं[2] निरुत्तरं सर्वजगावगम्यम् ।
तं श्रद्दधुर्धर्मफलं मनुष्याः प्रत्यक्षसद्दर्शनजातरागाः ॥ ८५ ॥
प्रशस्तनक्षत्रमुहूर्तयोगे ग्रहेषु सर्वेषु समन्वितेषु ।
स्वोच्चस्थिते[3] चन्द्रमसीष्टपक्षे चकार पाणिग्रहणं वधूनाम् ॥ ८६
श्रीधर्मसेनः सकलत्रपुत्रः सन्मानदानैरभिसंप्रपूज्य ।
लोकोपचारग्रहणानुवृत्त्या विसर्जयामास वसुंधरेन्द्रान् ॥ ८७
संप्राप्य[4]कल्याणमहाविभूत्या विराजमाना दुहितृर्निरीक्ष्य ।
जामातरं चायितराजलक्ष्म्या[5] वसुंधरेन्द्राः प्रययुः स्वदेशान् ॥ ८८

---

१ म अशान्ति. २ म धर्मपथा न भीतं. ३ क सोच्चस्थिते, [सूच्चस्थिते]. ४ [संप्राप्त°]. ५ [चागत°].

निवर्तमानान्स्वपुरान्कुमारः प्रीत्या महेन्द्रप्रतिमान्विधिज्ञः ।
प्रयाप्य[1] दूरं विदितत्रिवर्गः स्वच्छन्दवृत्त्यानुबभूव भोगान्[2] ॥ ८९
प्रियाङ्गनाभिर्वरवर्णिनीभिः प्रफुल्लनीलोत्पललोचनाभिः ।
चन्द्राननाभिः सह राजपुत्रो रेमे चिरं पीनपयोधराभिः ॥ ९०
तासां वधूनां रमणप्रियाणां क्रीडानुषङ्गक्रमकोविदानाम् ।
आलापसल्लापविलासभावैः कालो व्यतीतो धरणीन्द्रसूनोः ॥ ९१
ताश्चापि भास्वद्रमणीयवेषाः स्वाम्येकभावप्रतिबद्धरागाः ।
मनोज्ञरूपद्युतिकान्तिमत्यः[3] सर्वास्तु सर्वेन्द्रियरत्यधिष्ठाः ॥ ९२
सत्यार्जवक्षान्तिदयोपपन्नाः पैशून्यमायानृतलोभहीनाः ।
व्यपेतमात्सर्यमदाभ्यसूया महीन्द्रपुत्रस्य मनोऽपि जह्रुः ॥ ९३

देवेन्द्रो गगनचरीभिरप्सरोभिः
शैलेन्द्रे स्फुटमणिभासुरे यथैव ।
कान्ताभिर्भवनवरे परार्ध्यसारे
भूमीन्द्रप्रियतनयस्तथाभिरेमे ॥ ९४

इत्येवं नृपतनयस्य पुण्यमूर्तेः
कल्याणं कथितमिदं समासतस्तु ।
कः शक्तः सुकृतफलं समासहस्रैः
संस्तोतुं मतिरहितः पुमानशेषम् ॥ ९५

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
विवाहवर्णनो नाम द्वितीयः सर्गः ।

---

१ [प्रस्थाप्य]. २ म लोकान्. ३ म कान्तमत्यः.

[तृतीयः सर्गः]

अरिष्टनेमिर्वरधर्मभूमिः[1] प्रणष्टकर्माष्टकभूरिबन्धः ।
विशिष्टनामाष्टसहस्रकीर्तिर्द्वाविंशतीर्थाधिपतिर्बभूव ॥ १
तस्याग्रशिष्यो वरदत्तनामा सद्दृष्टिविज्ञानतपःप्रभावात् ।
कर्माणि चत्वारि पुरातनानि विभिद्य कैवल्यमतुल्यमापत् ॥ २
उदारवृत्तैरुरुसत्तपस्कैर्नानर्द्धिभिः साधुगणैरनेकैः ।
महात्मभिस्तैर्विजहार देशान् धर्माम्बुवर्षं जगते च वर्षन् ॥ ३
पुराकरग्राममडम्बखेडान्विहृत्य भव्याम्बुजबालभानुः ।
धर्मप्रभावं व्यपदेष्टुकामः पुरं क्रमेणोत्तममाजगाम ॥ ४
तस्मिन्पुरे सर्वजनाभिगम्यं उद्यानमत्यन्तसुखप्रदेशम् ।
मनोहरं नाम मनोऽभिरामं कृतानुनादं मधुकृद्भिरेफैः ॥ ५
तस्यैकदेशे रमणीयरूपे शिलातले जन्तुविवर्जिते च ।
दयापरैर्दान्तमदेन्द्रियाश्वैः सहोपविष्टो मुनिभिर्मुनीन्द्रः ॥ ६
एकैकशः केचन पिण्डिताश्च केचित्स्थिताः केचन संनिषण्णाः ।
स्वाध्यायमन्द्रध्वनिरक्तकण्ठा वाचंयमाः केचन साधुवर्याः ॥ ७
तेषां यतीनां हि तपोधनानां जाज्वल्यमानोत्तमशीलभासाम् ।
मध्ये बभासे वरदत्तनामा ज्योतिर्गणानामिव पूर्णचन्द्रः ॥ ८
उद्यानपालः प्रविलोक्य साधूंस्तपोभिरुद्भासितपुण्यमूर्तीन् ।
प्रहृष्टचेतास्त्वरयाभिगम्य विज्ञापयामास वसुंधरेन्द्रम् ॥ ९
पुरे वने वापि गृहे सभायां तिष्ठन्स्वयं जाग्रदपि व्रजंश्च ।
दिवा निशायामथ सन्ध्ययोश्च यान्भावतश्चिन्तयति क्षितीन्द्रः॥१०

---

१ क °वरदत्तभूमिः.

तान् साधुवर्गान्स्वगुणोपपन्नान्प्रशान्तरूपान्[1]विदितत्रिलोकान् ।
मनोहरोद्यानशिलातलेषु सुखोपविष्टानहमभ्यपश्यम् ॥ ११
उद्यानपालस्य वचो निशम्य प्रोत्थाय सिंहासनतः पृथुश्रीः ।
पदानि सप्त प्रतिगम्य राजा ननाम मूर्ध्ना विनतारिपक्षः ॥ १२
आनन्दिनी नाम महाभ्रनादा माङ्गल्यकर्मण्यभिसंप्रताड्या ।
जनस्य सर्वस्य विबोधनार्थं प्रताडिता भूपतिशासनेन ॥ १३
अमात्यसेनापतिमन्त्रिणश्च पुरोहितश्रेणिगणप्रधानाः ।
तस्याः पुनर्मेघनिनादकल्पं रवं निशम्याशु समाययुस्ते ॥ १४
प्रहृष्टरोमः परितुष्टभावो दत्त्वा दरिद्रार्थिजनाय दानम् ।
सान्तःपुरः सर्वसमृद्धियुक्तो जगाम साधूनभिवन्दितुं सः ॥ १५
बहुप्रकारान्पुरवासिनोऽर्थान् विचिन्तयन्तः स्वमनोऽनुनीतान् ।
अनेकवेषाकृतिदेशभाषा निरीयुरुर्वीपतिना सहैव ॥ १६
नृपाज्ञया केचिदभिप्रजग्मुर्गन्तुं प्रवृत्तानपरे समीयुः ।
निश्चक्रतुः[2] केचिदुदारशोभाः स्वां स्वां च संदर्शयितुं विभूतिम् ॥ १७
निर्जग्मुरेके नरदेवभक्त्या समीयुरेके मुनिदेवभक्त्या ।
उत्तस्थुरेके गुरुलोकभक्त्या उपेयुरेके वरधर्मभक्त्या ॥ १८
प्रदित्सवः केचन पात्रदानं निनंसवः केचन संयतेन्द्रान् ।
शुश्रूषवः केचन धर्मसारं सुराङ्गनाभिस्तु रिरंसवोऽन्ये ॥ १९
रुरुत्सवः केचन मोहसेनां जिघांसवः केचन मोहराजम् ।
युयुत्सवोऽन्ये च कषायमल्लैर्बिभङ्क्षवः केचन कामदर्पम् ॥ २०
मुमुक्षवः केचन कर्मपाशांस्तितीर्षवोऽज्ञानमहासमुद्रम् ।
तुष्टूषवः साधुगुणानुदारांश्चिचित्सवः[3] संशयजातमर्थम् ॥ २१

१ म प्रशान्तरूपान्. २ [निश्चक्रमुः]. ३ [चिकित्सवः].

पुपूषवः पापरजांसि केचिच्चिचीषवः[1] पुण्यजलानि केचित् ।
चिकीर्षवो[2] घोरतपांसि केचित्तिष्ठासवः मूत्रपथे च केचित् ॥ २२
चिकित्सवः केचन दुःखजालं बिभित्सवः केचन दुःखबीजम् ।
सिशंसवः[3] केचन दुःखवह्निं जिज्ञासवो द्रव्यगुणस्वभावान् ॥ २३
आधित्सवः केचन पुण्यकीर्तिं विवप्सवः केचन पुण्यबीजम् ।
सिष्ठासवः[4] केचन पुण्यतीर्थे लोकोत्तरं सौख्यमभीप्सवश्च ॥ २४
गृहस्थधर्मं प्रतिपित्सवश्च गृहस्थधर्मं प्रजिहासवश्च ।
तित्यक्षवो लोककुधर्ममार्गं मुनीन्द्रधर्मं प्रजिघृक्षवश्च ॥ २५
व्रतातिपातप्रतिबोधनाय गृहीतपूर्वव्रतवर्धनाय ।
महाव्रतानुग्रहकारणाय केचिद्ययुः प्राग्विदितार्थतत्त्वाः ॥ २६
अन्ये पुनः प्राक्तनुकर्मबन्धाः संसारनिःसारविकारदोषान् ।
अवेत्य निर्वेदपरायणास्ते दीक्षाभिलाषाः प्रययुर्गृहेभ्यः ॥ २७
मदप्रभिन्नार्द्रकटद्विपानामन्तर्निनादैः[5] रथनेमिघोषैः ।
तुरङ्गमानामपि हेषितैश्च पदातिवृन्दप्रतिबद्धवाक्यैः ॥ २८
नानाविधैस्तैः पटहैर्बृहद्भिः शङ्खस्वनैर्बन्दिमुखप्रलापैः ।
प्रावृट्पयोदध्वनिमादधाना नरेन्द्रसेना विबभौ प्रयान्ती ॥ २९
आरुह्य रत्नोज्ज्वलमौलयस्ते हस्त्यश्वयानानि पृथग्विधानि ।
वरा वराङ्गप्रमुखाः कुमारा वसुंधरेशस्य ययुः पुरस्तात् ॥ ३०
मत्तद्विपस्यायतपीनबाहुः स्कन्धाधिरूढः ससितातपत्रः ।
अष्टार्धसच्चामरवीज्यमानो व्रजन् बभौ शक्र इव द्वितीयः ॥ ३१

---

१ क चिचीर्षवः. २ म चिचीषवो. ३ [शमिष्णवः]. ४ [सिस्नासवः].
५ क मन्त्रर्निनादैः, [मन्द्रैर्निनादैः].

यथैव पूर्वं भरतेश्वरस्तु हिरण्यनाभाय नमस्क्रियायै ।
व्रजन् बभासे वरदत्तपार्श्वे श्रीधर्मसेनो वसुधाधिपश्च ॥ ३२
अदूरतः साधुगणान्विलोक्य मत्तद्विपेन्द्रादवतीर्य सद्यः ।
अपोह्य बालव्यजनातपत्रं मुदाश्रितो वन्दितुमायतश्रीः ॥ ३३
ज्योतिर्गणैरिन्दुरिवाचलेन्दुं[1] प्रदक्षिणीकृत्य वसुंधरेन्द्रः ।
सपुत्रदारः सहमित्रबन्धुर्ननाम पादावृषिसत्तमस्य ॥ ३४
ज्वलत्किरीटः प्रविलम्बिहारो विचित्ररत्नाङ्गदघृष्टबाहुः ।
रराज राजा मुनिपुङ्गवस्य पादौ पतन् भानुरिवोदयस्य ॥ ३५
आपृच्छ्य भूपः कुशलं यतीनामविघ्नतां ज्ञानतपोव्रतेषु ।
स्वनामगोत्रं चरणं निवेद्य स्तोत्रैश्च मन्त्रैर्विविधैः प्रणुत्य ॥ ३६
शेषांश्च सर्वान्मुनिपुङ्गवांस्तांस्त्रिभिर्विशुद्धः क्रमशोऽभिवन्द्य ।
एत्यादरात्केवलिपादमूलं सुखं निषद्येममपृच्छदर्थम् ॥ ३७
सर्वप्रजाभ्यो ह्यभयप्रदाता सर्वप्रजानां शरणं गतिश्च ।
सर्वप्रजानां हितदेशकस्त्वं धर्मामृतं मे दिश वीतमोह ॥ ३८
त्वं केवलज्ञानविशुद्धनेत्रः सर्वार्थवित्सर्वगुणोपपन्नः ।
सर्वेन्द्रवन्द्यः प्रविधूतपाप्मा आचक्ष्व जीवादिपदार्थभेदान् ॥ ३९
जीवाश्च केचिन्नरकेषु तीव्रं केनाप्नुवन्त्यप्रतिमं हि दुःखम् ।
तिर्यक्षु नानाविधवेदनां वा मनुष्यलोकस्य च कारणं किम् ॥ ४०
सुराधिवासस्य चतुर्विधस्य सौख्यं कथं वाष्टगुणादियुक्तम् ।
क्लेशक्षयोद्भूतमनन्तकालनिर्वाणसौख्यं कथयस्व केन ॥ ४१
कर्माणि वा कानि सुखप्रदानि दुःखप्रदानान्यथ कानि नाथ ।
सुखासुखोन्मिश्रफलानि कानि कर्मान्तक ब्रूहि च संशयो मे ॥ ४२

---

१ [अचलेन्द्रं].

एवं स पृष्टो भगवान्यतीन्द्रः श्रीधर्मसेनेन नराधिपेन ।
हितोपदेशं व्यपदेष्टुकामः प्रारब्धवान्वक्तुमनुग्रहाय ॥ ४३
येऽर्थास्त्वया प्रश्नविदा नरेन्द्र चतुर्गतीनां सुखदुःखमूलाः ।
पृष्टा यथावद्विनयोपचारैरेकाग्रबुध्या शृणु ते ब्रवीमि ॥ ४४
संभाव्य सम्यग्[1]मतिभाजनेन सद्धर्ममार्गश्रुतितोयधाराम् ।
श्रद्धान्विताः साधु पिबन्ति ये तु ते यान्ति जन्मार्णवदूरपारम् ॥४५
धर्मश्रुतेः पापमुपैति नाशं धर्मश्रुतेः पुण्यमुपैति वृद्धिम् ।
स्वर्गापवर्गप्रवरोरुसौख्यं धर्मश्रुतेरेव न चान्यतस्तु ॥ ४६
तस्माद्धि धर्मश्रवणानुरागा भवन्तु सर्वे शुभमाप्तुकामाः ।
जित्वा जरारातिरुजश्च मृत्युं भवन्ति वन्द्या भुवनत्रयस्य ॥ ४७
धर्मानुबन्धा दुरितानुबन्धा मिश्रानुबन्धाश्च यथाक्रमेण ।
त्रिधा विभिन्नाः श्रुतयश्च लोके तासां फलं त्रैधमुदाहरन्ति ॥ ४८
धर्मानुबन्धात्सुखमेव नित्यं पापानुबन्धादथ दुःखमेव ।
मिश्रानुबन्धात्सुखदुःखयोगः संक्षेपतस्ते त्रिविधं मयोक्तम् ॥ ४९
क्षीराणि वर्णेन समानि लोके रसेन नानागुणवन्ति तानि ।
[2]एकानि निघ्नन्ति निपीतमात्रमन्यान्यथारोग्यवपुःकराणि ॥ ५०
एवं हि धर्माश्च बहुप्रकारा नाम्ना समाना गुणतो विशिष्टाः ।
दुःखार्णवे केचन मज्जयन्ति सुखार्णवे केचन निक्षिपन्ति ॥ ५१
केचित्पुनस्ते नरकं नयन्ति नयन्ति तिर्यग्गतिमेव केचित् ।
मनुष्यलोकं गमयन्ति केचित्स्वर्गापवर्गौ च नयन्ति केचित् ॥ ५२
एकान्ततो निम्बरसश्च तिक्त इक्षोर्विकारो मधुरस्वभावः ।
यश्चाधिको येन विमिश्रितः स्यादाधिक्यतः सन्स्वरसं ददाति ५३

१ म सम्यग्गति°. २ म एतानि.

तत्रैव पापाधिकतोऽतिदुःखं पुण्याधिकात्सौख्यमुदाहरन्ति ।
सुखासुखे ते च समे समत्वान्निम्बेक्षुहेतुमतिदर्शनेन ॥ ५४
अज्ञानमूढा[1] दुरनुष्ठिता ये धर्माशयात्क्लेशगणान्भजन्ते[2] ।
विपन्नमार्गाः परितप्य पश्चात्ते तीव्रदुःखं नरकं व्रजन्ति ॥ ५५
नाज्ञानतोऽन्यद्भयमस्ति किंचिन्नाज्ञानतोऽन्यच्च तमोऽस्ति किंचित्
नाज्ञानतोऽन्यो रिपुरस्ति कश्चिन्नाज्ञानतोऽन्योऽस्ति हि दुःखहेतुः
निरङ्कुशो मत्त इव द्विपेन्द्रो यथा प्रविश्य प्रतिशत्रुसेनाम् ।
नेत्रा सहैवाशु विनाशमेति जीवस्तथा ज्ञानविहीनचेताः ॥ ५७
यथैव तीक्ष्णाङ्कुशवान् गजेन्द्रो मृद्नात्यरीणां पृतनाः प्रसह्य ।
तथैव मोहारिमहोग्रसेनां ज्ञानाङ्कुशो निर्जयति क्षणेन ॥ ५८
यथा दवाग्नेरपसर्तुकामो धावंस्तु तत्रैव पतत्यचक्षुः ।
अज्ञाननीलीवृतलोचनस्तु तथैव दुःखानलमभ्युपैति ॥ ५९
यथा दवाग्नेरपसृत्य पङ्गुः स्वदेशमाप्नोति शनैरुपायैः ।
सज्ञानचक्षुश्च तपांसि कृत्वा तथा बुधो निर्वृतिमभ्युपैति ॥ ६०
इत्येवमादीनि निदर्शनानि जगत्प्रवृत्तान्यवलोक्य बुध्या ।
अल्पश्रमादेव विशुद्धदृष्टिः स मोक्षसौख्यं लभते च विद्वान् ॥६१

कुमतिदुरुपदेशाद्धर्मसद्भावकृत्ये
जगति न हि विदन्ति क्षीणपुण्या नरा ये ।
अविदितपरमार्थास्ते पुनर्जन्मवासे
चिरतरमपि कालं दुःखभाजो भवन्ति ॥ ६२
अत इह मतिमन्तो धर्ममग्र्यं जनानां
त्रिभुवनसुखसारप्रापकं संभजध्वम् ।

---

१ क अज्ञानमूर्खा. २ क क्लेशगुणान्.

त्यजत[1] वितथशून्यं श्यामलं लोकधर्मं
शृणुत तदुपरिष्टात्कर्मणां च प्रभेदम् ॥ ६३

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
धर्मप्रश्नो नाम तृतीयः सर्गः ।

[चतुर्थः सर्गः][2]

संसारे प्राणिनः सर्वे सुखदुःखानुवर्तिनः ।
इष्यते कारणं कर्म तयोश्च सुखदुःखयोः ॥ १
तदेकं कर्म सामान्याद्भेदादष्टकमुच्यते ।
चतुर्धा भिद्यते बन्धान्निमित्ताच्च चतुर्विधम् ॥ २
ज्ञानावरणमाद्यं हि द्वितीयं दर्शनावृतम् ।
तृतीयं वेदनीयाख्यं चतुर्थो मोह उच्यते ॥ ३
आयुश्च पञ्चमं प्रोक्तं नाम षष्ठमुदाहृतम् ।
सप्तमं गोत्रमित्युक्तमन्तरायोऽष्टमः स्मृतः ॥ ४
मूलप्रकृतयस्त्वेता नामतः परिकीर्तिताः ।
आद्ये कर्मणि पञ्चैव द्वितीये नवधा स्मृतम् ॥ ५
तृतीये द्विप्रकारं तु चतुर्थेऽष्टौ च विंशतिः ।
चतुष्प्रकारमायुष्कं द्विचत्वारिंशन्नामनि ॥ ६

---

१ क त्यजथ, म त्यजतय (?). २ क श्रीमदभिनवचारुकीर्तिपण्डिताचार्य-मुनये नमः.

गोत्रे तु द्विविधं प्रोक्तमन्तरायस्तु पञ्चधा ।
उत्तरप्रकृतयः सर्वाः संख्याता हि समासतः ॥ ७
आद्ये द्वे मोहनीयं च दुःखदान्यन्तरायिकम् ।
वेद्यायुर्नामगोत्राणि सुखदुःखानि नित्यशः ॥ ८
मतिश्रुतावधिज्ञानं मनःपर्ययकेवलम् ।
अभिभूय स्ववीर्येण तमः समवतिष्ठते ॥ ९
चतुर्विधं मतिज्ञानं तदेवाष्टौ च विंशतिः ।
द्वात्रिंशत्पुनरन्येन स्मृतिमावृत्य तिष्ठति ॥ १०
अवग्रहेहावायानां धारणानां च संततिः ।
शुश्रूषामार्गणापेक्षाधारणानि[1] रुणद्धि सा ॥ ११
पर्यायाक्षरसंघातः पदं संघात एव च ।
प्रतिपत्तिश्च योगश्चानियोगद्वारमेव[2] च ॥ १२
प्राभृतं प्राभृतं चैव प्राभृतं वस्तुपूर्वकम् ।
श्रुतज्ञानावृतिस्तत्र समासेन च विंशतिः ॥ १३
ग्रन्थार्थौ च न जानाति ज्ञात्वा चोपदिशन्पुनः ।
अशक्तः प्रतिपादयितुं श्रुतज्ञानावृतेः फलम् ॥ १४
द्विभेदमवधिज्ञानं गुणतो जन्मतश्च यत् ।
तज्ज्ञानं त्रियते येन सावधिज्ञानसंवृतिः ॥ १५
तद्विनाशोऽवधिज्ञानं[3] प्राणिषूत्पद्यते पुनः ।
देवानां नारकाणां च भवप्रत्ययकं स्मृतम् ॥ १६

---

१ म °मार्गणोपेक्षा°. २ म योगश्च नियोग°, [योगश्चानुयोग°]. ३ [तद्विनाशेऽवधिज्ञानं].

तिरश्चां मानुषाणां च गुणप्रत्यय इष्यते ।
अवधिः परमो नृणां नेतरेषां प्रकल्प्यते ॥ १७
क्षयोपशम एवास्मिन्नवधिज्ञानकारणम् ।
संक्लेशपरिणामेन तद्व्ययं च विनश्यति ॥ १८
ऋजुमतिश्च विज्ञेया विपुला तदनन्तरा ।
तयोरावरणवत्स्यान्मनःपर्ययसंवृतिः ॥ १९
यद्योजनपृथक्त्वे च प्राणिनां चेतसि स्थितम् ।
न शक्तो येन विज्ञातुमृजुमत्यावृतेर्बलात् ॥ २०
अर्धतृतीयद्वीपस्य प्राणिनां हृदि वर्ति[1] तत् ।
नास्ति शक्तिः परिज्ञातुं विपुलावृतिवीर्यतः ॥ २१
उत्कृष्टादप्यसंख्येयान् द्वित्राञ्चाथ जघन्यतः ।
मनःपर्ययावरणाद्भवान् ज्ञातुं न शक्तवान् ॥ २२
सर्वद्रव्यस्वभावानां विज्ञात्रीं सर्वदा पुनः ।
संवृणोत्यात्मविज्ञप्तिं केवलज्ञानसंवृतिः ॥ २३
निद्रानिद्रा च निद्रा च प्रचलाप्रचला चला ।
स्त्यानगृद्धिश्च चक्षुश्च अनेत्रावधिदर्शनम् ॥ २४
केवलेन समाख्यातो दर्शनावृतिकर्मणः ।
सातासाते पुनर्द्वे च वेदनीयस्य ते स्मृते ॥ २५
असातवेदनीयेन नरके तीव्रवेदना ।
तिर्यङ्मानुषयोर्मिश्रा[2] सुखं सातात्सुरालये ॥ २६
द्विविधं मोहनीयं स्याद्दृष्टेश्च चरितस्य च ।
दर्शनं त्रिविधं प्रोक्तं सम्यङ्मिथ्यात्वमिश्रकम् ॥ २७

१ [हृद्विवर्ति]. २ क तिर्यग्मानुषयोर्मिश्रं.

नोकषायः कषायश्च चारित्रावरणं द्विधा ।
नोकषायो नवविधः कषायः षोडशात्मकः ॥ २८
हास्यरत्यरतिशोका जुगुप्सा भयमेव च ।
स्त्रीपुंनपुंसवेदाश्च नोकषाया नव स्मृताः ॥ २९
क्रोधो मानश्च माया च लोभोऽनन्तानुबन्धिनः ।
विघातयन्ति सम्यक्त्वं चारित्रं च विशेषतः ॥ ३०
क्रोधो मानश्च माया[1] लोभः प्रत्याख्याननामकाः ।
गृहीतव्रतशीलस्य दयासंयमघातिनः ॥ ३१
क्रोधो मानश्च माया च लोभः संज्वलनात्मकाः ।
ते यथाख्यातचारित्रं नाशयन्ति न संशयः ॥ ३२
चतुष्प्रकारमायुष्कं नारकं दैवमेव च ।
तिर्यग्योनिं च मानुष्यं स्थितिसत्कारणं[2] स्मृतम् ॥ ३३
आयुष्कं नारकं दुःखं तिर्यग्योनिं च मानुषम् ।
सुखदुःखविमिश्रं तं दैवमैकान्तिकं सुखम् ॥ ३४
द्विविधं नाम तत्प्राहुः शुभाशुभसमन्वितम् ।
द्विचत्वारिंशदन्येन नवतिस्त्र्युत्तराण्यथ ॥ ३५
उच्चनीचद्वयं गोत्रमुच्चनीचं च मानुषम् ।
तिर्यङ्नारकयोर्नीचमुच्चमेवामरं स्मृतम् ॥ ३६
दानलोभौ च भोगश्चोपभोगो वीर्यमेव च ।
पञ्च प्रकृतयस्तस्य अन्तरायस्य कर्मणः ॥ ३७
उत्तरप्रकृतयः प्रोक्ता अष्टानामपि कर्मणाम् ।
शतमष्टोत्तरं चैव चत्वारिंशत्प्रमाणतः ॥ ३८

१ क माया च लोभः. २ क स्थितेस्तत्कारणं.

आदितस्तु त्रयाणां च अन्तरायस्य कर्मणः ।
कोटीकोट्यस्तथा त्रिंशन्मोहनीयस्य सप्ततिः ॥ ३९
चत्वारिंशच्चरित्रस्य गोत्रनाम्नस्तु[1] विंशतिः ।
आयुष्कस्य त्रयस्त्रिंशत्सागराश्च परा स्थितिः ॥ ४०
द्विषण्मुहूर्ता वेद्यस्य तथाष्टौ नामगोत्रयोः ।
अन्तर्मुहूर्तिकी शेषे जघन्या स्थितिरिष्यते ॥ ४१
तेषामथ दुरन्तानामष्टानां घोरकर्मणाम् ।
मिथ्यात्वासंयमौ योगाः कषाया बन्धहेतवः ॥ ४२
ज्ञानविद्वेषिणो ये च प्रतिपक्षप्रशंसिनः ।
असादने[2] रता भूयो ज्ञानविघ्नकराश्च ये ॥ ४३
निह्नवं ये च कुर्वन्ति अवज्ञामप्यविस्मयाः ।
ज्ञानावृतिकरं कर्म बध्नन्ति नियमेन ते ॥ ४४
उत्सूत्रं ये च कुर्वन्ति अकालेऽधीयते च ये ।
विनयादिक्रियाहीनास्ते श्रुत्यावृतिबन्धकाः ॥ ४५
यथा नभसि संपूर्णं शशाङ्कं प्रावृडम्बुदः ।
संवृणोति क्षणेनैव जीवं ज्ञानावृतिस्तथा ॥ ४६
हस्तविक्षोभविक्षिप्तः सचलः[3] क्षणतः पुनः ।
प्रावृणोत्युदकं यद्वत्तद्वद् ज्ञानावृतं स्मृतम् ॥ ४७
द्रव्याण्यशक्तः पुरुषो द्रष्टुं तिमिरलोचनः ।
अशक्तस्त्वावृतज्ञानः सत्स्वभावान्परीक्षितुम् ॥ ४८
नव प्रकृतयः प्रोक्ता दृष्ट्यावरणकर्मणः ।
ज्ञानावृतिनिमित्तानि तान्येवोक्तानि तस्य च ॥ ४९

१ [गोत्रनाम्नोस्तु]. २ [आसादने]. ३ म स च लक्षणतः, [शैवलः].

वृक्षाग्रे वाथ रथ्यायां तथा जागरणेऽपि वा ।
निद्रानिद्राप्रभावेन न दृष्टयुद्घाटनं भवेत् ॥ ५०

स्यन्दते[1] मुखतो लालां[2] तनुं चालयते मुहुः ।
शिरो नमयतेऽत्यर्थं प्रचलाप्रचलाक्रमः ॥ ५१

स्वपित्युत्थापितो भूयः स्वपत्कर्म करोति च ।
अबद्धं लभते[3] किंचित्स्त्यानगृद्धिक्रमो मतः ॥ ५२

यान्तं संस्थापयत्याशु स्थितमासयते शनैः ।
आसीनं शाययत्येव निद्रायाः शक्तिरीदृशी ॥ ५३

किंचिदुन्मिषितो[4] जीवः स्वपित्येव मुहुर्मुहुः ।
ईषदीषद्विजानाति प्रचलालक्षणं हि तत् ॥ ५४

चक्षुर्दर्शनावरणं दृष्टिवीर्यं हिनस्ति तत् ।
शेषेन्द्रियाणां वीर्याणि हन्त्यचक्षुः स्ववीर्यतः ॥ ५५

अवधिः परमाद्यश्च स्वनामावरणावृतौ[5] ।
केवलप्रेक्षणावृत्त्यावृतं केवलदर्शनम् ॥ ५६

दुःखशोकवधाक्रन्दबन्धनाहाररोधनम् ।
असातवेदनीयस्य कर्मणः कारणं ध्रुवम् ॥ ५७

दानधर्मदयाक्षान्तिशौचव्रततपोन्विताः ।
शीलसंयमगुप्ताश्च सातं बध्नन्ति जन्तवः ॥ ५८

यद्दुःखं त्रिषु लोकेषु शारीरं वाथ मानसम् ।
समस्तं तदसातस्य कर्मणः पाक उच्यते ॥ ५९

---

१ क स्पन्दते. २ म लोला. ३ [लपते]. ४ म किंचिदुष्मितो, क किंचिदु (न्वि) ष्मितो. ५ क स्वनामावरणं वृतौ.

यत्सुखं त्रिषु लोकेषु शारीरं वाथ मानसम् ।
तत्सर्वं सातवेद्यस्य कर्मणः पाक उच्यते ॥ ६०

केवलिश्रुतधर्माणां[1] गुरूणामर्हतां सदा ।
चातुर्वर्णस्य संघस्य अवर्णावद्धवादिनः ॥ ६१

मार्गसंदूषणं कृत्वा अमार्गं देशयन्ति ये ।
दृष्टिमोहं प्रबध्नन्ति जीवाः संसारभागिनः[2] ॥ ६२

दृष्टिमोहवृता जीवाः सद्भावं न च जानते ।
अलब्धकर्मसद्भावा लभन्ते नैव निर्वृतिम् ॥ ६३

तीव्रक्रोधाहिसंदष्टा मानस्तम्भितचेतसः ।
मायाविष्टान्तकलुषा लोभरागान्धदृष्टयः ॥ ६४

चारित्रमोहं बध्नन्ति जीवा दुरितबुद्धयः ।
तेन कर्मविपाकेन क्लिश्यन्ते भववर्त्मसु ॥ ६५

आद्यः क्रोधोदयस्तीव्रः शिलाभेदसमो मतः ।
नोपैत्युपशमं तेन जीवो जन्मान्तरेष्वपि ॥ ६६

क्रोधोदयो द्वितीयस्तु मध्यक्षेत्रदरीसमः ।
उपैत्युपशमं कालाच्छ्रुतितोयार्द्रचेतसः ॥ ६७

क्रोधोत्थानस्तृतीयस्तु सिकतालेखसंनिभः ।
ज्ञानानिलेन संस्पृष्टो गतावेकीकरोत्यसौ[3] ॥ ६८

क्रोधोदयश्चतुर्थो यो जललेखासमो[4] मतः ।
स पुनः कारणाज्जातः क्षिप्रमेवोपशाम्यति ॥ ६९

---

१ म श्रुति°. २ क संसारभोगिनः. ३ क गतावेरिकरोत्यसौ, [गर्तामेकी°]. ४ म जले लेखा°.

आद्यो मानोदयस्तीव्रः शैलस्तम्भनिभो मतः ।
नोपैति मार्दवं यस्माज्जीवः कालान्तरादपि ॥ ७०
मानोदयो द्वितीयस्तु समोऽग्न्येत्यभिधीयते ।
उपैति मार्दवं तस्माज्ज्ञानाग्निपरितापितः ॥ ७१
मानोत्थानस्तृतीयस्तु आर्द्रकाष्ठसमो मतः ।
ज्ञानस्नेहसमाभ्यक्तस्ततो याति हि मार्दवम् ॥ ७२
मानोदयश्चतुर्थो यो वालवल्लीनिभो मतः ।
श्रुतिहस्तसमास्पृष्टो मृदुत्वं याति तत्क्षणात् ॥ ७३
आद्यो मायोदयस्तीव्रो वेणुमूलसमो मतः ।
वक्रशीलो भवेत्तेन नोपयात्यार्जवं सदा ॥ ७४
मायोदयो द्वितीयस्तु मेषशृङ्गसमो मतः ।
हृद्यन्यच्च समादाय तेनान्यत्प्रकरोति सः ॥ ७५
मायोत्थानस्तृतीयस्तु गोमूत्रिकसमो मतः ।
अर्धमर्धमृजुत्वं च अर्धं मायाकृतं भवेत् ॥ ७६
मायोदयश्चतुर्थो यश्चमरीरोमसंनिभः ।
प्रत्येति प्रकृतिस्तेन ज्ञानयन्त्रप्रपीडितः ॥ ७७
आद्यो लोभोदयस्तीव्रः क्रिमिरागसमो मतः ।
श्रुतानलप्रदग्धोऽपि लोभो न परिहीयते ॥ ७८
लोभोदयो द्वितीयस्तु नीलीवर्णसमो मतः ।
ज्ञानपानीयसंधौतस्तेनात्मा कल्मषायते ॥ ७९
लोभोत्थानस्तृतीयस्तु आर्द्रपङ्कसमो मतः ।
श्रुततोयविनिर्धौतस्तेन वैमल्यमृच्छति ॥ ८०

१ [°मूत्रित]. २ क कृमि°. ३ क तेनात्माऽकल्मषायते.

लोभोदयश्चतुर्थो यो हरिद्रारागसंनिभः ।
श्रुतिसूर्यांशुसंतप्तः क्षणाद्रागः प्रणश्यति ॥ ८१
चारित्रमोहनीयेन चारित्रं न च लभ्यते ।
अचारित्रः पुनर्घोरे नरके पच्यते चिरम् ॥ ८२
हर्षे रोषे त्ववज्ञायामेकाकी वान्यसंश्रितः ।
निष्कारणं च लपते हास्यकर्मोदयावृतः ॥ ८३
पापक्रियाभियुक्तेषु अफलेष्वहितेषु च ।
रतिकर्मोदयान्नित्यं रमते दुर्जनेषु सः ॥ ८४
ज्ञानं व्रतं तपः शीलं दैन्यान्यसुखकारणम् (?)[1] ।
लब्ध्वा न रमते तत्र अरतेः कर्मणः फलात् ॥ ८५
एकं भयं समासृत्य भयस्थानेषु सप्तसु ।
वेपिताङ्गः स्खलद्वाक्यो भयकर्मोदयाद्भवेत्[2] ॥ ८६
निर्विण्णो दीर्घनिश्वासः सर्वत्रगतमानसः ।
क्षीणबुद्धीन्द्रियबलः शोककर्मोदयाद्भवेत् ॥ ८७
इन्द्रियाणां च पञ्चानां योऽर्थाल्लब्ध्वा मनोरमान् ।
जुगुप्सते विपुण्यात्मा जुगुप्साकर्मपीडितः ॥ ८८
स्त्री चेर्वं पुंस्त्वसंदर्शात्पुमांसमभिलष्यति ।
लाक्षेवानलसंस्पर्शात्क्षणेनैव विलीयते ॥ ८९
पुंवेदः स्त्र्यभिसंदर्शात्स्त्रियं समभिलष्यति ।
यथाग्नेर्घृतकुम्भस्तु क्षणेनैव विलीयते ॥ ९०

---

१ क शीलध्यैन्योन्य°, [शीलाद्यन्योन्यसुख°], [शीलं घन्योऽन्यसुख-कारणम्]. २ म भयः. ३ म क्षण°. ४ [स्त्रीवेदः].

इष्टकापाकसंदर्शं विफलं मदनाश्रितम् (?) ।
दौरूप्यं गर्हितं याति स नपुंसकवेदतः ॥ ९१
नवभिर्नोकषायैस्तु स्वकर्मफलवर्तिभिः ।
आत्मा चरत्यनाचारं स तेन क्लेशमृच्छति ॥ ९२
व्रतशीलगुणैः शून्या बह्वारम्भपरिग्रहाः ।
बध्नन्ति नरकायुस्ते मिथ्यामोहितदृष्टयः ॥ ९३
मायातिवञ्चनप्रायाः कूटमानतुलारताः ।
बध्नन्त्यायुस्तिरश्चां ते रसभेदश्चकारिणः[1] ॥ ९४
शीलसंयमहीना ये मार्दवार्जवदानिनः ।
बध्नन्ति मानुषायुस्ते प्रकृत्याल्पकषायिणः ॥ ९५
सरागसंयमोकामसंयमासंयमव्रताः[2] ।
सद्दृष्टिज्ञानचारित्रा[3] बध्नन्त्यायुर्दिवौकसाम् ॥ ९६
मनोवाक्कायकुटिला विसंवादपरायणाः ।
बध्नन्त्यशुभनामानि दुर्वर्णादीनि देहिनः ॥ ९७
ऋजवो वाङ्मनःकायैरविसंवादतत्पराः ।
सौरूप्यादिविपाकानि बध्नन्ति शुभनामतः ॥ ९८
ये जात्यादिमदोन्मत्ताः परनिन्दापरायणाः ।
नीचगोत्रं निबध्नन्ति जीवाः परमदारुणम् ॥ ९९
ज्ञानधर्मार्हतां भक्ताः परनिन्दाविवर्जिताः ।
उच्चैर्गोत्रं निबध्नन्ति जीवाः परमदुर्लभम् ॥ १००

---

१ [रसभेदस्य कारिणः], [रसभेदप्रकारिणः]. २ [सरागसंयमाकाम°].
३ [°चारित्राद्].

दानविघ्नकरा ये ते निःस्वा जन्मसु जन्मसु ।
लाभविघ्नकराश्चापि निराशा धनलब्धिषु ॥ १०१
भोगविघ्नकरा जीवा भोगहीना भवन्ति ते ।
नालं भोक्तुं सति द्रव्ये उपभोगविघातिनः ॥ १०२
वीर्यविघ्नकरा नित्यं वीर्यहीना भवाध्वसु ।
धर्मविघ्नकरा ये ते सर्वविघ्नकरा मताः ॥ १०३
अष्टानां कर्मणां राजन्फलमेतदुदाहृतम् ।
एतैर्विमुच्यते[1] जीवः संसारे कर्मभिश्चिरम् ॥ १०४
बध्नात्यष्टविधं कर्म एकप्राणिविहिंसनात् ।
नानायोनिषु तेनात्मा दुःखान्याप्नोत्यनन्तशः ॥ १०५
एकेन मुच्यते जीवः कर्मणान्येन बध्यते ।
घटीयन्त्रस्य घटवद्वाहोऽस्मिन्मन्थरज्जुवत् ॥ १०६
बीजादिव परं बीजं वर्धयत्कर्म कर्मणा ।
जीवो भ्रमति संसारे क्लेशाननुभवंश्चिरम् ॥ १०७
अथाष्टौ तानि कर्माणि अनादीनि महीपते ।
विनिपातसहस्राणि प्राणिनां प्रापयन्ति च ॥ १०८
एतान्येव नरके घोरे तिर्यङ्मानुषयोः सदा ।
देव दुर्गतिदुःखाब्धौ मज्जयन्ति पुनःपुनः ॥ १०९
तान्येव प्रियसंयोगं विप्रयोगं प्रियाज्जनात् ।
जातिं मृत्युं जरां चैव कुर्वन्ति प्राणिनां सदा ॥ ११०
दुःखबीजानि तान्येव तान्येवोग्राश्च शत्रवः ।
शोककर्तृणि तान्येव तान्येव सुखहेतवः ॥ १११

१ [विमुह्यते].

तान्येव कर्मभाण्डानि समादायात्र जन्तवः ।
सुखदुःखानि विक्रेतुं प्रयान्ति गतिपत्तनम् ॥ ११२
इति बहुविधकर्मदोषजालं समुदयसंग्रहकारणं सबन्धम् ।
जननमरणरोगशोकमूलं यतिपतिना कथितं यथार्थतत्त्वम् ॥ ११३
पुनरपि यतिराडधःप्रयातां दुरितवशेन समश्नुतां फलानि ।
कथयितुमुरुधीश्चकार बुद्धिं तरतमदुःखयुतानि तानि राज्ञे ॥

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
पापफलप्रकथनो नाम
चतुर्थः सर्गः ।

[पञ्चमः सर्गः]

अनन्तसर्वमाकाशं[1] मध्ये तस्य प्रतिष्ठितः ।
सुप्रतिष्ठितसंस्थानो लोकोऽयं वर्णितो जिनैः ॥ १
वेत्रासनाकृतिरधो मध्यमो झल्लरीनिभः ।
ऊर्ध्वो मृदङ्गसंस्थानो लोकानामियमाकृतिः ॥ २
तिर्यग्लोकप्रमाणेन रज्जुरेका प्रमीयते ।
तया चतुर्दश प्रोक्तास्त्रिलोकायामरज्जवः ॥ ३
अचलेन्द्रादधः सप्त ऊर्ध्वं सप्त विभाजिताः ।
ऊर्ध्वाधोलोकयोराहुर्मध्यमष्टप्रदेशिकम् ॥ ४

---

१ [अनन्तं सर्वमाकाशं].

घनोदधिर्घनवातस्तनुवातश्च ते त्रयः ।
वायवो घनसंघाता लोकमावेष्ट्य धिष्ठिताः ॥ ५
मूले षोडश संख्याता मध्ये द्वादश संमिताः ।
दशोनयोजनास्त्वेते तयोर्बाहुल्यतः स्थिताः ॥ ६
घनोदधेस्तु सप्तैव घनवातस्य पञ्च वै ।
तनुवातस्य चत्वारि योजनान्याहुरादितः ॥ ७
पञ्च चत्वारि च त्रीणि योजनान्यथ मध्यमे ।
योजनार्धं च गव्यूतिं गव्यूत्यर्धं[1] च मस्तके ॥ ८
नारकी वाथ तैरश्ची मर्ती दैवी च निर्वृतिः ।
गतयः पञ्च निर्दिष्टा मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ९
तासां गतीनां पञ्चानां नारकी प्रथमा गतिः ।
हिंसाद्यभिरता जीवास्तां विशन्त्यशुभप्रदाम् ॥ १०
अधोगतिश्च सामान्यात्सैवं[2] सप्तप्रभेदतः ।
सप्तानां सप्त नामानि वर्णितान्यृषिसत्तमैः ॥ ११
घर्मा वंशा शिलाख्या च अञ्जनारिष्टका तथा ।
मघवी माघवी चेति यथाख्यातमुदाहृताः ॥ १२
अन्तयुक्तप्रभाशब्दा रत्नशर्करवालुकाः ।
पङ्को धूमस्तमश्चैव सप्तमश्च तमस्तमः ॥ १३
प्रस्तारैः कुतपञ्चाशादिन्द्रका(?) नरकालये ।
त्रयोदशैव घर्मायां द्वौ द्वावूनतरावधः ॥ १४
त्रिंशत्पञ्चकवर्गश्च पञ्चादश दशत्रयः ।
पञ्चोनं शतसहस्रं पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥ १५

१ क गव्यूतोर्ध्व. २ [सामान्या].

चतुःशतसहस्राणि अशीत्यभ्यधिकानि च ।
नरकाणां तु सप्तानां प्रभेदा वर्णिता जिनैः ॥ १६
तेषामत्यल्पनरका जम्बूद्वीपसमा मताः ।
सर्वेभ्योऽभ्यधिका ये तु ते त्वसंख्येययोजनाः ॥१७
नरकाः पुरसंस्थाना इन्द्रकाख्या नराधिप ।
श्रेणीबद्धास्तथाष्टासु दिक्ष्वथात्र प्रकीर्णकाः[1] ॥ १८
अधोऽधो नरका रुन्ध्रा[2] अधोऽधस्तीव्रवेदनाः ।
अधोऽधोऽभ्यधिकायुष्का अधोऽधस्तु घनं तमः ॥ १९
षष्ठसप्तमयोः शीतं शीतोष्णं पञ्चमे स्मृतम् ।
चतुर्थेऽत्युष्णमुद्दिष्टं तेषामेव महीगुणाः ॥ २०
नारकाणां च दुःखस्य तेषां शीतोष्णयोः पुनः ।
वर्णगन्धकृतीनां च उपमान्या न विद्यते ॥ २१
मेरुप्रमाणोऽयःपिण्ड उष्णे क्षिप्तो[3] यदृच्छया ।
विलीयते क्षणेनैव एवं तस्योष्णता मता ॥ २२
तावत्प्रमाणोऽयःपिण्डः शीते क्षिप्तो यदृच्छया ।
सहसैव हिमीभावमुपयाति न संशयः ॥ २३
जम्बूद्वीपं निमेषेण यो गन्तुं शक्तिमान्सुरः ।
षड्भिर्मासैर्व्रजेदन्तं महतो नरकस्य सः ॥ २४
या गतिर्दुःखभूयिष्ठा वर्णिता मुनिपुङ्गवैः ।
तां गतिं ये प्रपद्यन्ते तान् वक्ष्यामि विशेषतः ॥ २५
हिंसायां निरता नित्यं मृषावचनतत्पराः ।
परद्रव्यस्य हर्तारः परदाराभिलङ्घिनः ॥ २६

१ म प्रकीर्णताः, [प्रकीर्तिताः]. २ [रौद्राः]. ३ क उष्णाक्षिप्तो.

मिथ्यातिमिरसंछन्ना बह्वारम्भपरिग्रहाः ।
कृष्णलेश्यापरिणताः[1] श्वाभ्रीमधिवसन्ति ते ॥ २७
पञ्चानामिन्द्रियाणां हि पञ्चार्था रतिहेतवः ।
तेषां प्राप्तिनिमित्ताय कर्म चिन्वन्ति दारुणम् ॥ २८
अयःपिण्डो जले क्षिप्तो नादं[2] प्राप्य न तिष्ठति ।
कर्मभारसमाक्रान्ता जीवाश्च नरकालये ॥ २९
पिष्टपाकमुखेष्टिके(?) उष्ट्रिकास्वपरे पुनः ।
उत्पद्यन्ते ह्यधोवक्राः पापिष्ठा वेदनातुराः ॥ ३०
उत्पद्य हि दुराचारा अत्युष्णात्परिपीडिताः ।
पतन्त्युत्पत्य तत्रैव तप्तभ्राष्ट्रे तिला इव ॥ ३१
नारका भीमरूपास्ते दुर्बलाः पूतिगन्धिनः ।
अव्यक्तहुण्डसंस्थानाः पण्डकाश्च[3]ण्डभाषिणः ॥ ३२
उत्पन्नान्सहसा दृष्ट्वा विभङ्गज्ञानदृष्टयः ।
स्मरन्तः पूर्ववैराणि आधावन्ति समन्ततः ॥ ३३
त्रासयन्तोऽथ गर्जन्त आक्रोशन्तोऽस्त्रपाणयः ।
जन्मान्तरे कृतान् दोषान् ख्यापयन्तः श्रयन्ति तान् ॥३४
पूर्वापराधानात्मीयान् ज्ञात्वा तु दुरनुष्ठितान् ।
भयत्रस्तविषण्णाङ्गा आरभन्ते पलायितुम् ॥ ३५
दृष्ट्वा पलायमानांस्तान्रोद्धुकामास्त्वरान्विताः ।
भीषयन्तः प्रचण्डाश्च अनुधावन्ति धावतः ॥ ३६
संप्राप्य भयवित्रस्ताननाथान् शरणागतान् ।
मुसलैर्मुद्गरैः शूलैस्ताडयन्तोऽथ मर्मसु ॥ ३७

१ क कृष्णलेश्याः परिणताः. २ [नाधः]. ३ क षण्ढकाः.

विलपन्तो रुषन्तश्च[1] ताड्यमाना दुरात्मभिः ।
पतन्ति भिन्नमूर्धानो धरण्यां वेदनार्दिताः ॥ ३८
सिंहव्याघ्रमृगद्वीपा[2](?) गृध्रोलूकाश्च वायसाः ।
अयस्तुण्डैर्नखैर्दन्तैः पतितान्भक्षयन्ति तान् ॥ ३९
केचिल्लोहेषु निक्षिप्य तुदन्तो लोहयष्टिभिः ।
मांसमृष्टरसासक्तान्मांसवत्खादयन्ति तान् ॥ ४०
जिह्वान्त्राणि[3] च नेत्राणि केचिदुत्कृत्य[4] निर्दयाः ।
ग्रथित्वाथ शिरासूत्रैः शोषयन्ति शिलातले ॥ ४१
छित्त्वा ये परगात्राणि प्रादुर्व्यूषितका[5](?) मुहुः ।
तेषां वक्त्राण्यधःकृत्वा धूपयन्ति मुहुर्मुहुः ॥ ४२
हस्तपादमथ च्छित्वा कर्णनासापुटानि च ।
रुधिरार्द्राणि संगृह्य क्रूराः कुर्वन्ति दिग्बलिम् ॥ ४३
केचिच्छूलेषु निक्षिप्य भ्रामयन्त्यभिधावतः ।
निक्षिप्योलूखले कांश्चिच्चूर्णयन्त्यधमा भृशम् ॥ ४४
पिषन्ति गन्धवत्कांश्चिन्मृद्नन्ति निर्दयाः ।
क्रकचैर्दारयन्त्यन्यानक्षीण्युत्पाटयन्ति च ॥ ४५
पिबन्ति रुधिराण्यन्ये शस्त्रैर्विद्धा[6] शिरः पुनः ।
ग्रसन्ति मुखतः कांश्चित्पादतस्त्वपरे परान् ॥ ४६
छिन्दन्त्यसिभिरङ्गानि क्षुरिकाभिर्द्रुणन्ति च ।
टङ्कैः शिरःकपालानि वासिभिर्वदनानि च ॥ ४७

---

१ [रुदन्तश्च]. २ [द्विपाः]. ३ म जिह्वां प्राणे. ४ क उद्धृत्य. ५ क प्राधर्व्यूषितका (?). ६ क शस्त्रैर्विद्धं.

तृणैरावेष्ट्य सर्वाङ्गं ज्वालयन्त्यग्निना भृशम् ।
शङ्कूर्मूर्धस्वथोत्खन्य तुदन्त्यक्षीणि चोल्मुकैः ॥ ४८
मक्षिका मशकाश्चैव वृश्चिकाश्च पिपीलिकाः ।
खादयन्ति व्रणान्यन्ये स्रवद्रुधिरपूतिनः ॥ ४९
ये हत्वा प्राणिनः पूर्वं मांसभक्षणतत्पराः ।
तान्मुहुर्यातनाभिश्च दण्डयन्ति परस्परम् ॥ ५०
लोभाद्रागात्प्रमादाद्वा राजवाक् लभ्यते मदात् ।
प्रभुत्वाच्च कुसामर्थ्यादसदुक्त्वान्यहिंसकान् (?) ॥ ५१
इदानीं तव सामर्थ्यान्[1] पश्याम इति नारकाः ।
उत्कोटबन्धनं कृत्वा तोदयन्ति मुहुर्मुहुः ॥ ५२
दन्तानुत्पाट्य यन्त्रेण विच्छेद्य दशनच्छदान् ।
प्रवेशयन्ति वक्त्रेषु श्वसद्भीमभुजङ्गमान् ॥ ५३
जिह्वाश्चोत्पाटयन्त्यन्ये भवसंबन्धिवैरिणः ।
मूषातप्ततरं ताम्रं पाययन्त्यनृतप्रियान् ॥ ५४
शूलैस्तीक्ष्णतरैर्घोरैः क्रोधविभ्रान्तदृष्टयः ।
चरणेषु प्रविध्यन्ति रुदन्तान्करुणस्वनैः[2] ॥ ५५
रुदन्त्याक्रन्दतामन्ये अयस्सूचिभिरङ्गुलीः[3] ।
अपरानतिवैरेण खण्डशः कल्पयन्ति च ॥ ५६
ऊरू परशुभिश्छित्त्वा खादयन्ति परे परान् ।
बध्वान्ये पाणिपादं च क्षिपन्ति चितकाग्निषु[4] ॥ ५७

---

१ क सामर्थ्यात्, [सामर्थ्यं]. २ [रुदतः करुणस्वनैः]. ३ [रदन्ति]. ४ [चितिकाग्निषु].

एवं बहुविधैर्दण्डैः खण्डयन्त्यकृतात्मनः ।
वैभङ्गज्ञानविज्ञानांस्तेयानन्दपरायणान् ॥ ५८
आर्द्रचन्दनकल्कानि विषाक्तानि ससंभ्रमात् ।
लिम्पन्त्यन्तर्विदाहीनि परस्त्रीसुरतप्रियान् ॥ ५९
माल्याभरणवस्त्राणि तप्ततामृमयानि च ।
धारयन्ति परस्त्रीणां रतिसंगमकर्कशाः ॥ ६०
सोपचारैरुपासृत्य सुरताहवकोविदान् ।
हावभावविलासिन्यो ब्रुवन्त्यः स्वागतक्रियाः ॥ ६१
पूर्वजन्मकृतस्नेहात्संबन्धाच्च विशेषतः ।
भावयन्ति स्त्रियः पुंस आश्लिष्यन्ति प्रिया इव ॥ ६२
ताभिराश्लिष्यमाणाश्च दग्धसर्वाङ्गयष्टयः ।
घृतवत्प्रविलीयन्तेऽन्याङ्गनाङ्गप्रसङ्गिनः ॥ ६३
तस्मिन् देशे तथा विद्धि आवयो रतिविभ्रमः ।
इति ब्रुवन्तः पापिष्ठा बाधन्ते बाधितान्पुरा ॥ ६४
स्त्रीणां पुरुषरूपाणि स्त्रीरूपाणि नृणां पुनः ।
सुतप्तैरायसैस्ताम्रैर्विकुर्वन्ति परस्परम् ॥ ६५
कुक्कुटान्मेषमार्जारान्नकुलाँल्लावकाञ्शुनः ।
उपभोगे त्वकर्मण्याननर्थान्घोषयन्ति ये ॥ ६६
सर्वेषां भोगिनां यास्तु सर्वा द्रविणसंपदः ।
ता ममैव न चान्येभ्यो भवन्त्वित्यतिश्रद्धयैः ॥ ६७
आसामनर्थमूलान्ये कुर्वन्ति स्पृहया नराः ।
दुःखस्यान्तं न पश्यन्ति चिरं श्वाभ्रयां वसन्ति ते ॥ ६८

१ क °विज्ञाना(:)स्तेयानन्द°. २ [अतिश्रद्धया].

कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते केचिदत्युष्णभस्मसु ।
भृज्यन्ते तिलवत्केचिच्चूर्ण्यन्ते तुषवत्परे ॥ ६९
क्रकचैस्तुल्यनिर्भिन्ना[1] खण्ड्यन्ते मर्मसन्धिषु ।
निस्तुद्यन्ते पुनः शूलैस्ताड्यन्ते मुसलैः परे ॥ ७०
पीड्यन्ते तिलयन्त्रेषु इक्षुयन्त्रे तथापरे ।
चक्रयन्त्रैरथोद्भ्राम्य पातयन्ति रसातले ॥ ७१
शतधा खण्डखण्डानि भूत्वान्ते[2] क्लेशभागिनः ।
पतन्ति चण्डवेगेन पातालेष्वथ मूर्च्छिताः ॥ ७२
पुनः पर्याप्तसर्वाङ्गाः सहसैव समुत्थिताः ।
विद्रवन्तो भयत्रस्ताः समारोहन्ति पर्वतान् ॥ ७३
ते शैलाच्छीर्यमाणाङ्गाश्चूर्णयन्त्यभिधावतः (?) ।
खादन्ति व्याघ्रसिंहर्क्षा गुहाभ्यस्तु विनिर्गताः ॥ ७४
ततोऽवतीर्य पश्यन्तो भुञ्जानान्पिबतो जनान् ।
याचमानाः शनैर्यान्ति क्षुत्तृष्णापरिमर्दिताः ॥ ७५
तेऽभ्युत्थाय सुसंभ्रान्ताः पाद्यार्घ्याद्यैर्यथाविधि ।
उपचारान्बहून्कृत्वा प्रयच्छन्त्युष्णपीठिकाः ॥ ७६
सुतप्तकृष्णलोहस्य गुलिकाः खण्डशः कृताः ।
यन्त्रैर्विदार्य वक्त्रेषु क्षिपन्ति त्रस्तचेतसाम् ॥ ७७
शुष्कताल्वोष्ठजिह्वास्यान्निष्कृपास्तृषयार्दितान् ।
प्रतप्ताम्रमापात्य क्रन्दतः पाययन्ति तान् ॥ ७८
केचिदुष्णप्रतीकारं कुर्वन्त इव निर्दयाः ।
गलग्रहेण संगृह्य मज्जयन्त्युष्णवारिषु ॥ ७९

१ म कृतजैस्तुल्य°, [°शूल°]. २ म भूत्वा ते.

अनेकोपद्रवाकीर्णां विषक्षारजलाविलाम् ।
नदीं वैतरणीं घोरां तारयन्ति समन्ततः ॥ ८०
तां नदीं क्लेशतस्तीर्त्वा वनं पश्यन्ति पुष्पितम् ।
तद्वनान्तेषु यातेषु वायुरेकः प्रकुप्यति ॥ ८१
प्रपतन्त्यसिपत्राणि अयःपिण्डफलानि च ।
विषमिश्राणि पुष्पाणि सद्यः प्राणहराणि च ॥ ८२
विशीर्णछिन्नभिन्नाङ्गा अधिरुह्योग्रवेदनाः ।
पतन्ति कण्टकाकीर्णे विषदग्धे[1] महीतले ॥ ८३ ॥
विषैर्निर्दह्यमानाङ्गा रसन्तः[2] करुणस्वनैः ।
भिन्दन्ति क्रिमयोऽङ्गानि दशन्ति च पिपीलिकाः ॥ ८४
कृष्णाः श्वानो विलुम्पन्ति कर्षन्त्यसितवायसाः[3] ।
दशन्ति कृष्णसर्पाश्च चूषयन्त्यथ मक्षिकाः ॥ ८५
पुनरन्तर्मुहूर्तेन सर्वपर्याप्तविग्रहाः ।
असातवेदनीयस्य पाकतः संभवन्ति ते ॥ ८६
नेत्रैः पश्यन्त्यनिष्टानि श्रोत्रैः शृण्वन्ति दुःस्वरान् ।
घ्राणैर्जिघ्रन्ति दुर्गन्धान् स्पृशन्त्यङ्गैश्च कर्कशान् ॥ ८७
आस्वादन्ते[4] निरास्वादान् जिह्वाभिर्गतसत्क्रियाः ।
इन्द्रियार्थैरकल्याणैर्व्याकुलीकृतचेतसः ॥ ८८
नोदासीना न मित्राणि न प्रिया न च बान्धवाः ।
सर्वत्र नरकावासे सर्व एवापकारिणः ॥ ८९

१ [विषदिग्धे]. २ म रुशन्तः करुणास्वरैः. ३ म हर्षन्त्यसितवायसाः.
४ क आस्वादन्ति, [आस्वदन्ते].

विनिपातसहस्राणि प्रापयन्तः कृतागसः ।
बाधन्ते क्रोधसंरब्धा आचतुर्थ्यादितोऽसुराः ॥ ९०
आसुरं भावमाश्रित्य रागविष्टब्धचेतसः ।
एकत्र स्थापयित्वा तान्योधयन्ति परस्परम् ॥ ९१
कांश्चिच्छाल्मलिमारोप्य जन्मसंबन्धवैरिणः ।
अधश्चोर्ध्वं च कर्षन्तः पातयन्ति भृशं मुहुः ॥ ९२
उदारा रुरुवक्षांसि तेषां भिन्दन्ति कण्टकाः ।
अधस्ताज्ज्वालयन्त्यग्निं ग्रसन्त्युपरि राक्षसाः ॥ ९३
कङ्कैः काकैश्च तुद्यन्ते मशकाश्च दशन्ति तान् ।
भीषयन्ते पिशाचाश्च भर्त्सयन्त्यसुराः पुनः ॥ ९४
एवं पापविपाकेन दुःखान्येषां समश्नुताम् ।
नारकाणां पुनस्तत्र शीतोष्णमतिदुस्सहम् ॥ ९५
नरकादुष्णबाहुल्यान्नारकश्चेद्विनिर्गतः ।
प्रावेक्ष्य(?) ग्रीष्ममध्यान्हे वन्हिं सुखमलप्स्यत[1]ः ॥ ९६
तथैव शीतबाहुल्यात्प्रावेक्ष्य चेद्विनिर्गतः ।
तुषारराशिहेमन्ते वरं सुखमलप्स्यत[1]ः ॥ ९७
लभेत जलधीन्सर्वान्पिबेदत्युष्णतृष्णया ।
उदरं यदि गृण्हीयान्नोपशाम्यति तत्तृषा ॥ ९८
यानि लोकेषु सर्वेषु फलपर्णतृणानि च ।
भक्ष्यन्ते चेत्तथा चापि क्षुदग्निर्नोपशाम्यति ॥ ९९
एवं बहुप्रकारैस्तु दुःखान्याप्नुवतां भृशम् ।
सुखनामापि भूपाल नारकाणां न विद्यते ॥ १००

१ [अलप्स्यत].

पालयित्वा महीं कृत्स्नामुपभुज्यात्मनः श्रियम् ।
चक्रवर्ती प्रयातीति नरकं कोऽत्र विस्मयः ॥ १०१
मनसैव विचिन्त्यात्र विविधा भोगसंपदः ।
मनश्चक्रधरं[1] श्वाभ्रीं प्रयातीत्येष विस्मयः ॥ १०२
क्षुद्रमत्स्यः किलैकस्तु स्वयंभुरमणोदधौ[2] ।
महामत्स्यस्य कर्णस्थः स्मृतिदोषादधोगतः ॥ १०३
सप्तम्यां तु त्रयस्त्रिंशत् षष्ठ्यां द्वाविंशतिः स्मृताः ।
पञ्चम्यां दशसप्तैव चतुर्थ्यां दश वर्णिताः ॥ १०४
तृतीयायां तु सप्तैव द्वितीयायां त्रयः स्मृताः ।
प्रथमायां भवत्येकः सागरः संख्ययायुषः ॥ १०५
दशवर्षसहस्राणि प्रथमायां जघन्यतः ।
उपर्युपरि योत्कृष्टा सैवाधोऽधो जघन्यकः ॥ १०६
चिरकालं तु दुःखानि नारका नरकालये ।
अपवर्त्यायुषो यस्मात्प्राप्नुवन्ति ततो भृशम् ॥ १०७
सुखं निमेषतन्मात्रं नास्ति तत्र कदाचन ।
दुःखमेवानुसंबन्धं[3] नारकाणां दिवानिशम् ॥ १०८

इत्येवं नरकगतिः समासतस्ते
संप्रोक्ता बहुविधयातनामिदानीम् ।
तैरश्चीं गतिमत उत्तरं प्रवक्ष्ये
निर्व्यग्रः शृणु नरदेव सत्त्वबुद्ध्या ॥ १०९

श्वाभ्रीणां तिमिरगुहासु तासु दुःखं
पापिष्ठाश्चिरमनुभूय कर्मशेषात् ।

---

१ म चक्रधरः. २ [स्वयंभूरमणोदधौ]. ३ [°संबद्धं].

तैरश्वीं पुनरथ संभजन्त्यभद्रा-
स्तत्रापि प्रतिभवदुःखमेव शश्वत् ॥ ११०

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
नरकगतिभागो नाम पञ्चमः सर्गः ।

[षष्ठः सर्गः]

अथैवमुर्वीपतये मुनीन्द्रः प्रारब्धवान्वक्तुमतस्तिरश्चाम् ।
गतेर्विभागं बहुदुःखघोरमीषल्लघुत्वं नरकादसह्यात् ॥ १
तिर्यक्त्वसामान्यत एकमेव स्थानप्रभेदाच्च[1] चतुर्दशाहुः ।
कायात्षडेवेन्द्रियतश्च पञ्च गुणाश्च[2] पञ्चैव वदन्ति तज्ज्ञाः ॥ २
एकेन्द्रियाः स्थूलतमाश्च सूक्ष्माः पर्याप्तकास्तद्विपरीतकाश्च ।
द्वित्रीन्द्रियास्ते चतुरिन्द्रियाश्च पर्याप्त्यपर्याप्तियुतास्त्रयस्तु ॥ ३
पर्याप्त्यपर्याप्तकसंज्ञ्यसंज्ञाः पञ्चेन्द्रियास्ते च चतुष्प्रकाराः ।
भूम्यम्बुवाय्वग्निवनत्रसानां कायाश्च षड्जीवनिकायमाहुः ॥ ४
भूम्यम्बुवाय्वग्निमयास्तु जीवा भवन्ति लोके गणनाव्यतीताः ।
वनस्पतीनामसवस्त्वनन्ताः स्पर्शात्सुखं दुःखमथो विदन्ति ॥ ५
शङ्खाक्षकुक्षिक्रिमिशुक्तिकाद्यास्ते द्वीन्द्रियाः स्पर्शरसौ विदन्ति ।
पिपीलिकामत्कुणवृश्चिकाद्यास्ते त्रीन्द्रियाः स्पर्शरसौ च गन्धम् ॥६
पतङ्गषट्पाद्मधुमक्षिकाद्याः स्पर्शं रसं गन्धमथापि रूपम् ।
मृगोरगाण्डोद्भवतोयजाद्याः शब्देन पञ्चेन्द्रियजातयस्ते ॥ ७

१ क °प्रभेदाश्च. २ [गुणाच्च].

एकेन्द्रियत्वं प्रतिपद्य जीवा नानाविधाश्छेदनभेदनानि ।
विमर्दनोत्तापनहिंसनानि सवेदनादीन्यवशाः सहन्ते ॥ ८
प्रपिष्यमाणाश्च विदार्यमाणा विशीर्यमाणा विविधप्रकारैः ।
प्रपीड्यमाना बहुशोऽपि जीवा द्वित्रीन्द्रियाद्या वधमाप्नुवन्ति ॥ ९
ज्वलन्महादीपशिखां प्रविश्य प्रदह्यते नेत्रवशात्पतङ्गः ।
घ्राणेन्द्रियेष्टान्विषपुष्पगन्धानाघ्राय नाशं भ्रमराः प्रयान्ति ॥१०
क्रव्यादगीतध्वनिनावकृष्टा मृगा वराकाः खलु वागुरासु ।
निपात्य घोरैरुपहन्यमानास्त्यजन्ति सद्यः प्रियजीवितानि ॥११
प्रसन्नतोयेषु सरस्सु मत्स्याः संक्रीडमाना रसनप्रसक्ताः ।
ग्रस्तामिषास्त्रस्तशरीरचित्तास्सवेदनास्ते सहसा म्रियन्ते ॥ १२
वन्याः करीन्द्राः सुखमाप्तुकामाः करेणुगात्राभिरतिप्रसक्ताः ।
तोदप्रकारैरभिहन्यमाना विचेतसोऽरण्यसुखं स्मरन्ति ॥ १३
एते त्वथैकेन्द्रियसंगदोषादलब्धकामाः प्रलयं प्रयान्ति ।
सर्वेन्द्रियाणां वशमभ्युपेता नश्यन्ति जीवा इति कः प्रवादः॥१४
खरोष्ट्रहस्त्यश्वतराश्च गोणा भूमीश्वराणामिह वाहनार्थम् ।
अत्यर्थभारातिनिरोधखिन्नाः क्षुत्तृट्श्रमाः क्लेशवधं[1] भजन्ते ॥ १५
विचित्रसंकल्पिततीव्रबन्धैर्दण्डाङ्कुशैस्तोत्त्रकशाप्रहारैः ।
प्रपीडनोत्ताडनवाहबन्धैर्दुःखान्यनेकानि समश्नुवन्ति ॥ १६
केचित्पुनः पाशनिबद्धकण्ठाः केचिन्महापञ्जररुद्धकायाः ।
पदेषु केचिद्दृढरज्जुबद्धा विनष्टसौख्या गमयन्ति कालम् ॥ १७
कपिञ्जला लावकवर्तकाश्च मयूरपारावतटिट्टिभाद्याः ।
नभश्चराः पादविलग्नपाशा नश्यन्ति पापैरभिहन्यमानाः ॥ १८

१ [°श्रमक्लेशवधान्].

बका बलाका जलकुक्कुटाश्च क्रौञ्चाः सकोरण्डवचक्रवाकाः[1] ।
जलाश्रयोपाश्रयजीविनस्ते भृशं[2] सहस्तेषु वधं प्रयान्ति ॥ १९
क्षुधाभिभूतास्तु तिमिङ्गिलाद्या ग्रसन्त्यथान्योन्यमनल्पकायाः ।
खगा खगांश्चापि मृगा मृगांश्च परस्परं घ्नन्त्यबलान्बलस्थाः[3] ॥२०
अहो वराका हरिणाः शशाश्च वृका वराहा रुरवः कुरङ्गाः ।
न्यहृद्रीलिकाद्याः[4](?) परिपुष्टकाया त्वङ्मांसहेतोर्विलयं प्रयान्ति२१
केचित्पुनः शुष्कगलोष्ठजिह्वास्तृषाग्निनान्तः प्रविदह्यमानाः ।
संशुष्कपर्णोपनिपातभीता विश्वस्तचित्ता न तृणं चरन्ति ॥ २२
निपातदेशेष्वभिलीनकायैर्व्याधैः समुत्त्रासितचेतसोऽन्ये ।
छायां विदेहस्य[5] विशङ्कमानाः सुखेन पातुं न पयो लभन्ते ॥२३
क्रव्यादवर्गैरनुवाच्यमानाः[6] केचित्प्रधावन्त्यनवेक्ष्य शावान् ।
वित्रस्तनेत्राः प्रतिनष्टचेष्टाः केचिद्भयार्ताश्च मुखे पतन्ति ॥ २४
बृहत्पृषत्कैः प्रविदारिताङ्गाः प्रविश्य केचिद्गिरिगह्वराणि ।
सवेदनानिष्प्रतिकाररूपाः प्राणान्विषण्णा जहति क्षणेन ॥ २५
व्याघ्रान्विनिघ्नन्त्यथ चर्महेतोर्वालापदेशाच्चमरीं वराकाम् ।
मांसापदेशाच्छशसूकरादीन् विषाणमुक्तासु करीन्द्रवर्गान् ॥ २६
अकारणक्रोधकषायिताक्षाः स्वभावनिर्वृत्तनिबद्धवैराः ।
नखैर्विषाणैर्दशनैः सुतीक्ष्णैरन्योन्यमर्मस्वभिताडयन्ति ॥ २७
केचित्पुनर्मानकषायदोषात्संभूय नागाश्वखरोष्ट्रयोनौ ।
आरुह्यमाणाः परिपीड्यमाना भारातिखिन्ना विवशीक्रियन्ते ॥२८
मानात्पुनः केचन सूकरत्वं मानातिमानात्कुकुलं प्रयान्ति ।
परावमानप्रसवं च दुःखं तिर्यग्गतौ नैकविधं श्रयन्ते ॥ २९

---

१ म °कोरण्डक°, [कारण्डव°]. २ [नृशंस°]. ३ [बलिष्ठाः]. ४ क न्यहेलिकाद्याः. ५ [स्वदेहस्य]. ६ [अनुक्रज्यमानाः].

मायादिभिर्ये परिवञ्च्य जीवान् संपोषयामासुरथ स्वदेहान् ।
तेषां शरीराणि गतौ तिरश्चां मांसाशिनां तान्यशनीभवन्ति ॥३०
केचित्पुनर्लोभकषायदोषाद्द्रव्यं परेषां मुमुषुर्विमूढाः ।
तिर्यक्कुयोनौ प्रतिबद्धकायान् तान्व्याधवर्गाः[1] परिभक्षयन्ति ॥ ३१
तिर्यग्गतेर्दुःखमनन्तपारं वक्तुं न शक्यं चिरकालतोऽपि ।
तामेव घोरामिह ये प्रयान्ति संक्षेपतस्तान्प्रथमं प्रवक्ष्ये ॥ ३२
ये वञ्चकाः कूटतुलातिमानैः परोपतापं जनयन्ति नित्यम् ।
वाचान्यदुक्त्वा क्रिययान्यदेव कुर्वन्ति कृत्यं विफलं परेषाम् ३३
हस्तार्पितं ये परकीयमर्थमादाय कस्माद्यपलोपयन्ति ।
ऐश्वर्यदर्पाद्बलवीर्यतो वा परानवज्ञाय मृषा ब्रुवन्ति ॥ ३४
तक्रं दधि क्षीरघृतं गुडं वा रसैस्तथान्यैः प्रतिमिश्रयन्ति ।
ते हीनसत्त्वाः कृपणा विपुण्याः पतन्ति तिर्यग्वडवामुखेषु ॥ ३५
प्रवालमुक्तामणिकाञ्चनानि विकृत्य तद्रूपसमानि ये तु ।
नृन्वञ्चकास्ते[2] रतिमाप्नुवन्ति तिर्यग्गतिं वै विवशा वसन्ति ॥ ३६
कूटाक्षवृत्ते कुटिलस्वभावाः स्तेनप्रयोगैश्च दुरीहिता ये ।
परोपघातं जनयन्ति ये तु ते यान्ति जीवास्तु गतिं तिरश्चाम् ॥३७
सुसंयतान्वाग्भिरधिक्षिपन्तो ह्यसंयतेभ्यो ददते सुखाय (?) ।
तिर्यङ्मुखास्ते च मनुष्यकल्पा द्वीपान्तरेषु प्रभवन्त्यभद्राः ॥३८
केचित्पुनर्वानरतुल्यवक्त्राः केचिद्गजेन्द्रप्रतिमाननाश्च ।
अश्वानना मेण्ढ्रमुखाश्च केचिदजोष्ट्रवक्त्रा महिषीमुखाश्च ॥ ३९
द्वाविंशतिर्वर्षसहस्रमायुर्वदन्ति तज्ज्ञा वसुधाश्रितानाम् ।
जलाश्रितां[3](?) सप्तसहस्रमात्रं दिनत्रयं विद्धचनलाश्रितानाम् ॥४०

---

१ म व्याधि°. २ [नृवञ्चकास्ते]. ३ क जलास्तितां.

वाय्वाश्रितानां त्रिसहस्रमुक्तं वनस्पतीनां दश वर्णयन्ति ।
द्विकेन्द्रियाणां द्विषडेव वर्षा[1] आयुःप्रमाणं परमं प्रकर्षात् ॥ ४१
त्रिकेन्द्रियाणां दिनमेकहीनं पञ्चाशद्युक्तं परिमाणमायुः ।
षण्मासमायुश्चतुरिन्द्रियाणां पञ्चेन्द्रियाणां पृथगेव वक्ष्ये ॥ ४२
चतुष्पदानामथ कर्मभूमौ जलाश्रितानां च हि पूर्वकोटिः ।
त्रिशून्यसप्ताहुरथाण्डजानां[2] त्र्यष्टौ सहस्राणि सरीसृपाणाम्[3] ॥ ४३
अन्तर्मुहूर्तं कथितं तिरश्चां जघन्यमायुर्मुनिपुङ्गवेन ।
कुलप्रसंख्यामथ योनिसंख्यां समासतस्ते कथयामि राजन् ॥४४
आदित्यसंख्या खलु शून्ययुक्तात्कोट्यः कुलानामथ वेदितव्याः(?)
द्वाविंशतिस्तत्र महीमयानां प्रभञ्जनाप्त्वात्मकयोश्च सप्त ॥ ४५
तिस्रस्तु वेद्यास्त्वनलाश्रितानामष्टोत्तरा विंशतिरङ्घ्रिपानाम् ।
द्विकेन्द्रियाणां विहिताश्च सप्त अष्टौ पुनस्त्रीन्द्रियदेहिनां च ॥ ४६
नव प्रदिष्टाश्चतुरिन्द्रियाणां सरीसृपाणां च नव प्रणीताः ।
अर्धत्रयोक्ता दश तोयजानां विहङ्गमानां खलु षड्त्रिकघ्नाः[4] ॥४७
चतुष्पदानां दश संप्रदिष्टाः पञ्चोत्तरा विंशतिराद्यगत्याम् ।
षड्विंशतिर्देवनिकायजानां चतुर्दशोक्तास्त्वथ[5] मानुषाणाम् ॥४८
चतुर्गतीनां च निगोदजीवा अवस्थिता ये च निगोदतायाम् ।
भूवायुतोयाग्निमतां च सप्त योनीसहस्राणि शताहतानि ॥ ४९
वनस्पतीनां दश वर्णयन्ति द्वे द्वे पुनस्ते विकलेन्द्रियाणाम् ।
चत्वारि तिर्यक्सुरनारकाणां मनुष्यवर्गस्य चतुर्दशाहुः ॥ ५०
अनेकयोनिष्वतिदीर्घकालं परिभ्रमन्तः परिहीनसौख्याः ।
अहो वराका दुरितानुबन्धा दुःखस्य नान्तं बत यान्ति जीवाः ५१

१ क वर्षान्. २ म °सप्ताद्विकमण्ड°. ३ म भुजङ्गमे षड्गुणिताश्च सप्त ४ [षड्द्विकघ्नाः]. ५ म पद्भि (षड्भि ?) द्विकघ्नास्त्वथ.

क्रमेण यान्तः कुलकोटिजालान् जातिं जरा मृत्युमनेकरोगान् ।
समश्नुवानाः कुटिलस्वभावास्तिर्यग्गतौ नैव सुखं लभन्ते ॥५२
शारीरदुःखं त्वपरैरवाप्य तन्मानसं कैश्चिदवाप्यते च ।
तथोभयं प्राप्यत एव कैश्चिद्दुःखं परं जन्तुभिरप्रमेयम् ॥ ५३

अथैवं तिरश्चां महादुःखकालं
कुलं जीवितं चेन्द्रियाणां [⏑ – –] ।
गतिं कायभेदं फलं कारणं च
बभाषे यतीशो यथावन्नृपाय ॥ ५४
पुनर्मानुषीं तां गतिं संप्रवक्तुं
मुनीन्द्रे प्रवृत्ते सुनिर्वेदमुक्ता ।
सभा चापि कर्णे निधायात्मचित्तं
तुतोषातिमात्रं नरेन्द्रेण सार्धम् ॥ ५५

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
तिर्यग्गतिविभागो नाम
षष्ठः सर्गः ।

[सप्तमः सर्गः]

गतिं तृतीयां शृणु संप्रवक्ष्ये समासतो मानुषजातिरेका ।
तामेव भूयो द्विविधां वदन्ति भोगप्रतिष्ठामथ कर्मसंस्थाम् ॥ १
पञ्चोत्तरास्ते कुरवः प्रदिष्टा यथैव राजन्नथ देवसंज्ञाः ।
हैरण्यका हैमवताश्च रम्या हयाह्वयर्षा अपि पञ्च पञ्च ॥ २

१ म जरामृत्यु°. २ [हि संख्याः].

क्षेत्रस्वभावप्रतिबद्धसौख्या संख्यानतस्त्रिंशदधो[1] भवन्ति ।
तासां पुनर्भोगभुवां विशेषान्पृथक्पृथग्लक्षणतोऽभिधास्ये ॥ ३
जाज्वल्यमानोत्तमरत्नचित्रा सुवर्णधातुप्रविकीर्णशोभाः[2] ।
वैडूर्यमुक्तावरवज्रसारैरलङ्कृता स्त्रीरिव भूर्विभाति ॥ ४
महेन्द्रनीलै[3] रुचकप्रभैश्च कर्कतनैर्भास्वरसूर्यकान्तैः[4] ।
रुजाहरैः शीतलचन्द्रकान्तैस्तता मही भात्यतिसर्वकालम् ॥ ५
क्वचिच्च बन्धूकमनश्शिलाभा क्वचिच्च जात्यञ्जनहेमवर्णा ।
क्वचिच्च सारङ्गविहङ्गतुल्या क्वचिच्छशाङ्काङ्कुरसप्रभा च ॥ ६
तृणानि यस्यां चतुरङ्गुलानि मृदूनि सौगन्धिकगन्धवन्ति ।
दशार्धवर्णान्यतिकोमलानि नित्यप्रवृत्तानि मनोहराणि ॥ ७
मन्दप्रवाताभिहतानि तानि परस्परस्पर्शजनिस्वनानि ।
मृष्टानुनादश्रवणक्षमानि गन्धर्वगीतान्यतिशेरते च ॥ ८
तुरुष्ककालागरुचन्दनानां लवङ्गकङ्कोलककुङ्कुमानाम् ।
एलातमालोत्पलचम्पकानां गन्धान्स्वगन्धैश्च विशेषयन्ति ॥ ९
शीतोष्णवातोरुतुषारवर्षा मेघर्तुकालाशनिविद्युदुल्काः ।
क्षुद्रोगशोकव्यसनेतयश्च न सन्ति यस्यामुपभोगभूमौ ॥ १०
नृपाश्च भृत्याः कृपणा दरिद्राः स्तेनान्यदाराभिहर्ता[4] नृशंसाः ।
पङ्ग्वन्धमूकाः कुणिकुब्जखञ्जाः षट्कर्मधर्माभिरता न यस्याम् ११
तृणं जलं गुल्मलताङ्घ्रिपाश्च विहङ्गमा वा विषकीटसर्पाः ।
परस्पराबाधकरा मृगा वा न सन्ति दुःखोद्भवहेतवस्ते ॥ १२
पर्यन्तवैडूर्यशिलाद्युतीनि प्रफुल्लपद्मोत्पलसंकटानि ।
प्रकृष्टकारण्डवहं वसन्ति[5] प्रसन्नतोयानि सरांसि भान्ति ॥ १३

---

१ क संख्यावत°. २ [°शोभा]. ३ म माहेन्द्र°. ४ [स्तेयान्यदाराभिरता]. ५ [°कारण्डवहंसवान्ति].

मद्याङ्गतूर्याङ्गविभूषणाङ्गा ज्योतिर्गृहा भाजनभोजनाङ्गाः ।
प्रदीपवस्त्राङ्गवरप्रसंगा दशप्रकारास्तरवस्तु तत्र ॥ १४
अरिष्टमैरेयसुरामधूनि कादम्बरीमद्यवरप्रसन्नाः[1] ।
मदावहानासवनातियोग्यान्मद्याङ्गवृक्षाः सततं फलन्ति ॥ १५
मृदङ्गवीणावरशङ्खतालान्मुकुन्दसंगां व्रजदुन्दुभिश्च[2] ।
सुखानुनादानुरुमर्दलांश्च तूर्याङ्गवृक्षा विसृजन्ति तत्र ॥ १६
किरीटहाराङ्गदकुण्डलानि ग्रीवोरुबाहूदरबन्धनानि ।
स्त्रीपुंसयोग्यानि विभूषणानि विभूषणाङ्गा विसृजन्ति शश्वत् १७
नष्टान्धकारा वसुधाप्रदेशा यैर्द्योतिता भानुशशिप्रकाशैः ।
ते ज्योतिषाङ्गा विपुलप्रकाशा विभान्ति नित्यं नयनाभिरामाः १८
श्रीमण्डपान्मण्डितहर्म्यमालान् डोलागृहान्प्रेक्षणकाञ्चनाङ्गाः ।
[.....॥ १९] (?)
शाखोपशाखास्वतिभासुरासु प्रवालपत्राङ्कुरपल्लवानि ।
प्रदीपतुल्यानि सृजन्ति नित्यं ते दीपिताङ्गाः[3] सुखदर्शनीयाः २०
दुकूलकौशेयकवालजानि सच्चीनपट्टांशुककम्बलानि ।
वस्त्राणि नानाकृतिवर्णवन्ति वस्त्राङ्गवृक्षा ददते सदैव ॥ २१
सुगन्धिसच्चम्पकमालतीनां पुन्नागजात्युत्पलकेतकीनाम् ।
पञ्चप्रकारा रचिताग्र्यमाला माल्याङ्गवृक्षा विसृजन्त्यजस्रम् ॥२२
ते कल्पवृक्षाश्च दशप्रकारा व्यालिङ्गिताः कामलतावतानैः ।
स्वभावशुद्धाः प्रतिभान्ति शश्वत्प्रियाङ्गनाङ्गै रमणा यथैव ॥ २३
भुवां तृणानां सरसां तरूणां विभुक्तिरुक्ता खलु भोगभूषु ।
ये तत्र गन्तुं प्रभवन्ति सन्तः समासतस्तानिह कीर्तयिष्ये ॥२४

१ [°प्रसन्नान्]. २ [°संश्च व्रजदुन्दुभीश्च]. ३ [दीपिकाङ्गाः].

भद्राः प्रकृत्या विनयान्विता ये मायामदक्रोधवधेषु मन्दाः ।
सत्यार्जवक्षान्त्यतिदानशूरास्ते संभवन्त्युत्तमभोगभूमौ ॥ २५
दानेन भोगाः सुलभा नराणां दानेन तिष्ठन्ति यशांसि लोके ।
दानेन वश्या रिपवो भवन्ति तस्मात्सुदानं सततं प्रदेयम् ॥ २६
दानं च दाता प्रतिसंग्रहीता देयं ह्युपायं च फलप्रपञ्चम्[1] ।
एतानि दानेऽधिकृतानि राजंस्ते यान्ति जीवाः खलु भोगभूमिम्
दानं पुनस्तद्विविधप्रकारमपात्रपात्रप्रविभागमाहुः ।
मिथ्यादृशोऽपात्रमसंयताश्च पात्रं तु सद्दृष्टिसुसंयता ये ॥ २८
अपात्रदानेन कुमानुषेषु सुपात्रदानेन च भोगभूमौ ।
फलं लभन्ते खलु दानशीलास्तस्मादपात्रं परिवर्जनीयम् ॥ २९
श्रद्धान्वितो भक्तियुतः समर्थो विज्ञानवाँल्लोभविवर्जितश्च ।
क्षान्त्यान्वितः[2] सत्त्वगुणोपपन्नस्तादृग्विधो दानपतिः प्रशस्तः ॥३०
सुदृष्टयस्तप्तमहातपस्का[3] ध्यानोपवासव्रतभूषिताङ्गाः[4] ।
ज्ञानाम्बुभिः संशमितोरुतृष्णाः प्रतिग्रहीतार उदाहियन्ते ॥ ३१
शास्त्राणि निःश्रेयसकारणानि आहारदानाभयभेषजानि ।
चत्वारि तान्यप्रतिमानि लोके देयानि विद्वद्भिरुदाहृतानि ॥ ३२
शास्त्रेण सर्वज्ञमुपैति दाता आहारदानादुपभोगवान्स्यात् ।
दयाप्रदानान्न भयं परेभ्यो व्यपेतरोगस्त्वथ भैषजेन ॥ ३३
कन्यासुभूहेमगवादिकानि केचित्प्रशंसन्त्यनुदारवृत्ताः ।
स्वदोषतस्तानि विवर्जितानि व्यपेतदोषैर्ऋषिभिर्विशेषात् ॥ ३४
कन्याप्रदानादिह रागवृद्धिर्द्वेषश्च रागाद्भवति क्रमेण ।
ताभ्यां तु मोहः परिवृद्धिमेति मोहप्रवृत्तौ नियतो विनाशः ॥३५

१ म ह्युपायस्य फलप्रदं च. २ क क्षान्त्याव्रतः. ३ म सुदृष्टयस्सप्त°. ४ क °व्रतभूरिसाराः. ५ [सार्वज्ञ्य].

दुःखाय शस्त्राग्निविषं परेषां भयावहं हेममुदाहरन्ति ।
संताडनोद्बन्धनदाहनैश्च दुःखान्यवाप्नोति गवादिदेयम् ॥ ३६
भूमिः पुनर्गर्भवती च नारी कृष्यादिभिर्याति वधं महान्तम् ।
तदाश्रयाः प्राणिगणाश्च यस्माद्भूदानमस्मान्न विशिष्टमाहुः ॥ ३७
देशे च काले गुणवत्प्रदत्तं फलावहं तद्भवतीति विद्धि ।
लोकप्रसिद्धं व्यवहारमात्रा[1]दृष्टान्तमेकं शृणु कथ्यमानम् ॥ ३८
कूपात्प्रसन्नैकरसं जलं यद्विसृज्यमानं सरणीमुखेन ।
तदेव नानारसतां प्रयाति द्रव्याण्युपाश्रित्य पृथग्विधानि ॥ ३९
पयो भवेद्धेनुनिपीतमम्भः शुण्ठ्या कटुत्वं मधुरं कदल्या ।
तथेक्षुणा तैर्गुडशर्कराद्यैः कषायसारः क्रमुकाभयाभ्याम् ॥ ४०
सर्पेण पीतं विषमादधाति तिक्तत्वमायाति च निम्बपीतम् ।
आम्लो रसस्तिन्त्रिणिकाकपित्थैः काम्लो भवेदामलकेन पीतम्
देयं तथैकं ह्यनवद्यरूपं दाता च भक्त्या द्विगुणोपपन्नः ।
प्रतिग्रहीतुर्गुणतः फलानि फलन्त्यनेकानि सुखासुखानि ॥ ४२
भुक्तान्नवीर्येण हि केचिदत्र स्त्रीद्यूतहिंसामदिराभिरक्ताः ।
परापवादाभिरता नृशंसाश्चिन्वन्ति पापान्यसुखप्रदानि ॥ ४३
केचित्पुनर्ज्ञानविशुद्धचित्ता दृढव्रताः शान्तकषायदोषाः ।
जितेन्द्रिया न्यायपथानुपेताः पुण्यानि कर्माणि समर्जयन्ति ॥४४
कुर्वन्ति ये ये न च पुण्यपापमवश्यमाहारबलेन दातुः ।
तांस्तांश्च राजन्स्वविपाककाले[2] ध्रुवं पुनस्तद्वयमभ्युपैति ॥४५
असंयतेभ्यो वसतिप्रदानादाहारदानात्सहवासतस्तु ।
यथैव दण्ड्याः सह तैर्गृहेशा आदातृभिर्दानपरास्तथैव ॥ ४६

१ क °मात्राः. २ म °स विपाक°.

सुसंयतेभ्यो वसतिप्रदानादाहारदानात्सहवासतस्तु ।
यथैव पूज्याः सह तैर्गृहेशा आदातृभिर्दानपरास्तथैव ॥ ४७
अपात्रदानाच्च कुमानुषाणामनिष्टगात्रेन्द्रियसौख्यभोगाः ।
कुज्ञानसत्त्वद्युतिधीर्यशांसि भवन्त्ययत्नात्स्वयमेव तानि ॥ ४८
सुपात्रदानात्सुरमानुषाणां विशिष्टगात्रेन्द्रियसौख्यभोगाः ।
सज्ज्ञानसत्त्वद्युतिधीर्यशांसि भवन्त्ययत्नात्स्वयमेव तानि ॥ ४९
व्यपेतमात्सर्यमदाभ्यसूयाः सत्यव्रताः क्षान्तिदयोपपन्नाः ।
संतुष्टशीलाः शुचयो विनीता निर्ग्रन्थशूरा इह पात्रभूताः ॥ ५०
ज्ञानं तु येषां हि तपोधनानां त्रिकालभावार्थसमग्रदर्शि ।
त्रिलोकधर्मक्षपणप्रतिज्ञो[1] यान् दग्धुमीशो न च कामवह्निः ॥ ५१
येषां तु चारित्रमखण्डनीयं मोहान्धकारश्च विनाशितो यैः ।
परीषहेभ्यो न चलन्ति ये च ते पात्रभूता यतयो जिताशाः ॥५२
सद्दृष्टिसज्ज्ञानचरित्रवद्भ्यो भक्त्या प्रयच्छन्ति सुदृष्टयो ये ।
भुक्त्वा सुखं ते सुरमानुषाणां क्रमेण निर्वाणमवाप्नुवन्ति ॥५३
मिथ्यादृशः सद्व्रतदर्शनेभ्यः असंयताः केवलभोगकाङ्क्षाः ।
दत्त्वेह दानं परया विशुद्ध्या ते भोगभूमौ खलु संभवन्ति ॥५४
निर्गत्य गर्भाद्दिवसांस्तु सप्त वसन्त्यथाङ्गुष्ठमुपालिहन्तः ।
द्विसप्ततिस्तैस्तु[2] दिनैरथान्यैर्भवन्ति ते षोडशवर्षलीलाः ॥ ५५
स्त्रीपुंसयुग्मप्रसवात्मकास्ते सर्वे विशुद्धेन्द्रियबुद्धिसत्त्वाः ।
सर्वे च सल्लक्षणलक्षिताङ्गाः सर्वे कलाज्ञानगुणोपपन्नाः ॥ ५६
द्वीपः समुद्रो भवनं विमानं सरः पुरं गोपुरमिन्द्रकेतुः ।
शङ्खः पताका मुसलं च भानुः पद्मं शशिस्स्वस्तिकदामकूर्माः ५७

१ म त्रिलोककर्म°. २ [द्विसप्तभि°].

आदर्शसिंहेभगजेन्द्रमत्स्याश्छत्रासिशय्यासनवर्धमानम् ।
श्रीवत्सचक्रानलवज्रकुम्भा हस्ताग्रपादेषु भवन्ति तेषाम् ॥ ५८
नराश्च सर्वे सुरतुल्यरूपा नार्यः सुरस्त्रीप्रतिमानभासः ।
विचित्रवस्त्रोज्ज्वलभूषणाङ्गाः सयौवनाः सस्मितमृष्टवाक्याः ५९
अन्योन्यगीतश्रवणानुरक्ता अन्योन्यवेषैरवितृप्तकामाः ।
चिरं रमन्ते वनिता नरासु परस्परप्रीतिमुखाः[1] सदैव ॥ ६०
परस्पराक्रीडनसक्तचित्ताः परस्परालङ्कृतकान्तरूपाः ।
परस्परालोकनतत्पराक्षा उदत्कुरौ[2] देवकुरौ च जाताः ॥ ६१
राजंस्त्रिपल्योपमजीविनस्ते हर्याह्वका रम्यकवासिनश्च ।
तान्द्विद्विपल्यद्वयजीविनश्च सुवेषयुक्तास्सुखवार्धिमग्नाः ॥ ६२
हैरण्यका हैमवता नरा ये तेषां तु पल्योपममेकमाहुः ।
सर्वे च भोगाननुभूय पश्चाद्दिवं प्रयान्ति क्षुतजृम्भमात्रात् ॥ ६३
नात्मप्रशंसा न परापवादा मात्सर्यमायामदलोभहीनाः ।
स्वभावतस्ते सुविशुद्धलेश्या यस्मादतस्ते दिवमेव यान्ति ॥ ६४
चक्रायुधस्याप्रतिशासनस्य दशाङ्गभोगप्रभवाच्च सौख्यात् ।
यद्भोगभूमिप्रभवं त्वनन्तं तत्सौख्यमित्येवमुदाहरन्ति ॥ ६५

इति कथितमुदारदानपुण्यं
प्रभवसुखं निरुपद्रवं विशालम् ।
दशविधतरुभिर्विसृज्यमानं
ललिततरं नृपते समासतस्ते ॥ ६६
अशुभशुभफलस्य साक्षिभूता-
मवनिमथो गदितुं मुनौ प्रवृत्ते ।

१ [नरेषु परस्परप्रीतिसुखाः]. २ [उदक्कुरौ].

अतिहृषिततनूरुहो नरेन्द्रः
श्रवणनिबद्धमना भृशं बभूव ॥ ६७

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
देवकुरूत्तरकुरुवर्णनो नाम
सप्तमः सर्गः ।

[अष्टमः सर्गः]

षट्कर्मधर्माभिरताः सुदेशा द्वात्रिंशदेवात्र विदेहसंज्ञाः ।
ऐरावतो भारतवर्षसाह्वस्ताभ्यां चतुस्त्रिंशदुदाहरन्ति ॥ १
ते पञ्चभिः संगुणिता नरेश शतोत्तरा सप्ततिरेव वा स्युः ।
आर्यास्त्वनार्या द्विविधा मनुष्यास्तत्रोद्भवन्तीत्यृषयो वदन्ति ॥२
ये सिंहला बर्बरकाः किराता गान्धारकाश्मीरपुलिन्दकाश्च ।
काम्बोजबाह्लीकखसौद्रकाद्यास्तेऽनार्यवर्गे[2] निपतन्ति सर्वे ॥ ३
इक्ष्वाकुहर्युग्रकुरुप्रधानाः सेनापतिश्चेति पुरोहिताद्याः ।
धर्मप्रियास्ते नृपते त एव आर्यास्त्वनार्या विपरीतवृत्ताः ॥ ४
अनेकजात्यन्तरसंकटत्वादज्ञानतः कर्मगुरुत्वदोषात् ।
संसर्गतो दुःश्रुतिदुर्जनानां न लभ्यते मानुषजातिराशु ॥ ५
सामान्यभूते च मनुष्यलोके काम्बोजकाश्मीरकबर्बराणाम् ।
म्लेच्छाद्बहुत्वादतिदुर्लभं तं सुमानुषत्वं विबुधा निराहुः ॥ ६
तत्रापि भोज्यं हि कुलं न लभ्यं पुलिन्दचाण्डालकुलाकुलत्वात् ।
तथैव रूपं मतिरिन्द्रियाणि आरोग्यमर्थित्वमुदारधर्मम् ॥ ७

---

१ क चार्यवर्गे.

लब्ध्वापि[1] सद्धर्ममती च कृच्छ्रात्सुदुर्धरं घोरतपोविधानम् ।
कषायघोरा विषयारयश्च कुर्वन्ति विघ्नं बहुभिः प्रकारैः ॥ ८
स्वप्नश्च भृत्यो युगचक्रकूर्मा द्यूतं च दास्यं[2] परमाणवश्च ।
रत्नं तथाक्षश्च निदर्शनानि[3] दशोपदिष्टानि मनुष्यलोके ॥ ९
यथैव मेरुः प्रवरो गिरीणां जलाश्रयानामुदधिर्विशिष्टः ।
गोशीर्षवृक्षस्तरुषु प्रधानस्तथा भवानां मनुजत्वमाहुः ॥ १०
ग्रहेषु चन्द्रो मृगराड्मृगेषु नरेषु राजा गरुडोऽण्डजेषु ।
रत्नेषु वज्रं जलजेषु पद्मं यथा तथा सर्वभवेषु नृत्वम् ॥ ११
मनुष्यजातिर्व्रतशीलहीना तिर्यङ्नराणामशुभं ददाति ।
दुःखान्यमेयानि च नारकाणामनन्तशः[4] प्रापयतीति विद्धि ॥ १२
मनुष्यजातिर्व्रतशीलयुक्ता तिर्यङ्नराणामशुभं निहन्ति ।
दुःखान्यमेयानि च नारकाणामुन्मूल्य सिद्धिं नयति क्रमेण ॥१३
सैवेह दानेन समायुता चेद्विशिष्टभोगान् कुरुषूपभोज्य ।
देवत्वमापादयति क्रमेण अतो विशिष्टा नृपतेऽद्वितीया ॥ १४
सद्दृष्टिसज्ज्ञानतपोन्विता चेच्चक्रेश्वरत्वं च सुरेश्वरत्वम् ।
प्रकृष्टसौख्यामहमिन्द्रतां च संपादयत्येव न संशयोऽस्ति ॥ १५
सैकावधी नारकविंशतिस्तु एकास्य जन्तोरबुधैर्मतोऽर्थः ।
मनुष्यलोकं ह्यपरैर्निराहुः[6] केचित्समर्थं न जगत्त्रये च (?)॥१६
तादृङ्महासारवतीमवाप्य मनुष्यजातिं त्रिजगत्प्रजानाम्[7] ।
अल्पार्थमन्याः स्वमतिं निवेश्य[8] भवन्ति भृत्या हि पुनः परेषाम् १७
त्रिलोकमूल्यं नरदेववृत्तमवाप्य ये कोद्रवतण्डुलार्थम् ।
विक्रीय च स्वाननभिज्ञतत्त्वा मूर्खाः परप्रेष्यकरा भवन्ति ॥१८

१ क बुद्धापि. २ क धान्यं. ३ म तथा चक्षुनिदर्शनानि. ४ म कारकाणां. ५ क °धीकारक°. ६ म ह्यपरैर्निराहुः. ७ [प्रधानाम्]. ८ [निषेव्य] ९ क °स्नान°., म °स्थान°.

मनुष्यभूमौ व्रतशीलदानमुप्त्वा कषायादितृणान्यपोह्य ।
स्वर्गादिसंप्रापकसौख्यबीजं चिन्वन्ति केचिन्नरजातिलब्धाः[1] ॥१९
धर्मान्विताः सर्वसुखालयाः स्युः पापान्विता दुःखसहस्रभाजः ।
धर्मालसाः सर्वजनस्य भृत्या धर्मोद्यताः सर्वजनस्य नाथाः ॥२०
स्वामिन्प्रभो नाथ तवास्मि भृत्य आज्ञाप्यतां किं करवाणि तेऽद्य ।
इति ब्रुवाणा बहवः पुमांसो व्रजन्ति भृत्यत्वमपेतपुण्याः ॥२१
केचित्परेषां धनजीवितानि लेखप्रयोगैरथ वञ्चयित्वा ।
गत्यापपाकाद्[2]द्रविणं परैस्तु (?) हृत्वा स्वयं ते निधनं व्रजन्ति॥२२
प्रचण्डवातोद्धततुङ्गचञ्चत्तरङ्गभङ्गस्फुरदुग्रमत्स्यम् ।
अगाधमम्भोनिधिमर्थलोभात्प्रविश्य केचिन्मरणं प्रयान्ति ॥२३
अधीत्य विद्याश्च महाप्रभावाः संश्रुत्य तत्त्वार्थगुणानवेत्य ।
स्वेष्टावता न्यायकृता फलेन भिक्षां भ्रमन्तोऽपि न तां लभन्ते ॥२४
आजीवशास्त्राणि बहून्यधीत्य ज्ञात्वा क्रियायोगविभागतां च ।
दुराशया जीर्णमठेष्वपुण्या व्यपेतसौख्या गमयन्ति कालम् ॥२५
शिल्पैरनल्पैः परिकर्मशुद्धैरपुण्यवन्तो बहुदुःखभाजः ।
परान्वराकाः परितोषयन्तो धनाशयात्क्लेशगणान्भजन्ते ॥२६
संसर्गतो ये च निसर्गतो वा लोभाद्भयाद्वा दुरिताश्चितानि ।
कर्माण्यकुर्वंस्त्वपरा मनुष्या जीवन्ति ते प्रेष्यकराः क्रियार्ताः॥२७
पुण्यान्यकृत्वा स्फुटिताग्रपादाः क्षुत्पीडिताः कार्पटिनः कृशाङ्गाः ।
भूमौ शयानाः खरकर्कशायां दीना ह्यभीक्ष्णं[3] खलु भिक्षयन्ति ॥२८
धर्मे मतिं यन्न करोति धीमान्विद्वाञ्जनो यद्वसुना विहीनः ।
रूपान्वितो दुर्भगतामुपैति तत्कर्मणां पापवतां विपाकः ॥ २९

१ म °जाति लब्ध्वा, [°जातिलुब्धाः]. २ [गत्या विपाकात्]. ३ म दीनान्यभीक्ष्णं.

क्षुद्व्याधिदारिद्र्यवधोग्रबन्धैराक्रोशभीर्भर्त्सनताडनाद्यैः ।
दुःखैर्विबाधामुपयान्ति सत्त्वा यत्तत्फलं पापकृतं निराहुः ॥३०
अनागसामप्यपराधभावं नृणां समारोप्य समाश्रितानाम् ।
यत्स्वामिभिर्दण्डवधाः क्रियन्ते तद्दुष्कृतानां फलमामनन्ति ॥३१
विबान्धवास्त्यक्तकलत्रपुत्रा विलेपनस्रक्परिवर्जिताश्च ।
मलीमसाः क्षामकपोलनेत्रा दुःखेन जीवन्ति जना विपुण्याः ॥३२
दरिद्रतां नीचकुले प्रसूतिं मौर्ख्यं विरूपत्वमभद्रतां च ।
अकल्पतां वापि समाप्नुवन्ति प्रायः पुमांसः सुकृतेरभावात् ॥३३
निराशयास्ते विभवैर्विहीनाः संश्लाघयन्तः परगेहभोगान् ।
पुण्यैरपेताः[1] स्वकराग्रपात्रा देशाद्विदेशं परिसंचरन्ति ॥३४
नक्तंदिवं क्लेशसमाश्रितानि कर्माण्यनिष्टानि समाचरन्तः ।
दुःखार्दिताः स्रस्तविषण्णचित्ताः स्वेष्टान्यलब्ध्वा मरणं प्रयान्ति३५
बाधिर्यमान्ध्यं कुणिकुब्जभावं क्लीबत्वमूकत्वजडग्रहांश्च ।
आजन्मनस्ते तदवाप्नुवन्ति प्रायो जना दुष्कृतिनो वराकाः॥ ३६
दुर्गन्धनासामुखकक्षदेशा नपुंसकाः श्मश्रुविहीनवक्त्राः ।
सत्त्वास्तु यत्पुंस्त्वगुणैर्विहीना भवन्ति मन्दा बत दुष्कृतेन ॥ ३७
प्रियाणि कुर्वन्प्रवदन् हितानि ददंस्तथार्थानपि संश्रयांश्च ।
यद्द्वेष्यतां सर्वजनस्य याति तदाहुरार्या दुरितप्रभावम् ॥ ३८
नेच्छाफलाप्तिर्न च इष्टसंपत्प्रियैर्वियोगोऽप्रियसंप्रयोगः ।
सर्वाधिकाराश्च फलैर्विहीना अपुण्यभाजां हि नृणां भवन्ति ॥३९
वर्णोत्तरे पुण्यगुणाभिरम्ये लक्ष्मीमति व्याप्तयशोदिगन्ते ।
यदुद्भवंशे[2] लभते प्रसूतिं सन्तस्तदाहुः सुकृतानुभावम् ॥ ४०

१ म पुण्यैरुपेता. २ [यद्दद्भवंशे].

मन्नाथवत्सप्रियपुत्रकेति प्रलाल्यमानो[1] नियतं पितृभ्याम् ।
यद्बालभावाद्युवतामुपैति निर्वाच्यरूपः सुकृतं तदूचुः ॥ ४१
यूना वरिष्ठस्तु समस्समेषु मान्यः प्रियस्तत्पितृबान्धवानाम् ।
भोगैर्विचित्रैरुपगूढवेषश्चक्रीड्यते पुण्यविभूतिदृष्टैः[3] ॥ ४२
श्लक्ष्णानि वासांसि महाधनानि विचित्ररागाणि च संवसानि(?) ।
गन्धान्सुगन्धीकुसुमस्रजश्च संसेवमानो रमते स पुण्यः ॥ ४३
शय्यासु मृद्वीषु सुखं शयानो भोगानुरक्ताभिरमा प्रियाभिः ।
विमानपृष्ठेषु रतैर्विचित्रं पुण्यानुभावाद्विलसन्त्यभीक्ष्णम् ॥ ४४
वीणामृदङ्गप्रतिबोधितानि वंशानुनादक्रमरञ्जितानि ।
गेयानि श्रुण्वन्नतिवल्लभानि रात्रंदिवं क्रीडति पुण्यकारी ॥ ४५
सभ्रूविभङ्गाभिनयोपपन्नं वादित्रयालापलयानुकारि[4] ।
नृत्यं प्रपश्यन्नयनातिकान्तं सुकृत्प्रियाभिर्मुदमभ्युपैति ॥ ४६
अपक्वजम्बूफलरागकान्तं कान्तोपनीतं मणिभाजनस्थम् ।
मध्वासवं सत्सुरतोत्सवाढ्यं पिबन्सपुण्यो[5] रमते सुखेन ॥ ४७
भोगान्विताः शास्त्रसनाथवाचो गोष्ठीषु सत्काव्यकलाविदग्धाः ।
मान्याश्च पूज्याश्च नरा नराणां पुण्यैरुपेताः सततं भवन्ति ॥४८
मत्तद्विपस्कन्धगताः सुवेषाः सितातपत्रोच्छ्रितकान्तिकान्ताः ।
पत्तिद्विपाश्वैरनुगम्यमानाः[6] प्रयान्ति केचिन्नृवराः सभाग्याः ४९
नाथोऽयमस्माकमसौ क्षितीशो भुनक्त्ययं ग्रामसहस्रमेकम् ।
संश्लाघ्यमाना इति भृत्यमुख्यैर्व्रजन्ति धीराः सुकृतैस्तु केचित् ५०
कलत्रपुत्रप्रियबन्धुमित्रैः सार्धं सुखानीष्टतमानि हृष्टाः ।
रात्रौ दिवा चानुभवन्ति केचिद्धर्मप्रसादाः[7] सुखिनः पुमांसः ॥५१

१ म पुत्रिकेति. २ म प्रलाप्यमानो. ३ क °विभूतिदृष्टः. ४ क वादित्रयोल्लाप°, [वादित्रमालाप°]. ५ क सुपुण्यो. ६ क अधिगम्य°. ७ [°प्रसादात्].

शय्यान्नपानाशनवित्तदानैः सन्मानयन्तोऽर्थिजनान्प्रहृष्टाः ।
जीवन्ति केचित्सुखमक्षयार्था धर्मानुभावेन मनुष्यवर्याः ॥५२
सौभाग्ययुक्ता खलु रूपसंपद्रूपत्वमारोग्यगुणैरुपेतम् ।
आरोग्यताभोगपरीतमुख्या भवन्ति पुंसां बहुपुण्यभाजाम् ॥५३
त्वग्घ्राणजिह्वाश्रुतिलोचनानामर्थेन्द्रियाणां प्रियमाचरन्तः ।
प्रत्येकमर्थैर्विविधप्रकारै रूपादिभिर्धर्मपरा रमन्ते ॥ ५४
एको हि पुण्यार्जितदीप्तकीर्तिरुद्दीक्ष्यते[2] पुंभिरुदारशौर्यैः ।
एकश्च धर्मप्रतिबद्धवीर्यः शत्रूननेकान्समरे विजेता ॥ ५५
मनुष्यजातौ भगवत्प्रणीतो धर्माभिलाषो मनसश्च शान्तिः ।
निर्वाणभक्तिश्च दया च दानं प्रकृष्टपुण्यस्य भवन्ति पुंसः ॥ ५६
नानाविधक्षत्रियवंशजाता वसुंधरेन्द्रा ऋषभादिवर्याः ।
आर्हन्त्यमायुर्[3]वरधर्मभक्त्या पूज्याश्च वन्द्याश्च जगत्त्रयस्य ॥५७
केचित्पुनः शान्तकषायदोषा बुधा जिताशाः सुखिनस्त्विहैव ।
परत्र च प्रापितकामभोगा भवन्ति नाथा भुवनत्रयस्य ॥ ५८
धर्मेण देवासुरमानुषाणां स्थानानि नानर्द्धिविशेषवन्ति ।
संप्राप्य सार्वज्ञ्यमनन्तरेण ततो ध्रुवं निर्वृतिमेव यान्ति ॥ ५९
मनुष्यजातिस्तु सुदुर्लभापि न वर्ण्यते संसृतिकारणत्वात् ।
शीलोपवासव्रतभावहीना[4] संसारयत्येव चिरं हि जीवान् ॥ ६०
इदं हि मानुष्यमतीव कष्टं जरारुजाक्लेशशताकुलत्वात् ।
तस्माद्दृशं कष्टतमं[5] त्वशौचमनित्यता कष्टतमा ततः स्यात् ॥ ६१
शुक्रार्तवोद्भूतममेध्यपूर्णं स्रवन्नवद्वारमनिष्टगन्धम् ।
जन्त्वाकरं व्याधिसहस्रकीर्णं तदा[6] शरीरं शुचिविप्रहीणम् ॥६२

१ क °दीप्ति°. २ म उदीक्षते. ३ [आर्हन्त्यमापु°]. ४ क °हीनान्. ५ [कष्टतरं]. ६ [तथा].

तादृग्विधं कश्मलमुद्वहंस्तु बीभत्सचर्मास्थिशिराप्रणद्धम् ।
पित्तानिलश्लेष्मजराधिवासं को नाम विद्वान्वहतीह गर्वम् ॥६३
विज्ञानरूपद्युतिकान्तिसत्त्वं सौभाग्यबुद्धीन्द्रियबन्धुवित्तम् ।
आयुर्वपुर्मित्रसमागमाश्च क्षणे क्षणेऽन्यत्वमुपैति सर्वम्[1] ॥ ६४
सन्ध्याभ्ररागस्तनयित्नुविद्युत्फेनोर्मिफुल्लद्रुमबुद्बुदाभम् ।
तृणाग्रलग्नोदकबिन्दुतुल्यं मायोपमं मानुषजन्म शश्वत् ॥ ६५
गर्भेऽथ जातावथ बाल्यकाले तथा युवत्वे स्थविरत्वयोगे ।
अशौचताप्यध्रुवता रुजात्वं सर्वत्र सर्वस्य हि कर्मभूमौ ॥ ६६
आयुर्नराणामथ पूर्वकोटिः प्रकीर्तितोत्कर्षविशेषभावात् ।
अन्तर्मुहूर्तं हि जघन्यतस्तु तत्कर्मभूमौ कथितं प्रमाणम् ॥ ६७

इति धर्मफलं सुखादिलिङ्गं
यतिना वर्णितमर्थवद्विशालम् ।
दुरितस्य फलं समक्षभूतं
तदपि प्रोक्तमनेकखेदभिन्नम्[3] ॥ ६८
सुखदुःखविमिश्रितं तु नृत्वं
कथयित्वार्थगवेषिणे नृपाय ।
सुरलोककथां कथाविधिज्ञो
गदितुं स्पष्टाक्षरां प्रवृत्तः ॥ ६९

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
कर्मभूमिविभागो नाम
अष्टमः सर्गः ।

---

१ [सर्वम्]. २ म बाल. ३ क °भेदभिन्नम्.

[नवमः सर्गः]

ततः प्रवक्ष्ये नृप देवलोकांश्चतुर्विधान्सत्कृतिनां निवासान् ।
वैमानिकानां भवनाधिपानां ज्योतिर्गणव्यन्तरसंज्ञकानाम् ॥१
दश प्रकारा भवनाधिपानां ते व्यन्तरास्त्वष्टविधा भवन्ति ।
ज्योतिर्गणाश्चापि दशार्धभेदा द्विषट्प्रकाराः खलु कल्पवासाः ॥२
ये कल्पवासा गणनाव्यतीतास्तेभ्यो प्रसंख्या[1] भवनाधिवासाः ।
तेभ्योऽधिका व्यन्तरदेवसंज्ञा ज्योतिर्गणास्त्वभ्यधिकाश्च तेभ्यः३
सुपर्णनागो दधिदिक्कुमारा दीपाग्नि[2]विद्युत्स्तनितानिलाश्च ।
दशोपदिष्टास्त्वसुरैः सहैते द्वौ द्वावथेन्द्रास्तु भवन्ति तेषाम् ॥ ४
भूताः पिशाचा गरुडाश्च यक्षा गन्धर्वकाः किन्नरराक्षसाश्च ।
संख्यानतः किंपुरुषैः सहाष्टौ तिर्यग्जगत्येव निवास एषाम् ॥ ५
सूर्याश्च चन्द्रास्त्वथ तारकाश्च ग्रहाश्च नक्षत्रगणास्तथैव ।
ज्योतिर्गणाः पञ्चविधाः प्रदिष्टाः प्रभाप्रभास्थानगतिस्वभावाः॥६
सौधर्मकल्पः प्रथमोपदिष्ट ऐशानकल्पश्च पुनर्द्वितीयः ।
सनत्कुमारो द्युतिमांस्तृतीयो माहेन्द्रकल्पश्च चतुर्थ उक्तः ॥ ७
ब्राह्म्यं पुनः पञ्चममाहुरार्यास्ते लान्तवं षष्ठमुदाहरन्ति ।
स सप्तमः शुक्र इति प्ररूढः कल्पः सहस्रार इतोऽष्टमस्तु ॥ ८
यमानतं तन्नवमं[3] वदन्ति स प्राणतो यो दशमस्तु वर्ण्यः ।
एकादशं त्वारणमामनन्ति तमारणं द्वादशमच्युतान्तम् ॥ ९
कल्पोपरिष्टादहमिन्द्रलोका ग्रैवेयकास्ते नवधा विभक्ताः ।
त्रयस्त्वधस्तात्त्रय एव मध्या ऊर्ध्वं त्रयश्चोत्तरवृद्धसौख्याः ॥१०

---

१ [तेभ्योऽतिसंख्या]. २ [द्वीपाग्नि°]. ३ क यमामनन्तं नवमं. ४ म पुस्तक एवाधिकं पाठान्तरम् 'नवोपरिष्टादहमिन्द्रकल्पास्तेभ्यो महाकान्तिसमन्वितेभ्यः'

ग्रैवेयकेभ्यस्तु महाद्युतिभ्यः पञ्चोपरिष्टाद्विजयं जयन्तम् ।
तं वैजयन्तं ह्यपराजितं च सर्वार्थसिद्धिं च विमानमाहुः ॥ ११
मध्ये भवन्तीन्द्रकसंज्ञकानि श्रेणीगतान्यप्रतिभासुराणि ।
प्रकीर्णकानि प्रततानि राजन् विमानमुख्यानि विभान्त्यजस्रम् ।
दूर्वाङ्कुरश्यामलविग्रहाणि शुकच्छदाभान्यपराणि तानि ।
शिरीषपुष्पप्रतिमप्रभाणि सन्तीन्द्रगोपप्रतिमद्युतीनि ॥ १३
मयूरपारापतकण्ठशङ्खप्रवालजात्यञ्जनदुग्धवर्णैः ।
व्याभिन्नपद्मैर्हरितालभेदैः समानवर्णान्यपराणि भान्ति ॥ १४
आदित्यतेजोऽधिकदीप्तिमन्ति कान्त्या पुनश्चन्द्रमसोऽधिकानि ।
दशार्धवर्णानि मनोहराणि मणिप्रभापल्लवितध्वजानि ॥ १५
ज्वलद्बृहद्रत्नमयैर्विचित्रैर्वैडूर्यनद्धैस्तपनीयकुम्भैः ।
वज्रोपधानैः स्फटिकोपलस्थैस्तम्भैर्मृगाङ्कैः सततं वृतानि ॥ १६
पृथग्विधैर्यैर्गजवाजिरूपैर्भूतैः शकुन्तैर्मकरैर्लताभिः ।
भित्त्याश्रितैस्तैर्मनसाप्यचिन्त्यैः प्रकल्पितान्येव[1] च सर्वकालम् १७
प्रवालमुक्तामणिहेमजालैर्घण्टारवोन्मिश्रितकिङ्किणीकैः ।
विचित्ररत्नस्तबकावलीभिः पर्यन्तलम्बैरतिशोभितानि ॥ १८
माहेन्द्ररत्नोज्ज्वलमालिकानि[2] विशुद्धरूप्यच्छदपाण्डुराणि ।
विशिष्टजाम्बूनदभित्तिकानि महार्घ्यरत्नार्चितभूतलानि ॥ १९
स्वभावशुभ्राणि महाद्युतीनि समीक्ष्य नृणां नयनामृतानि ।
अकृत्रिमाण्यप्रतिमानि नित्यं विमानमुख्यानि विभान्ति तत्र ॥ २०
द्वारैश्च जाम्बूनदबद्धमूलैः स्फुरत्प्रभैर्वज्रमयैः कवाटैः ।
सोपानदेशैस्तपनीयबद्धैर्भिन्नान्धाकाराणि महागृहाणि ॥ २१

---

१ म प्रकल्प्य तान्येव. २ म °चूलितानि.

सूर्यप्रभैः सूर्यगभस्तितुल्यैश्चन्द्रांशुजालाधिकचन्द्रकान्तैः ।
शुक्रप्रभैः शुक्रसमानभाभिर्ज्वलत्प्रभैः प्रज्वलदग्निकल्पैः ॥ २२
सुगन्धिनानावरधूपवासैः पुष्पप्रकारैर्बहुवर्णकैश्च ।
पृथग्विधैर्न्यस्तबलिप्रकारैरतुल्यकान्तीन्यनिशं विभान्ति ॥ २३
सोद्यानवापी हृददीर्घिकाश्च पर्यन्तकान्तस्थितकल्पवृक्षाः ।
सौवर्णशैला रमणीयरूपास्तेषां गृहाणां तु बहिःप्रदेशाः ॥ २४
सुरेन्द्रलोकस्य विभूतिमेतां को नां[1] वदेद्वर्षसहस्रतोऽपि ।
ये तत्र गच्छन्ति पृथक्पृथक्तान् नराधिप त्वं शृणु संप्रवक्ष्ये २५
दयापरा ये गुरुदेवभक्ताः सत्यव्रताः स्तेयनिवृत्तशीलाः ।
स्वदारतुष्टाः परदारभीताः संतोषरक्तास्त्रिदिवं प्रयान्ति ॥ २६
पाषण्डिनो ये जलवायुभक्षा व्रतोपवासैरकृशाः कृशाङ्गाः ।
बालाः स्वयं बालतपोभिरुग्रैः पञ्चाग्निमध्ये च तपश्चरन्ति ॥ २७
येऽकामतो ब्रह्म चरन्ति लोके बद्धाश्च रुद्धाः[2] खलु चारकस्थाः ।
परार्दिताः क्लेशगणान्सहन्ते ते सर्व एवामरतां लभन्ते ॥ २८
जलप्रवेशादनलप्रवेशान्मरुत्प्रपाताद्विषभक्षणाद्वा[3] ।
शस्त्रेण रज्ज्वात्मवधाभिकामा अल्पर्द्धिकास्ते दिविजा भवन्ति २९
अणुव्रतानां च गुणव्रतानां शिक्षाव्रतानां परिपालका ये ।
संभूय सर्वर्द्धिमतीन्द्रलोके महर्द्धिकास्ते त्रिदशा भवन्ति ॥ ३०
सम्यक्त्वमेकं मनुजस्य यस्य हृदि स्थितं मेरुवदप्रकम्पम् ।
शङ्कादिदोषापहृतं नरेन्द्र न तस्य तिर्यङ्नरके भयं स्यात् ॥ ३१
नाचारवन्तो विकृता विशीला गुणैर्व्यपेता व्रतदानहीनाः ।
असंयताः केवलभोगकाङ्क्षाः सद्दृष्टिशुद्धास्त्रिदिवं प्रयान्ति ॥ ३२

---

१ क को न्वा (वा ?). २ म रुद्धाः. ३ क नरुत्प्रतापाद्, [तरुप्रपातात्].

ये मार्दवाः क्षान्तिदयोपपन्नाः[1] शमात्मकाः शुद्धशुभप्रयोगाः ।
ऋजुस्वभावा रतिरागहीनास्ते स्वर्गलोकं मुनयो व्रजन्ति ॥ ३३
परीषहाणां क्षणमप्यकम्प्या द्विषट्प्रकारे तपसि स्थिताश्च ।
ये चाप्रमत्ताः समितौ सदा ते त्रिगुप्तिगुप्तास्त्रिदिवं प्रयान्ति॥ ३४
जितेन्द्रिया जीवदयाप्रवृत्ता वर्षावकाशातपवासयोगाः ।
जितोपसर्गास्तु विचूर्णिताशाः कल्पेश्वरास्ते पतयो भवन्ति॥३५
येषां च सज्ज्ञानमुदारवृत्तं सद्दर्शनं चापि तपो विशुद्धम् ।
ग्रैवेयकादावहमिन्द्रलोके ते संभवन्तीति नरेन्द्र विद्धि ॥ ३६
यथैव मेघा शनिशक्रचापविद्युत्तडित्केतुहिमाम्बुवर्षाः ।
नभस्तलेऽस्मिन्सहसा भवन्ति तथा सुराणामपि जन्म वेद्यम् ॥३७
उत्पद्यमानाः शयनीयपृष्ठे अन्तर्मुहूर्तात्परिनिष्ठिताङ्गाः ।
व्याभासमानाश्च दिशो दशापि तपःफलं तेऽनुभवन्ति हृष्टाः ॥३८
प्रजायमानान्सहसा समीक्ष्य सुमङ्गलाविष्कृतपुण्यघोषाः[2] ।
प्रस्फोटिताः क्ष्वेणितमुष्टिनादाः[3](?)कुर्वन्ति देवा मुदिता नमन्तः३९
नृत्यन्ति तत्राप्सरसो वराङ्ग्यो वीणाः सलीलं परिवादयन्ति ।
गायन्ति गीतानि मनोहराणि चित्राणि पुष्पाण्यभितः किरन्ति ४०
ते दिव्यमाल्याम्बरचारुभूषा मनोऽभिनिर्वर्तितसर्वसौख्याः ।
ऐश्वर्ययोगर्द्धिविशेषयुक्ताः प्रियासहाया विहरन्ति नित्यम् ॥४१
दयातपोदानदमार्जवस्य सद्ब्रह्मचर्यव्रतपालनस्य ।
जिनेन्द्रपूजाभिरतेर्विपाकोऽप्ययं स इत्येव विबोधयन्ति ॥ ४२
वभावतो बालदिवाकराभाः स्वभावतः पूर्णशशाङ्कसौम्याः ।
स्वभावतश्चारुविभूषणाङ्गाः स्वभावतो दिव्यसुगन्धिगन्धाः ॥४३

१ [मार्दवक्षान्ति°]. २ म °पुण्यपापाः. ३ [प्रस्फोटितक्ष्वेडितमुष्टिनादान्].

आ जन्मनोऽवस्थितकान्तरूपा आ जन्मनोऽम्लानसुगन्धिमालाः ।
आ जन्मनस्ते स्थिरयौवनाश्च आ जन्मनः प्राप्तमनोऽभिरामाः ४४
नित्यप्रवृत्तातिशयर्द्धियुक्ता नित्यप्रवृत्तामलचारुहासाः ।
नित्यप्रवृत्ताधिकदीप्तिमन्तो नित्यप्रवृत्तोरुसुखालयास्ते ॥ ४५
समुल्लसत्कुञ्चितनीलकेशाः जरारुजाक्लेशशतैर्विहीनाः ।
अनस्थिकायास्त्वरजोऽम्बराश्च सर्वे सुराः स्वेदरजोविहीनाः ॥४६
अपेतनिद्राक्षिनिमेषशोका महीतलस्पर्शविमुक्तचाराः ।
नभश्चरा यानविमानयाना अनूनभोगा दिविजा रमन्ते ॥ ४७
उत्पाटयेयुः स्वभुजेन मेरुं महीं कराग्रेण समुद्धरेयुः ।
आदित्यचन्द्रावपि पातयेयुर्महोदधिं चापि विशोषयेयुः ॥ ४८
व्याप्याशु तिष्ठेयुरथो जगन्ति अदृश्यरूपाः क्षणवद्भवेयुः ।
ईयुर्निमेषाद्वसुधातलान्तं ते कामरूपाश्च भवेयुरीशाः ॥ ४९
इन्द्राश्च सामानिकलोकपालास्तथा त्रयस्त्रिंशदनीकिनश्च
प्रकीर्णकाः किल्बिषिकात्मरक्षा अथाभियोग्याः परिषत्त्रयं च ५०
सौधर्मकल्पप्रभृतिष्वमीषु दशप्रकारा नृप देववर्गाः ।
ज्योतिर्गणा व्यन्तरदेववर्गा न च त्रयस्त्रिंशकलोकपालाः ॥ ५१
सुराङ्गना वैक्रियचारुवेषाः सुविभ्रमाः सर्वकलाप्रगल्भाः ।
विशिष्टनानर्द्धिगुणोपपन्ना गुणैरनेकैः रमयन्ति देवान् ॥ ५२
स्वनाथकायानुविकाररूपाः स्वनाथभावप्रियचारुवाक्याः ।
स्वनाथदृष्टिक्षमचारुवेषाः स्वनाथसच्छासनसक्तचित्ताः ॥ ५३
द्युसुन्दरीणाममितद्युतीनां मनोहरश्रोणिपयोधराणाम् ।
तासां वपुर्वेषविलासभावान् कथं पुमान्वर्णयितुं हि शक्तः ॥५४
एकः समुद्रो भवनाधिपानां पल्योपमं व्यन्तरकेषु विद्धि ।
ज्योतिर्गणेष्वभ्यधिकं तदेव सौधर्मकल्पे[1] द्विसमुद्रमाहुः ॥ ५५

१ म °कल्पाद्द्वि°.

सप्तैव माहेन्द्रमहाविमाने ब्रह्मेन्द्रकल्पे दश वर्णयन्ति ।
ते लान्तवे चापि चतुर्दशैव समुद्रसंख्या यतिराडवोचत् ॥ ५६
शुक्रे पुनः षोडश ते समुद्राः कल्पेऽष्टमेऽष्टादश सागरास्ते ।
ततः परं विंशतिरानते च द्वाविंशतिस्त्वारणसंज्ञकल्पे ॥ ५७
एकैकवृद्धिर्नवसु क्रमेण ग्रैवेयकेषु क्षितिपोपदिष्टा ।
सर्वार्थसिद्धेः खलु लोकमूर्ध्नि त्रिंशस्त्रयश्चैव समुद्रसंख्याः ॥ ५८
त्रिशून्यपूर्वास्तु दशैव वर्षा जघन्यतस्ते भवनेषु तेषु ।
तथैव ते व्यन्तरदेववर्गे परावरज्ञाः परिमाणमाहुः ॥ ५९
ज्योतिष्मति ज्योतिषदेवलोके पल्योपमस्याष्टमभागमाहुः ।
एकं च पल्यं प्रथमे च कल्पे उत्कृष्टमेवोपरि तज्जघन्यम् ॥ ६०

इत्येवं सुरनिलयांश्चतुष्प्रभेदा-
नादित्यस्फुरितमयूखजालभासः ।
सद्धर्मप्रभवसुखाश्रयान्विचित्रा-
न्संक्षेपाद्यतिपतिरेवमाचचक्षे ॥ ६१
देवानां सुकृतफलान्यथाभिधाय
सिद्धानां त्रिभुवनमस्तकस्थितानाम् ।
तत्सौख्यं परमपदे च शाश्वतं य-
त्प्रारेभे क्षितिपतयेऽभिधातुमीशः ॥ ६२

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
देवलोकवर्णनो नाम
नवमः सर्गः ।

---

१ [त्रिंशत्त्रय°].

[दशमः सर्गः]

ऐकान्तिकात्यन्तिकनित्ययुक्तं[1] कर्मक्षयोद्भूतमनन्तसौख्यम् ।
शृणु त्वमेकाग्रमना नरेन्द्र समासतो मोक्षमुदाहरिष्ये ॥ १
सर्वार्थसिद्धेस्तु विशालकीर्तेर्गत्वोपरि द्वादश योजनानि ।
प्राग्भारभूमिर्नरलोकमात्रा श्वेतातपत्राकृतिरुद्धभाति[2] ॥ २
बाहुल्यमष्टौ किल योजनानि मध्यप्रदेशे नरदेव विद्धि ।
अङ्गुल्यसंख्येयविभागतोऽन्ते प्रहीयते सा खलु सर्वदिग्भ्यः ॥३
संख्यानतस्तत्त्रिगुणाधिकश्च तस्याः परिक्षेपविभाग उक्तः ।
यत्रासतेऽनिन्द्रियसौख्ययुक्ताः सिद्धा विशुद्धा इति शब्दमानाः ४
पूतं च पुण्यं सुगतिप्रधानं कल्याणकं मङ्गलमुत्तमं च ।
लोकोत्तमं तत्परमं पवित्रं परं शुभं शाश्वतमव्ययं च ॥ ५
अनामयं क्लेशजराविहीनमदैन्यमव्याकुलमप्रमेयम् ।
अनिन्द्यमक्षोभ्यमपारमग्र्यं सुखास्पदं तुष्टिकपुष्टिकं च ॥ ६
अचञ्चलं रागविरागवर्ज्यमभेद्यमद्रोहमबाधसंगम् ।
अपात्यमक्षीणमतुल्यमुद्धमनभ्यसूयं श्रवणीयमेव ॥ ७
अशक्रमित्रं[3] ह्यविनाश्यशङ्कं निर्हेतुकं निर्वृति निष्कषायम् ।
अवस्थितं योगवियोगहीनमलेश्यमक्षुत्तृषमप्रचिन्त्यम् ॥ ८
अभेद्यमच्छेद्यमनाहदाहमदुःखमद्वेष्यमुदारसौख्यम् ।
अनन्त्यमग्राह्यमजात्यमृत्युं सुनिर्मलं तद्ध्यपुनर्भवं च ॥ ९
अभव्यसत्त्वैर्मनसाप्यगम्यं गम्यं पुनर्भव्यजनैः सुखेन ।
महामुनीनामभिकाङ्क्षणीयं शिवालयं मोक्षमुदाहरन्ति ॥१०

१ [°नित्यमुक्तं°]. २ [°विभाति]. ३ [अशत्रुमित्रं]. ४ क °मनंहदाह°.

काङ्क्षन्ति शक्रप्रमुखा नरेन्द्रा नराः प्रशंसन्ति च शुद्धिमन्तः ।
पाषण्डिनो यं हि परीक्षयन्ति ये तत्र गच्छन्त्यथ तान्प्रवक्ष्ये ॥११
क्षमाविभूषाः पृथुशीलवस्त्रा गुणावतंसा दममाल्यलीलाः ।
निर्ग्रन्थशूरा धृतिबद्धकक्षास्ते मोक्षमक्षीणमभिव्रजन्ति ॥ १२
आ जीवितान्ताद्दृढबद्धसत्त्वा गृहीतयोगव्रतभूरिसाराः ।
ये शीलभारं निरवद्यरूपं सुदुर्धरं बिभ्रति भक्तिभाजः ॥ १३
पिधाय पापास्रवमिन्द्रियाणां सुसंयता गुप्तिमहाकपाटैः ।
तपोऽग्निना संचितकर्मकक्षं दहन्त्यशेषं हि शमार्चिषा ये ॥१४
अतन्द्रिताः संपरिगृह्य योगं जिनेन्द्रवक्त्राभिविनिस्मृतार्थम्[1] ।
ये द्वादशाङ्गं हि तदङ्गपूर्वमधीयते ये गणदेवदृष्टम् ॥ १५
आर्तं च रौद्रं प्रविहाय धीरा धर्म्यं तथा शुक्लमपि प्रशक्तम् ।
शुभान्वितं ध्यानमनन्तभेदं ध्यायन्ति ये ध्यानरता विनीताः ॥१६
लोष्टेष्टकाकाञ्चनवज्रसारे मानापमाने स्वजने जने वा ।
लाभे त्वलाभे सुखदुःखयोर्वा समानभावाः शिवमाप्नुवन्ति ॥१७
अभ्यन्तरं बाह्यमपि प्रशस्तं द्विषट्प्रकारं हि तपोविधानम् ।
चरन्ति ये कर्मविनाशनाय ते सर्व एवाक्षयमोक्षभाजः ॥ १८
क्रोधादयोऽभ्यन्तरशल्यदोषा बाह्याश्च योषिद्धनवाहनाद्याः ।
त्यक्ताश्च[2] यैर्निर्जितमोहसेना तेषां ध्रुवं मोक्षमुदाहरन्ति ॥ १९
यथोदयादुत्थितबालसूर्यो दिने च[3] तस्मिन्परिवर्तते सः ।
तथैव संपूर्णतपोविधाना अखण्डवृत्ताः परमाश्रयन्ति ॥ २०
कषायशाखं स्थिरमोहमूलमज्ञानपुष्पं बहुदुःखपाकम् ।
प्रज्ञाबलाः कर्मतरुं प्रभज्य मुनिद्विपास्तत्र सुखं वसन्ति ॥ २१

१ [°निस्सृतार्थम्]. २ क रिक्ताश्च. ३ क दिनेन.

मोहक्षयाज्ज्ञानवृतिक्षयाच्च दृष्ट्यावृतेः संक्षयतः क्रमेण ।
तथान्तरायक्षयतश्च सर्वान् कैवल्यमुत्पाद्य विदन्ति भावान् ॥२२
गोत्रायुषी नाम च वेदनीयं चत्वारि तान्यप्रतिवीर्यवन्ति ।
कर्माणि संचूर्ण्य विधूतदोषा लोकोत्तरेऽनन्तसुखं लभन्ते ॥ २३
तुम्बीफलं मृत्प्रविलेपमुक्तं यथोदकस्योपरि तिष्ठतीह ।
कृती तथा कर्मविलेपमुक्तस्त्रिलोकमूर्धानमुपैति सद्यः ॥ २४
यथैव बीजं हुतभुक्प्रतप्तं न कल्पते तत्पुनरङ्कुराय ।
तपोऽग्निभस्मीकृतकर्मबीजं तथैव नालं पुनरुद्भवाय ॥ २५
तालद्रुमश्च प्रतिलूनमूर्धा नासंभवादङ्कुरमादधाति ।
स्नेहक्षयादर्चिरुपैति शान्तिं तथैव कर्मक्षयतस्तु सौख्यम् ॥ २६
यथैव लोके नलवर्तितैलं प्रभातकाले युगपत्प्रयाति ।
तथैव कर्माणि समानि येषां ते निर्वृतिं तत्क्षणतो व्रजन्ति ॥२७
केचित्समुद्घातमुपैतुकामा[1] आत्मप्रदेशात्समयैश्चतुर्भिः ।
लोकत्रयं व्याप्य समीप्रकृत्य[2] कर्माणि निर्वान्ति विनष्टबन्धाः ॥
एकाधिकास्त्वष्टशतान्तसंख्याः सिध्यन्ति सिद्धाः समयेन राजन् ।
जघन्यकालः समयस्त्वथैकः[3] षडेव मासा यदि सोऽधिकः स्यात् ॥
आरोहकाः षट् समये जिनेन्द्राः प्रत्येकबुद्धान्दशधा वदन्ति ।
बोध्यान्पुनस्त्वष्टशतप्रसंख्यान् स्वर्गच्युतास्तेऽष्टशता भवन्ति ॥३०
द्वावेव सोत्कर्षशरीरसंस्थौ ह्रस्वान्पुनस्तांश्चतुरो वदन्ति ।
मध्या तथाष्टौ समये प्रसिद्धाः समानदेहाः सुगतिं प्रयान्ति ॥ ३१
यथैव ताड्यङ्घ्रिपबीजमोक्ष एरण्डबीजप्रविसर्जनं वा ।
वह्नेः शिखा चोर्ध्वमतीनि[4] तानि तथैव चात्मोर्ध्वगतिस्वभावः ॥३२

१ म °समुद्भूत°. २ [समं प्रकृत्य]. ३ क समयस्तथैकः. ४ [°र्ध्वगतीनि].

असंगतात्पूर्वनियोगतश्च बन्धप्रणाशाद्गमनस्वभावात् ।
विनष्टकर्माष्टकलब्धसौख्या लोकान्तमाश्रित्य वसन्ति सिद्धाः ॥३३
शब्दादयो ये सुखदुःखमूला नश्यन्ति यस्मान्नृपते शरीरात् ।
तदाकृतिस्तत्परिमाणमात्राच्छायावदाभाति च सर्वकालम् ॥३४
यथा मधूच्छिष्टकृतं तु छिद्रं चाश्रित्य मूषापतितं सुवर्णम् ।
समं तदङ्गावयवानुपैति तथैव पूर्वाकृतिरेव तत्र ॥ ३५
आदित्यचन्द्रग्रहतारकाश्च विमाननक्षत्रगणप्रमाणाः ।
यथैव तिष्ठन्ति नभस्तलेऽस्मिंस्तिष्ठन्त्यनाश्रित्य तथैव सिद्धाः ॥३६
विभाति सूर्यस्तु यथाभ्रमुक्तो यथैव खड्गश्च विमुक्तकोशः ।
यथा शिलागर्भविमुक्तहेम कृती तथा कर्मरजोविहीनः ॥ ३७
दीपाश्च दीपाश्च यथैव गेहे नान्योन्यबाधां जनयन्ति भान्तः ।
परस्पराबाधनविप्रमुक्तास्तथैव सिद्धा निवसन्ति तस्मिन् ॥ ३८
अनेकदीपावलिभासमूहः संतिष्ठतेऽन्योन्यमबाधमानः ।
एवंगुणो रूपिषु विद्यते चेदरूपिणां तत्र किमस्ति वाच्यम् ॥ ३९
ज्योत्स्नातपौ तौ शशिनो रवेश्च मणेश्च दीप्तिर्गुणिनां गुणा हि ।
सद्दृष्टिसज्ज्ञानगुणैर्विशिष्टैः कर्मक्षयादात्मनि संभवेताम् ॥ ४०
व्यवस्थितानेव शशाङ्कसूर्यौ स्वान्स्वान्प्रदेशानवभासयेते ।
लोकं ह्यलोकं युगपत्समस्तं ते ज्ञानभासा प्रतिभासयन्ति ॥ ४१
सम्यक्त्वसज्ज्ञानचरित्रवीर्या निर्बाधता चाप्यवगाहनं च ।
अगौरवालाघवसूक्ष्मता च सिद्धेष्वथाष्टौ हि गुणा विशिष्टाः ॥४२
मध्वक्ततीक्ष्णास्यवलेहनेन समानमुक्तं सुखमिन्द्रियाणाम् ।
दशाङ्गभोगप्रभवं सुखं यद्विषाक्तमृष्टाशनभुक्तितुल्यम् ॥ ४३

१ क असंगताः. २ क तु चिन्वं नाश्रित्य. ३ [संभवेयुः].

सुरेश्वराणामसकृद्द्युतीनां मनोज्ञनानातनुविक्रियाणाम् ।
यदिन्द्रियार्थप्रभवं हि सौख्यं दग्धव्रणे चन्दनलेपतुल्यम् ॥ ४४
विच्छिन्नकर्माष्टकबन्धनानां त्रिलोकचूडामणिधिष्ठितानाम् ।
न चास्ति राजन्नुपमा सुखस्य तथापि किंचिच्छृणु संप्रवक्ष्ये ४५
तिर्यग्भ्य उत्कृष्टसुखा नराश्च तेभ्यो नरेभ्यः सुखिनो नरेन्द्राः ।
तेभ्योऽधिका भोगभुवो मनुष्याःसिद्धास्ततोऽनन्तसुखा भवन्ति ॥
ज्योतिर्गणा व्यन्तरदेवताभ्यस्तेभ्योऽधिकास्ते भवनाधिवासाः ।
सौधर्मजाताः सुखिनस्तु तेभ्यस्तेभ्यश्च तत्सौख्यतमास्तथोर्ध्वम् ॥
ग्रैवेयकाद्याः सुखिनस्तु तेभ्यस्तेभ्यो विशिष्टा विजयेश्वराद्याः ।
तेभ्यस्तु सिद्धार्थनिवासिदेवास्तेभ्योऽतुलात्यन्तसुखास्तु सिद्धाः
किमम्बरै रागविवर्जितानां किं भोजनैः संशमितक्षुधानाम् ।
जलेन वा किं त्वपिपासितानां किमौषधैः कार्यमरोगिणां च ॥४९
किं वाहनाद्यैरगतिक्रियाणां किमासनाद्यैरपरिश्रमाणाम् ।
किमीक्षणैर्वा सकलार्थाभाजां[1] प्रश्नादिभिः किं सदसद्विदां च ॥५०
स्नानादिभिः किं मलवर्जितानां तेजोमयानामथ तेजसा किम् ।
किं युक्तिभिर्निष्ठितकर्मकाणां रागादिभिः किं विगतस्पृहाणाम्५१
किं वा गृहाद्यैः परिकर्ममुक्तैर्व्यपेतशीतातपबाधनानाम् ।
शब्दादिभिः किं नरदेव बाह्यैरलेपकानां जगदुत्तमानाम् ॥ ५२
यथैव चन्द्रोदधिभास्कराणां न चास्ति काचिद्द्युपमा नृलोके[2] ।
तथैव तेषां परिनिष्ठितानां न विद्यतेऽन्या ह्युपमा नृलोके[2] ॥ ५३
वर्णैश्च वर्णस्य रसै रसस्य स्वरैः स्वरस्याप्युपमात्र यद्वत् ।
अतीन्द्रियाणामपि निर्वृतानामौपम्यसिद्धेर्न हि संभवोऽस्ति ॥५४

१ म सकलोर्मिलोकात्. २ म त्रिलोके.

ये निर्वृतानामुपमां वदन्ति हीनोपमास्ते नृपतेऽनभिज्ञाः ।
तुल्योपमानं भुवि नास्ति किंचित्त एव तेषामुपमा भवेयुः ॥५५

आदित्यतोऽन्यो भुवि नास्ति भास्वान्
समुद्रतोऽन्यो न जलाश्रयश्च ।
न चोच्छ्रितोऽन्योऽस्ति गिरिर्गिरीन्द्रा-
न्न मोक्षतोऽन्योऽस्ति[1] सुखप्रतिष्ठा ॥ ५६

तुलां विना तुल्यमशक्यमिष्टं मातुं न शक्यं खलु मानहीनम् ।
सहेतुकैर्हेतुपथव्यतीतं न शक्यते बोधयितुं वचोभिः ॥ ५७
संसारघोरार्णवपारगाणां द्रव्यादितत्त्वार्थसुदर्शनानाम् ।
महौजसां क्षायिकसत्सुखं यन्न तत्समस्तं गदितुं हि शक्यम् ५८
तिर्यग्नराणां नरकामराणां महीपते क्षीणपुनर्भवानाम् ।
पृष्टा त्वया संसदि ते मयोक्ता यथानुपूर्व्या गतयश्च पञ्च ॥ ५९
तासां चतस्रो गतयो गतीनां संसारसंज्ञाः कथिताः सुधाभिः ।
जरारुजामृत्युविवर्जिता ये निःश्रेयसायैव यतस्व राजन् ॥ ६०
घर्माभितप्तां वसुधां यथैव सुरेश्वरः प्रावृषि तोयसेकैः ।
प्राह्लादयत्साधुपतिः सभां तां क्लेशार्दितां धर्मजलैस्तथैव ॥ ६१
यतौ ब्रुवाणे जिनधर्मसारं राज्ञः प्रसन्नं वदनं सरागम् ।
दिवाकरांशुप्रतिबोधितस्य पद्मस्य कान्तिं सकलां दधार ॥ ६२

निशम्याशु धर्मं बुधा मुक्तकामा
यतीन्द्रस्य पार्श्वे तपस्स्था बभूवुः ।
गृहीत्वार्थसंकल्पमल्पे[2] विजहुः
परे गेहधर्मे मतिं संनिदध्युः ॥ ६३

---

१ [मोक्षतोऽन्यास्ति]. २ [°संकल्पमन्ये].

अथोत्थाय साध्विन्द्रमिन्द्रः पृथुव्यैः
परीत्य प्रणम्य प्रणुत्यात्मशक्त्या ।
द्विपेन्द्राधिरूढो नृपश्छत्रमध्ये
महत्या विभूत्या पुरं संप्रविष्टः ॥ ६४

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
मोक्षाधिकारो नाम
दशमः सर्गः ।

[एकादशः सर्गः]

गते नरेन्द्रे हितसंकथाभिः स्वयं वराङ्गो मुनिमभ्युपेत्य ।
कृताञ्जलिर्निर्जितकामशत्रुं संदिग्धबुद्धिः पुनरभ्यपृच्छत् ॥ १
जीवस्य मिथ्यात्वमनादिबद्धं संसारिणस्तच्च कतिप्रकारम् ।
कथं तु सम्यक्त्वमुपैति जीवः संचक्ष्व मिथ्यात्वपथादपायम् ॥ २
एवं स पृष्टो भगवान्यतीशो गुणाकरः शान्तमनाः प्रवक्तुम् ।
मिथ्यात्वसम्यक्त्वविकल्पतत्त्वं प्रारब्धवान्प्रश्नविनिर्णयार्थम् ॥३
ऐकान्तिकं सांशयिकं च मूढं स्वाभाविकं वैनयिकं तथैव ।
व्युद्ग्राहितं यद्विपरीतसंज्ञं मिथ्यात्वभेदानवबोध सप्त ॥ ४
जीवादितत्त्वं न च वेत्ति किंचिदेकान्तमिथ्यात्वविमोहितात्मा ।
जात्यन्धमर्त्यः खलु चित्रकर्म द्रष्टुं विबोद्धुं च यथा न शक्तः ॥५
हिंसानुधर्मस्त्वथ वेत्त्यहिंसां संदेहमिथ्यात्वविमूढचित्तः ।
संदिग्धबुद्धिर्न च निश्चिनोति गोऽश्वान्तरं दूरगतं यथैव ॥ ६

१ क °मिन्द्रोत्कटान्यः, [पृथिव्याः].

श्रेयो यदज्ञानमिति ब्रवीति संमूढमिथ्यात्वनिरस्तबुद्धिः ।
विषामृतज्ञो विषमेव पीत्वा यथा विनाशं ह्यवशं प्रयाति ॥ ७
आहोस्विदज्ञानतया विबुद्धिर्हिंसामहिंसेति मतिं विधत्ते ।
सुवर्णमिच्छन्नसुवर्णधातुं धमत्यथाज्ञः श्रममभ्युपैति ॥ ८
श्रुतं तदर्थं कलुषीकरोति स्वभावमिथ्यात्वविदूषितात्मा[1] ।
सशर्करं क्षीरमहिः प्रपाय विपाककाले विषमादधाति ॥ ९
चन्द्रार्कनक्षत्रमहीजलाद्या विनीतमिथ्यात्वविमोहितस्य ।
देवा दिवि स्वर्गतिभिः पताका मतिर्मरुद्भिः समुदीरिते[2] च ॥१०
कुदृष्टिदृष्टान्तविनष्टमार्गैर्[3]व्यद्ग्राहिताख्यो[4] हतधीर्मनुष्यः ।
चौरेण नीतो गहनान्तराणि यथैव जात्यन्धगणः प्रणष्टः ॥ ११
सतः पदार्थान्विपरीतदृष्टिर्विपर्ययं पश्यति बुद्धिदोषात् ।
जवेन नावी जलमध्ययायी यथा महीपर्वतकाननानि ॥ १२
अभव्यमिथ्यात्वमनाद्यनन्तमनाद्यनन्तश्च यथैव कालः ।
भव्यात्मनां सान्तमनादि तच्च तेष्वेव केषामपि सादि सान्तम्॥१३
मिथ्यात्वतो मोहविवृद्धिमाहुर्मोहात्प्रवृत्त्युद्भवमामनन्ति ।
प्रवृत्तितोऽनेकविधं हि जन्म दुःखं ततो जन्मवशादवश्यम्॥१४
मिथ्याविनाशात्क्षयमेति मोहो मोहक्षयान्नश्यति सा प्रवृत्तिः ।
प्रवृत्तिनाशान्न च जन्म तत्स्यात्तन्नाशतो नाशमियर्ति दुःखम्॥१५
दुःखप्रणाशात्सुखमभ्युपैति नृदेवविद्याधरभोगभूषु ।
तपोऽग्निना दग्धमलः क्रमेण निर्वाणसत्सौख्य[5]मुपैति जीवः ॥१६
स्पृष्टं यदा दर्शनमात्रमेतद्येनेह जीवेन मुहूर्तमेकम् ।
संसारवासे बृहदुग्रदुःखे स पुद्गलानां परिवर्ततेऽर्धम् ॥ १७

१ क °विरूक्षितात्मा. २ म समधीरिते, [समुदीरते]. ३ [°मार्गो]. ४ म व्यद्ग्राहिताभ्यो, [व्युद्ग्राहिताख्यो]. ५ क निर्वाणतत्सौख्य°.

गृहीतसम्यक्त्वमतिः स्थिरात्मा षट्षष्टिकालं जलधिप्रसंख्यम् ।
स्वर्गावनिक्षेमसुखं निषेव्य पश्चादवाप्नोति च मोक्षसौख्यम् ॥१८

सम्यक्त्वरत्नान्न परं हि रत्नं
सम्यक्त्वमित्रान्न परं हि मित्रम् ।
सम्यक्त्वबन्धोर्न परोऽस्ति बन्धुः
सम्यक्त्वलाभान्न परोऽस्ति लाभः ॥ १९

त्रिकालविद्भिस्त्रिजगच्छरण्यैर्जीवादयो येऽभिहिताः पदार्थाः ।
श्रद्धानमेषां परया विशुध्या सद्दर्शनं सम्यगुदाहरन्ति ॥ २०

नैसर्गिकं तद्द्युपदेशजं च सद्दर्शनं तद्द्विविधं जिनोक्तम् ।
तत्क्षायिकं ह्यौपशमं च मिश्रं तदेव भूयस्त्रिविधं वदन्ति ॥ २१

यथैव चक्षुः पटलावृतं यन्न पश्यति द्रव्यगुणादितत्त्वम् ।
तदेव भूयः पटलादपेतं समीक्षते द्रव्यगुणादिभावान् ॥ २२

तथैव मिथ्यापटलावृतं यत्सम्यक्त्वचक्षुर्न च वीक्षतेऽर्थान् ।
तदेव सज्ज्ञानशलाकयाशु[1] समञ्जितं पश्यति सर्वभावान् ॥ २३

प्रसन्नमिथ्यामलकर्दमेषु जीवेषु जीवादिरथावगम्यः[2] ।
यथैव भूशैलवनप्रदेशः संदृश्यते शान्तमलास्वथाप्सु[3] ॥ २४

मिथ्यान्धकारोदयमन्दभावे सवेदकः पश्यति जीवतत्त्वम् ।
यथैव वैडूर्यमणिप्रदीपो गृहे घटादीनवलोकतेऽर्थान् ॥ २५

व्यपेतदुर्दर्शनमोहनीयो यक्षोऽपि कः पश्यति सर्वभावान् ।
यथैव मेघादपनीतमूर्तिर्लोकं विवस्वानिव दीप्तरश्मिः ॥ २६

प्रशान्तपङ्कोदकतुल्यमाद्यं वैडूर्यरत्नप्रतिमं द्वितीयम् ।
तत्क्षायिकं बालदिवाकराभं तिस्रस्त्रयाणामुपमा भवन्ति ॥ २७

---

१ क °शलाकया सु°. २ क °गम्याः, [°गम्यः]. ३ म °मलास्विवाप्सु.

मिथ्यानिवृत्तिं लभतेऽन्तरात्मा सम्यक्त्वलाभादपरिश्रमेण ।
ज्ञानं ततो ज्ञेयविशेषदर्शि ज्ञानेन सद्भावगुणोपलब्धिः ॥ २८
सद्भावविज्ञप्तिफलोदयेन ध्रुवं विजानाति हिताहितानि ।
हिताहितज्ञो मतिमानवश्यं संसारवासे न रतिं करोति ॥ २९
विभक्तसंसारनिवासरागो बिभेति जात्याद्यसुखावहेभ्यः ।
भयार्दितः प्राणिगणेषु नित्यं दयापरः स्यान्निरवद्यभावः ॥ ३०
तया पुनः स्थापयते मनस्स्वं मनः प्रसादाज्जयतीन्द्रियाणि ।
जितेन्द्रियस्त्यक्तपरिग्रहः स्याद्विरक्तसंगो विहरत्यथैकः ॥ ३१
ईर्यापथादिष्वपि चाप्रमत्तो निर्वेदसंवेगविशुद्धभावः ।
परीषहान्दुर्विषहान्विजित्य तपस्क्रियां तां यतते यथोक्ताम् ॥३२
संप्राप्य सार्वज्ञ्यमनुत्तमश्रीर्विधूय कर्माणि निरस्तदोषः ।
निःश्रेयसां शान्तिमुदारसौख्यां लब्ध्वा चिरं तिष्ठति निष्ठितार्थः ॥
इत्येवमुर्वीश्वरसत्सुताय धर्माभिरागोद्यतसत्क्रियाय ।
सम्यक्त्वमिथ्यात्वफलप्रपञ्चं सविस्तरं साधुपतिर्जगाद ॥ ३४
मुनीन्द्रवाक्यादवबुद्ध्य तत्त्वं विहाय मिथ्यात्वमनादिबद्धम् ।
प्रहृष्टरोमाङ्कुरिताङ्गयष्टिः कृताञ्जलिर्वाक्यमिदं बभाषे ॥ ३५
अणुव्रतानां परिपालका ये ते मङ्गलं ये च तपश्चरन्ते ।
स्थातुं तपस्युग्रतमे न शक्तो व्रतानि देष्टुं कुरु मे प्रसादम् ॥ ३६
भवत्प्रसादोदयलब्धदृष्टिः कुतीर्थदुर्मार्गनिवृत्तदृष्टिः ।
नरामरैरप्यविकम्प्यदृष्टिर्व्रतानि गृह्णाम्यहमात्मशक्त्या ॥ ३७
मदोद्धतैः क्षत्रियपुङ्गवैस्तैः परस्पराघातनिमित्तजातम् ।
विहाय तद्युद्धमुखं तदेकं[3] मुने परप्राणिदया ममार्थं[4] ॥ २८

१ क द्रुत. २ म अनुत्तमा श्रीः. ३ [तथैकं]. ४ [ममास्तु].

परोपघातानृतदुर्वचांसि परस्वहारित्वमपार्थरोषः ।
पराङ्गनालिङ्गनसंगसौख्यमाजीवितान्तादमुचं यतीश ॥ ३९
निशम्य भव्यस्य वचो मुनीन्द्रः प्रसन्नभावस्य समाहितस्य ।
कृताभ्यनुज्ञः[1] स्वयमेव तस्मै चकार सम्यग्व्रतरोपणानि ॥ ४०
तेषां व्रतानां बहुभिः प्रकारैः फलान्यभिप्रेतफलप्रदानि ।
इहाप्यमुत्रापि यशस्कराणि प्रदर्शयामास नृपात्मजाय ॥४१
अन्धो यथा तुष्यति नेत्रलाभान्निधेः प्रलाभाच्च यथा दरिद्रः ।
तथा गृहीतव्रतभारसारो ह्यभूतपूर्वां मुदमाससाद ॥ ४२
महर्षिपादावभिनूय भूयस्तपोऽधिकाञ्शीलनिधींश्च साधून् ।
प्रदक्षिणीकृत्य पुनः प्रवन्द्य विसर्जयामास यथानुपूर्व्या ॥ ४३
गृहीतसम्यक्त्वदृढव्रतात्मा आत्मर्षिदेवैः कृतसाक्षिकस्तु ।
मुनेर्गुणांस्तान् हृदि संविधाय[2] लब्धाभ्यनुज्ञः पुरमभ्यगच्छत्॥४४
पुरं विशालं प्रविभक्तशालं चन्द्रांशुजालामलकीर्तिमालम् ।
अरातिसैन्यक्षपणातिकालं विवेश वृद्धैः क्रमशः सलीलम् ॥४५
नरेन्द्रपुत्रो नगरं प्रविश्य वयोपचारं[3] पितरौ समीक्ष्य ।
प्रणम्य पादं प्रणिपातनार्हं सुखं निविष्टो मुनिसंकथाभिः ॥४६
तथा[4] तपस्को विजहार यत्र ततश्चकार स्वशिरः शयानः ।
बालस्वभावं प्रविहाय विद्वान्प्रज्ञानुवृत्तिं प्रचचार धीरः ॥ ४७
प्रातः कुमारः कृतमङ्गलार्थो जिनेन्द्रबिम्बार्चनतत्परोऽभूत् ।
ततो गुरून्साधुतमान्प्रपूज्य पश्यत्युपस्थानगतः स्वकार्यम् ॥ ४८
तत्रोपविष्टो जिनदेवमार्गं प्रकाशयन्संकथयन्परेभ्यः ।
विचारयन् हेतुभिरप्रदृष्टैः पुरोत्तमेऽरंस्त सदा वराङ्गः ॥ ४९

१ म कृताभिनुज्ञैः. २ [संनिधाय]. ३ [नयोपचारं]. ४ [तदा तपस्वी].

स्थानासने निष्क्रमणे सभासु शय्याधिरोहे क्षुतजृम्भणेषु ।
सदा नमस्कारपदानि पञ्च करोति सद्भावपुरस्सराणि ॥ ५०
प्रजेष्टकारी मितमृष्टभाषी विशिष्टशास्त्रार्थनिविष्टबुद्धिः ।
अशिष्टशासी खलु शिष्टपाली कुदृष्टिदृष्टान्तपथैरपेतः ॥ ५१
ग्लानातिबालस्थविराङ्गनानां मर्यादया पश्यति कार्यजातम् ।
दयापरान्धर्मरुचीन्विनीतान्प्राज्ञांश्च सन्मानयते यथावत् ॥ ५२
नृपस्तु पुत्रस्य गुणानुदाराञ्जनेरितान्संसदि संनिशम्य ।
प्रहृष्टचेताः प्रियकृत्प्रजानां कृतार्थमात्मानममंस्त सद्यः ॥ ५३
स्वपुत्रसत्कृत्यनुरक्तबुद्धेर्नृपस्य चित्तानुगतं विदित्वा ।
अनन्तचित्राजितदेवसाह्वौ विज्ञापयन्मन्त्रिवरा नरेन्द्रम् ॥ ५४
प्रकृत्यनुज्ञातगुणो विनीतो दक्षः कृतज्ञश्च कृती सुशास्त्रः ।
एतेषु सर्वेषु भवत्सुतेषु योग्यः प्रजाः पालयितुं वराङ्गः ॥ ५५
तेषां हितप्रीतिनिवेदकानां स्वराज्यसंवर्धनतत्पराणाम् ।
निशम्य वाक्यान्यनुमन्य राजा राज्याभिषेकाय शशास सर्वान् ॥
आज्ञापितास्ते वसुधेश्वरेण अमात्यसेनापतिमन्त्रिवर्गाः ।
श्रेष्ठिप्रधानाः पुरवासिनश्च संपादयांचक्रुरभीप्सितानि ॥ ५७
वीथिप्रवेशोद्धृतकेतुमाला विन्यस्तनानाबलिभक्तिचित्राः ।
पर्णापिधानोज्ज्वलपूर्णकुम्भाः सतोरणालम्बितलोलमालाः ॥५८
सुगन्धिसच्चन्दनकुङ्कुमाक्ता महार्घ्यवस्त्राभरणा युवानः ।
गृहीतचित्रध्वजपाणयस्ते आजग्मुरत्युज्ज्वलचारुवेषाः ॥ ५९
पुराङ्गना मङ्गलयोग्यलीलाः सलञ्जिकाः सिञ्जितभूषणाढ्याः ।
अलङ्कृताङ्ग्यः समदाः सलीलं समन्ततो निर्ययुरम्बुजास्याः ॥

१ क प्रचेष्टकारी. २ क पथेरुपेतः. ३ [°धीवराह्वा]. ४ [व्यज्ञापयन्].

शुभे मुहूर्ते करणे तिथौ च सौम्यग्रहेषूपचयस्थितेषु ।
सिंहासने श्रीमति राजपुत्रं निवेशयां पूर्वमुखं बभूवुः ॥ ६१
आनन्दितप्रीतिमुखे हताशाः[1] पुरप्रवेशं सकलं ननाद (?) ।
वंशा मृदङ्गाः पणवाः स्वरैस्स्वैरापूरयां सर्वदिशां बभूवुः ॥ ६२
अष्टादशश्रेणिगणप्रधाना बहुप्रकारैर्मणिरत्नमिश्रैः ।
गन्धोदकैश्चन्दनवारिभिश्च पादाभिषेकं प्रथमं प्रचक्रुः ॥ ६३
सामन्तभूमीश्वरभोजमुख्या आमात्यसांवत्सरमन्त्रिणश्च ।
ते रत्नकुम्भैर्वरवारिपूर्णैर्मूर्धाभिषेकं मुदिताः प्रचक्रुः ॥ ६४
स्वयं नरेन्द्रो युवराजपट्टं पुरस्कृतश्रीयशसे बबन्ध ।
नृपाज्ञयाष्टौ वरचामराणि संचिक्षिपुस्तान्यभितस्तरुण्यः ॥ ६५
चलत्पताकोज्ज्वलकेतुमाला प्राकारकाञ्ची स्तुतितूर्यनादा ।
प्रपूर्णकुम्भोरुपयोधरा सा पुराङ्गना लब्धपतिस्तुतोष ॥ ६६
सबालवृद्धं जनमात्मनीनं पुराणि राष्ट्राणि च पत्तनानि ।
यानानि रत्नानि च वाहनानि समर्पयद्भूमिपतिः सुताय ॥ ६७
यथा मयि स्नेहनिबद्धचित्ताः सर्वे भवन्तो मम शासनस्थाः ।
तथावनीन्द्रास्तनयस्य नित्यं भवन्तु[2] वश्या इति तानुवाच ॥ ६८
जगज्जना बालनराधिपं तं श्रियोज्ज्वलन्तं नयनाभिरामम् ।
किरीटसत्कुण्डलहारभारं[3] प्रोचुः समीक्ष्यात्ममनोगतानि ॥ ६९
सर्वान्नरेन्द्रानभिभूय भासा रराज सम्यग्युवराज एषः ।
प्रणष्टमेघे गगने निशायां ग्रहानिवैकः परिपूर्णचन्द्रः ॥ ७०
एतस्य पूर्वार्जितपुण्यबीजं विद्मो वयं चेदमितप्रभस्य ।
विसृज्य पूर्वापरयोर्गतारं[4] समर्चयिष्याम इति व्यवोचत्[5] ॥ ७१

१ क हताशा. २ म भजन्तु. ३ क तिरीट°. ४ [°योग्यतां च]. ५ [व्यवोचन्].

दायादकानां च नृपात्मजानां चेतांसि तान्याकुलितान्यभूवन् ।
कुलं बलं रूपमपीह लब्ध्वा स्थानं च यन्न ह्यलभामहीति ॥७२
ग्रहाश्च तारा निशि मन्दमन्दं प्रकाशमानाः पुनरर्कभासा ।
आदर्शनं[1] यान्ति यथैव लोके तथा वयं बालनृपार्कभासा ॥ ७३
बाल्यात्प्रभृत्येव हि मल्लयुद्धे प्रधावने वा हयवारणानाम्[2] ।
पञ्चायुधे शास्त्रपरीक्षणे वा नास्मत्समो बालनृपः कदाचित् ॥७४
संसेव्य तादृग्विधमल्पसत्त्वं संजीवमानो[3] मरणं वरं तत् ।
देशातिथित्वं ज्वलनप्रवेशो विषाशनं वा क्षममित्यवोचन्[4] ॥ ७५
तेषां पुनर्मानमदोद्धतानां नृपात्मजानां वचनं निशम्य ।
प्रत्यूचुरन्ये क्षितिपालपुत्रा औदार्यतो[5] रागविनोदनाय ॥७६
सत्त्वाधिकः शिल्पकलाविदग्धो विपश्चिदप्युन्नतवंशजो वा ।
रूपान्विता वा कृतिनः पुरस्तात्प्रधावतीत्येष विनिश्चयो नः ॥७७
पुष्पाणि ताम्बूलविलेपनानि चित्राणि वस्त्राणि विभूषणानि ।
आ बाल्यतो वः प्रविभज्य भुङ्क्ते न तस्य हानिर्भवतां विनाशः७८
केनाभिषिक्तः करिराड्नेषु तत्तुल्यरूपास्त्वितरे गजाश्च ।
वन्या गजास्तेऽपि वशानुगाश्चेत्कथं न वश्यः परपोषजीवी[6] ॥७९
न शक्यतेऽर्कः स्थगितुं करेण नासूयतां[7] नश्यति या परस्त्रीः[8] ।
अपुण्यवद्भिः कृतपूर्वपुण्याः संसेवनीया इति लोकसिद्धम् ॥ ८०
अथेतरे मानमदान्धनेत्रा भृशं स्वरोषस्फुरिताधरोष्ठाः ।
सगद्गदासक्तनिघृष्टवाक्या नृपात्मजोक्ताश्चुक्रुपुस्तदानीम् ॥ ८१

१ [अदर्शनं]. २ क हयवारणेषु. ३ [संजीवता नो]. ४ म अवोचत्. ५ म चौदार्यतो. ६ क परमोपजीवी. ७ [नासूयया]. ८ [परश्रीः].

राजात्मजा किं न भवाम सर्वे किं मातरोऽन्येनुमताः[1] कुलीनाः ।
किं शौर्यवीर्यद्युतिधैर्यहीनाः किं वाथ लोके व्यवहारबाह्याः ॥ ८२
स किं विसोढुं युवराज्यभारं स्थितेषु चास्मासु विगृह्य सक्तैः[2] ।
सुवर्णसारो निकषोपलेन भविष्यति व्यक्तिरवश्यमाशु[3] ॥ ८३
इत्येवमाभाष्य नरेन्द्रपुत्राः परस्पराकूतविनिश्चयार्थाः ।
ततः सुषेणप्रमुखा नृशंसा उत्तस्थुरत्र व्यवहारबुद्ध्या ॥ ८४
ते मन्त्रिणस्तान्सहसा समीक्ष्य विजृम्भितक्रोधविरूढदर्पान् ।
निष्केवलं वाक्कलहप्रवृत्तान्निवारयां राजसुतान् बभूवुः ॥ ८५

युवनृपतिमुदीक्ष्य राजपुत्रा-
स्तुतुषुरुदारधियः स्वभावभद्राः ।
सकलुषहृदयाः प्रवृद्धरागा
रुरुषुरनुष्ठितमत्सरास्तथान्ये ॥ ८६
अथ युवनृपतिर्विशालपुण्यः
सकलदिगन्तविसर्पिकीर्तिमालः ।
अवनिमुदधिमेखलाकलापां
मुदितजनां स बभूव जेतुकामः ॥ ८७

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
युवराज्यलाभो नाम
एकादशमः[4] सर्गः ।

---

१ [मातरो नो न मताः]. २ [शक्त]. ३ [व्यक्तम°]. ४ [एकादशः].

[द्वादशः सर्गः]

नृपाङ्गनाभिर्वररूपिणीभिः सहोपविष्टा नरदेवदेवी ।
तुतोष पुत्रस्य हि राज्यलाभं संश्रुत्य राजप्रहितान्मनुष्यात् ॥ १
अभ्यागतं प्रीतिनिवेदनाय संपूज्य वस्त्राभरणप्रदानैः ।
नरेन्द्रपत्नी स्वजनस्य मध्ये अद्यास्मि देवीति मुदाभ्यवोचत् ॥२
श्रुत्वा वराङ्गस्य हि यौवराज्यं सर्वाः सपत्न्यो गिरमित्थमूचुः ।
अस्माकमस्मत्सुतबान्धवानां पुरापि नाथासि विशेषतोऽद्य ॥ ३
तासां समाजे नृपसुन्दरीणां काचिन्नृपेष्टा मृगपूर्वसेना ।
अमर्षसंक्षोभितमानसा सा अधोमुखी स्वं भवनं जगाम ॥ ४
तत्रोपविश्य स्रवदश्रुनेत्रा कराग्रसंधारितवामगण्डा ।
विचिन्तयन्ती कृतमीश्वरेण निनिन्द सा दुःकृतपाकमित्थम् ॥ ५
न स्यात्सुतः किं नृपतेः प्रियो वा के वा गुणा मत्तनये न सन्ति ।
ज्येष्ठे सुते राज्यधुरः समर्थे पराभिषेकं तु कथं सहिष्ये ॥ ६
इत्येवमात्मन्यविचार्य कार्यं मुहुर्मुहुः कोपवशाज्ज्वलन्ती ।
सुषेणमाहूय विविक्तदेशे प्रोवाच राज्ञी सुतमात्मनस्तम् ॥ ७
नो वत्स कार्यं विदितं त्वयैव वराङ्गनाम्नो युवराज्यलाभम् ।
ज्ञात्वा यतः क्षीणनृपात्मशक्तिः स्थितोऽसि तूष्णीं धिग्पौरुषत्वम्
नीचानुवृत्तेः प्रियजीवितस्य निरस्तसत्त्वस्य हि मन्दशक्तेः ।
परावधूतार्थपराक्रमस्य का जन्मवर्त्ता भुवि पुत्र पुंसः ॥ ९
समीक्षमाणा गुणदेविकायास्तस्याः सुतस्यापि वरां विभूतिम् ।
प्राणान्विसोढुं न सहेऽतिमात्रं शिरस्तु मे विस्फुटतीव कोपात् १०

१ क साधुः कृत°. २ [ज्ञात्वा च यत्क्षीण°]. ३ [धिगपौरुषत्वम्]. ४ म जन्मवर्ता (जन्मवार्ता ?). ५ क अतिमात्रां. ६ क निस्फुटति.

मात्रैवमुक्तो निजगौ सुषेणो नैवाम्ब नाज्ञायि न चानशक्तेः (?)।
राज्ञा कृतं वेत्त्यनवेक्ष्य सर्वमथाशिषं युद्धमतिं विगृह्य ॥ ११
तदैव कैश्चिन्नृपजैः सहायैरुद्यम्य खड्गं स्फुरदंशुजालम् ।
त्वं वा महीं पाह्यथवा वयं वा इति स्थितं मान्यरुचत्स मन्त्री[1] १२
वचो निशम्यात्मसुतस्य राज्ञी आहूय तं मन्त्रिणमात्मनीनम् ।
पूर्वोपचारैरभिसंप्रपूज्य वचः प्रसह्येदमवोचदित्थम् ॥ १३
यथा पितृभ्यां प्रहितोऽस्मदर्थं तथोपकारो भवता कृतश्च ।
यत्नैर्द्रुमं संपरिवर्ध्य भूयो विच्छेत्स्यसि त्वं तव का चिकीर्षा १४
वयं विशुद्धा यदि च त्वदर्थे अस्मत्सुहृद्भिः सुकृतं यदि स्यात् ।
निवर्त्य तस्याद्य हि यौवराज्यं सुषेणमास्थापय यौवराज्ये ॥१५
न्यायादपेतं यदि युक्तिमच्च[2] निशम्य राज्ञीवचनं सुबुद्धिः ।
अपक्षरागस्त्वतिदूरदर्शी चिरं परीक्ष्यैतदवोचदर्थम् ॥ १६
वाञ्छन्ति ये नाशयितुं सपुण्यं ते यान्ति पूर्वं हि विनाशमाशु ।
मत्तद्विपेन्द्रैः सह युध्यमानाः प्रयान्ति नाशं कलभाः पुरैव ॥१७
न शक्यते स्थापयितुं गतश्रीर्न शक्यते नाशयितुं पृथुश्रीः ।
यथात्मना पूर्वमुपाश्रितश्रीस्तथैव सा संश्रयते नरः श्रीः[3] ॥ १८
अनागतं कार्यमुपस्थितं च येऽनात्मबुद्ध्या प्रविचारयन्ति[4] ।
स्वकार्यसिद्धिं ह्यनवाप्य मूढास्ते सांश्रितैस्तैः सह यान्ति नाशम् १९
अबुद्धिमद्भिः प्रवितर्कितोऽर्थो विनाशमभ्येष्यति निश्चयेन ।
आश्रित्य तस्माद्युवराजमेव संजीवनं नो हितमित्युवाच ॥ २०
इत्युत्तरं बुद्धिमतोपदिष्टं प्रत्युत्तरं वक्तुमसावशक्ता ।
सा मन्त्रिणं प्रार्थितकार्यसिद्धौ प्रयाचमाना ससुतेन देवी ॥ २१

---

१ [मा न्यरुधत्]. २ [यदयुक्तिमच्च]. ३ क नर श्रीः, [नरं श्रीः]. ४ क प्रतिचारयन्ति.

संचिन्त्य मन्त्री स्वशिरः प्रकम्प्य स्वस्वामिसंबन्धमवेक्षमाणः ।
संपूज्य देवीं सस्तुतां नताङ्गो भक्त्या क्रियाविद्भिरमित्युवाच ॥ २२
यद्यस्ति पुण्यं तनयस्य तेऽस्य[1] तन्मे सहायत्वमुपैति देवि ।
कालेऽभ्युपायोद्यतशस्त्रशक्तिः सिद्ध्यै यतिष्ये धृतिमोह[2] साध्वि ॥
अन्योन्यसंप्रत्ययकारणानि परैरवज्ञातपथस्थितानि ।
रहस्युपामन्त्र्य तदर्थजानि शनैरपेयुर्दृढगूढमन्त्राः ॥ २४
संधर्तुकामश्च सुषेणराज्यं वराङ्गराज्यं विनिहन्तुकामः ।
तिष्ठन्व्रजञ्जाग्रदपि स्वयं च रन्ध्राणि पश्यन्प्रणिनाय कालम् ॥
उद्यानयाने बलदर्शने वा सभास्वरण्येषु पुरान्तरेषु ।
क्रीडासु नानाविधकल्पनासु छिद्रप्रहारी स बभूव तस्य ॥ २६
ताम्बूलधूपाञ्जनभैषजेषु वस्त्राद्यलङ्कारविलेपनेषु ।
मालासु शय्यासनवाहनेषु द्रष्टुं[3] नरं प्राणि शशाक राज्ञः ॥ २७
नवान्नवांस्तानपरिश्रमेण प्राप्तानुदारान्विषयोपभोगान् ।
अभ्यर्थमानानकृतैर्मनुष्यैः समश्नुवानस्य जगाम कालः ॥ २८
ततः कदाचिद्भृगलीश्वरेण संप्रेषितौ तौ युवभूमिपाय ।
जात्या किशोरौ कमनीयरूपावावासभूमौ शुभलक्षणानाम् ॥ २९
शुभान्वयौ बालमृगेन्द्रतुल्यौ हयोत्तमौ भूमिपतिः समीक्ष्य ।
को नाम शक्तो विनिनेतुमेतावित्यभ्यवोचत्सहसा सभायाम्[4] ॥ ३०
तद्वाक्यलब्धावसरः स मन्त्री उत्थाय सोऽन्तर्हृदि जातहर्षः ।
मत्तोऽस्ति काश्चित्पुरुषो विनेता द्रक्ष्यामि सार्धं[5] कतिचिद्दिनानि ॥
इत्युक्तवन्तं गतवन्तमन्तं शास्त्रार्णवस्योत्तरमन्त्रिणं तम् ।
संपूज्य राजा वरहेमरत्नैरश्वोत्तमौ तौ विससर्ज तस्मै ॥ ३२

---

१ म तस्य. २ म धृतिमोह°. ३ [द्रष्टुं न रन्ध्राणि]. ४ क विनेतुमेता°, [शक्तो हि विनेतु°]. ५ [सार्थं].

तेनाश्वशास्त्रक्रमकोविदेन मासैश्चतुर्भिः परिपुष्टगात्रौ ।
धूपाञ्जनैर्मन्त्रपवित्रभूतैर्हयोत्तमौ तौ दमितौ यथावत् ॥ ३३
न्यायोपदेशेन च दान्त एको मायाप्रयोगेन तथा द्वितीयः ।
गृहीतशिक्षौ तपनीयभाण्डावादाय मन्त्री नृपमाससाद[1] ॥ ३४
पुराद्बहिर्मण्डलभूमिमध्ये आरुह्य सोऽश्वं जनतासमक्षम् ।
वीथीविभागैर्गमयन्सलीलं जहार सद्यो युवराजचित्तम् ॥ ३५
अश्वक्रियास्वप्रतिकौशलस्य ज्ञात्वा कुमारस्य सदर्थतोषम्[2] ।
सर्वांश्च सभ्यानभिसंस्तुवानानुवाच मन्त्री प्रियमित्थमाशु ॥ ३६
अतो विशिष्टो हय एष राजंस्तवैव योग्यस्त्विति संप्रभाष्य ।
दुःशिक्षितं वारितवाँगशीलं[3] निवेदयामास युवेश्वराय ॥ ३७
प्राप्तव्यतायास्तुरगानुरागाद्युवत्वगर्वोद्धतगौरवाच्च ।
दुर्ग्राहितं तं ह्यपरीक्ष्य साक्षादारोढुमिच्छन्[4] नृपतिस्तदानीम् ॥३८
तुरङ्गमङ्गाङ्गतरङ्गवल्गं सद्रत्नविद्युत्परिणद्धगात्रम् ।
माङ्गल्यवेषः क्रिययाभिरुह्य चित्रं महत्या गमयांबभूव[5] ॥ ३९
अथर्जुना तेन यथाविनीतः कशाकशष्ठैरवबोध्यमानः (?) ।
क्रोधोद्धतो वायुसमानरंहाँ[7] धनुर्विमुक्तेषुरिव प्रयातः ॥ ४०
दुःशिक्षया क्षोभितदुष्टचित्तो नरेश्वरेणाश्वमता श्रमेण ।
निवर्त्यमानोऽप्यनिवृत्तवेगः क्रोधादतिक्रम्य गतोऽतिदूरम् ॥ ४१
संज्ञानभिज्ञेन नरेश्वरेण कृतानि कर्माण्यफलान्यभूवन् ।
उन्मार्गशिक्षे हि तुरङ्गमुख्ये वक्रस्वभावे स्वकृतानि यद्वत् ॥ ४२
द्वाभ्यां भुजाभ्यामथ संनिरोद्धुं यथा यथावाञ्छदतुल्यतेजाः ।
निरुध्यमानस्तुरगो जवेन तथा तथाधावदवार्यवीर्यः ॥ ४३

---

१ म आससार. २ [तदर्थ°]. ३ [°वेग°]. ४ [आरोढुमैच्छत्]. ५ [चित्तं...रमया°]. ६ म शशाक शष्टै°. ७ म °रंहो.

ग्रामाकरांश्चापि मटम्बखेटान्पुराणि राष्ट्राणि बहून्यतीत्य ।
देशान्तमाशु प्रजगाम वाजी पातो यथोत्पातिकवातधूमैः ॥ ४४
अथेतरे वाजिगजा नराश्च महाजवास्तेऽप्यनुगन्तुकामाः ।
नाशक्नुवन्पक्षिगणाः समेताः खे संपतन्तं गरुडं यथैव ॥ ४५
क्वचित्तरूणां गहनान्तरेषु निम्नोन्नतोपान्तवनस्थलीषु ।
तुरङ्गवेगान्न्यपतच्छिरस्स्थं किरीटमङ्गाच्च विभूषणानि ॥ ४६
अथोत्तरीयं निपपात भूमौ माला विशीर्णा हृदयं विषण्णम् ।
तनुश्चकम्पे वदनं शुशोष बभ्राम दृष्टिः पिदधौ श्रुतिश्च ॥ ४७
अथावनीशः क्रममन्दशक्तिर्हयप्रवेगोन्मथितप्रतापः ।
वल्लीतृणाच्छादितकूपरन्ध्रे पपात तेनैव हयेन सार्धम् ॥ ४८
निपत्य तस्मिन्स पुराकृतेन हयो मृतश्चूर्णितसर्वगात्रः ।
लतां गृहीत्वा स्वयमन्तराले कूपाच्छनैरूर्ध्वमथारुरोह ॥ ४९
तत्रोपविश्याप्रतिकान्तरूपः क्षुधा तृषा श्रान्ततनुर्युवेन्द्रः ।
सशर्करापांशुखरप्रदेशे महीतले मोहमुपाजगाम ॥ ५०
आप्यायितः शीतवतानिलेन शनैः समुन्मीलितचारुनेत्रः ।
उच्छ्वस्य दीर्घं स्वतनुं विलोक्य निनिन्द संसारचलस्वभावम् ॥
विचिन्त्य मातापितरौ स्वबन्धून्मित्राणि भृत्यानथ देशकोशान् ।
वधूश्च ता देववधूसमानाः क्लेशाभिभूतो विललाप तत्र ॥ ५२
शोको भवेद्बन्धुजनैर्वियोगाद्धैर्यं त्वभूद्राजसुताभिमानात् ।
कोपोऽभवन्मन्त्रिकृतावमानाद्विरागताभूदनवस्थितत्वात् ॥ ५३
यद्यङ्गनावद्रुदि सत्त्वहीनो निरर्थमासे विजने वनेऽहम् ।
आपत्प्रतीकारमवेक्षमाणो नावश्यमाप्स्यामि पुनर्विभूतिम् ॥ ५४

१ क मडम्ब°. २ क पाथो. ३ म यथोत्पातित°. ४ क तिरीट°. ५ क स्वपुराकृतेन. ६ म स्वयमन्तराणि. ७ [शोकाऽभवद्बन्धु°].

अरण्यवासो न शुभावहो मे इह स्थितेनैव गुणोऽस्ति कश्चित् ।
इतो व्रजामीति मतिं निधाय धृतिं प्रतिष्ठाप्य महानुभागः ॥ ५५
प्रालम्बकाद्यानि विभूषणानि भ्रष्टावशेषाण्यवलुञ्च्य देहात् ।
विसृज्य कूपे च विचिन्त्य दूरं ततः प्रतस्थे नृवरोऽतिसत्त्वः॥५६
भुजङ्गमातङ्गविहङ्गजुष्टां महाटवीं श्वापदसेवितां ताम् ।
अनेकवृक्षक्षुपगुल्मकक्षां चचार दिङ्मूढमतिः स एकः ॥ ५७
सूर्ये तदास्तंगिरिमभ्युपेते व्याघ्रं च तत्कालमनुप्रयातम् ।
समीक्ष्य चासन्नतयातितूर्णं नृपात्मजः पादपमारुरोह ॥ ५८
आहत्य पुच्छेन तलं धराया दृष्ट्वोर्ध्वदृष्टिर्विटपे निविष्टम् ।
उद्वेजयन्भीमवपुस्तदानीं शार्दूलपोतः प्रसभं जगर्ज ॥ ५९
शार्दूलनिर्भत्सनविस्मिताक्षः शाखान्तरे भूमिपतिर्निविश्य ।
निरीक्षमाणः स च तद्विकारान् कृच्छ्रेण रात्रिं गमयांबभूव ॥ ६०
वियोगचिन्ताकलुषीकृतस्य परिश्रमम्लानमुखाम्बुजस्य ।
क्षुत्तर्षतान्तस्य[1] सदुःस्थितस्य एका निशानेकनिशेव सासीत् ॥६१
न चामिषा[2] सा प्रतिबद्धचित्तो निर्गन्तुमिच्छन्निपतिष्यतीति ।
शार्दूलयानप्रतिलिप्समानो न राजपुत्रोऽप्यवरोहमैच्छत्[3] ॥ ६२
इत्थंगते मत्तमहाकरीन्द्रं करेणुभिः सार्धमभिप्रयातम् ।
विलोक्य दूरान्नृपतिर्ननाद व्याघ्रं गजेन्द्रेण विमर्दयिष्यन्[4] ॥ ६३
आकर्ण्य नादं सहसा निवृत्तः क्रोधोद्धतः[5] सोच्छ्रितकर्णपुच्छः ।
विशेषसंप्रश्नुतिदानलेखो[6] गर्जन्गजो वायुरिवाजगाम[7] ॥ ६४

१ म क्षुत्तर्षतार्तस्य. २ [चामिषाशाप्रति°]. ३ [निर्गन्तुमैच्छत्]. ४ क निमर्दयिष्यं, [निमन्त्रयिष्यन्]. ५ [क्रोधोद्धतः]. ६ क संप्रश्रुति, [संप्रस्रुति]. ७ क वाजिरिवाजगाम.

गजं तमायान्तमुदग्रकोपाद्व्याघ्रः समुत्प्लुत्य तदंशकुम्भे ।
दष्टोऽतिरुष्टः स च दन्तकोट्या जघान शार्दूलमधो निहत्य ॥६५
स तस्य संप्रेक्ष्य गजेश्वरस्य जयं महान्तं रिपुमर्दनस्य ।
अन्तर्गतप्रीतिमनाः कृतज्ञो युवेश्वरो वाक्यमिदं जगाद ॥ ६६
ममाशरण्यस्य वने स्थितस्य व्याघ्रातिनिर्भर्त्सनभीषितस्य ।
व्यपेतमित्रार्थकलत्रकस्य त्वयेभ दत्ता प्रियजीविताशा ॥ ६७
गजेश्वरस्त्वं मनुजेश्वरोऽहं त्रातुं भवानेव हि मामतोऽर्हः ।
आपद्गतानां हि सतां सहाया भवन्ति लोके महतां महान्तः ॥६८
पूर्वं महीपालसुतस्त्वभूवन्नीतं सुतोऽहं तव नागवर्य ।
तवोपचारप्रतिकारता हि न शक्यते जन्मशतेन कर्तुम् ॥ ६९
प्रियाभिराभिर्वरहस्तिनीभिर्वनं चिरं पालय वीतशोकः ।
इतीभमित्थं वचनैः प्रशस्य गते करीन्द्रेऽवततार वृक्षात् ॥ ७०
क्षुधाभिभूतस्तृषया परीतः पानीयमिच्छंस्त्वरितं तरस्वी ।
यथौ गजेन्द्रानुविमर्दितेन व्रजन्सरोऽपश्यददूरदेशे ॥ ७१
सरः प्रसन्नोदकमत्यगाधं मन्दानिलोत्कम्पितरङ्गमालम् ।
सच्छन्नफुल्लोत्पलपुण्डरीकं मदप्रलापाण्डजमृष्टनादम् ॥ ७२
तत्तीरफुल्लद्रुममञ्जरीणां गन्धैः सुगन्धीकृतचारुतोयम् ।
मत्तभ्रमत्षट्पदगीतरम्यं मनोहरं शीतलमाससाद ॥ ७३
हंसाङ्गना बालनृपं समीक्ष्य कुलाङ्गनावद्दृशुस्तिरस्थाः ।
अन्तर्दधुः काश्चन काश्चिदस्थुर्मृष्टं जगुर्वैश्यवधूवदन्याः ॥ ७४
आसाद्य तत्तीरमुखप्रदेशं प्रक्षाल्य धीमानथ पाणिपादम् ।
पिपासितः क्षामनयाम्बु शीतं पपौ पलाशेन पयोरुहस्य ॥ ७५

---

१ म तदंशु°, [तदंस°]. २ क दष्टेतिरुष्टः. ३ [°सुतस्त्वभूवमितः]. °४ [पथा]. ५ [संछन्न°]. ६ क °द्दुशुस्त्विरस्थाः, [दुद्रुशुस्तिरस्स्थाः, °स्तटस्थाः]. ७ क °वैश्य. ८ क पिपासितक्षाम°.

सुवर्णरूप्योत्तमभाजनेषु त्रिजातकर्पूरकवासिताम्भः ।
प्रियाकराग्रोपहृतं मनोज्ञं यः पीतवान्राजगृहे यथेष्टम् ॥ ७६
शार्दूललालाविलमध्वखिन्नो वरद्विपानां मदवारितिक्तम् ।
हंसावलिविक्षुब्धतरङ्गमालमसंस्कृतं वारि पपौ कुमारः ॥ ७७
हस्त्यश्वयानान्यभिसंस्कृतानि आरुह्यमाणो भटसंकटेन ।
श्वेतातपत्रोज्ज्वलचामराङ्कः क्रीडार्थमुद्यानवनं ययौ यः ॥ ७८
विनष्टमार्गः स्फुटिताग्रपादो विशीर्णवासा ग्लपिताङ्गयष्टिः ।
स एव पद्भ्यामटवीप्रदेशं खरं सपाषाणमयं चचार ॥ ७९
पुरा हि सच्चन्दनकुङ्कुमाक्तः प्रदग्धकालागरुधूपितो यः ।
स एव संस्वेदमलाविदग्धो बभ्राम कक्षे मलिनाम्बरेण ॥ ८०
पञ्चेन्द्रियाणां विषयाननूनान्यः प्राप्तवान्पुण्यफलोदयेन ।
स एव पूर्वार्जितपुण्यनाशान्नैकेन्द्रियं तर्पयितुं समर्थः ॥ ८१
य एव पर्याप्तसुखार्णवस्थः श्रीमङ्गलाशीर्वचनैः प्रणुत्तः ।
दुर्भाष्यमाणस्त्वपि वासुकुन्तैर्दुःखार्णवे स क्षणतः पपात ॥ ८२
एवंविधानां हि महर्द्धिकानां नैकाकरग्रामपुराधिपानाम् ।
सूर्यस्त्विषामूर्च्छितपौरुषाणां यद्यावदीदृक्क्षणतोऽभ्युपैति ॥ ८३
नित्यं परप्रेषणतत्पराणां नक्तंदिवं क्लेशसहस्रभाजाम् ।
निकृष्टवृत्तित्वमुपागतानां किमस्ति वाच्यं कृमिमानुषाणाम् ॥ ८४

यद्येवं शकटमयोमयं सुबद्धं
तत्स्याच्चेदनिलबलेरणप्रणीतम् ।

---

१ क हस्तावलि°, [हंसावलि°]. २ म °स्त्वसिवासकुन्तौ°, [°स्त्वपि वा शकुन्तैः, °स्त्वशिवं शकुन्तैः]. ३ म नैवाकर°. ४ म कृति°.

यद्भिण्डं[1] प्रचयकृतं प्रभञ्जनेयं
किं तिष्ठेदतिलघुचञ्चलस्वभावम्[2] ॥ ८५
आहोस्वित्कनकमयं शरावपात्रं
तान्निष्ठां व्रजति यदीह मूषिकाभिः ।
श्रद्धेयैः[3] किमु घृतपूरितो गुडाक्तः
श्रीमोदस्थितं[4] इति मूषिकाबिलेषु ॥ ८६
एवं ये धृतिबलसत्त्वसारयुक्ताः
सेवाज्ञामतिविभवोरुधैर्यवन्तः ।
तेऽवस्थामतिविकृतामथाश्नुवीरन्
किं वर्ण्यं मृगपशुभिः समा[5] न पुंसः ॥ ८७
निर्मुच्य स्वजनगतं मनः पृथुश्री-
रात्मानं स तु[6] धृतिसंपदावलम्ब्यम् ।
पीत्वाम्भो विगततृषो युवावनीन्द्रः
स्नानार्थं जलममलं शनैर्जगाहे ॥ ८८

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
युवराजसरोदर्शनो नाम
द्वादशमः[7] सर्गः ।

---

१ म यत्पत्रं. २ क तिष्ठेदतिचलनस्व°. ३ क शुद्धेयुः. ४ [श्रीमोदः]. ५ क समेषु. ६ समधृति°, [शमधृति°]. ७ [द्वादशः].

[त्रयोदशः सर्गः]

सरः प्रविश्योत्पलफुल्लपङ्कजं प्रकृष्टकारण्डवसारसाकुलम् ।
मृदा कषायेण मलापहारिणा निघृष्य सस्नावनुकूलमात्मनः ॥ १
पुनः सरोऽन्तर्गतरागमानसः स्वकर्मनिष्पत्तिफलप्रचोदितः ।
श्रमव्यपोहार्थमगाधवारिणि ततार दोर्भ्यां सुतरं तरङ्गिणि ॥ २
चिरं हि तीर्त्वा कमलोत्पलान्तरे तरङ्गसंगप्रविधौतदेहिनः ।
विनिर्ययासोः सहसानुसृत्य तं जग्राह नक्रश्चरणं महीपतेः ॥ ३
विबुध्य नक्रग्रसनं स दुर्धरं बलाद्बहिर्निष्पतितुं समुद्यतः ।
अशक्नुवन्क्षीणबलो निरास्पदो विचिन्तयामास विषण्णमानसः ॥
व्यपेतशार्दूलभयस्य मे पुनः किमेतदन्यत्समुपस्थितं महत् ।
द्रुमाग्रपातोद्भवदुःखचेतसो बभूव भूयो मुसलाभिघातवत् ॥ ५
पुरे च राष्ट्रे च गिरौ महीतले महोदधौ वा सुहृदां च सन्निधौ ।
नभस्स्थले वा वरगर्भवेश्मनि न मुञ्चति प्राक्कृतकर्म सर्वथा ॥ ६
अयं विधिर्निःप्रतिकारकारणः सुदुर्धरः किं करवाणि सांप्रतम् ।
विचिन्त्य कर्माणि पुरा कृतानि बभूव राजा सुविशुद्धभावनः ॥ ७
अनेकजात्यन्तरदुःखकारकान्कषायदोषान्विषमांस्तथाविधान् ।
विसृज्य जग्राह महाव्रतादिकं परं च निःश्रेयससाधनात्मकम् ॥ ८
विशुद्धवाक्कायमनस्समाहितः कृताञ्जलिर्भक्तिजलार्द्रमानसः ।
नुनाव सामान्यविशेषसत्पदैर्वचोभिरव्याकुलितार्थशोभनैः ॥ ९
गिरां पतिं सद्यशसां च संनिधिं धियामधीशं दहनं स्वकर्मणाम् ।
निसर्गशुद्धान्वयधर्मदर्शिनं जिनं नमामीष्टफलप्रदायिनम् ॥ १०

---

१ म स स्नात्यनु°. २ [सुतरां]. ३ म तरङ्गरङ्ग°. ४ क मुशलाभि°.

विनष्टकर्माष्टकबुद्धिगोचरं
समस्तबोध्येष्टहितार्थदर्शनम् ।
सुदृष्टिचारित्रपथाधिनायकं
नतोऽस्मि निर्वाणसुखैधितं जिनम् ॥ ११
व्यपेतसर्वैषणधीरसद्व्रतं
प्रशस्तशुक्लप्रविधूतदुर्नयम् ।
अवाप्तनिर्वाणसुखं निरामयं
नतोऽस्मि तं विघ्नविनायकं जिनम् ॥ १२
प्रशस्यतां दृष्टिपथानुरोधिनीं
सुरूपतां चापि सुयौवनं वपुः ।
सुबिभ्रतो यस्य मनो मनोभुवा
न नाशितं तं प्रणतोऽस्मि यत्नतः ॥ १३
चतुर्विधामेत्य गतिं सुदुःखिताः
स्मराग्निना ये निहताः शरीरिणः ।
शमाम्भसा शान्तिमिताः स यस्य वै
जिनो हि मेऽद्य प्रददातु सत्सुखम् ॥ १४
शरीरिकायस्थितिसंगदर्शिनं
निरञ्जनं निर्दुरितं निरामयम् ।
अमोघविद्यं निरवद्ययोगिनं
शरण्यतां यामि तमद्य शान्तये ॥ १५
त्रिलोकबन्धुस्त्रिजगत्प्रजाहित-
स्त्रिलोकचूडामणिराप्तकेवलः ।

१ क शरीर°.

त्रिकालदर्शी सुव्रतिं समेयिवा-
न्स मां जिनो रक्षतु दुःखसंकटात् ॥ १६
सजातयो रोगजरोरुमृत्यवो
यथाक्रमं लोकमिमं जिघांसवः ।
समुद्धृता येन चिराय निस्तुषाः
स मे विमुक्तिं विदधातु नक्रतः ॥ १७
निरस्तदुर्नीतिविशेषसाधनो
विशिष्टदिव्याष्टसहस्रलक्षणः ।
परीषहक्लेशविजिष्णुरद्य मां
स रक्षतु ग्राहमुखाज्जिनेश्वरः ॥ १८
इति स्तुवानं प्रविशुद्धचेतसं
स्थितं च सम्यग्जिनदेववर्त्मनि ।
स्तुतिप्रसादैधितपुण्यपौरुषं
ददर्श यक्षी सहसा नृपात्मजम् ॥ १९
निरीक्ष्य या तं भृशमापदि स्थितं
दयान्विता सा वसदारितात्मकम्[1] ।
अदृष्टरूपा शनकैः सुदर्शना
विमोचयां ग्राहभयाद्बभूव ॥ २०
अपेतनक्रो बहिरेत्य तत्क्षणा-
त्सविस्मयः सर्वदिशो निरीक्ष्य च ।
न किंचिदैक्षिष्ट विमोचकं परं
जिनप्रसादादिदमित्यमन्यत ॥ २१

१ [व्रतधारि °].

इदं मनुष्यत्वमनेकजन्मतः
सुलभ्य जात्यादिगुणांश्च सर्वथा ।
प्रवञ्चितो मोहबलैरितः स्मृति-[1]
रितस्त्रिभिः शुद्धतमोऽस्मि नित्यशः ॥ २२
तपश्च सज्ज्ञानमनूनदर्शनं
त्रिरत्नमेतत्त्रिजगद्धितप्रदम् ।
जिनप्रसादोदयतो भवे भवे
तदस्तु मे संसृतिमोक्षकारणम् ॥ २३
इति ब्रुवाणस्य महीपतेः शनै-
र्निशम्य देवी वचनं प्रसन्नवत् ।
विसृज्य वैकारिकरूपमात्मनः
स्थिता पुरस्ताद्विपरीक्षितुं पुनः ॥ २४
प्रलम्बहारोज्ज्वलहेमकुण्डला
प्रफुल्लमौलस्तबकावतंसिनी ।
कराग्रसंधारितमाधवीलता
वराङ्गना सस्मितमब्रवीद्वचः ॥ २५
विबोद्धुमिच्छाम्यहमागमः कुतः
इह स्थितो वा किमु ते प्रयोजनम् ।
क्व वा गमिष्यस्यमुतः प्रदेशा-
न्न चेद्विरोधोऽस्ति वदार्य मे स्फुटम् ॥ २६
स तां निरीक्ष्याप्रतिरूपकारिणीं
विचारयामास यथावदीश्वरः ।

१ °ब लैरितिस्मृतीरित°]. २ [°माला].

इयं हि किं दिव्यवधूर्न मानुषी
मनुष्यवेषा किमु राक्षसी स्वयम् ॥ २७
निराश्रये श्वापदसेविते वने
व्यपेतशङ्का विजने विलासिनी ।
प्रवर्तितभ्रूललिताननेन्दुना
समेत्य मां पृच्छसि का नु कस्य वा ॥ २८
निगूह्य भावं स्वमनीषितं हि सा
ह्यथान्यदुक्त्वा वचसाविशङ्किनी ।
व्यपेतपुण्या वसुधेश्वरात्मजा
वसामि मूढेति जगाद देवता ॥ २९
परिभ्रमन्ती कृतपूर्वधर्मतो
भवन्तमद्राक्षमिहैव सांप्रतम् ।
इतः प्रभृत्येव वशानुवर्तिनी
भवेयमार्तामगतिं गृहाण माम् ॥ ३०
अहं सुदुःखा प्रविनष्टचेतना
निरास्पदा तत्प्रतिकारदुर्लभा ।
त्वमेव भर्ता शरणं गतिश्च मे
किमर्थमासे प्रतिवाक्यदुर्लभः ॥ ३१
अनेकविज्ञानकलाविदग्धया
तयाभिपृष्टो बहुशः प्रगल्भया ।
स्वकेशवस्त्राङ्गविरूक्षतां स्वयं
समीक्ष्य तां किंचिदुवाच लज्जितः ॥ ३२

१ [सदुःखा].

सुभाषितं खल्विदमात्मनो वचः
प्रियं च तथ्यं च तथैव शोभते ।
न मे गतिः काचिदपीह विद्यते
गतिस्तवार्ये कथमस्मि कथ्यताम् ॥ ३३
स्वयं प्रबुद्धः प्रतिबोधयेत्परान्
परान्[1] प्रतिष्ठापयते स्वयं स्थितः ।
स्वयं न बुद्धस्त्वनवस्थितः कथं
परानवस्थापनरोधनक्षमः[2] ॥ ३४
अथैवमुक्तानुजगाद सा गिरं
न युज्यते ते प्रतिवाक्यमीदृशम् ।
निगद्यते कापुरुषैरकामिभिः
प्रतीच्छ मां भक्तिमतीमुपाश्रिताम् ॥ ३५
तयोदितं वाक्यमनङ्गसाधनं
निशम्य सद्यौवनरूपवानपि ।
स्वदारसंतोषरतिव्रतं महद्
विचिन्त्य तामित्थमुवाच भूपतिः ॥ ३६
अहं पुरा सर्वदृशस्तु पादयोः
प्रणम्य मूर्ध्ना बहुमानतोऽर्हतः ।
स्वदारसंतोषसमाहितं व्रतं
गृहीतवानस्मि मुनीन्द्रसाक्षिकम् ॥ ३७
न वा न काम्यस्मि न चास्म्यपौरुषो
न कामिनी वापि[3] सुगात्रि चिन्त्यताम् ।

१ म परा. २ [°बोधन°]. ३ क नोपि.

गृहीतदारव्रतभूषणस्य मे
अयुक्तमेतद्व्रतलङ्घनं पुनः ॥ ३८
दृढव्रतत्वे स्थिरबुद्धितां तदा
विबुध्य[1] देवी परिहृष्टमानसा ।
स्थिता स्वरूपेण नभस्युवाच सा
परीक्षणायाकृतमृष्यतामिति[2] ॥ ३९
सुदर्शनेनाप्रतिमेन केवलं
स्थिता वयं शीलगुणैर्विवर्जिताः ।
व्रतेन सद्दृष्टियथानुगामिना[3]
स्थिता यतस्तेन सुराधिको भवान् ॥ ४०
स्वसा तवाहं नरदेव धर्मतो
गुरुर्महान्नो[4] वरदत्तसन्मुनिः ।
तवास्तु तद्भद्रमिति प्रशस्य तं
नभस्स्थले सान्तरधाच्च तत्क्षणात् ॥ ४१
ततो विमुक्तो भयसंकटद्वया-
दितः किमु स्यात्करणीयमुत्तरम् ।
प्रयाम्यथासे किमु वा करोम्यह-
मितीहमानो गमनं व्यरोचत ॥ ४२
शनैः समुत्थाय ततो युवाधिपो
वरं वनं स्निग्धतरूपशोभितम् ।
गिरिस्रवच्छीतजलाविलान्तरे
ददर्श रम्यं पनसं फलाकुलम् ॥ ४३

---

१ म निबुध्य. २ क °मुष्यताम्, [परीक्षणायै]. ३ [°पथा°]. ४ क सुधीगु (र्गु) रुर्नो.

स तैः फलैर्हेमसमानकोशकैः
पितॄन्प्रतर्प्य प्रविनीय तु क्षुधाम् ।
स्वकार्यसिद्ध्यै नृपतिर्वनान्तरा-
त्ततः प्रतस्थे वरनागविक्रमः ॥ ४४
नदीरगाधा ह्रदवारिकाकुला[1]
गिरींश्च निम्नोन्नतदुर्गसंकटान् ।
वनप्रदेशांस्तरुषण्डमण्डिता-
न्भुजद्वितीयो विचचार सोद्यमः ॥ ४५
विशीर्णवस्त्राः कपिलाङ्गमूर्धजाः[2]
प्रवृद्धगण्डस्थलरोमभीषणाः ।
सिताग्रदन्ता रुधिरोरुदृष्टयः
पिपीलिकापङ्क्तिनिभा वनेचराः ॥ ४६
परिभ्रमन्तं गिरिकन्दरोदरे
यदृच्छया तं ददृशुः पुलिन्दकाः[3] ।
गृहीतदण्डासिशरासनात्मकाः
प्रतर्जयन्तः परिवव्रिरे नृपम् ॥ ४७
परीत्य सर्वे युगपन्निगृह्यता-
मितः कुतो मा चल दीनजीवित ।
क्व गच्छसीति प्रतिगृह्य निर्दया
बबन्धुरुद्भ्रान्तकुलाग्रपाणयः ॥ ४८
लतां गले संपरिषज्य दुर्दमा
मुहुस्तुदन्तो धनुरग्रकोटिभिः ।

१ क ह्रदवालकाकुला, [ह्रदवारिजाकुला]. २ म कपिलाग्र°. ३ म पुलीन्द्रकाः.

अदण्डनार्हं सुकुमारमीश्वरं
विनिन्युरात्मावसथाय दस्यवः ॥ ४९
पुलीन्द्रपल्लीं द्विपदन्तसंवृतां
मृगास्थिमांसोरुकलेवराञ्चिताम् ।
वसान्त्रवल्लूरविकीर्णमण्डपां
प्रवेशयामासुरनिष्टगन्धिनीम् ॥ ५०
दुरात्मभिर्व्याधजनैरभिद्रुतः
सबन्धनो वेदनया विरूक्षितः ।
जुगुप्सनीये नयनाप्रिये गृहे
स्मरन्न शेते स्वपुराकृतां क्रियाम् ॥ ५१
कुमन्त्रिणा मन्त्रमुखेन वैरिणा
समर्पितं प्राप्य तुरङ्गमाधमम् ।
इमामवस्थामनुभूय सांप्रतं
क्व वा गमिष्यामि कृतान्त कथ्यताम् ॥ ५२
पुरा मया किं तु[1] कृतं ह्यजानता
विपाकतिक्तं हि दुरीहितात्मना ।
अनेकदुःखार्णववीचिसंकटा-
न्निवृत्तिरद्यापि न मेऽस्ति पापिनः ॥ ५३
वियोगचिन्तापरिखिन्नचेतस-
स्ततश्च शार्दूलभयाद्विनिर्च्युतः[2] ।
जलाशयान्निर्गमितस्य मे पुनः[3]
इदं महत्कष्टतमं ततोऽभवत् ॥ ५४

१ [किं नु]. २ [विनिश्च्युतः]. ३ क पुनर्विदं, [पुनस्त्विदं].

अहो दुरन्ता दुरनुष्ठिताः क्रिया
अवश्यभाव्यास्त्वविचार्यवीर्यकाः ।
अवन्ध्यरूपाश्च विपाकदुस्सहा
इति प्रचिन्त्यात्मनि मौनमादधौ ॥ ५५
तमोगृहे पूतिकचर्मसंवृते
बहुप्रकारे क्रिमितीव्रदर्शके ।
संमार्जनादिप्रतिकर्मवर्जिते
महीतले शीतलवायुबाधने ॥ ५६
क्षुधापमानाङ्गविबन्धपीडनै-
रनिष्टगन्धद्रवणेऽप्रियेक्षणैः ।
अनात्मवश्यस्य सहस्रसंगुणा
गता निशा सा बहुदुःखचिन्तया ॥ ५७
ततः प्रभाते च कुसुम्भभृत्यका
महीपतिं तं कलुषान्तरात्मकाः ।
प्रगृह्य याता वनदेवतागृहं
द्विजा ऋतुं छागमिव प्रहिंसितुम् ॥ ५८
तदैव कौसुम्भिममेयवीर्यकं
वनं प्रयान्तं मृगयाभिकाङ्क्षया ।
उदग्रकोपश्चरणप्रमर्दना-
द्ददंश दंष्ट्रोग्रविषो भुजंगमः ॥ ५९
स तेन दष्टः क्षणमात्रतः पुनः
पपात भूमौ विषवेगमूर्च्छितः ।

१ [°दशके]. २ [क्रतुच्छागमिव].

विमोहितासुं प्रसमीक्ष्य बान्धवाः
पितुः सकाशं ह्यभिनिन्युरावृताः ॥ ६०
गतासुमुद्वीक्ष्य स तं वनेश्वरो
यथावचार्या[1] गृहमीक्षितुं गतः ।
तमासितं तत्र नृपं सबन्धनं
समीक्ष्य पप्रच्छ विषप्रणाशनम् ॥ ६१
पुलीन्द्रनाथेन[2] स चोदितो भृशं
करोम्यहं निर्विषमित्यभाषत ।
तदैव तुष्टाः परिमुच्य बन्धनं
कुरु प्रसादं त्वमिहात्मसूनवे ॥ ६२
ततो नृपो मन्त्रपुरस्कृतैः पदै-
र्महर्षियोगीश्वरसाधुसाधितैः ।
जिनेश्वराभिष्टवमिश्रिताम्बुभिः
सिषेच तस्मिन्विषदोषहारिभिः ॥ ६३
यथा यथा मन्त्रितवारिबिन्दुभिः
प्रसेचितः कुम्भमुखात्परिस्रुतैः ।
तथा तथा निर्विषतामुपेयुवा-[3]
न्प्रसन्नचेताः प्रकृतिं ययौ पुनः ॥ ६४
ततः कुसुम्भप्रमुखाः पुलीन्द्रकाः
कराङ्गुलिभ्रामणविस्मितेक्षणाः ।
महापराधोऽकुशलात्मभिः कृतः
क्षमस्व नाथेति ययाचिरे भृशम् ॥ ६५

१ [यथापचर्याग्रह°]. २ क पुलिन्द°. ३ [°मुपेयिवान्].

प्रहृष्य भूयः कटकादिभूषणा-
न्विचित्रवस्त्राणि च संप्रदाय ते ।
वराङ्गमेतत्तव योग्यमिष्यतां[1]
श्रमं व्यपोह्य क्रमतः प्रयास्यसि ॥ ६६
तमूचिवान्नोदनकार्यमस्ति मे
न माल्यगन्धाम्बरभूषणादिभिः ।
महापथं दर्शय देशगामिनं
विमुच्यतां लघ्वभियाम्यविघ्नतः ॥ ६७
ततः पुलिन्दाधिपतेश्च शासना-
न्नरैः सुदूरं गमितो नरेश्वरः ।
प्रदर्श्य मार्गान्बहुदेशगामिनः
पुनर्निवृत्ता वनगोचरास्तदा ॥ ६८
गतेषु तेषु स्वकृतानुरूपतां
विचिन्त्य सम्यग्बहुशो नराधिपः ।
स्वदेशयानं प्रति किं विशेषतो[2]
व्रतान्यदेशाटनमिष्यते क्षमः ॥ ६९
किमत्र चिन्त्यं कुशलानुबन्धि[3] य-
त्तदा[4] त्वयुक्तागतिसिद्धिकारकम् ।
यथा परैर्नो परिभूयते पुन-
स्तथा हि कार्यं स्वहिताभिलाषिणा ॥ ७०
महापदं प्राप्य नरोत्तमः पुन-
र्न चेच्छदात्मप्रियबन्धुदर्शनम् ।

१ क वराङ्गमेतत्. २ क विशिष्यतो. ३ म कुशलानुबन्धे. ४ म यदा त्वयुक्ता.

नराधमः स्त्रीधनमानवर्जितः[1]
स बन्धुसंगं कृपणो हि वाञ्छति ॥ ७१
यथैव राज्यादपनीय तत्क्षणा-
च्चकार मां निर्विभवं पुराकृतम् ।
तथैव राज्यं[2] सुकृतं यदस्ति चे-
त्तदैव मां स्थापयतु स्वकालतः ॥ ७२
इमामवस्थामनुभूय यद्यहं
व्रजामि चेद्बन्धुसकाशमाशया ।
भवाम्यरीणां परिहासकारणं
स्वबन्धुमित्रेष्टजनातिशोचनः ॥ ७३
न चोभयं मे परदेशदर्शने
भविष्यतीति स्वमतिं विधाय सः ।
महापथेनाप्रतिमाभपौरुष-
स्ततः प्रतस्थे स्वमतानुसिद्धये ॥ ७४
खरान्प्रदेशान्स्थलनिम्ननिर्जलान्
गिरीन्दरीः काननकक्षकन्दरान् ।
अतीत्य सूर्यास्तमनेऽङ्घ्रिपोपरि
ह्यशेत कायोपसृतिं[3] विचिन्तयन् ॥ ७५
पुनः प्रभाते तरुतोऽवतीर्य तं
प्रयान्तमध्वानमवेक्ष्य सार्थिकाः ।
प्रबाध्य निर्भर्त्स्य निरुध्य निर्दया
उपेत्य पप्रच्छुरथागतिं गतिम् ॥ ७६

---

१ क श्रीधन°. २ [राज्ये...चेत्तदव]. ३ क कायोनुसृतिं, [कायोपस्थितिं].

क्व यासि किं पश्यसि किं प्रयोजनं
क्व वेश्वरो वा क्व च तस्य नाम किम् ।
कियद्बलं वा कतियोजने स्थितं
वदेति संगृह्य बबन्धुरीश्वरम् ॥ ७७
अथागतः सार्थपरीक्षणाय चे-
त्परीक्ष्यतां साधु परीक्ष्य चारिकः ।
प्रवालमुक्तामणिरूप्यकाञ्चनै-
रयं भृतः सार्थ इतो निगद्यताम् ॥ ७८
न चारिकोऽहं न च वित्तमार्गणो
न दुष्टबुद्धिर्न च चौर्यतत्परः ।
न कस्यचित्प्रेष्यजनो भवाम्यहं
भ्रमामि निःकेवलमित्युवाच सः ॥ ७९
वयं न विद्मोऽर्थपतिः प्रमाणको
गुणागुणान्वेषणतत्परायणः ।
स एव जानाति यदत्र युक्तिमा-
निति ब्रुवाणाः पतये प्रणिन्यिरे ॥ ८०
सबन्धनं चारुसमग्रयौवनं
सुलक्षणव्यञ्जनलक्षविग्रहम् ।
समीक्ष्य सार्थाधिपतिर्न तस्करो
विमुच्यतां लघ्वयमित्युवाच सः ॥ ८१
नरेन्द्रपुत्रः स्वयमेव वा नृपः
शरीरचार्वाकृतिसौम्यदर्शनः ।

१ क नः केवलं. २ ख °लक्ष्म, [°लक्ष्य].

कथं न्विमामापदमाप्तवानयं
स सार्थनाथः परिपृच्छति स्फुटम् ॥ ८२
कुतस्तवायातिरितः क्व गच्छसि
पिता च माता च सुहृज्जनः क्व ते ।
श्रुतं च गोत्रं चरणं च नाम किं
न चेद्विरोधो वद वत्स पृच्छतः ॥ ८३
स एवमुक्तः प्रविचक्षणो नृपः
परीक्ष्य पूर्वापरकार्यमब्रवीत् ।
इयं त्ववस्था कथयत्ययत्नतः
किमेतया संकथया विमुच्यताम् ॥ ८४
निशम्य तद्वाक्यमुदारसौष्ठवं
समूचिवान्ससंदि सार्थनायकः ।
अहो विशुद्धान्वयतास्य पश्यतो[1]
न विस्मयं गच्छति नैव कुप्यति ॥ ८५
इति प्रशंसन्गुणरूपसंपदं[2]
निरीक्ष्य च क्षामकपोलनेत्रताम् ।
करेण हस्तं प्रतिगृह्य दक्षिणं
स नीतवानात्मनिवासमादरात् ॥ ८६
प्रदाप्य पाद्यं वणिजां पतिस्ततो
हितं वचः श्रोत्रसुखं निगद्य[3] च ।
वरासने वेत्रमये निवेश्य तं
सतैलसंवाहनतामकारयत् ॥ ८७

१ [पश्यत]. २ म °संमदं. ३ क निगद्यत । वरासने वेत्रमयाववेदति निवेश्य संवाहनतामकारयत् ॥.

दयासंप्रयुक्तो वणिक्श्रेणिनाथः
शशासात्मभृत्यं लघु स्नापयेति ।
यथेष्टं वरान्नं चतुर्भिस्त्वहोभि-
रभुङ्क्ताग्रतः श्रेष्ठिनः संनिविष्टः ॥ ८८
सुगन्धं सुमाल्यं वरं वस्त्रयुग्मं
प्रदायात्मशक्त्या क्षमस्वेत्यवोचत् ।
भवद्भिः सहैवागमिष्यामि ताव-
दिति प्राह सोऽप्येवमस्त्वित्युवाच ॥ ८९

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
सागरवृद्धिसंदर्शनो नाम
त्रयोदशमः सर्गः ।

[चतुर्दशः सर्गः]

एकाकिनारण्यपथेन याता प्राप्तानि दुःखानि सुदुस्सहानि ।
इति प्रसंधार्य निवृत्तयानः सार्थाधिपेनैव सहोपविष्टः ॥ १
प्रगृह्य मानाकृतिचारुवेषान्विभूष्य माल्याम्बरभूषणानि ।
भुक्त्वा यथेष्टं वणिजस्तु गोष्ठीनिष्ठैः समध्यासत संकथाभिः ॥ २
सार्थेन सर्वर्द्धिमतार्थिनस्ते सहागता ये नटनर्तकाद्याः ।
वागङ्गचेष्टाकृतिकौशलं स्वं प्रारेभिरे दर्शयितुं यथावत् ॥ ३
गायन्ति गीतानि मनोहराणि नृत्यन्ति नृत्यान्यपरे विधिज्ञाः ।
वाद्यानि वीणामुरजादिकानि शिक्षानुपूर्वं प्रतिवादयन्ति ॥ ४

१ [त्रयोदश]. २ म गोष्ठे निष्ठः. ३ [समध्यासत]. ४ म °मुरुजा°.

प्रहाससंलापविलासवन्ति रसानुविद्धानि सुकल्पितानि ।
लोकप्रवृत्तानि कथान्तरेषु [1]भाण्डाविचित्राणि विलम्बयन्ति ॥ ५
तदैव दिग्रक्षणतत्पराक्षाः पुलिन्दसंदर्शनतो विभीताः ।
अभ्येत्य तूर्णं वणिजां समूहे इत्थं पुनः सागरवृद्धिमूचुः ॥ ६
महाबलौ क्रूरतमावसह्यौ कालो महाकाल इति प्रतीतौ ।
पुलिन्दकानां त्रिचतुःसहस्रैराजग्मतुर्नाथ हितं कुरुष्व ॥ ७
दिग्रक्षकाणां वचनं निशम्य आहूय युद्धाय नरान्सुभृत्यान् ।
वाग्दानमानैरभिसंप्रपूज्य संनह्यतेति प्रशशास तूर्णम् ॥ ८
संनह्यतस्तान्नृपतिः समीक्ष्य श्रुत्वातितूर्णं पृतनाद्वयस्य ।
सखेटकं खड्गवरिष्ठमेकं श्रेष्ठिन्ममापि त्वमुपानयस्व ॥ ९
बालः कृशाङ्गः सुकुमारकोऽसि सुदुर्धरं युद्धमुखं हि भद्र ।
किमायुधेनास्त्र मयैव सार्धमित्युक्तवान्सार्थपतिः कुमारम् ॥ १०
अथानयोर्व्याधवणिग्ध्वजिन्योर्विद्युद्वपुश्चञ्चलशस्त्रवत्योः ।
शृङ्गाण्यदभ्राः पटहाश्च शङ्खा उद्वेजयन्तोऽतिभृशं विनेदुः ॥ ११
पुलिन्दनाथौ बृहदुग्रवीर्यौ द्विषट्सहस्रेण बलेन साकम् ।
शरोरुवर्षं प्रतिवर्षयन्तौ प्रत्युद्गतौ वन्यगजेन्द्रलीलौ ॥ १२
प्रत्यागतांस्तान्वणिजः समीक्ष्य पुलिन्दसेना ज्वलदग्निकल्पा ।
धनुर्धरास्तीक्ष्णमुखैः पृषत्कैरमोघपातैर्विविधुर्विचित्रैः ॥ १३
क्रोधोद्धता मानमदावलिप्ता लोभाभिभूता दृढबद्धवैराः ।
सुबद्धकक्षाः प्रगृहीतशस्त्राः[3] परस्परं जघ्नुरुपेत्य शूराः ॥ १४
दण्डाभिघातैः क्षपणैः प्रहारैः [4]संभिण्डमालैर्मुसलैस्त्रिशूलैः ।
कुन्तैश्च टङ्कैर्गुरुभिर्गदाभिः सतोमरैः शक्त्यसिमुद्गरैस्तु ॥ १५

१ [भाण्डानि चित्राणि विडम्बयन्ति]. २ म श्रेष्ठिन्नयामि. ३ क °वस्त्राः. ४ [सभिन्दपालै°].

विदार्य वक्त्राणि विभिद्य कायान्वितुद्य नेत्राणि विकृत्य बाहून्।
शिरांसि विच्छिद्य परस्परस्य निपातयां भूमितले बभूवुः॥ १६

[1]शिरांसि निस्तीक्ष्णतमैरकुन्तै-
रमर्षमाणास्तु वणिक्पुलिन्दाः।
अन्योन्यमर्माणि विचिच्छिदुस्ते
प्राणाञ्जहुः केचन मूर्च्छिताश्च॥ १७

वक्षस्सु तेषां समरप्रियाणां स्रवन्महाशोणिततोयधाराः।
रेजुर्भृशं क्रोधबलेक्षणानां तटे गिरीणामिव गैरिकाम्भः॥ १८

स संप्रहारो रणकर्कशानां वीरव्रणालङ्कृतभासुराणाम्।
मत्तद्विपेन्द्रोपमविक्रमाणां पर्यन्तसंघट्टसमो बभूव॥ १९

एवं प्रवृत्ते समरेऽतिघोरे पादाभिघातप्रभवैः रजोभिः।
संछादितं खं धरणीतलं च सैन्यद्वयं प्रापददृश्यरूपम्॥ २०

महाहवः शोणितचन्दनाक्तो बहुप्रकाराङ्गदचारुलीलः।
क्षरद्विलोलान्त्रनिबद्धमालः सन्ध्याम्बुदाकारवपुर्बभार॥ २१

असृक्क्रिमिश्रोणिरुजांसि भूयस्तान्येव सिन्धूरवपूंषि बभ्रुः।
ते चापि योधा द्विगुणाभिरोषाः परस्परं प्रेक्ष्य जिहिंसुरुग्राः॥ २२

पुलिन्दकानां वणिजां च घोरं मुहूर्तमेव समयुद्धमासीत्।
ततः पुलिन्दैरभिभूयमानाः पराबभूवुर्वणिजो भयार्ताः॥ २३

मृष्टान्नपानानि हि योषितश्च भोगांश्च चित्रान्समनुस्मरन्तः।
न्यायार्जितक्षेमधना वयं तु न योद्धुमीशा इति ते प्रदुद्रुवुः॥ २४

विज्ञाय भङ्गं वणिजां तदानीं पुलिन्दसेना प्रबला सती सा।
सार्थं कृतार्थं विदितार्थसंख्यमितोऽमुतः प्रारभत प्रलोमुम्॥ २५

---

१ [शरासिभिस्तीक्ष्णतमैश्च कुन्तै°]. २ म °तमैरकण्टै° ३ क °द्विपेन्द्रोत्तम°. ४ म बाहु°. ५ क असृक्कृमि° ६ [°श्रोणिरजांसि].

विद्रावयन्ती वणिजां प्रभुत्वं समन्ततः प्राय पुलिन्दसेना ।
तां राजपुत्रः प्रसमीक्ष्य शूरश्चुक्षोप[2] शार्दूल इवातिधृष्टः ॥ २६
हत्वा प्रदस्यून्समरागतांस्तान्वणिग्जनं तं परिपालयामि ।
अहोस्विदत्रैव च दस्युसंघैर्हतो मृतः स्वर्गमितः प्रयामि ॥ २७
एवं विनिश्चित्य पुलिन्दमेकं पादप्रहारेण निपात्य भूमौ ।
सखेटकं खड्गमवार्यवीर्यः प्रसह्य जग्राह मृगेन्द्रसत्त्वः ॥ २८
उद्भ्राम्य खड्गं विधिवत्क्रियावान् प्रविश्य मध्ये शरसंकटस्य ।
शरप्रपातान्यपि वञ्चयित्वा पुलिन्दनाथात्मजमाप तूर्णम् ॥ २९
पूर्वं त्वमेव प्रहरस्व तावत्पश्यामि पश्चाद्बलमावयोस्तु ।
इत्येवमुक्तो धृतशस्त्रपाणिस्तस्थौ पुरस्ताद्द्रुतमुग्रवीर्यः ॥ ३०
निरुध्यमानः क्षितिपात्मजेन पुलिन्दनाथस्य सुतोऽतिमुग्धः ।
नरेश्वरं तं प्रजहार रोषादशिक्षितो वन्य इव द्विपेन्द्रः ॥ ३१
नैष प्रहारोऽसुनिपातदक्षः क्षमस्व मे सांप्रतमेकघातम् ।
इति ब्रुवन्खेटकखड्गहस्तः क्रोधोद्धतो वल्गनमाचकार ॥ ३२
शिक्षाबलेनात्मपराक्रमेण स तं प्रहारं प्रतिवार्य वीरः ।
प्रहारमेकं प्रददावमोघं येनाहतोऽसून्प्रजहौ स कालः ॥ ३३
कालस्य कालप्रतिमः पिताऽसौ लोके महाकाल इति प्रतीतः ।
हतं सुतं प्रेक्ष्य रुजा प्रदीप्तः समाप्तकालः[3] स्वयमाययौ सः ॥३४
हत्वा सुतं मे क्व नु गच्छसि त्वं यद्यस्ति शौर्यं तव तिष्ठ तिष्ठ ।
त्वामन्तकप्राभृतिकेऽतियुक्तो[4] भवेयमद्यैव हि मा वरिष्वं[5] ॥ ३५
वैवस्वते[6] मे न च भक्तिरस्ति न चाप्यहं त्वद्वचनाद्व्रजामि[7] ।
त्वं भक्तिमान्योग्यतमश्च तस्मै त्वां प्रापयामीति जगाद राजा ॥३६

१ [प्राप]. २ [चुक्षोभ]. ३ क समास्त°. ४ [त्वमन्तकप्राभृतके°]. ५ [भवेदमद्यैव...वरिष्ठ]. ६ म वैवस्वतो. ७ क तद्वचनाद्.

किमत्र चित्रैर्वचनैर्निरर्थकैर्योत्स्ये प्रतीक्षस्व हि मा चलस्त्वम् ।
इत्याश्रितो योद्धुमना युवेन्द्रः सोऽप्यागतस्तीव्रनिबद्धवैरः ॥३७
परस्परोद्वञ्चनकुञ्चिताक्षौ परस्परच्छिद्रपरायणौ तौ ।
परस्पराघातविवृद्धरागौ परस्परं जघ्नतुरुग्रकोपौ ॥ ३८
पुलिन्दनाथस्य तु शस्त्रपातं प्रपञ्चयत्यात्मकलाबलेन ।
नरेन्द्रपुत्रस्य दृढप्रहारस्तस्याङ्गभङ्गं बहुशश्चकार ॥ ३९
ऊर्ध्वप्रहारेऽवनतिं प्रपेदे अधःप्रहारे पुनरुत्पपात ।
समप्रहारे वियथौ च पार्श्वं ररक्ष शिक्षागुणतः स्वगात्रम् ॥ ४०
उत्कृष्य खड्गं विधिनोपसृत्यास्थानं समास्थाय रुषा परीतः ।
वामांसमाक्रम्य जघान तस्य मत्तद्विपं सिंहशिशुर्यथैव ॥ ४१
लब्धप्रहारः क्षितिपात्मजेन विभ्रान्तदृष्टिः स पुलिन्दनाथः ।
स्फुरत्तनुर्भूमितले पपात दवाग्निनात्युच्छ्रितशालकल्पः ॥ ४२
शेषांश्च दस्यून्प्रतियोद्धुकामान् जघान तांस्तान्समरे युवेन्द्रः ।
पलायमानानपरान्निरुध्य चिच्छेद तेषां करकर्णनासम् ॥ ४३
नृपात्मजेन प्रतिहन्यमानास्तमेव केचिच्छरणं प्रजग्मुः ।
विन्यस्य वक्त्रे त्वपरे तृणानि जिजीवितांशाः प्रययुर्भयार्ताः ॥४४
हतेश्वरे सापि पुलिन्दसेना दुद्राव शस्त्राणि विसृज्य दूरात् ।
नरेश्वरोद्धादितशत्रुपक्षः पुनर्निवृत्तः समराजिराय ॥ ४५
रणावनौ सिंहरवानुकारी क्षेमप्रशंसी पटहो ननर्द ।
प्रत्यागतास्ते पटहस्वनेन पप्रच्छुरन्योन्यमविघ्नतां च ॥ ४६
विघाटिता रत्नसुवर्णपेटा भिन्नानि भास्वन्मणिभाजनानि ।
दुकूलकौशेयकचामराणां भारान्विशीर्णानथ वीक्षमाणः ॥ ४७

१ [इत्यास्थितो]. २ म पुलीन्द्र°. २ [प्रवञ्चयत्यात्म°]. ३ म उत्कृष्य. ४ म °शालि°. ५ [विजीविताशाः]. ६ [हतेश्वरा]. ७ [नरेश्वरोद्ग्राहित°].

तत्रावनीन्द्रं परिमूर्च्छिताशं व्रणस्रवच्छोणितलिप्तगात्रम् ।
ईषच्छ्वसन्तं हि निमीलिताक्षं रणाजिरे सार्थपतिस्त्वपश्यत् ॥४८
शरासिपातव्रणमण्डिताङ्गः श्रमाभिभूतो विनिपत्य भूमौ ।
रराज राजा कमनीयरूपो लाक्षारसक्लिन्न इवेन्द्रकेतुः ॥ ४९
हा[1] वत्स किं जातवदार्यवर्य किं मौनमास्थाय सुखोषितोऽसि ।
उत्तिष्ठ भद्राशु कुरु प्रसादं प्रदेहि नाथ प्रतिवाक्यमेहि ॥ ५०
बालोऽसहायो बलवर्जितश्च सकर्पटोऽजह्रिथ शत्रुसैन्यम् ।
युवा समर्थः स्वपदे स्थितश्चेत्स शासनः शान्तवधाः प्रति स्यात् ५१
अयत्नतस्त्वं पुनराधमर्ण्यं प्रसव्य यातः कुशलोऽस्यतीव ।
कृतोपकारः प्रतिकारहीनो गतासवे किं करवाणि ते हि ॥ ५२
नैवाब्रवीस्त्वं कुलबन्धुदेशान्स्मृत्वापि यांस्तुष्टमना ब्रुवेयम् ।
किं वा स्वदेशं न गतोऽसि भद्र इति ब्रुवन्विप्रललाप सार्थी ॥ ५३
वणिग्जनानां करमर्शनेन शीतोदकैश्चन्दनवारिभिश्च ।
आप्यायमानो व्यजनानिलैश्च उन्मील्य नेत्रद्वयमालुलोके ॥ ५४
ततो मुहूर्तात्प्रतिलब्धसंज्ञः शनैः समुत्थाय कुमारवर्यः ।
प्रभाषमाणो विगतश्रमस्सन् सुखं निषण्णः परिचारितस्तैः॥५५
आश्चर्यमस्मान्न च विद्यतेऽन्यज्जीवो गतोऽस्य प्रतिसंनिवृत्तः ।
इति ब्रुवाणा वणिजां प्रधानाः सविस्मयाः संतुतुषुः समेताः॥५६
सार्थाधिपो तद्धृदि जातहर्षः कृतस्य स प्रत्युपकारमिच्छन् ।
सद्रत्नलक्षं च सुवर्णकोटी ददौ नृपायाप्रतिपौरुषाय ॥ ५७
आनीतमर्थं प्रविलोक्य धीमान्नैवागमद्विस्मयमाभिजातः[2] ।
तस्यानुमानं स पुनर्विदित्वा दत्स्व त्वमिष्टेभ्य इतीत्थमूचुः॥५८

१ [हा वत्स जातं तव किं वदार्य]. २ [°जात्यः].

तद्वाक्यतः सार्थमलुब्धबुद्धिः शशास सर्वं क्रियते तथेति ।
आज्ञापिताः स्वाञ्जलिभिर्दरिद्रा नटा विटाश्चादधुरादरेण ॥ ५९
तं स्नापयित्वा व्रणशोणितार्क्तं क्षिप्तौषधानि व्रणरोपणानि ।
शमं प्रचक्रुः कतिभिर्दिनैश्च स्वाम्याज्ञया ते भिषजां वरिष्ठाः॥६०
ततः प्रशस्ते दिवसे तु सार्थः संप्रस्थितो राष्ट्रमभिप्रवेष्टुम् ।
नरेश्वरः सागरवृद्धिनैव शनैः प्रयातः शिबिकाधिरूढः ॥ ६१
नटा विटाः कार्पटिका भटाश्च सार्थानुयाता द्विजजातयश्च ।
देशान्तरं प्राप्य समान्तरेषु ते तस्य कीर्तिं प्रथयांबभूवुः ॥ ६२
द्विषट्सहस्रं तु पुलिन्दवृन्दं जित्वा रणे मत्तकरीन्द्रलीलः ।
कश्चिद्भटः सार्थमथैक एव वने ररक्षेति यशस्ततान॥ ६३
ग्रामेषु राष्ट्रेषु पुरेषु चैव विश्रम्य सार्थः खलु तत्र तत्र ।
शनैः प्रपेदे स्वपुरं पुराणं निर्विघ्नसंपादितभाण्डसारः ॥ ६४
कृतार्थकार्यं प्रतिसंनिवृत्तं निशम्य ते सागरवृद्धिवृद्धम् ।
स्त्रियः पुमांसश्च सबालवृद्धाः प्रत्युद्ययुर्नागरिकाः समग्राः ॥ ६५
स्त्रीभिः समं सागरवृद्धपत्नी कृतार्थयात्रं स्वपतिं दिदृक्षुः ।
कश्चिद्भटं ख्यातयशोवितानं पूर्वं तमालोकितुमाजगाम ॥ ६६
तां श्रेष्ठिपत्नीं निरवद्यभावां कश्चिद्भटो वीक्ष्य ससंभ्रमः सन् ।
प्रत्युत्थितो मातृसमामभीप्सन् सा चापि मेने स्वसुताधिकं तम् ६७
ततः स्वभर्तारमुपेत्य साध्वी प्रहृष्टभावा विनयं नियुज्य ।
चिरप्रवासागतमादरेण पप्रच्छ किंचित्कुशलं प्रियस्य ॥ ६८
स्वबन्धुमित्राणि च पुत्रदारान्सनागरान्स्थानविशेषयुक्तान् ।
समानवृत्तान्वयवृत्तशीलान्समीक्ष्य तान्कौशलमभ्यपृच्छत् ॥ ६९

१ [क्रियता] २ [क्षिप्त्वौषधानि]. ३ क सा चाभिमेने.

पुलिन्दसेनागमनिर्गमौ च कालोरुकालद्वयधर्मकालम् ।
कश्चिद्भटश्चाप्रतिपौरुषं च सर्वं तथाचष्ट यथानुवृत्तम् ॥ ७०
अष्टादशश्रेणिगणप्रधानैः संपूजितः सागरवृद्धिना च ।
कश्चिद्भटश्चारुविशालवेषो महाविभूत्या नगरं विवेश ॥ ७१
श्रेष्ठी ततः स्वं भवनं प्रविश्य व्याहृत्य कश्चिद्भटमादरेण ।
पृथक्पृथग्द्रव्यमनेकरूपं तत्तत्तु तस्मै कथयांबभूव ॥ ७२
इमाः स्वसारस्त्वनुजास्तवेमे इयं हि माता स्वजनस्तवायम् ।
इदं धनं पुत्रकमित्रवर्गः सर्वं त्वदायत्तमितः प्रविद्धि ॥ ७३
इत्येवमर्थाधिपतिस्तमर्थं सजीवनिर्जीवमयत्नसिद्धम् ।
संदर्श्य भूयः स्वजनैः समेतः सुखं कृतार्थः स्वगृहेऽभ्यवासीत् ॥ ७४
अथान्यदा श्रेणिगणप्रधानाः संमन्त्र्य वृद्धैरनुकूलवृत्तैः ।
अभेत्य पत्न्या सह सोपचारं कश्चिद्भटं कान्ततयेत्थमूचुः ॥ ७५
अस्मिन्पुरे ये वणिजः प्रधाना अनेककोट्यर्थविशेषवन्तः ।
त्वद्रूपविज्ञानगुणान्समीक्ष्य प्रदातुमिच्छन्ति सुताः प्रतीच्छुः ॥ ७६
अपेतभाग्यस्थिरसत्त्वसारो वने भ्रमंस्त्वां कथमप्यपश्यन् ।
तदेव पर्याप्तमितः किमु स्यादित्यूचिवान्सागरवृद्धये सः ॥ ७७
श्रेष्ठी पुनः सर्वमिदं तवैव निश्शङ्कितो भुङ्क्ष्व दधत्स्वं पुत्र ।
यथेच्छसि त्वं तु तथा भजस्व मा मैव इत्थं वद इत्यवोचत् ॥ ७८
इत्यूचिषि श्रेष्ठिनि सोऽभ्यवोचद्यथेष्टचेष्टः सह शिष्टगोष्ठ्या ।
वसाम्यथैवं यदि रोचते ते किं दारकार्येण विमुञ्चयामि ॥ ७९

१ म पुलीन्द्र°. २ क तनुजास्तथेमे. ३ म तदायत्त. ४ [स्वगृहेऽभ्यवात्सीत्]. ५ म अभीत्य, [अभ्येत्य]. ६ म कान्त नयेत्थ°. ७ [प्रतीच्छ]. ८ क अपेत्य भाग°, [°भाग्योऽस्थिर°]. ९ [अपश्यम्]. १० म तदत्स्व. ११ म इत्याचिषि. १२ [विमञ्चयामि].

स तस्य चित्तानुगतं विदित्वा तथा तथास्तामिति संप्रधार्य ।
प्रियाणि सार्थाधिपतिर्निगद्य स्वधर्मकर्माभिरतो बभूव ॥ ८०
अथान्यदोद्यानवनं प्रयाता वणिक्सुताः शिष्टघटाश्च सर्वाः ।
संमन्त्र्य कश्चिद्भटमादरेण श्रेष्ठी भवेत्यूचुरुदारवृत्तम् ॥ ८१
नरेन्द्रपुत्रोऽहमभूवमादौ युवावनीन्द्रस्तु युवत्वकाले ।
प्रवर्धमानो वणिजां प्रभुत्वं पर्याप्तमेतावदिहात्मवद्भ्यः ॥ ८२
प्रवर्धमानः किल भूमिपालः श्रेष्ठित्वमाप्नोति[1] च लोकवादः ।
स एष वादो मयि सत्यभूत आप्नोति नामानि बहूनि जीवः ॥८३
प्रीतिं त्वमीषां न निवारयामि एतच्च पश्यामि वणिक्प्रभुत्वम् ।
इति स्मरन्नात्मपुराकृतानि तेषामनुज्ञाय बभूव तूष्णीम् ॥ ८४
कश्चिद्भटस्याप्रतिपौरुषस्य विज्ञाय चित्तं ललितानगर्याम् ।
वणिक्सुताः शिष्टघटाः प्रपद्य श्रेष्ठित्वपट्टं हि बबन्धुरिष्टाः ॥ ८५
वणिक्प्रभुत्वेन विराजमानं कश्चिद्भटं कान्ततमं गुणौघैः ।
समीक्षमाणाः पुरवासिनस्ते इदं समूचुः स्वमनोऽभिलाषम् ॥८६
पूर्वं तु पुण्योपचितान्मनुष्यान्स्वयं धनः श्रीमुखताः[2] श्रयन्ते ।
वियोगधीर्दुःखविपत्तिशोकाः श्रयन्ति मर्त्यानकृतः पुमांस्तु (?)॥
कुतो गतो व्याधगणान्बभञ्ज[3] कुतो गतः श्रेष्ठिसुतत्वमाप ।
कुतो गतः सार्थपतिर्बभूव कुतो गतः सर्वजनैः प्रकथ्यः ॥ ८८
कश्चिद्भटः सार्थपतिः सदारः पुत्राश्च पौत्रा बहुबन्धुवर्गः ।
पुरोपवासव्रतपुण्यपुण्यं सहार्जयित्वा[4] तदिहागताः स्युः ॥ ८९
रूपं वपुः शौर्यमथापि शीलं शुचित्वमारोग्यमुदारबुद्धिम् ।
जगज्जनाक्षिप्रियतापटुत्वं कश्चिद्भटः केन सुलब्धवान्स्यात् ॥९०

१ म श्रेष्ठित्वमाप्तोऽपि. २ [धनस्त्रीसुखदाः]. ३ म °गणाद्बभञ्ज. ४ [°जन्य°].

पुरा त्वनेनाध्युषितं पुरं यत्तस्मिन्मनुष्या न च भाग्यवन्तः ।
यस्मिन्पुरेऽनेन वसन्ति सार्धं ते भाग्यवन्तस्त्विति केचिदूचुः ॥
गुणाधिकेनाप्रतिपौरुषेण यदुज्झितं शून्यवदेव तत्स्यात् ।
इदं पुरं भद्रगुणं प्रकृत्या सौभद्रमेवेति च केचिदूचुः ॥ ९२
नृणां प्रियोऽसौ खलु पौरुषेण रूपेण नारीनयनाभिकान्तः ।
विद्वद्गुरूणां[1] विनयोपचारैः कश्चिद्भटोऽतिप्रियतां प्रयातः ॥ ९३
एवं महात्मा प्रथितप्रणादः कश्चिद्भटाख्यां प्रतिलभ्य शूरः ।
वराङ्गनामत्वमथापसृज्य वणिग्जनैः सार्धमुवास तस्मिन् ॥ ९४
आख्यायिकाभिश्च कथाप्रपञ्चैर्नाट्यैश्च गीतैः परिवादिनीभिः ।
उद्यानयानै रतिहेतुभूतैः कश्चिद्भटेन प्रतिनीयतेऽद्धा ॥ ९५
एकान्ततः संस्मरति स्वबन्धून् कदाचिदन्तर्गतदाहभावः ।
कदाचिदुन्मत्त इव ब्रवीति स्वस्थः कदाचित्परमार्थदृष्ट्या ॥ ९६

ललितपुरनिवासिभिर्वणिग्भिः
सुखधनधर्मफलानि पृच्छ्यमानः ।
अकथयदखिलानि तानि तेभ्यो
युवनृपतिः स जगत्प्रयोजनानि ॥ ९७
पुनरथ सकलान्कलान्गुणांश्च
प्रतिगमयन्पुरधीवणिग्जनानाम् ।
जिनमतममलं प्रकाशयंश्च
ललितपुरं ललितैः सहाध्युवास ॥ ९८

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
ललितपुरप्रवेशो नाम
चतुर्दशः सर्गः ।

---

१ म विद्वन्°.

[पञ्चदशः सर्गः]

अथोत्तमपुरे तस्य वाजिनापहृतस्य यत् ।
वृत्तान्तं कथितं सर्वमिदमन्यन्निबोधत ॥ १
राजानो राजपुत्राश्च मन्त्रिणो दण्डनायकाः ।
भोजका भृत्यवर्गाश्च ये राज्ञा सह निर्गताः ॥ २
युवराजाधिरूढं तं वाजिनं वायुरंहसम् ।
[1]अनुगम्याप पश्यन्तो बभ्रमुस्ते वनान्तरे ॥ ३
अपरे संनिवृत्त्याशु तुरङ्गहृतनायकाः ।
[2]आक्रोशन्तो विषण्णास्ते निवेदयितुमागताः ॥ ४
पितरं तस्य संदृश्य बालादित्यसमप्रभम् ।
ससंभ्रमा समाश्रित्य वचनं चेदमब्रुवन् ॥ ५
वाजिनावार्यवीर्येण दुर्विनीतेन पार्थिव ।
वायुवेगप्रतापेन युवराजोऽपहारितः ॥ ६
केनापि हयरूपेण दवदानवरक्षसा ।
सर्वेषामग्रतो नीतो वराङ्गस्तु महीपते ॥ ७
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा समाहूयात्ममन्त्रिणः ।
मन्त्रमध्यास्त मतिमान्युवराजाय वाहने (?) ॥ ८
विचारयत केनायं द्विषता नोपवाहितः ।
[3]कुमारोभ्यतरस्त्वेन वत बाह्येन मण्डले ॥ ९
रूपलावण्यलोभेन विद्याबलयुवा स्त्रिया ।
देवरक्षःपिशाचैर्वा हृतः स्यात्पूर्ववैरिभिः ॥ १०

---

१ [अनुगम्य प्रपश्यन्तो]. २ म आक्रोशन्ते. ३ [कुमारेऽभ्यन्तरत्वेन].

इत्याज्ञाप्य नृपोऽमात्यान्मण्डलानि प्रतीक्षितुम् ।
दूतान्संप्रेषयामास मार्गणार्थमितोऽसुतः[1] ॥ ११
ते मडम्बपुरग्रामान्[2]नद्यरण्यगिरिव्रजान् ।
परीत्य न च पश्यन्तो निराशाः पुनराययुः ॥ १२
केचिदश्वानुमार्गेण गत्वा दूरं वनान्तरे ।
वाजिनं तु गतप्राणं कूपेऽपश्यन्यदृच्छया ॥ १३
युवराजमपश्यन्तो भ्रान्त्वा वननदीगिरीन् ।
कक्षवृक्षक्षुपाकीर्णान् पुरमेव गतास्ततः ॥ १४
कटकं कटिसूत्रं च केयूरं कुण्डलद्वयम् ।
अश्वभाण्डं च संगृह्य राज्ञे सर्वं निवेदयन्[3] ॥ १५
श्रुत्वा तेषां वचो राजा दृष्ट्वा तस्याङ्गभूषणम् ।
मुञ्चन्नुष्णं च निःश्वासं दुःखसंभ्रान्तलोचनः ॥ १६
गण्डस्थलं करे न्यस्य सुतं शोचन्मुहुर्मुहुः ।
प्रत्युवाच पुनस्तेभ्यः कम्पयन्करपल्लवम् ॥ १७
कथाकाव्यपुराणेषु अश्वेनापहृता इति ।
अश्रूयन्तमिदं[4] सर्वं प्रत्यक्षं समुपस्थितम् ॥ १८
सुतदुःखहिमाक्रान्तं मम्लौ वदनपङ्कजम् ।
तुषाराम्बुसमाक्रान्तं प्रफुल्लमिव पङ्कजम् ॥ १९
यद्वत्पूर्णशरच्चन्द्रो निःप्रभो राहुणावृतः ।
राजेन्द्रो निर्बभौ तावच्छोकग्रहसमाप्लुतः ॥ २०
यथा हृतमणिर्नागो भग्नदन्तो गजोऽपि वा ।
तथा गतसुतो राजा न रेजे कान्तिमानपि ॥ २१

१ क मार्गणार्थमतोऽसुतः. २ म °ग्रामान्मध्यरण्य°. ३ [न्यवेदयन्]. ४ म अश्रूयंतमिदं, [आश्रूयन्त इदं].

एवं दुःखार्णवे मग्ने पत्यौ वर्षचरोत्तमाः[1] ।
गुणदेव्यै यथावृत्तमुपगम्याचचक्षिरे ॥ २२
श्रुत्वा पुत्रवियोगं सा देवी बाष्पाकुलेक्षणा ।
हा पुत्र केन नीतस्त्वमित्युक्त्वा न्यपतद्भुवि ॥ २३
ततः परिजनैस्तूर्णं शीतलव्यजनानिलैः ।
चन्दनोदकसंमिश्रैर्गात्रसन्धिषु पस्पृशे ॥ २४
शनैराप्यायिता देवी उन्मील्य नयनद्वयम् ।
हा वत्स क्व गतोऽसीति विविधं विललाप सा ॥ २५
तवागतात्र या पीडा सा मे किं न भविष्यति ।
वरं मे मरणं वत्स जीवितं किं त्वया विना ॥ २६
कुण्डलाङ्कितगण्डस्य हारशोभितवक्षसः ।
तव यद्दर्शनं पुत्र त्रैलोक्यैश्वर्यतोऽधिकम् ॥ २७
वत्स हित्वाऽनवद्याङ्गं विद्वज्जननिषेवितम् ।
कथं स्मरन्ती जीवामि विनयाचारभूषितम् ॥ २८
चलच्चामरवृन्देन ज्वलन्मकुटशोभया[2] ।
ज्वलन्तं यौवराज्येन कथं वा विस्मराम्यहम् ॥ २९
मया वियोजिताः पुत्रा मृगाणामन्यजन्मनि ।
तत्कर्मपरिणामोऽयं साद्दृष्टिकमुपस्थितम्[3] ॥ ३०
अत्राणाशाश्वतासारा जन्मवत्ता[4] हि देहिनाम् ।
सा मयाद्य परिज्ञाता जाता नैवास्ति कस्यचित् ॥ ३१
पुरात्मचरितं कर्म तदवश्यमवाप्यते ।
प्रतिषेद्धुं नियन्तुं वा न शक्यं त्रिदशैरपि ॥ ३२

१ [वर्षधरोत्तमाः]. २ [°मुकुट°]. ३ [सांदृष्टिक°]. ४ [शाता].

एवं पुत्रवियोगेन मनस्संतापकारिणा ।
महीपतौ च देव्यां च तद्दुःखं मूर्तितां गतम् ॥ ३३
भार्यास्त्वनुपमाद्यास्ता विबुधेन्द्राङ्गनोपमाः ।
वियोगं युवराजस्य श्रुतवन्त्यस्तु तत्रसुः ॥ ३४
वायुनातिप्रचण्डेन लता इव विकम्पिताः[1] ।
भर्तृदुःखानिलहता निपेतुर्वसुधातले ॥ ३५
ततो वामनिकाः कुब्जा धात्र्यः सपरिचारिकाः[2] ।
रुदन्त्यस्त्वरयाभ्येत्य सर्वास्ताः परिवव्रिरे ॥ ३६
अपराश्चेतनावन्त्यः शीतलोदकबिन्दुभिः ।
गोशीर्षचन्दनाक्तैस्तैः सिषिचुः परितोऽङ्गनाः ॥ ३७
तालवृन्तानिलैर्हारैर्मणिभिः पुष्पदामभिः ।
सुखसंस्पर्शनं चक्रुश्चलद्वलयपाणयः ॥ ३८
अथोपलब्धसंज्ञास्ता युवराजप्रियाङ्गनाः ।
विलपन्त्यो रुदन्त्यश्च स्फुरन्त्यश्च समुत्थिताः ॥ ३९
निरर्था इव वाञ्छाला लता निःकुसुमा इव ।
युवराजस्य भार्यास्ता भर्तृहीना न रेजिरे ॥ ४०
काश्चिद्धेमजलास्पृष्टा विषण्णकमलाननाः ।
अश्रुधारां विमुञ्चन्त्यः प्रचेलुर्दुःखवायुना ॥ ४१
गण्डदेशे करं न्यस्य विकीर्णासितमूर्धजाः ।
काश्चिज्जगर्हिरे भोगान्दुरन्तान्विगतस्पृहाः ॥ ४२
काश्चिन्मृदुपदन्यासैः करै रक्तोत्पलोपमैः ।
दुःखवेगातिविभ्रान्ता ननृतुः कौशलादिव ॥ ४३

१ म निकम्पिताः. २ म सपरिचारकाः.

वियोगतापसंतप्ताः काश्चिन्मम्लुः क्षणात्पुनः ।
काश्चित्प्रकृतितन्वङ्ग्यश्छिन्नमूला लता इव ॥ ४४
काश्चित्कारुण्ययुक्तानि गीतानि मधुरस्वरैः ।
तद्गुणख्यापकान्येव विलेपुर्विविधानि ताः ॥ ४५
कृतान्त निर्भय क्रूर स्त्रीवधं ध्रुवमाप्स्यसि ।
प्रियादस्मान् वियोज्य त्वमित्यूचुः काश्चिदङ्गनाः ॥ ४६
अस्मान्वा नय तं देशं तमिहानय वा प्रियम् ।
अन्यथा हि कृतान्तस्ते महापातो भविष्यति ॥ ४७
एवमाक्रन्दमानास्ताः स्रवदश्रुविलोचनाः ।
उत्पतन्त्यः पतन्त्यश्च जग्मुः श्वशुरमीक्षितुम् ॥ ४८
उपगम्यावनीशस्य प्रणिपत्य हि पादयोः ।
इत्थं विज्ञापयांचक्रुः सर्वा युवनृपाङ्गनाः ॥ ४९
न्यायविद्दुष्टनिग्राही धर्मराजः प्रजाहितः ।
दयावानिति सर्वत्र कीर्तिस्ते विश्रुता भुवि ॥ ५०
अतो वयमिमाः सर्वा अनाथा दीनवृत्तयः ।
आगताः शरणं त्वद्य विना चात्मपतिं प्रभो ॥ ५१
दया स्त्रीबालवृद्धेषु कर्तव्येत्यधुना जगुः[1] ।
इति मत्वा महाराज त्वं प्रमाणं क्रियाविधौ ॥ ५२
इति नानाविचित्राणि विलपन्त्यो वराङ्गनाः ।
चुक्रुशुः करुणं घोरं श्वशुरस्यान्तिके स्नुषाः ॥ ५३
ततः कञ्चुकिनो वृद्धा अन्तःपुरमहत्तराः ।
तद्दासीदासभृत्याश्च चक्रुराक्रन्दनं महत् ॥ ५४

१ क जगौ.

तेषां स्त्रीबालवृद्धानां रुदतां करुणध्वनिः ।
अभूत्प्रक्षुभ्यतोयस्य समुद्रस्येव निस्वनः ॥ ५५
गुणदेवी स्नुषा दृष्ट्वा स्वपुत्रोत्कण्ठगद्गदा ।
न शशाक वचो वक्तुं बाष्पव्याकुललोचना ॥ ५६
रत्नहारप्रवालांश्च नूपुरप्रकटाङ्गदम् ।
मुक्ताप्रलम्बसूत्राणि मालावलयमेखलाः ॥ ५७
कटकान्यूरुजालानि केयूराः कर्णमुद्रिकाः ।
कर्णपूरान् शिखाबन्धान्मस्तकाभरणानि च ॥ ५८
कण्ठिकावत्सदामानि रसनाः पादवेष्टकाः ।
आलुण्ठ्याकुञ्च्य सर्वाणि चिक्षिपुर्विदिशो दिशः ॥ ५९
पतितैरङ्गतस्तासां राज्ञीनां विगतौजसाम् ।
द्यौरिव ग्रहनक्षत्रैर्भूषणैर्भूरभासत ॥ ६०
सर्वासां राजपत्नीनां समेतानां समग्रतः ।
कृताञ्जलिरुवाचेदं युवराजप्रियाङ्गना ॥ ६१
न जीवितुमितः शक्ता विना नाथेन पार्थिव ।
त्वया प्रसादः कर्तव्यः पावकं प्रविशाम्यहम् ॥ ६२
राजा निशम्य तद्वाक्यं द्विगुणं दुःखविद्रुतः ।
क्षरन्नेत्रोदकार्द्रास्यः प्रत्युवाच ततः स्नुषाम् ॥ ६३
मैवं त्वनुपमे मंस्थास्तदत्यन्तमशोभनम् ।
असंमतं च साधूनां पुनर्दुःखाय कल्प्यते ॥ ६४
शस्त्ररज्ज्वादिघातश्च मण्डलेन च साधनम् ।
भृगुप्रपतनं चैव जलवह्निप्रवेशनम् ॥ ६५

१ [°प्रक्षुब्ध°]. २ म °प्राकटाङ्गदम्. ३ [कल्पते].

देहत्यागश्च गृद्धेभ्यो जिह्वोत्पाटविषाशनम् ।
एतानि मरणान्यार्यैर्निषिद्धानि महात्मभिः ॥ ६६
निःशीला निर्नमस्कारा निर्व्रता निर्गुणा नराः ।
जरामरणरोगार्ताः क्लिश्यन्तीति विनिश्चिनु ॥ ६७
त्रिलोकगुरवोऽर्हन्तः सर्वज्ञास्तत्त्वदर्शिनः ।
ते पवित्रं च माङ्गल्यं मत्कुलस्य ममापि च ॥ ६८
करोषि यदि मद्वाक्यं धर्मे धत्स्वात्मनो मतिम् ।
शनैरेव महाम्भोधिं तारयत्यापदार्णवम् ॥ ६९
इत्युक्ता भूभुजा साध्वी श्वशुरं धर्मवत्सलम् ।
यस्त्वया शिष्यते धर्मः स एवोपास्यते मया ॥ ७०
इति तस्या वचः श्रुत्वा नरेन्द्रः प्रीतमानसः ।
स्नुषाशोकविनाशाय साधूनामन्तिकं ययौ ॥ ७१
राजा ताभिः समाश्रित्य शान्तं यमधरं मुनिम् ।
परिक्रम्य प्रणम्यैवं प्रोवाच विनयान्वितः ॥ ७२
युवराजवियोगेन दुःप्रतिज्ञास्ववस्थिताः ।
एतासां बुद्धिमास्थाप्य सद्धर्मं प्रतिपादय ॥ ७३
ततो मुनिपतिस्तासां शोकनिष्टप्तचेतसाम् ।
वक्तुं मनःप्रसादाय प्रारब्धो मधुरा गिरा ॥ ७४
प्रायेण प्राणिनो दुःखं सुखमत्यल्पमुच्यते ।
संस्काराः क्षणिकाः सर्वे भङ्गुराः प्रियसंगमाः ॥ ७५
यौवनं बाधते नृणामैश्वर्यं त्वनवस्थितम् ।
आयुर्वायुविनिर्धूततृणलग्नाम्बुचञ्चलम् ॥ ७६

१ म प्रीति°. २ क दुःप्रतिज्ञाः.

प्रीतिः सन्ध्याम्बुदाभेव संपदो विद्युता समाः ।
नानारूपा रुजस्तीव्रास्तनवः फेनदुर्बलाः ॥ ७७
कस्य माता पिता कस्य कस्य भार्या सुतोऽपि वा ।
जातौ जातौ हि जीवानां भविष्यन्ति परे परे ॥ ७८
आत्मैव चात्मनो बन्धुरात्मा चैवात्मनो रिपुः ।
आत्मनोपार्जितं कर्म चात्मनैवानुभुज्यते ॥ ७९
प्रीतिपूर्वं कृतं पापं मनोवाक्कायकर्मभिः ।
न निवारयितुं शक्यं संहितैस्त्रिदशैरपि ॥ ८०
बन्धुभिर्भृत्यमित्रैर्वा मन्त्रोपायबलैरपि ।
वित्तैर्वात्मकृतं पापं तदशक्यमसेवितुम्[1] ॥ ८१
यद्यद्विनिर्मितं कर्म येन येनान्यकर्मणि ।
तस्य तस्यानुमार्गेण तदिहागत्य तिष्ठति ॥ ८२
अज्ञानावृताचित्तानां रागद्वेषवतां नृणाम् ।
क्षणवद्वृद्धिमाप्नोति तत्कर्म यदनेकधा ॥ ८३
तीव्रमध्यममन्दैस्तु परिणामप्रपञ्चनैः ।
तीव्रमध्यममन्दं तत्फलमात्मा समश्नुते ॥ ८४
हिंस्यन्ते हिंसकाः पापैरापद्यन्तेऽपवादकाः ।
मुष्यन्ते मोषकास्त्वन्यैर्विलुप्यन्ते विलोपकाः ॥ ८५
बध्यन्ते बन्धकास्तीव्रं रुध्यन्ते रोधकाः पुनः ।
बाधकास्तु विबाध्यन्ते द्विष्यन्ते द्वेषकारिणः ॥ ८६
दण्ड्यन्ते दण्डका दण्डैः शुच्यन्ते शोचकारिणः ।
वञ्चकास्तु प्रवञ्च्यन्ते वियुज्यन्ते वियोजकाः ॥ ८७

---

१ म तदशक्यं निषेधितुं. २ [येनान्यजन्मनि]. ३ क पापैरपाद्यन्ते, [पापैरपोद्यन्ते].

सायं पादपमभ्येत्य निशायां तु सहोषिताः ।
इतोऽमुतः प्रभाते तु यथा गच्छन्ति पक्षिणः ॥ ८८
तथा कुलतरुं प्राप्य मर्त्या दुरितवृत्तयः ।
सहोषित्वा पुनर्यान्ति स्वकर्मवृतवर्त्मना[1] ॥ ८९
यथा नावं समारुह्य व्यतीत्य[2] कुलदुर्गमम् ।
स्वभाण्डमथ विक्रेतुं[3] भ्रमन्ति नगराकरान् ॥ ९०
तथा कर्मपथारूढाः प्राणिनो दुःखभाजिनः ।
पापभाण्डं च विक्रेतुं[3] व्रजन्तीह चतुर्गतीः[4] ॥ ९१
यथा पतन्ति पर्णानि प्रकीर्णानि महीतले ।
संचीयन्तेऽनिलैकेन वियुज्यन्तेऽपरेण च ॥ ९२
तथा जीवाः समुद्भूताः प्रकीर्णा हि महीतले ।
चीयन्ते कर्मणैकेन नीयन्ते त्वपरेण च ॥ ९३
यथोदितस्य सूर्यस्य ध्रुवं पतनमग्रतः ।
प्रदीप्तस्य प्रदीपस्य चोपशान्तिर्यथोदिता ॥ ९४
यथा नभसि मेघानां विलयः पुरतः स्थितः ।
तथा जातस्य जन्तुस्य मरणं ध्रुवमग्रतः ॥ ९५
पार्थिवाः खेचराश्चैव केशवाश्चक्रवर्तिनः ।
मानवा ब्रह्मरुद्राश्च योगसिद्धा दमेश्वराः ॥ ९६
इन्द्राश्च चन्द्रसूर्याख्या[5] लोकपालास्त्वनीकिनः ।
पतन्ति स्वेषु कालेषु त्राता कश्चिन्न विद्यते ॥ ९७
यथैव मत्तमातङ्गः प्रविश्य कदलीवनम् ।
पाददन्तकराग्रैश्च प्रमृद्नाति[6] मुहुर्मुहुः ॥ ९८

---

१ म स्वकर्मकृत°. २ क व्यतीतकुल°. ३ म विक्रीतुं. ४ म च दुर्गतीः.
५ म °सूर्याख्यौ. ६ क पाददण्ड°.

तथैव मृत्युमातङ्गस्तिर्यग्नरसुरासुरान् ।
प्राप्तकालान्प्रमृद्नाति दिवानिशमवारितः ॥ ९९
तिर्यग्योनिषु सर्वासु मर्त्यदैत्यामरेषु च ।
नारकेषु च दुर्वार्यो विहरत्यन्तकः सदा ॥ १००
विषैश्च विषमाहारैः पानीयैरनलानिलैः ।
शस्त्रोल्कावह्निसंपातैर्व्याधिरूपैरुपैति सः ॥ १०१
जरया मृत्युना जात्या क्लेशाननुभवंश्चिरम् ।
आत्मा संसारवासेऽस्मिन्बम्भ्रमीति पुनः पुनः ॥ १०२
यत्र जीवस्य जातिः स्यात्तत्रावश्यं जरा भवेत् ।
जरापरीतगात्रस्य ध्रुवं मृत्युर्भविष्यति ॥ १०३
जातेर्दुःखं परं नास्ति जरसः कष्टं न विद्यते ।
भयं च मृत्युतो नास्ति तत्र यत्सेव्यते ध्रुवम् ॥ १०४
ह्योविद्धि[1] निर्गतं जन्म स्वोदच्च[2] तदनागतम् ।
अद्यवद्वर्तमानं स्यादित्युक्तं कर्मदर्शिभिः ॥ १०५
रात्रिस्तमोमयी चात्र कृतान्तं समुपेष्यति ।
कश्चिद्बन्धुर्न हि त्राता कृतो धर्मोऽभिरक्षति ॥ १०६
धर्मो दयामयः प्रोक्तो जिनेन्द्रैर्जितमृत्युभिः ।
तेन धर्मेण सर्वत्र प्राणिनोऽश्नुवते सुखम् ॥ १०७
तस्माद्धर्मे मतिं धत्स्व यूयमिष्टफलप्रदे ।
स वः सुचरितो भर्तुः संयोगाय भविष्यति ॥ १०८
एको धर्मस्य तस्यात्र सूपायः स तु विद्यते ।
तेन पापास्रवद्वारं नियमेनापि दीयते[3] ॥ १०९

१ [ह्योवद्धि]. २ क स्त्वोवच, [श्वोवच्च]. ३ [नियमेनापिधीयते].

व्रतशीलतपोदानसंयमोऽर्हत्प्रपूजनम् ।
दुःखविच्छित्तये सर्वं प्रोक्तमेतदसंशयम् ॥ ११०
अणुव्रतानि पञ्चैव त्रिःप्रकारं[1] गुणव्रतम् ।
शिक्षाव्रतानि चत्वारि इत्येतद्द्वादशात्मकम् ॥ १११
देवतातिथिप्रीत्यर्थं मन्त्रौषधिभयाय वा ।
न हिंस्याः प्राणिनः सर्वे अहिंसा नाम तद्व्रतम् ॥११२
लोभमोहभयद्वेषैर्मायामानमदेन वा ।
न कथ्यमनृतं किंचित्तत्सत्यव्रतमुच्यते ॥ ११३
क्षेत्रे पथि कले[2] वापि स्थितं नष्टं च विस्मृतम् ।
हार्यं न हि परद्रव्यमस्तेयव्रतमुच्यते ॥ ११४
स्वसृमातृस्वसाप्रख्या[3] द्रष्टव्याः परयोषितः ।
स्वदारैरेव संतोषः स्वदारव्रतमुच्यते ॥ ११५
वास्तुक्षेत्रधनं धान्यं पशुप्रेष्यजनादिकम् ।
परिमाणं[4] कृतं यत्तत्संतोषव्रतमुच्यते ॥ ११६
ऊर्ध्वाधो दिग्विदिक्स्थानं कृत्वा यत्परिमाणतः ।
पुनराक्रम्यते नैव प्रथमं तद्गुणव्रतम् ॥ ११७
गन्धताम्बूलपुष्पेषु स्त्रीवस्त्राभरणादिषु ।
भोगोपभोगसंख्यानं द्वितीयं तद्गुणव्रतम् ॥ ११८
दण्डपाशबिडालांश्च[5] विषशस्त्राग्निरज्जवः ।
परेभ्यो नैव देयास्ते स्वपराघातहेतवः ॥ ११९
छेदं भेदवधौ बन्धगुरुभारातिरोपणम् ।
न कारयति योऽन्येषु[6] तृतीयं तद्गुणव्रतम् ॥ १२०

---

१ म त्रिःप्रकारगुण°. २ [कुले]. ३ [°मातृसुता°]. ४ म परिमाणकृतं. ५ क °बिरालाश्च. ६ म योग्येषु

शरणोत्तममाङ्गल्यं नमस्कारपुरस्सरम् ।
व्रतवृद्ध्यै हृदि ध्येयं सन्ध्ययोरुभयोः सदा ॥ १२१
समता सर्वभूतेषु संयमः शुभभावनाः ।
आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं व्रतम् ॥ १२२
मासे चत्वारि पर्वाणि तान्युपोष्याणि यत्नतः ।
मनोवाक्कायसंगुप्त्या स प्रोषधविधिः[1] स्मृतः ॥ १२३
चतुर्विधो वराहारः संयतेभ्यः प्रदीयते ।
श्रद्धादिगुणसंपत्त्या तत्स्यादतिथिपूजनम् ॥ १२४
बाह्याभ्यन्तरनैःसंग्याद्गृहीत्वा तु महाव्रतम् ।
मरणान्ते तनुत्यागः सल्लेखः स प्रकीर्त्यते ॥ १२५
इत्येतानि व्रतान्यत्र विधिना द्वादशापि ये ।
परिपाल्य तनुं त्यक्त्वा ते दिवं यान्ति सद्व्रताः ॥१२६
सौधर्मादिषु कल्पेषु संभूय विगतज्वराः ।
तत्राष्टगुणमैश्वर्यं लभन्ते नात्र संशयः ॥ १२७
अप्सरोभिश्चिरं रन्त्वा वैक्रियातनुभासुराः ।
भोगानतिशयान्प्राप्य निश्च्यवन्ते सुरालयात् ॥ १२८
हरिभोजोग्रवंशे वा इक्ष्वाकूणां तथान्वये ।
उत्पद्यैश्वर्यसंयुक्ता ज्वलन्त्यादित्यवद्भुवि ॥ १२९
विरक्ताः कामभोगेषु प्रव्रज्यैवं महाधियः ।
तपसा दग्धकर्माणो यास्यन्ति परमं पदम् ॥ १३०
इत्येतद्यतिना प्रोक्तं दुःखविच्छित्तिकारणम् ।
ताश्च तद्वचनापास्तशोकाग्रहधियोऽभवन् ॥ १३१

---

१ क संप्रोषधविधिः.

अथोत्थाय मुनीन्द्रस्य पादौ नरपतेः स्नुषाः ।
प्रणम्य जगृहुः सर्वा व्रतान्युक्तानि शक्तितः ॥ १३२
ततो राजा पुनस्तासां वियोगहतचेतसाम् ।
हृदयानन्दजननीं गिरमित्थमुवाच सः ॥ १३३
मा भूवं विक्लवाः सर्वा आसतां धर्मवाञ्छया ।
उपक्रान्तैरुपायैस्तैः कुमारं मृगयाम्यहम् ॥ १३४
परिगम्य मुनिं राजा भक्तिप्रेमार्द्रचेतसा ।
प्रणम्यान्तःपुरैः सार्धं स्नुषाभिश्च पुरं ययौ ॥ १३५
अथान्यदा सुखासीनं राजानमामितप्रभम् ।
चैत्यपूजाभिलाषिन्यश्चक्रुर्विज्ञापनं स्नुषाः ॥ १३६
ततो विज्ञापितो राजा कारयामास मासतः ।
शरत्कालाम्बुदाकारं जिनेन्द्रभवनं शुभम् ॥ १३७
मेघचुम्बितकूटाग्रं स्फुरत्केतुविराजितम् ।
चलद्घण्टारवोन्मिश्रं ज्वलत्काञ्चनपीठिकम् ॥ १३८
प्रतिमाः स्थापितास्तत्र नानारत्नविनिर्मिताः ।
भृङ्गारादर्शशङ्खादिपरिवारोपशोभिताः ॥ १३९
पूर्वमष्टाह्निकं भक्त्या देव्यः कृत्वा महामहम् ।
प्रारब्धा नित्यपूजार्थं विशुद्धेन्द्रियगोचराः ॥ १४०
चरुभिः पञ्चवर्णैश्च ध्वजमाल्यानुलेपनैः ।
दीपैश्च बलिभिश्चूर्णैः पूजां चक्रुर्मुदान्विताः ॥ १४१
उपवासेन तन्वङ्ग्यः शुद्धवाग्मनसःक्रियाः ।
स्तोत्रैर्मन्त्रैश्च गीतैश्च जिनान्सन्ध्यासु तुष्टुवुः ॥ १४२
शेषकालं जिनेन्द्राणां धर्मसंकथया तया ।
पुस्तवाचनया चापि गमयामासुरुत्तमाः ॥ १४३

कदाचित्संयतेभ्यस्ता दानधर्मपरायणाः ।
शुद्ध्यादिभिर्गुणैर्युक्ता पात्रदानानि संददुः ॥ १४४

इत्येवं नृपवनिता व्यपेतशोका
दानोरुव्रतगुणभावनावसक्ताः ।
देवानां सकलविदां ययाचिरे ताः
पादेषु प्रणतधियः पतिं प्रतीष्टाः ॥ १४५

औत्सुक्यप्रतिहतमानसाः कदाचि-
द्गण्डान्तप्रणिहितचारुहस्तपद्माः ।
पक्ष्माग्रश्रुतसलिला मुहुश्च सन्त्यः
संदध्युर्युवनृपतिसमागमाशाम् ॥ १४६

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
अन्तःपुरविलापो नाम
पञ्चदशः सर्गः ।

[षोडशः सर्गः]

अथैवमुर्वीपतिसूनुरिभ्यैर्विभागवद्भिर्ललितैरुदारैः ।
तेषां च पुत्रैरनुगृह्यमाणो रेमे च तस्यां ललिताह्वपुर्याम् ॥ १
क्रीडां यथा मत्तगजो वनेषु प्रलाल्यमानो गजकामिनीभिः ।
लेभे गतिं बन्धगतोऽपि तद्वत्स्वाभिर्नृपोऽप्यत्र हि दुष्क्रियाभिः २
एवं नृपस्यान्यनरेन्द्रपुर्यां व्यामिश्रयोगेन सुखासुखेन ।
कालोऽगमत्कर्मवशेन तस्य यशोगुणश्रीधनभाजनस्य ॥ ३

१ क °प्राणिहित. २ [°स्रुतसलिला]. ३ म समागताशां.

तस्यां तु पुर्यां बसति क्षितीन्द्रे प्रवृत्तमन्यत्प्रकृतं महद्यत् ।
यथागमं तद्विनिगद्यमानं शृण्वन्तु सन्तो गुणभारनम्राः ॥ ४
आसीन्नरेन्द्रो मधुराधिपस्तु नाम्नेन्द्रसेनः प्रथितो धरण्याम् ।
तस्याग्रपुत्रो बलवीर्यदृप्त उपेन्द्रसेनो युवराड् बभूव ॥ ५
समस्तसामन्तनिबद्धपट्टौ समस्तसामन्तमदावरोधौ ।
समस्तसामन्तगणातिधैर्यौ बभूवतुश्चन्द्रदिवाकराभौ ॥ ६
शौर्योद्धतावप्रतिकोशदण्डौ गृहीतसामन्तसमस्तसारौ ।
तौ देवसेनस्य नरेश्वरस्य गजेन्द्रमाशुश्रवतुश्चरेभ्यः ॥ ७
स वारणेन्द्रः शुभपीवराङ्गो मदस्रुतिक्लिन्नकपोलदेशः ।
अतुल्यवीर्यः स्रवदम्बुदाभश्चलद्गिरिप्रख्यतमोऽतिसत्त्वः ॥ ८
भद्रान्वयो भद्रमना विनीतः क्रियाविधिक्षेत्रगुणैरुपेतः ।
मधुप्रभाख्यः सुविभक्तगात्रः पूर्वप्रदेशोन्नतचारुकुम्भः ॥ ९
तमिन्द्रसेनो वरवारणेन्द्रं बलाज्जिघृक्षुर्धनमानदृप्तः ।
लेखेन साम्ना रहितेन तेन संप्रेषयामास स दूतवर्यम् ॥ १०
ततो हि दूतः पथि काननानि नदीगिरिप्रस्रवणान्तराणि ।
देशान्व्रजन्ग्रामवरांश्च पश्यन् स देवसेनस्य विवेश देशम् ॥ ११
क्रमात्पुरं तल्ललिताभिधानं प्रपासभोद्यानविशेषरम्यम् ।
शनैः समासाद्य स दूतमुख्यो ददर्श भूपं विधिनोपसृत्य ॥ १२
ततस्तु राजा प्रतिमुच्य लेखं लेखोपचारेण च वाचयित्वा ।
विज्ञाय लेखार्थमपेतसौमं[2] चिक्षेप लेखं कुपितो धरण्याम् ॥ १३
स ताम्रनेत्रः स्फुरिताधरोष्ठः कोपादविज्ञाय परात्मशक्ती ।
निर्भर्त्स्य दूतं परुषैर्वचोभिर्वामेन पादेन ममर्द लेखम् ॥ १४

१ [मधुराधिप°]. २ क °सान्त्वं.

अपेतसामानि वचांसि राजा जगाद दूतं पुरतः स्थितं तत् ।
उक्तेन किंवा बहुना शृणु त्वं युद्धादृते तस्य न शान्तिरस्ति॥१५
समस्तसामन्तधनानि यानि विक्रम्य जग्राह पुरा बलेन ।
तान्येव जीर्यन्त्वलमन्यवित्तैः श्रमव्ययाक्षेमकरैरनर्थैः ॥ १६
भो दूत आस्तां नृपतिस्त्वदीयो निजेन राज्येन हि तुष्टिमेतु ।
स्थाने न चेत्स्थास्यति सर्वथान्यं संस्थापयिष्याम्यहमेत्य तत्र ॥
संस्थाप्यमानोऽपि मयेन्द्रसेनः स्थातुं न चेच्छेत्स्वकुलोचितेन ।
प्राग्यद्गृहीतं च धनं परेषां तद्वा ग्रहिष्यामि दुरात्मनोऽहम् ॥१८
अथ त्वरा वास्ति हि पौरुषं वा आगम्यतां सर्वबलेन सद्यः ।
य आवयोर्जेष्यति युद्धशौण्डो भवन्तु हस्त्यश्वपुराणि तस्मै ॥१९
इत्येवमाघोष्य सभासमक्षं संतर्ज्य रोषादपभीस्तदानीम् ।
विरोधबुद्ध्या न ददौ स्वलेखं कृत्वार्धमुण्डं विससर्ज दूतम् ॥ २०
ततो विसृष्टो वसुधेश्वरेण त्रस्तात्मचित्तस्तु कृतार्धमुण्डः ।
परिस्पृशन्स्वं स शिरः करेण जगाम तूष्णीं ललिताह्वपुर्याम् ॥ २१
अथो ह्युपस्थानगतः स्वदूतं प्रत्यागतं त्वप्रतिलेखमात्रम् ।
दृष्ट्वा कृताङ्कं पुरतो नृपाणां चुक्रोध राजा भृशमिन्द्रसेनः ॥२२
स्वभावतः प्रोन्नतमानदृप्तः परावमानैकरसानभिज्ञः ।
मुहुर्मुहुः श्वासविकम्पिताङ्गो जज्वाल वाताहतवह्निकल्पः ॥ २३
मत्तोऽधिकाः शक्तिबलप्रतापैर्ये पार्थिवास्तैः सह योद्धुकामः ।
युद्धाय लेखान्विससर्ज तेभ्यो भयार्दितास्ते प्रददुर्धनानि ॥ २४
असौ वराको नयविन्न चासौ परात्मशक्त्यज्ञतयातिमूढः ।
स मृत्यवे केवलमिद्धमग्निं पतङ्गवद्वाञ्छति संप्रवेष्टुम् ॥ २५

१ क तद्वामयिष्ये खलु मान्वरिष्ठाः. २ क कृतार्धदण्ड. ३ म योद्धुकामः.

विश्रिष्ट एवाप्रतिमल्लहस्ती ददौ[1] पुनर्मेऽप्रतिमल्लकल्पम् ।
युद्धाभितृप्तिश्चिरकालतो मे भविष्यतीति प्रजगाद राजा ॥२६
मद्वाक्यनीतौ यदि नैव तिष्ठेल्लोभाच्च दर्पादभिमानतो वा ।
निष्कृष्यते श्रीललिताह्वपुर्याः संस्थापयिष्यामि वशस्थमन्यम् २७
एकस्य हेतोः करिणो यदासौ नेच्छेत्सुखं जीवितुमुन्नताशः ।
मत्सैन्यनिर्वासितपौरराष्ट्रो मामेव गन्ता शरणं हताशः ॥ २८
सर्वक्षितीशेष्वहतप्रताप[2] आज्ञां मदीयामवमन्यमानः ।
सभृत्यमित्रः सकलत्रपुत्रः सकोशदण्डः क्षयमेष्यतीति ॥ २९
अनर्थकैः किं बहुभिः प्रलापैः फले ध्रुवं कार्यमुपैति व्यक्तिम् ।
इत्येवमाविष्कृतसत्प्रतिज्ञो बहिस्तदेवाशु पुराज्जगाम ॥ ३०
महेन्द्रसेनप्रवरा महीन्द्रा उपेन्द्रसेनप्रमुखाश्च पुत्राः ।
पदातिहस्त्यश्वरथैः समेता नरेन्द्रयातानुपथं प्रयाताः ॥ ३१
अङ्गाश्च वङ्गा मगधाः कलिङ्गाः सुह्माश्च पुण्ड्राः कुरवोऽश्मकाश्च ।
आभीरकावन्तिककोशलाश्च[3] मत्स्याश्च सौराष्ट्रकविन्ध्यपालाः ३२
महेन्द्रसौवीरकसैन्धवाश्च काश्मीरकुन्ताश्चरकासिताह्वाः ।
ओद्राश्च[4] वैदर्भकवैदिशाश्च पञ्चालकाद्याः पतयः पृथिव्याम् ॥३३
समेत्य सर्वे स्वबलैरुदारैरनेकशस्त्रास्त्रविभूतिमद्भिः ।
उत्थापितच्छत्रसुकेतुचिह्ना निश्चक्रमुर्भूपतयः प्रयोद्धुम् ॥ ३४
प्रदानमानैकरसाप्तवीर्याश्चिकीर्षवः स्वामिहितानि भृत्याः ।
इहात्मशौर्यं प्रतिदर्शयामो रणे नृपाणामिति केचिदाहुः ॥ ३५
अस्वामिकार्याणि पुनर्बहूनि दिनान्यतीतानि निरर्थकानि ।
अद्यात्मशक्तिं नृपतेः समक्षं प्रकाशयिष्याम इति न्यवोचन् ॥ ३६

---

१ क दधौ. २ [°प्रतापामाज्ञा]. ३ क आभीरकावन्तिन°. ४ म चौदाश्च, [औद्राश्च].

पश्यामि तावत्समराजिरेऽस्मिन् नृणां पुनः सारमसारतां च ।
स्याद्धूमकेतौ कनकस्य शुद्धिर्व्यक्तिं प्रयातीति निराहुरन्ये ॥ ३७
नृपेन्द्रसेनो बृहदुग्रसेनः कृतात्मशक्तिर्बहुकोशदेशः ।
अवार्यवीर्यो दृढबद्धवैरः सुनीतिनीतार्थविशुद्धबुद्धिः ॥ ३८
एतैर्गुणैर्न्यूनतमस्तु राजा मानैकसारो ललितेश्वरोऽसौ ।
तस्यास्य चेति प्रविचिन्त्यमानं तदन्तरं स्यान्मशकेभयोर्यत् ॥३९
अहो तपस्वी ललितेश्वरोऽसौ नोऽपीक्षते स्वं तु बलाबलं यत् ।
महार्णवानन्तबलेन राज्ञा युयुत्सुरज्ञास्त्विति केचिदूचुः ॥ ४०
अथैकमत्तद्विरदस्य हेतोरपोप्सति[1] श्रीपुरकोशदेशान् ।
अकौशलं तस्य हि मन्त्रिणां च निरीक्ष्यतामित्यपरे निराहुः ॥४१
न मन्त्रिणां वा वचनं शृणोति ते वा हितं नास्य वदन्त्युपेत्य ।
विनाशकालः समुपस्थितो वा बलीयसा यत्कुरुते विरोधम् ॥४२
महाबलस्यास्य पुरः कुतः स्यात्स्थातुं हि शक्तिर्ललितेश्वरस्य ।
सहैव नागेन विमुच्य देशं पलायतेऽसाविति केचिदूचुः ॥ ४३
सुनीतिमार्गेण समाचरन्तो जयन्ति शत्रून्महतोऽपि[2] हीनाः ।
अनीतिमन्तो बलिनोऽपि गम्या नैकान्तमस्तीत्यपरे निराहुः ॥४४
यः शक्तिमांस्तं पुनरप्रमत्तस्तथाप्रमत्तं न च दीर्घसूत्रः ।
तौ नीतिमांस्तं खलु दैवयुक्तो जेष्यत्यरीनित्यपरे समूचुः ॥ ४५
एवं ब्रुवाणास्तु परस्परस्य जेतुं प्रविष्टाः परदेशमाशु ।
प्रविष्टमात्रेण पुरं विमुच्य ननाश देशं सकलं क्षणेन ॥ ४६
ततः प्रजास्ताः परचक्रभीता हृतावशिष्टं धनधान्यसारम् ।
आदाय सर्वे सकलत्रपुत्राः पुरं प्रविष्टा ललिताख्यमुख्यम् ॥४७

१ [अपोहति]. २ [शत्रून्न हि तेऽपि].

सा चापि सेना महती क्षितीशां पुरीं महासारवतीं विशालाम् ।
सगोपुराट्टालकतोरणां तां निरुध्य तस्थौ सतृणाम्बुकाष्ठाम् ॥४८
समीक्ष्य सेनां मधुराधिपस्य महर्द्धियुक्तां ललितश्वरोऽसौ ।
स्वान्मन्त्रिणो मन्त्रगुणप्रवीणानाहूय तैर्मन्त्रविधिं चकार ॥ ४९
एषोऽपि शत्रुः प्रबलः प्रधृष्यः पुरं समावेष्ट्य हि संनिविष्टः ।
वयं च हीना बलमित्रकोशैर्दुर्गं च सद्दुर्गगुणैरपेतम् ॥ ५०
अस्मै न मे दन्तिवरस्य दित्सा परेण साकं न च योद्धुकामः ।
पुरं त्यजामीति न मेऽभिलाषः परीक्ष्य तद्योग्यमिह प्रवाच्यम् ॥५१
इत्येवमुक्ता वसुधाधिपेन सद्बुद्धयः स्वामिनि नित्यभक्ताः ।
तत्कालयोग्यं स्वमतिप्रणीतं यथानुपूर्व्या विदधुर्वचस्तम् ॥ ५२
नैवेह कार्यो बलवद्विरोधो दोषः समस्तुल्यबलैर्विरोधे ।
न्यूने विदित्वा खलु देशकालौ क्रियाप्रसिद्धिं लभते नरेन्द्रः ॥५३
साम्ना प्रदानेन च कार्यसिद्धिं वाञ्छन्ति तज्ज्ञा निरुपद्रवत्वात् ।
क्षयव्ययक्लेशसहस्रमूलौ मृत्योः पदं भूमिप भेददण्डौ ॥ ५४
मानोऽन्तरं सर्वनरेश्वराणां मानस्तु कल्याणफलप्रदायी ।
अयं प्रकृत्या भृशमात्ममानी तस्मात्तु मान्यो भवतीन्द्रसेनः ॥५५
स्यान्मानहानिर्यदि सन्धिभागे मा भूत्स दोषः स्मृतिषूपदिष्टम् ।
स्वकार्यसिध्द्यै प्रददौ महेन्द्रो मानं विहायैहिकलोहिताङ्कम् ॥५६
धनेन देशेन पुरेण साम्ना रत्नेन वा स्वेन गजेन वापि ।
स येन येनेच्छति तेन तेन संदेय एवेति जगौ सुनीतिः ॥ ५७
तद्युक्तिमत्स्यात्खलु सार्वभौमे नरेश्वरे सर्वगुणैरुपेते ।
अयं गुणैर्मध्यम इन्द्रसेनः शक्यो विजेतुं परमं श्रयेण[2] ॥ ५८

१ [सधय]. २ [परमश्रमेण].

यद्देयमस्मै वसुधाधिपाय तद्देव कस्मैचिदपि प्रदाय ।
अस्योपरिष्टाद्वयमानयामो बलान्वितं तं यदि रोचते ते ॥ ५९
उत्साहमन्त्रप्रभुशक्तियोगाज्ज्यायानयोध्याधिपतिः क्षितीशाम् ।
श्रीवीरसेनोऽस्ति तमाश्रयाम इत्याचचक्षे विनयाद्द्वितीयः ॥ ६०
किं तेन राज्ञा बलवत्तमेन स्वकार्यसंसिद्धिपरायणेन ।
इदं पुनर्युक्तिमदर्थमन्यद्ब्रवीमि वाक्यं यदि रोचते ते ॥ ६१
सन्तीह पुर्यां सुजनाः समृद्धा अगाधतोयाश्च तडागवाप्यः ।
शूरा मनुष्याश्च परैरहार्यास्त्वं चापि शक्तित्रयमभ्युपेतः ॥ ६२
मुख्येषु भेदं प्रतिदर्शयन्तस्तद्वीवचां[1] सारधनं[2] नियोज्य ।
पार्ष्णीं तथोत्थाप्य हि तस्य देशे विगृह्यते नाशनमेव युक्तम्॥६३
अभ्यर्ण एषोऽपि च मेऽप्यकालः स पार्ष्णिरप्यस्य तु पार्वतीयः ।
अतो न सन्ध्याश्रयतां प्रयामः स्थाप्याम[3] एवेत्यवदत्स मन्त्री ॥६४
साधूक्तमेभिर्नृपमन्त्रिमुख्यैः सन्ध्याश्रयस्थानगुणैः प्रसिद्धिः ।
एषां प्रयोगस्य गतस्तु कालो ह्यकालतस्तेऽपि भवन्त्यनर्थाः॥६५
यद्दूतसंप्रेषणकाल एव सामप्रदानाद्युचितानुपायान् ।
अकुर्म[4] चेद्भूमिप सा सुनीतिः कालात्ययः संप्रति दोष एषः ॥ ६६
एभिस्त्रिभिर्मन्त्रिवरैर्महीश कार्यं यदुक्तं तदपोहनीयम् ।
न मे प्रियं युक्तिविवर्जितत्वादित्याचचक्षे विजयश्चतुर्थः ॥ ६७
यत्कारणः[5] स्यादनयोर्विरोधो नरेन्द्रयोरप्रतिवीर्यभासोः ।
स एव हस्ती यदि दीयते चेत्पुंस्त्वाभिमानस्य हि कोऽधिकारः६८
अयं च राजेन्द्र समानसेनो नरेन्द्रसेनः समरे समर्थः ।
सर्वस्वमादाय तु यातुकामः कथं पुनर्यास्यति हस्तिमात्रात् ॥ ६९

१ [°स्तद्वीमता] २ म सारवधं. ३ [स्थास्याम]. ४ क अकर्म.
५ [यत्कारणं.....°विरोधे].

कालो व्यतीतो नरदेव शान्तो दानाश्रयस्थानविधिस्तथैव ।
उपस्थितौ संप्रति भेददण्डौ तस्माद्द्वये धत्स्व मतिं न चान्यत् ॥ ७०
धनं शरीरं बलमायुरैश्यं चिरं न तिष्ठन्ति मनुष्यलोके ।
यशांसि पुंभिः समुपार्जितानि स्थायीनि यस्माद्यशसे यतस्व ॥७१
उपेन्द्रसेनो बलवानिति त्वमवैहि मंस्थाः प्रथितोरुसत्त्वः ।
कार्यस्य[1] तस्या[2] [ ] पुरःसरस्य नासाध्यमस्ति क्षितिपाल लोके॥७२
तथापि भूपाः समरे कृतार्थाः स्निग्धा नरेन्द्राः स्वमनोऽनुकूलाः ।
गृहीतशस्त्रास्त्रबलार्थशास्त्राः सन्ति प्रभूता नृपतेः सहायाः ॥ ७३
अर्थ्यं[3] यशस्यं विदुषां प्रशस्यं तेजस्करं मन्त्रिवरोपदिष्टम् ।
निशम्य वाक्यं हृदयावकर्षी क्षितीश्वरः संमुमुदे स तस्य ॥ ७४
संपूज्य तान्मन्त्रिगणानशेषान्विशेषपूजां विजयाय कृत्वा ।
सभासमक्षं समराभिलाषी युद्धाय सर्वं नृपतिः[4] शशास ॥ ७५
राजानुमत्या विजये[5] जयैषी शूरानुरक्तप्रतिबोधनाय ।
तस्यां महत्यां ललिताह्वपुर्यां सघोषणां[6] निर्गमयांचकार ॥ ७६
राजापि युद्धाभिमुखः[7] सबन्धुः प्रवीक्ष्यते[8] शत्रुविमर्दनाय ।
सन्मानदानैकरसाप्तवीर्याः पुंस्त्वाभिमानास्त्वरयाभ्युपेताः ॥७७
एवंविधा सर्वजनाधिगम्या महाविभूत्या नृपशासनेन ।
भेर्या नदन्त्या परिघोषणा हि बंभ्रम्यते वारणमस्तके सा ॥७८
कश्चिद्भटः कान्तवपुस्तदानीं वामाग्रहस्तापितगण्डदेशः[9] ।
बलं समीक्ष्य स्वपुरान्तकस्य दध्यौ स्वयं किं क्रियते मयेति ॥७९

---

१ क कार्यस्य सन्तीति २ [तस्यात्म]. ३ म अर्थ. ४ म सर्वान्नृपतीन् शशास. ५ [विजयो]. ६ [स्वघोषणा]. ७ म शुद्धाभिमुखः. ८ [प्रतीक्षते]. ९ [°हस्तार्पित°]

सव्याधिते[1] च व्यसनिन्यनाथे क्षुत्पीडिते शत्रुजनाभिभूते ।
द्वारे नृपाणां पितृभूमिभागे संतिष्ठते यः किल सोऽतिबन्धुः ॥८०
अहं च अत्रैव कयापि युक्त्या वसामि मूढः स्वहिताहिताय ।
एषोऽपि मे मातुल एव राजा प्रियोऽरिसैन्यैरभिविद्रुतश्च[2] ॥ ८१
अभ्येत्य[3] दूरादपि युक्तिमत्स्यात् सहायकृत्यं स्वजनेन कर्तुम् ।
तद्बन्धुना कार्यविदा मयाद्य समक्षभूतेन कथं प्रहेयम् ॥ ८२
वराङ्गनामा तव भागिनेयः सुतोऽस्म्यहं धर्मनरेश्वरस्य ।
इति ब्रुवं[4] चेल्ललितेश्वराय न श्रद्दधात्येष च मां हसेद्वा ॥ ८३
इमान्स्वबन्धून्मम धर्मलब्धानुद्दिश्य योत्स्येऽहमिति ब्रवीमि ।
वणिक्सुतत्वात्परिभूयमानः सभासमक्षं लघुतां व्रजामि ॥ ८४
कोऽस्यान्न युक्तिर्निरवद्यरूपा समाश्रयेयं[5] श्वशुरस्य हेतोः ।
अज्ञातशस्त्रव्यवहारदक्षो भटोऽहमस्मीत्युदिते न दोषः ॥ ८५
नृपोपकारं मम कुर्वतस्तु कीर्त्यात्मवासः प्रकटो ध्रुवं स्यात् ।
इत्यात्मचिन्तागतमानसः सन् शुश्राव घोषं स तु घोषणायाः ॥८६
तां मत्तमातङ्गशिरोऽधिरूढामाप्लुष्यमाणां[7] पटहस्वनेन ।
संश्रुत्य कश्चिद्भट उन्नतश्रीः किं किं किमित्येतदपृच्छदाशु ॥८७
ते पृच्छयमाना वरवारणस्थाः स्वस्वामिसंदेशवशानुवृत्ताः ।
यात्यद्य राजा समराङ्गणाय रिपून्निहन्तुं त्विति संजजल्पुः ॥८८
निशम्य तेषां वचनं पृथुश्रीः कश्चिद्भटः सोऽप्यनवार्यवीर्यः ।
सहायकृत्यं नृपतेश्चिकीर्षन् शूरः प्रकृत्या द्विगुणं जहर्ष ॥ ८९
एषा हि नूनं मम भाविनी श्रीर्नृपस्य वा पूर्वकृतो विपाकः ।
यदत्र कार्यं प्रतिचिन्तयामि तदेव साक्षात्समुपस्थितं मे ॥ ९०

---

१ क यो व्याधिते, [सव्याधिके]. २ क °विधृतश्च. ३ म अभीत्य. ४ [इत्यब्रुवं]. ५ [का स्यान्नु]. ६ [समाश्रये या]. ७ क ता पुष्यमाणां, [°माघुष्यमाणा].

इति प्रचिन्त्यात्मनि निश्चितार्थो गुरुं समाहूय निवेश्य भूयः ।
युद्धाय राज्ञा सह संव्रजामि त्वं मामनुज्ञाय विमुञ्च तात ॥ ९१
तद्वाक्यसंत्रस्ततनुः पितास्य स्नेहानुरागादभिगृह्य पादौ ।
कुरु प्रसादं शृणु मे वचस्त्वं हितानुबन्धं प्रियमप्रियं वा ॥ ९२
जानामि ते शौर्यमवार्यमन्यैः शस्त्रास्त्रयोः कौशलमप्रधृष्यम् ।
प्रत्यक्षमेतन्मम सर्वमासीत्तथाप्यहं कार्यमिदं प्रवक्ष्ये ॥ ९३
युद्ध्वापि केचित्सुकृतैर्विहीना अप्राप्तभोगा मरणं प्रयान्ति ।
व्यपेतशोकाः स्वगृहे वसन्तो भोगान्विचित्रानुपभुञ्जतेऽन्ये ॥९४
वृत्तिं विचित्रां स्वकृतानुरूपां पुंसां विचार्य क्षयिणी च लक्ष्मीम् ।
प्रीत्येह च श्रेयसि यद्युनक्ति तदेव कार्यं विदुषा नरेण ॥ ९५
भोगाभिलाषात्तव विक्रमश्चेद्भोगान्यथेष्टानहमानयामि ।
अथार्थहेतोर्यदि ते प्रयासः सन्तीह ते पुत्र हिरण्यकोट्यः ॥ ९६
देशं च कालं च कुलं बलं च परीक्ष्य कृत्यानि जनैः क्रियन्ते ।
संचिन्त्य तत्सर्वमुदारबुद्धे निवर्त्यतां युद्धकृताभिलाषः ॥ ९७
युद्धं त्वया यत्कृतमासि[1] पूर्वमद्यापि तन्मे भयमादधाति ।
तस्मादहं त्वां शिरसाभियाचे युद्धेन किं वा सुखमास्व वत्स ॥९८
अहो तपस्वी बत मन्दसत्त्वः स्वजातिसादृश्यमताभिधानः ।
मामप्ययं यन्मनुते स्वाजाताविश्येवमात्मन्यथ संप्रदध्यौ ॥ ९९
पित्रैवमुक्तः सुत इत्थमूचे नार्थेन कृत्यं विषयेन कार्यम् ।
न यौवनोद्दाममुदां[2] वशस्थो न चाप्यहं श्लाघ्यतया करोमि ॥ १००
स्त्रीबालवृद्धानगतीन्विपन्नाननाथदीनातुरभीतवर्गान् ।
आपद्गतानाश्रमवासिनश्च त्रातुं मयायं मनसि प्रयासः ॥ १०१

१ [यत्कृतमस्ति, यत्कृतमास]. २ म °मुदा°.

प्रजाहितक्षेमसुखप्रसिद्ध्यै राज्ञो विजित्यैव[1] रिपोर्वधाय ।
तवापि कीर्त्यै मम धर्महेतोर्युद्धेऽनुमन्यस्व न वारयस्व ॥ १०२
श्रेष्ठी सुतस्याभिमतं विदित्वा चेष्टानुरूपां च यथार्थवार्ताम् ।
तस्योत्तरं वक्तुमशक्नुवन्स तूष्णीं बभूवार्थपतिर्विधिज्ञः ॥ १०३
हये रथे वा वरवारणे वा पञ्चायुधेनात्मपराक्रमेण ।
महाहवे योऽत्र मया युयुत्सुस्तस्यास्मि कालः कथितेन किं वा १०४
इत्येवमाभाष्य पितुः समीपे तदेव[2] संप्रेष्य पुनर्घटायाम् ।
समर्थ्य सम्यक्पितरं सहायैः संप्रेषयामास नृपान्तिकं सः ॥ १०५
कश्चिद्भटो मे तनयो वरिष्ठः साचिव्यमिच्छुः समरागमे ते ।
मां प्राहिणोद्देव यदत्र युक्तं तत्संविधत्स्व त्वमकालहीनम् ॥ १०६
पुराप्यशृण्वन्विजयप्रधानास्ते तस्य सर्वं श्रुतवीर्यसत्त्वम् ।
ध्रुवं जयो देव तवैव भावी इति ब्रुवाणाः सचिवाः शशंसुः ॥ १०७
न श्रेष्ठिपुत्रस्त्ववणिक्स्वभावान्न प्राकृतः पार्थिवलक्षणत्वात् ।
क्षात्राणि कर्माणि विशेषवन्ति बहूनि तस्मिन्नुपलक्षितानि ॥ १०८
हता किलैकेन पुलिन्दसेना द्विषट्सहस्रा मददन्तिगर्वा ।
देवेन देवेन्द्रसमेन साकं शत्रून् विजित्येति किमत्र चित्रम् ॥ १०९

अथ गुणगणमुक्त्वा श्रेष्ठिनस्ते सुतस्य
नृपसचिवपुरोधाः शिष्टमित्रेष्टवर्गाः[3] ।
इति जगदुररीणां धारयन्ती मनांसि
नदतु विजयिनी नो युद्धसन्नाहभेरी ॥ ११०
नृपतिरनुनिशम्य क्षेमयोगावहानि
श्रुतविनयधराणां मन्त्रिणां तद्वचांसि ।

१ [विजित्यै च]. २ [तमेव]. ३ [°वर्गाः].

श्रुतपरिणतबुद्धिस्त्वर्हदर्चाः प्रपूज्य
रिपुबलमथ तीर्थं निश्चितार्थो बभूव ॥ १११

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
राजसंक्षोभो नाम
षोडशः सर्गः ।

[सप्तदशः सर्गः]

अथावनीशो मतिमद्भिरार्यैः स्वबन्धुभिर्मन्त्रिभिराप्तवर्गैः ।
संमन्त्र्य युद्धाभिमुखस्तदैव स्वाहृतवान्सागरबुद्धिमनुम् ॥ १
कश्चिद्भटः स्वैर्ललितैर्वयस्यैर्वाणिग्भिरन्यैश्च समेत्य तूर्णम् ।
सिंहासनस्थं वसुधेन्द्रसिंहं ददर्श सोऽन्तर्गतहर्षभावः ॥ २
अन्योन्यनामश्रवणाभिरागावन्योन्यमुद्वीक्ष्य च संप्रहृष्टौ ।
ज्ञानंश्च नेयेऽथ नरेश्वराय वक्तुं वराङ्गो न विवेद राजा ॥ ३
स्थितं पुरस्ताद्विनयं प्रयुज्य सल्लक्षणैरूर्जितसर्वगात्रम् ।
समीक्ष्य नागेन्द्रसमानलीलं कश्चिद्भटं भूपतिरित्थमूचे ॥ ४
यो भूपतेरप्रतिकूलकारी योऽनर्थतासंशमनं करोति ।
यो वा युधि स्थैर्यमतिं न जह्याद्यो वा सहायत्वमुपैति युद्धे ॥ ५
यो दर्शयेद्युक्तिमतीं च नीतिं हितप्रवृत्तिं प्रतिबोधनाय ।
स एव बन्धुश्च सुतश्च मित्रं गुरुर्गरीयानिति लोकसिद्धम् ॥ ६
तथापि मैत्री ध्रुवमावयोस्तु पुरातनी काचिदिहापि चास्ति ।
अकृत्रिमप्रेमगुणावबद्धस्त्वयि स्वबन्धाविव मेऽनुरागः ॥ ७

---

१ म °बुद्धिस्त्वर्हदब्जाः. २ [तर्तु]. ३ [जानंश्च]. ४ म द्रुतमावयोस्तु.

मत्पुण्यतो वा तव भाग्यतो वा महाजनानां सुकृतप्रभावात् ।
जित्वारिसैन्यं यदि संनिवृत्तो दास्यामि ते मत्सुतयार्धराज्यम् ॥८
ततो बृहद्रत्नपिनद्धहारं किरीटकेयूरककुण्डलानि।
प्रलम्बसूत्रं कटिबन्धनं च पट्टं च तस्मै प्रददौ नरेन्द्रः ॥९
अन्यांश्च सन्मान्य यथोपचारं भृत्यान्भृशं निश्चितमर्थवादी ।
आहूय मन्त्रीश्वरदण्डनाथान्संनह्यतेत्याशु शशास योद्धुम् ॥१०
नरेश्वरो भास्वरसत्किरीटश्छत्रोच्चलच्चामरकेतुलक्ष्यः ।
सुकल्पितं मत्तमहागजेन्द्रमारुह्य देवेन्द्र इवाभ्यराजत् ॥ ११
संनह्य सर्वायुधसंवृतस्य स्कन्धे गजस्याप्रतिमल्लनाम्नः ।
कश्चिद्भटस्त्वप्रतिमश्चकाशे यथोदयस्योपरि बालसूर्यः ॥ १२
मदप्रभिन्नस्रवदार्द्रगण्डं मातङ्गमम्भोदसमाननादम् ।
अरिंजयं तं विजयोऽधिरूढः शोभां दधौ चन्द्रमसोऽभ्रमूर्ध्नि ॥१३
चमूपमन्त्रीश्वरराजपुत्राः गृहीतशस्त्रा युधि दुःप्रधर्षाः ।
आरुह्य मत्तद्विरदेन्द्रवृन्दं प्रतस्थिरे योद्धुमभीप्सवस्ते ॥ १४
ते कुञ्जराः काञ्चनरज्जुधाराः श्वेतोल्लसच्चामरवीज्यमानाः ।
मयूरपिञ्छध्वजतुङ्गकूटा रेजुर्विसर्पीगिरयो यथैव ॥ १५
रथाश्च सद्रत्नसुवर्णनद्धा भास्वद्ध्वजच्छत्रचलत्पताकाः ।
महारथैरप्रतिमैर्निविष्टाः कल्पान्तसूर्या इव ते विरेजुः ॥ १६
युद्धाध्वभारक्षमसत्त्वयुक्ता विचित्रवर्णाः कुलशीलशुद्धाः ।
तुरङ्गमा वायुसमानवेगाः समीयुरुर्वीपतिशासनेन ॥ १७
अनेकवेषो बहुदेशभाषस्तटिद्वपुश्चलघूर्णितास्त्रः ।
तेषां पुनर्वाजिरथद्विपानां पदातिसंघः पुरतः प्रतस्थे ॥ १८

१ क तिरीट°. २ क °तिरीटः. ३ क योद्धुमभीप्सुवस्ते. ४ [°तडिद्वपु°].

केचित्पुनर्भूपतिशासनस्थाः केचित्स्वभावोत्तममानदृप्ताः ।
केचित्परेन्द्रैः परिभूयमाना उत्तस्थिरे योद्धुमभीप्सवस्ते ॥ १९
देशार्थसंग्रामपुराकरांश्च ताम्बूलवस्त्रोत्तमभूषणानि ।
प्रदाय योऽस्मान्सकलत्रपुत्रान् बभार सन्मानपुरस्सराणि ॥२०
तस्येश्वरस्यापतिशासनस्य समक्षतो मानमदोद्धतानाम् ।
शिरांस्यरीणामसिभिर्निकृत्य[1] निवेदयन्तो निरुणो भवामः ॥२१
स्वजीवितं बन्धुजनं विहाय जिघृक्षवो ये प्रतिमल्लनागम् ।
प्रगृह्य तेषां वरवाहनानि निष्कासयामो निरपत्रपांस्तान् ॥२२
ये निष्कृपा न्यायपथादपेता विनाश्य देशान्स्वजनं विलुम्प्य ।
तेषां गदाभिः प्रविचूर्ण्य देहान विशोषयिष्याम इहाजिभूमौ॥२३
ये स्वामिनं नः परिभूय हृष्टाः प्रत्यागता लोभनिविष्टचेष्टाः ।
तानद्य हत्वा समरे दुराशांश्च[3] काकगृध्रानभितर्पयामः ॥ २४
एवं भटाश्चित्रमुदाहरन्तस्तुरङ्गमातङ्गरथाधिरूढाः ।
समुद्यतास्त्रा[4] धरणीन्द्रगेहान्निश्चक्रतुर्[5] भूपतिना सहैव ॥ २५
कश्चिद्भटं योद्धुमभिव्रजन्तं नरेन्द्रवेषोद्धतचारुलीलम् ।
समीक्षमाणाः पुरवासिनस्ते जजल्पुरित्थं स्वमनोगतानि ॥ २६
नैवासि भद्रार्थविशेषदर्शी हितस्य वक्ता च न तेऽस्ति कश्चित् ।
न योग्यमेतद्वणिजां हि युद्धं किं वान्वयाचिन्तितमेतदार्य[6] ॥ २७
अनेकहस्त्यश्वरथैः प्रकीर्णं बलं महद्योधसहस्रपूर्णम् ।
युद्धाविजेतुं[7] समरे न शक्यं मा साहसं कर्म कृथाः प्रशाम्य ॥२८
कुतश्चिदागत्य वणिक्सुतोऽभून्कुतश्चिदागत्य वनेश्वरोऽभूत् ।
कुतश्चिदागत्य जनप्रियोऽभूत्त्वं वत्स मा मृत्युपथं प्रयाहि ॥ २९

---

१ म निकृन्त्य. २ [निर्क्रुणा]. ३ [°श्चकाक]. ४ म समुद्युतास्त्रा. ५ [निश्चक्रमुः] ६ क °चिन्तितमेतदायम्, [किं वा त्वया चिन्तितमेतदार्य]. ७ [युद्धं विजेतु]. ८ क जनेश्वरो.

पुरा वराकानटवीचरांस्तानशिक्षितानल्पमतीन्पुलिन्दान् ।
जित्वा रणे सागरवृद्धिपुण्यादिदं तथैवेति मनस्यमंस्थाः[1] ॥ ३०
सुनन्दया किं तव राजपुत्र्या संक्लेशवैरास्पदभूतया ते ।
या काचिदत्रैव वणिग्जनानां सुतानुकूला च सुखेन लभ्यते ॥३१
किं श्रेष्ठिपुत्रस्य नृपात्मजा वै वेलोदधिं तर्तुमयं प्रयासः ।
गजेन्द्रवृन्दैः परिमृद्यमानं समुद्धरेत्किं वद सा सुनन्दा ॥ ३२
एवंब्रुवाणानपरे निषिध्य समूचुरित्थं वचनैर्यथार्थैः ।
वणिक्सुतो राजकुमार एष वपुः प्रकाशीकुरुते स्ववंशम् ॥ ३३
जयारिसेनां स्वभुजोरुवीर्य[2] भद्राणि मंक्ष्वाप्नुहि[3] भद्रमार्या[4] ।
इत्थं शशंसुस्त्वपरे वचांसि स्वाशीर्जयप्रीतिपुरःसराणि ॥ ३४
जित्वा रिपूनप्रतिमप्रभावो व्यपास्य राज्ञो हृदयस्य तापम् ।
लभस्व देशं स्वसुतां च पूजां यशःपताकामिति केचिदूचु ॥ ३५
एवं जनानां बहुभिर्वचोभिः प्रशंस्यमानः स्तुतिमङ्गलैश्च ।
पुरो बहिर्भूपतिना सहैव जगाम कश्चिद्भट ऊर्जितश्रीः ॥ ३६
ज्वलत्किरीटाङ्गदचारुहाराः समुच्छ्रितातिध्वजकेतुलक्ष्याः ।
नरेन्द्रसिंहा बृहदुग्ररोषाः परस्परं ते ददृशुः ससैन्याः ॥ ३७
प्रभञ्जनाभ्याहतचञ्चलोर्मिरदभ्रनादो जलधिर्यथैव ।
तथैव रोषानिलवेगनुन्नः सेनार्णवः सोऽतिभृशं चकम्पे ॥ ३८
गजा जगर्जुस्तुरगा हिहेषुर्ज्यामन्दनादान् रथिनः प्रचक्रुः ।
पदातिसैन्यस्य च सिंहनादैराध्मातदिक्का[5] धरणी बभूव ॥ ३९
शङ्खाश्च भेर्यः पटहाश्च घण्टा वंशास्तथा मर्दलका हलाश्च ।
प्रावृट्पयोदा इव ते रवेण प्रपूरयन्तो गगनं विनेदुः ॥ ४०

१ म मनस्यमंस्थ. २ म °वीर्यात्. ३ [मंक्ष्वाप्नुहि]. ४ [भद्रमार्य]. ५ [°राध्मात°].

स्थानानि संपाद्य चतुर्विधानि विस्फार्य चारूणि धनूंषि दोर्भिः ।
आकर्णपूर्णानवकृष्य पाणौ परस्परं ते विविधुर्नृशूराः ॥ ४१
तैरीर्यमाणा निशिताः पृषत्का मनोजवा हेमनिबद्धपुङ्खाः ।
वक्षांस्यरीणां बिभिदुः पृथूनि कूटान्यथोल्का इव पर्वतानाम् ॥४२
अथेन्द्रसेनस्य नराधिपस्य सेनाऽप्रसह्याभिययौ सरोषा ।
उद्धार्य खड्गानशनिप्रकाशान्प्रत्युद्ययौ देवनरेन्द्रसेनाम्[1] ॥ ४३
स्वस्वामिसंबन्धकृतप्रतिज्ञा निबद्धरागाः समरेऽभिलाषाः ।
स्ववीर्यमानोन्नतबद्धकक्षाः परस्पराङ्गानि भृशं प्रजहुः ॥ ४४
ईलीभिरालालितभासुराभिः पादातयः प्राक्सहसाभिहन्य ।
शिरांस्युरांस्युरुकटीररीणां विचिच्छिदुस्तीक्ष्णमुखीभिराशु ॥४५
शरैः परास्त्राण्यभिताडय शूरा निर्भर्त्स्य वक्षांसि ललङ्घिरेऽन्ये ।
ते लङ्घ्यमाना विगतास्त्रहस्ताः प्रसह्य तान्मुष्टिभिराशु जघ्नुः॥४६
गुर्वीभिरुर्वीभिरथायसीभिर्गदाभिरुद्धाम्य महाबलास्ते ।
विचूर्णयांचक्रुरभीत्य[3] शत्रून्वज्राभिघाता इव पर्वतेन्द्रान् ॥ ४७
कचग्रहेण प्रथने[4] प्रसह्य निपात्य भूमौ छुरिकाप्रहारैः[5] ।
विदार्य वक्षो जठराण्यरीणां प्राणान्विचिन्वन्त इवाशुरन्ये[6] ॥४८
केचित्पुनर्लब्धशिरःप्रहाराः क्षरन्नवासृक्स्थगितात्मवक्त्राः[7] ।
नैरेक्ष्यमाणा[8] ध्वनिनावगम्या इतोऽमुतो जग्मुरहीनसत्त्वाः ॥ ४९
विहाय चाभ्यर्णतयाप्नवाने[9] प्रसह्य चक्रुः सहसा नियुद्धम् ।
केचित्परेषां प्रतिगृह्य शस्त्रं व्याहन्तुकामा मुमुचुस्तदानीम् ॥ ५०
परे पराक्षीणि वितुद्य कुन्तैस्ते निःक्रिया वाक्कटुरूक्षबाणैः ।
आधिक्षिपन्तो ज्वलिताग्निकल्पा विसर्जयामासुरवज्ञयान्यान् ॥५१

---

१ [°सेना]. २ क °यसाभिः. ३ [अभीत°]. ४ [प्रथमे]. ५ म छुरिता°. ६ [इवासुरण्ये]. ७ म °स्थनितात्म°. ८ [निरीक्ष्यमाणा]. ९ क °प्नुवाने, [विहायसाभ्यर्णतया प्रयाणे].

प्रत्यागतानुद्यतशस्त्रपाणीन् प्रहर्तुकामानभितः समीक्ष्य ।
प्रवञ्च्य शिक्षाबलकौशलेन विनम्य पाशैर्निबबन्धुरन्ये ॥ ५२
केचित्पुरापि प्रतिबद्धवैराः पुनर्विशेषेण हि युद्धशौण्डाः ।
संज्ञाभिराहूय परस्परस्य गात्राणि शस्त्रैर्बिभिदुर्नृशंसाः ॥ ५३
केचित्पुनर्लोहनिबद्धदण्डैश्चण्डाः परेषामभिसंस्कृतानि ।
एकप्रहारैस्तु दृढैरभिन्दन् शिरांस्यलाबूत्पलवत्प्रसह्य ॥ ५४
केचित्प्रभिन्नाः परशुप्रहारैः समुद्गरैस्तीक्ष्णमुखैश्च टङ्कैः ।
परे गदाघातविचूर्णिताङ्गास्तदैव जग्मुः परलोकमुग्राः ॥ ५५
तेषां मदोद्भिन्नगजाकृतीनां रणप्रियाणां कृतपौरुषाणाम् ।
शूरव्रणालङ्कृतभासुराणां सुसंप्रहरास्तुमला बभूवे ॥ ५६
नृकुञ्जराः केचिदहीनसत्त्वाः पादप्रदेशग्रथितान्त्रमालाः ।
विरेजिरे युद्धभुवि भ्रमन्तः पाशावबद्धा इव मत्तनागाः ॥ ५७
केचिन्नृसिंहा रुधिराक्तशस्त्राः परप्रहारप्रभवोरुवीर्याः ।
विरेजुराजावतिघोररूपा घ्नन्तो गजेन्द्रानिव दृप्तसिंहाः ॥ ५८
स्वान्त्राणि केचिज्जठरधृतानि निगृह्य वामाङ्गकरैर्नृशूराः ।
संगृह्य खड्गान्यथ दक्षिणैस्तु विरेजुराजाविव राक्षसास्ते ॥ ५९
अन्तःप्रकोपात्परिवृत्तनेत्राः केचित्पराघातनिरस्तजीवाः ।
निःपीड्य दन्तैर्दशनच्छदांस्ते निपेतुरुर्व्यां तु सहस्रकोट्या ॥६०
उरस्सु केचित्समरप्रियाणां निहत्य पूर्वं पृथुसर्वलोहैः ।
निःकृष्य यातांब्ररयानुबाध्य तैरेव तांस्तीव्ररुषः प्रजहुः ॥ ६१
परस्पराघातविघट्टितास्त्राः परस्परं पीनभुजैर्निपीड्य ।
निपात्य भूमावतिरोषरौद्राः क्रमेण चक्रुस्तदरोत्तरांस्तान् ॥ ६२

१ [शिरास्यलाबूत्पल°]. २ [बभूवुः]. ३ म °द्रुतानि. ४ [यातास्त्वरयानुबाध्य]. ५ [चक्रुस्त्वधरोत्तरास्तान्].

खड्गैः प्रहन्तॄनितरेतरस्य विलोक्य वैराग्यमयुः सुभीताः ।
रागः समो मध्यमधीषु जातः शौर्यान्वितेषु द्विगुणो बभूव ॥६३
लब्धव्रणाः[1] श्रान्ततमा रुदन्तस्तृषार्दिताः शीतजलाभिलाषाः ।
लज्जां विहायैव जिजीविषन्तः प्रदुद्रुवुः साध्वससन्नचित्ताः ॥६४
मत्तद्विपानां चरणाभिघातैः खुरावपातैर्वरवाजिनां च ।
पदातिपातै रथनेमिनद्धै[2] रजस्ततानाम्बरदिग्मुखानि ॥ ६५
अभ्यर्णयोगात्प्रतिमिश्रिताश्च रजोऽवतानान्मतिविभ्रमाच्च ।
प्रहर्तुकामाः प्रसमुद्यतार्था न जज्ञिरे ते स्वजनाञ्जनांश्च ॥ ६६
एवं प्रवृत्ते समरेऽतिघोरे परस्पराघातरवातिभीता ।
रजःपटागुंठितविग्रहा सा मही न रेजे सभयाङ्गनेव ॥ ६७
ते चापि योधाः पिहिताक्षिवक्त्राः करावमर्शप्रतिबद्धसंज्ञाः ।
चिरादिवात्मप्रियबन्धुवर्गान्नाश्लिष्यते मोचयितुं समर्थाः ॥ ६८
नृणां हयानां करिणां बृहद्भिर्व्रणैर्महच्छोणितमुद्गिरद्भिः ।
रणाजिरोत्कीर्णरजः शशाम प्रावृट्पयोदैरिव रेणुरुर्व्याः ॥ ६९
प्रवृद्धधूमाकृतिधूसराणि नभोभुवं च प्रति तानि यांति[3] ।
असृग्विमिश्राणि रजांसि तत्र तान्येव सिन्धूरवपूंषि बभ्रुः ॥ ७०
प्रशान्तरेणौ चरणप्रचारे परस्परालोकविवृद्धवैराः ।
आहूय तान्नामभिरुग्ररोषाः पदातयो जघ्नुरतीव शूराः ॥ ७१
हयांस्तु जातिप्रवरान्विनीतानारुह्य कार्योद्वहने समर्थान् ।
विकृत्य कुन्तेष्वसिपाशहस्ता बलं रिपूणाममृदुः[4] प्रसह्य ॥ ७२
अथेतरेऽप्यस्त्रकलाप्रगल्भा भृशं द्विषद्भिः परिभूयमानाः ।
प्रति प्रधाव्याश्च सहस्रवृन्दैः समन्ततस्तान् रुरुधुः क्षणेन ॥ ७३

१ क बद्धव्रणाः. २ म °नेमिनर्धैः. ३ [यान्ति]. ४ [रिपूणां ममृदुः].

रथाधिरूढाः प्रचलत्किरीटा[1] ज्वलत्तनुत्रावृतसर्वगात्राः ।
धनुर्भिराश्चिन्द्रधनुर्वपुर्भिर्वर्षासु धारा इव तेऽप्यदीव्यन् ॥ ७४
मदोद्धतानामथ कुञ्जराणां चलन्महाशैलसमाकृतीनाम् ।
स्कन्धाधिरूढाः प्रतियोद्धुकामाः परस्परं तेऽभ्यनयन्गजेन्द्रान् ७५
एवंप्रकारे तुमुले विमर्दे शौर्यस्य पुंसामनुयोगभूतम् ।
समुद्धृतासिद्युतिसंनिरस्ता प्रभाविभूतिः स ब [—⏑— —][2] ॥ ७६
ते योधमुख्याः कणयैर्गदाभिः सतोमरैः पट्टिसभिण्डिमालैः ।
चक्रैश्च शूलैः पृथुलोहवृन्तैः प्रजघ्नुरन्योन्यममोघमोक्षैः ॥ ७७
केचिद्विसृष्टानि वरायुधानि स्वकौशलाच्चिच्छिदुरन्तरिक्षे ।
केचिद्गृहीत्वान्तर एव वीरास्तदैव [—][3] तान्यमुचन्परेभ्यः ॥७८
गजैर्गजाः प्रस्फुरदद्रिकल्पा रथै रथाश्चैत्कृतताः समेताः (?)।
तदातियुध्यन्त हयैर्हयास्ते पदातयस्तत्र पदातिभिश्च ॥ ७९
गजास्तुरङ्गाश्च विपन्नदेहाः क्षितौ पतन्तः करुणं चकूजुः ।
नरा वराका युधि भीरवोऽन्येऽप्यलब्धकामा मरणं प्रयाताः ॥८०
लब्धव्रणानां रणकर्कशानां वक्षस्स्थलेभ्यः स्रुतरक्तधाराः ।
युतं[4] विरेजुः कृतसाहसानां शैलेन्द्रभित्तिष्विव धातुधाराः ॥८१
महाजिभूमौ रुधिराक्तगात्रा प्रभग्नमातङ्गरथाश्ववृन्दा ।
बहिर्गतान्त्राभविलम्बमाला सन्ध्याभ्ररागं सकलं बभार ॥ ८२
क्वचिद्गजानां शवसंकटत्वात्क्वचिद्धयाङ्गावयवैकदेशात् ।
क्वचित्कबन्धप्रतिनर्तनाच्च महारणो भीमतमो बभूव ॥ ८३
स्थितः क्वचिच्च क्वचिदेव नग्नः[5] क्वचित्पुनः शूरगतिं प्रपन्नः ।
क्वचिच्च नीचः क्वचिदेव तुङ्गः क्वचिज्जयं प्राप्य भृशं जहर्ष ॥८४

---

१ क तिरीटाः. २ क बभूव शूराः. ३ [ते]. ४ [द्रुतं]. ५ [भग्नः].

इति गजरथवाजिपादभारै-
र्विपुलबलैः समदैश्चतुर्विधैस्तैः ।
उभयनृपयशोवसन्तभूतै-
र्निचिततया बभूव मिश्रयुद्धम् ॥ ८५
ललितपुरपतेर्नराधिपस्य
प्रथितधियो मधुराधिपस्य राज्ञः ।
यदभवदनयोर्विशेषयुद्धं
तदहमशेषमतस्तु संप्रवक्ष्ये ॥ ८६

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
मिश्रकयुद्धो नाम
सप्तदशमः सर्गः ।

[अष्टादशः सर्गः]

नरेश्वरा ये मधुराधिपस्य भृत्याः प्रकृत्यर्थपराः समेताः ।
तान्सामदानप्रमुखैरुपायैः स देवसेनः स्ववशे चकार ॥ १
ततो महत्त्वं त्वविगण्य तस्य जिगीषया नीतिपराक्रमाभ्याम् ।
तदेन्द्रसेनेन स योद्धुकामः स्वयं प्रतस्थे खलु देवसेनः ॥ २
संतेजनोपायविधानमार्गैः प्रोत्साह्यमानामथ सान्त्वदानैः ।
विजेतुकामोऽथ वरूथिनीं तां व्यूहं विधिज्ञः कृतवानभेद्यम् ॥ ३
कृतोपधानाः खलु योधमुख्याः पृष्टा यथाकाममभृत्युभीताः ।
अन्वागता येऽप्यनुरागिणश्च सवाहनास्तान्प्रशशास योद्धुम् ॥ ४

१ [सप्तदशः].

स्वभावतः शूरतमाः कृतास्त्रा लब्धाभ्यनुज्ञाश्च पुनर्नृपेण ।
इतस्ततः शत्रुचमूं वरास्त्रैर्घ्नन्तो विचेरुर्युधि कालकल्पाः ॥ ५
एवं प्रवृत्तं समरं सुघोरं महार्णवक्षुब्धतरङ्गलोलम् ।
शस्त्रातिसंघट्टनजातवह्निं समीक्ष्य राजा च तदेन्द्रसेनः ॥ ६
बलाहकाख्यं वरवारणेन्द्रं द्रुतं समारुह्य गृहीतशस्त्रः ।
षड्भिर्गजानां तु वृतः सहस्रैः किमास इत्येतदथाजगाम ॥ ७
आयान्तमालोक्य तदिन्द्रसेनं[1] महेन्द्रविक्रान्तमपारवीर्यः ।
करीन्द्रवृन्दैर्विजयोऽभ्युपेत्य पुरःसरीं तस्य चमूं रुरोध ॥ ८
आकर्णपूर्णानि शरासनानि कृत्वैव लक्ष्येषु निपात्य दृष्टीः ।
अन्योन्यमिष्वस्त्रविदः समेताः समन्ततः संविविधुः[2] प्रसह्य ॥ ९
गजाधिरूढैस्तु निपात्यमानास्ते शङ्कवो हस्तिषु बद्धपिच्छाः ।
शिखण्डिनः पर्वततुङ्गकूटान्निलीयमाना इव पर्वतेषु ॥ १०
तेषां तु संनाहवतां गजानां मुखेषु संयन्त्रिवचोदितानाम् ।
आदन्तवेष्टादितरेतरस्य दन्ता ममर्जुर्दृढलोहबद्धाः ॥ ११
ते तोमराघातविभिन्नगात्राः प्रचक्षरल्लोहिततीव्रधाराः[3] ।
गजा मदान्धाः समरे रिपूणामौत्पातिकाम्भोधरभीमरूपाः ॥ १२
गदाश्च गुर्व्यः परिघा बृहन्तो निशातधारा दृढशक्तयश्च ।
निपात्यमाना युधि योधमुख्यैश्चक्रुः परास्तत्करिणः स्वयन्तॄन[4] १३
अन्योन्यदन्तांस्तु बलाद्गजेन्द्रा उत्पाट्य रोषाद्विसतत्क्षणेन[5] ।
स्वलोहितार्द्रैरभिजघ्नुरन्यान्नीराजनायामिव तैरलातैः ॥ १४
योधान्गजस्योर्ध्वगतांस्तु केचित्सपूर्वमध्यान्तनिषादिनोऽन्यान् ।
संबन्धविद्धैर्निशितैः पृषत्कैर्निपातयामासुरपेत्य धीराः ॥ १५

१ [तमिन्द्रसेनं]. २ क संविदधुः. ३ [परिक्षरल्लोहित°]. ४ म सयंतॄन्. ५ [रोषाद्विसवत्].

विनिश्चितार्था विजयस्य योधा धनुर्विमुक्तैरिषुभिः किरन्तः ।
उपेन्द्रसेनस्य बलं विशालं पराङ्मुखीचक्रुरतुल्यवीर्याः ॥ १६
पराङ्मुखानामथ सैनिकानां पृष्ठेषु कान्ताननवीक्षितेषु ।
बाणा निपेतुर्द्रवतां जवेन पश्चार्धकायेषु च कुञ्जराणाम् ॥ १७
तेषां पुनः प्रद्रवतां ध्वजाश्च छत्राणि चामीकरदण्डवन्ति ।
विधूतवालव्यजनानि चैव पेतुः पताकाश्च सवैजयन्त्यः ॥ १८
उपेन्द्रसेनस्तु विलोक्य सेनां विभज्यमानां विजयप्रधानैः ।
विहाय लज्जामथ विद्रवन्तीमपारसत्त्वः प्रसभं चुकोप ॥ १९
संनाहिनः स्वान्करिणां समूहांस्ततस्तिरस्कृत्य धनुर्विकृष्य ।
उपेन्द्रसेनस्त्वरितोऽभ्यगच्छज्जिघांसया तं विजयस्य सैन्यम् २०
आयातमारोपितचारुचापं शरैः किरन्तं रिपुवाहिनीं ताम् ।
स्वतेजसा प्रज्वलितार्कभासं मेने जनः कालमिवोग्ररूपम् ॥ २१
जयश्रिया संजनितानुरागैः स्वसैनिकैः संपरिवारितस्तैः ।
तस्थौ परस्याभिमुखो मुहूर्तं रणाजिरे युद्धमदोपनद्धः ॥ २२
उपेन्द्रसेन प्रतिचोद्ययातास्तद्योधवीरा विदितास्त्रयोगाः ।
शरोरुधारास्त्वमुचन्नजस्रं प्रावृट्पयोदा इव वारिधाराः ॥ २३
तच्छौर्यवीर्यप्रतिनष्टचेष्टस्तत्सैनिकाक्रान्तहृतप्रतापः ।
तद्बाणनिर्भिन्नतनुः स मन्त्री तिरोदधे स्म स्वनराधिपेन ॥ २४
उपेन्द्रसेनाभिहतप्रतापं प्रभग्नसेनं विजयं निरीक्ष्य ।
कश्चिद्भटस्तूर्णमुपेत्य तस्य स्थितः पुरस्तादनपेतसत्त्वः ॥ २५
घण्टारवोन्मिश्रिततूर्यघोषं रत्नप्रभाक्षेपितभानुभासम् ।
गजेन्द्रकेतुं प्रतिलक्ष्यमाणं गजाधिपं त्वप्रतिमल्लसंज्ञम् ॥ २६

१ क पराङ्मुखं. २ [उपेन्द्रसेनं].

आरुह्य नीलाद्रिसमासकल्पं[1] कश्चिद्भटं बालरविप्रकाशम् ।
घ्नन्तं स्वसैन्यं प्रसमीक्षमाणस्तमैन्द्रसेनिः प्रसहेन्नुवाच[2] ॥ २७
किं वा स्ववंशानुचितेन तेन तवार्धराज्येन मुखेन मृत्योः ।
सुनन्दया वा किमु कालरात्र्या जीवन्नरः पश्यति भद्र भद्रम् ॥२८
नृपैर्नृपाणां समरे प्रवृत्ते नैवासि योग्योऽत्र वणिक्सुतत्वात् ।
अपोह्यथास्मत्पुरतोऽल्पबुद्धे[3] न्यूने वयं नो भुजमुच्छ्रयामः ॥ २९
लप्स्येऽहमुर्वीशसुतामिति त्वं दुराशया क्लेशमुपैष्यकस्मात् ।
तादृग्विधं निस्त्रपमप्रवीणं न हन्मि निष्कारणमाशु याहि ॥ ३०
यदि प्रयातं[4] पुरतो न चेच्छेस्तावत्प्रतीक्षस्व मुहूर्तमात्रम् ।
निकृत्य तेऽङ्गानि नृपात्मजायै संप्रेषयाम्यद्य हि मा त्वरिष्ठाः ॥३१
उपेन्द्रसेनस्य युवाधिपस्य युवत्वतेजोबलगर्वितस्य ।
गिरं निशम्यात्ममनोरुजन्तीं कश्चिद्भटः प्रत्यवदद्रुषा तम् ॥ ३२
यो वा स वाहं तव किं मयात्र गजः स एवायमभीप्सितार्थः ।
मयाधिरूढस्तु सहैव पित्रा त्वां प्रापयत्यद्य यमातिथित्वम् ॥३३
गजं परेषां परराजधानीं ग्रहीतुकामस्तु विनैव वैरात् ।
किमागतस्त्वं धनमानदृप्तो लज्जान्वितश्चेद्वद जातिधीर ॥ ३४
विक्रीतवान्यो[5] नयवद्विनीतः शूरः कृतास्त्रो न च मृत्युभीरुः ।
संग्रामकाले स जयत्यरातीनाकृष्यमाणो म्रियते न कश्चित् ३५
स्वजीवितेनात्र ममाग्रतस्तु यदि प्रयातो निरुपद्रवेण ।
प्रेक्षस्व पश्चात्तव मृत्युकल्पं श्रीदेवसेनाख्यमदीनसत्त्वम् ॥ ३६
अवज्ञयान्यांस्तु विवक्षते[6] वा यत्किंचिदात्मोन्नतिगर्वदग्धः ।
निरस्तविज्ञानगुणावबन्धः स लाघवं सत्सु परं प्रयाति ॥ ३७

१ क °समान°. २ क प्रसमन्, [प्रहसन्]. ३ [अपेह्यथास्मत्]. ४ [प्रयातुं]. ५ [विक्रान्तवान्यो]. ६ क विवक्षिते.

न केवलं वाक्कलहेन कार्यं निरर्थकेनैवमथावयोस्तु ।
व्यक्तीभवत्यद्य हि पौरुषस्य सुवर्णसारो निकषाश्मनीव ॥ ३८
प्रशस्य तावद्वणिजां प्रहारान्प्राणक्षयं कर्तुमनीहमानान् ।
इति ब्रुवाणो वरवारणेन्द्रं कश्चिद्भटो योद्धुमुपानिनाय ॥ ३९
अभ्यर्णमायान्तमुपेन्द्रसेनः समीक्ष्य कोपायतताम्रदृष्टिः ।
बलाहकं ताम्रगिरिप्रकाशं कश्चिद्भटस्याभिमुखं निनाय ॥ ४०
मृगेन्द्रशावाविव संप्ररुष्टौ युद्धातिशौण्डाविव भर्त्सयन्तौ ।
परस्परं व्यद्भुमयःशरौघैः प्रारब्धवन्तौ प्रतिबद्धवैरौ ॥ ४१
बृहत्पृषत्कैस्त्वथ वत्सदन्तैः सूचीमुखैः[1] पूर्णतमार्धचन्द्रैः ।
कर्णेषु नाराचवरैश्च तीक्ष्णैरविध्यतां तौ च परस्परं हि ॥ ४२
ताभ्यां धनुर्वेदविशारदाभ्यां विमुक्तनाराचशरोरुवर्षाः ।
विभासमानाः खतलं वितत्य वर्षासु धारा इव संनिपेतुः ॥ ४३
अन्योन्यमर्माणि निरीक्षमाणावन्योन्यशस्त्राणि च वञ्चयन्तौ ।
स्वसन्धिमर्माण्यभिपालयन्तौ शार्दूलपोताविव भर्त्सयन्तौ ॥ ४४
सर्वायसैः प्रासवरैश्च शूलैश्चक्रैश्च गोलायसशङ्कुभिश्च ।
संभिण्डिमालैः[2] कणयैश्च तीक्ष्णैरद्रेरिवाद्रिं क्षिपतः स्म तूर्णम् ४५
उपेन्द्रमुक्तानि वरायुधानि विकुण्ठितान्यप्रतिमल्लमूर्ध्नि ।
मुखे ममज्जुर्वणिजात्मजेन मुक्तानि तानीन्द्रसुतद्विपस्य ॥ ४६
अथेन्द्रसेनस्य सुतेन मुक्ता ममज्जु[3] मूर्ध्नी प्रतिमल्लनाम्नः ।
बलाहकस्योन्नतकुम्भभेदं चकार कश्चिद्भटमुक्तशक्तिः ॥ ४७
उपेन्द्रसेनाहतशङ्कवस्ते निपेतुराशु प्रतिमल्लमूर्ध्नि ।
कश्चिद्भटप्रेरिततोमराणि बलाहकाङ्गावयवानभिन्दन् ॥ ४८

१ क शूचीमुखैः. २ [सभिन्दिपालैः]. ३ क ममज्जु, [ममज्ज मूर्ध्नि].

तौ वारणेन्द्रौ भवतस्तदानीं व्रणाननेभ्यः स्रुतरक्तधारौ ।
उल्काभिघातक्षतभिन्नरूपौ यथा नगौ स्यन्दितधातुधारौ ॥ ४९
असृक्परिक्लिन्नतमाङ्गरागौ गलोज्ज्वलत्काञ्चनरज्जुबद्धौ ।
सविद्युतौ सान्ध्यवपुर्भृतौ तौ विरेजतुर्वारिधराविवेभौ ॥ ५०
अन्योन्यमुक्तानि च तोमराणि सर्वायसान्यप्रतिमद्युतीनि ।
नभस्तले रेजुरतीव तानि सविद्युदुल्का इव संपतन्त्यः ॥ ५१
उपेन्द्रसेनेन विमुक्तशक्तिः करेण वामेन निपात्य भूमौ ।
कश्चिद्भटो दक्षिणबाहुनाशु जघान शक्त्या हृदि सर्वशक्त्या ॥ ५२
तत्तीक्ष्णशक्तिप्रहतोऽभिपद्य चक्रेण सन्ध्यार्कवपुर्धरेण ।
पाश्चात्यमप्याशु निपात्य भूमौ कश्चिद्भटस्य प्रचकर्त केतुम् ॥५३
किं वा त्वयाहं चिरमत्र योत्स्ये वणिक्सुतेनास्त्रगुणाश्रयेण ।
इति प्रभाष्य प्रतिभर्त्स्यनीतिर्मुमोच चक्रं पुनरैन्द्रसेनिः ॥ ५४
आयान्तमालोक्य हि कालचक्रं तद्वञ्चयित्वा स्थिरधीः सुचक्रम् ।
धृतं प्रगृह्यान्यदमोघचक्रं चिच्छेद हस्तं कटकावनद्धम् ॥ ५५
भूयोऽप्युपेन्द्रस्य हि पारिपार्श्वान्निहत्य तूर्णं कणयप्रहारैः ।
ध्वजातपत्रामलचामराणि निपातयां भूमितले बभूव ॥ ५६
शिक्षाबलेनात्मपराक्रमेण छिन्नैकहस्तः पुनरैन्द्रसेनिः ।
मुहूर्तमेवं युयुधेऽतिवीरो भग्नैकदन्तो द्विरदो यथैव ॥ ५७
कश्चिद्भटोऽस्त्राण्यमुचद्विशङ्को द्वाभ्यां भुजाभ्यां द्रुतमायताभ्याम् ।
जवेन गत्वा विविशुः शरीरे यथोरगेन्द्रा विवरेऽचलस्य ॥ ५८
उपेन्द्रसेनस्य वरायुधानि सव्येन हस्तेन विनिःसृतानि ।
ययुः पुनस्तानि च मन्दमन्दं लूनैकपक्षा विहगा यथैव ॥ ५९

१ म °गुणाश्रमेण.

निर्वीर्यतां राजसुतस्य बुद्ध्वा कश्चिद्भटश्चारुभटोऽतितूर्णम् ।
व्रजं गजेन्द्राप्रतिमल्लनाम्ना बलाहकं वायुरिवोन्ममर्द[1] ॥ ६०
दिवा इषन्तं प्रतिभग्नदन्तं बलाहकं चाप्रतिमल्लनागः ।
प्रहृत्य तूर्णं करपाददन्तैर्हन्तेन हस्तं करिणो न्यकासीत्[2] ॥ ६१
शक्तिं सुतीक्ष्णां त्वरया विगृह्य सूपेन्द्रसेनोरसि[3] निर्मुमोच ।
विभिद्य वक्षस्स्थलमीश्वरस्य ममज्ज भूमावतिचण्डवेगा ॥ ६२
शक्तिप्रहारेण विभिन्नदेहं भ्रान्तेक्षणं वीक्ष्य वणिक्सुतस्तु ।
उद्धृत्य खड्गं च तटित्प्रकाशं शिरश्च तस्य प्रचकर्त शूरः ॥ ६३
चलज्ज्वलत्कुण्डलमण्डितास्यं मणिप्रभाराञ्जितसात्किरीटम्[4] ।
शिरः पपातेन्द्रसुतस्य तस्य सौरं यथा मण्डलमस्तमूर्ध्नि ॥ ६४
मानोन्नतं नावनतं परेभ्यो दोलायमानं भ्रमरावलीकम् ।
शिरः सपादं[5] विनिपात्य भूमौ प्रफुल्लपद्माकृतिमादधार ॥ ६५
प्रभञ्जनप्रेरितनीरदे खे दुःप्रेक्षतां याति यथा ग्रहेन्द्रः ।
तथारिपक्षक्षपणोदितश्रीः कश्चिद्भटश्चारुभटो बभूव ॥ ६६
संप्राप्य युद्धे विजयावतंसं स्वसैनिकानां मुदमादधानः ।
महाबलः सिंहनिनादमुच्चैर्ननाद चेतो द्विषतां च भिन्दन् ॥ ६७
अथोभयोर्भूपतयो नृसिंहाः स्वमानविश्रम्भरसोरुवीर्याः ।
स्वान्स्वान्करीन्द्रानधिरुह्य सर्वे संनह्य युद्धाभिमुखा बभूवुः ॥ ६८
ततः करीन्द्राः प्रतिगर्जयन्तो वाग्वीरनादागतमेघतुल्याः ।
परस्परं पादकराग्रदन्तैर्जघ्नुः सयोधाः समुपेत्य चण्डाः ॥ ६९
मुखण्डिभिः[6] शक्त्यसियष्टिभिश्च चक्रैर्गदाभिः कणयैश्च टङ्कैः ।
समुद्गरैस्तोमरसर्वलोहैः परस्परं ते च भृशं प्रजह्रुः ॥ ७०

१ [°ममर्द]. २ [न्यकार्क्षीत्]. ३ [सोऽपीन्द्रसेनोरसि]. ४ क सात्तिरीटम्. ५ [सपातं]. ६ [शिखण्डिभिः].

केषांचिदास्यानि सकुण्डलानि पादाश्च केषांचिदथाम्बुजाभाः ।
कराः स्फुरत्काञ्चनभूषणाढ्याः शस्त्रप्रहारादवनौ निपेतुः ॥ ७१
किरीटपट्टोज्ज्वलहारसूत्रैश्छत्रध्वजैश्चामरकेतुमाल्यैः ।
करीन्द्रघण्टाहयकिङ्किणीभिः कृतोपहारेव मही बभासे ॥ ७२
अथेन्द्रसेनश्च हि देवसेनः प्रवद्धवैरौ दृढबद्धकक्षौ ।
कृतप्रतिज्ञावसुरेन्द्रकल्पौ परस्परं ताववलोक्य वीरौ ॥ ७३
स्वनामगोत्राण्यभिधाय रोषात्सभ्रूविभङ्गे वदने प्रकृत्य ।
आदाय तान्यस्त्रवराणि दोर्भिरुल्लासयन्तावभिमानया तौ ॥ ७४
देशाकरग्रामपुराणि यानि बलद्वयेनैकविबन्धनं च ।
य आवयोरेक इहावशिष्टस्तस्मै भवत्वेतदिति ब्रुवाणौ ॥ ७५
कुरु त्वमेकं प्रथमं प्रहारं त्वं पश्य पश्येति च भर्त्सयन्तौ ।
वने गजेन्द्राविव जातदर्पावभीयतुस्तौ समराभिलाषौ ॥ ७६
शस्त्राणि वज्राग्निविषोपमानि नानाकृतीनि त्वरया प्रगृह्य[2] ।
परस्पराङ्गावयवान्प्रतीत्य व्यमुञ्चतां वीतभयौ महीशौ ॥ ७७
प्रवृद्धकान्तिद्युतिसत्त्वरोषः श्रीदेवसेनः प्रगृहीतचक्रः ।
लघ्वीन्द्रसेनस्य महाबलस्य चिच्छेद भास्वन्मकुटं च केतुम् ॥७८
तथेन्द्रसेनोऽतिविवृद्धमन्युर्विद्युत्प्रभां शक्तिमरं[3] प्रगृह्य ।
श्रीदेवसेनं प्रति निर्मुमोच नुनोद सा तस्य किरीटमिद्धम् ॥ ७९
श्रीदेवसेनेन पुनर्विमुक्ता शक्तिः स्फुरद्रत्नगभस्तिमाला ।
श्वेतातपत्रं मधुराधिपस्य न्यपातयद्धस्तिपकेन सार्धम् ॥ ८०
छत्रं प्रभग्नं मधुराधिपस्य दन्तप्रभङ्गादिव वारणेन्द्रः ।
रोषातितूर्णं[4] कणयां मुमोच स तस्य चिच्छेद मृगेन्द्रकेतुम् ॥८१

१ क तिरीट°. २ क विगृह्य. ३ [शक्तिधरा]. ४ [रुषातितूर्णं].

भिन्नात्मकेतुर्बृहदुग्ररोषः प्रलम्बबाहुः प्रतिलब्धसंज्ञः ।
प्रगृह्य चक्रं मधुरेश्वरस्य गदाग्रहस्तं प्रचकर्त वीरः ॥ ८२
अथोभयोच्छिन्नविपन्नकेत्वोर्निपातितोपा तगजाधिनेत्रोः ।
प्रमर्दितात्मद्विपपादगोत्रोर्मुहूर्तमेकं समयुद्धमासीत् ॥ ८३
तस्मिन् रणे भीमतमे प्रवृद्धे बलाहकस्त्वप्रतिमल्लनुन्नः ।
युगान्तवाताहतविन्ध्यकल्पः पपात भूमौ करुणस्वनेन ॥ ८४
वज्राभिघातादिव शैलशृङ्गं शस्त्रप्रहारप्रतिभग्नगात्रम् ।
उपेन्द्रसेनं विगतासुमाशु समक्षिषातामवनीश्वरौ तौ ॥ ८५
गजावपातध्वनिमप्रगल्भं महाभ्रनादप्रतिमं निशम्य ।
तौ युध्यमानौ वसुधेन्द्रचन्द्रौ बभूवतुर्द्वैधमनःप्रचारौ ॥ ८६
श्रीदेवसेनो रिपुमर्दनश्रीरुपेन्द्रसेनव्यसनं समीक्ष्य ।
जयं परं प्राप्य विभासमानं कश्चिद्भटं चापि भृशं जहर्ष ॥ ८७
सोऽपीन्द्रसेनस्तनयावभङ्गाद्द्विषां प्रवृद्धे द्विगुणातिरुष्टः ।
समित्समिद्धाग्निरिव प्रकामं जज्वाल जात्यादिमदावलिप्तः ॥ ८८
धिक्शूरसेनाधिपतित्वलक्ष्मी धिगिन्द्रसेनत्वमिदं मयाद्य ।
निर्देवसेनां यदि नैव कुर्यां महीमिमां सागरवागुरान्ताम् ॥ ८९
इति ब्रुवन्नेव सुनिश्चितार्थो विपन्नहस्तादवतीर्य नागात् ।
मदान्धमन्यं द्विषदेककालं सुकम्पितं वारणमारुरोह ॥ ९०
ततोऽस्तु सम्यक्प्रभवान्गुणान्स्वान्प्रकाशयामास रणे प्रचण्डः ।
यद्यत्पुनर्दृष्टिपथोपनीतं द्विषद्बलं स्थातुमलं न तस्य ॥ ९१
तद्देवसेनस्य तु सैन्यमाजौ शङ्कां परां संजनयन्नृपस्य ।
भङ्गावतंसां विजयैकलक्ष्मीं निजां चकारेव भयात्तदानीम् ॥ ९२

१ क द्विपसाद, [°गोप्त्रो°]. २ क कश्चिद्भटश्चापि. ३ क प्रवृद्धिः. ४ [ततस्तु]. ५ [भग्नावतसा].

उपेन्द्रसेनं युवराजमाजौ निहत्य भूयः प्रतिलब्धसंज्ञः ।
कश्चिद्भटः साधुयशोऽवतंसं बिभ्रत्स बभ्राम मृगेन्द्रलीलः ॥९३
परिभ्रमन्काल इवान्तरूपः कश्चिद्भटः शत्रुषु लब्धतेजाः ।
स देवसेनं सबलं मनस्वी ददर्श मृद्नन्तमथैन्द्रसेनम् ॥ ९४
दृष्ट्वा तमाराद्विजयं परीप्सन्सव्यापसव्यं प्रकिरच्छरौघान् ।
निसृष्टवानप्रतिमल्लमाजौ युयुत्समानो मधुराधिपेन ॥ ९५
तमाप्नुवन्तं बलवन्तमन्तं सूनोः समीक्ष्याशु स इन्द्रसेनः ।
शरासनं स्वं बलवद्विकृष्य मुमोच नाराचवराञ्जिघांसन् ॥ ९६
तानन्तरिक्षे स्वधनुर्विमुक्तैर्विच्छिद्य तीक्ष्णैः पुनरर्धचन्द्रैः ।
विव्याध बाणैरपरैर्बृहद्भिर्वक्षस्यरि सोऽन्तमुपानिनीषुम्[1] ॥ ९७
सन्तानमुक्तैर्विशिखैरनेकैर्गजस्य नेतारमधो[2] निपात्य ।
चकर्त भल्लेन शितेन रोषात्कश्चिद्भटस्तद्धनुरैन्द्रसेनम् ॥ ९८
परं न गृह्णाति धनुः स यावद्विव्याध तावद्भुजमुन्नतांसम् ।
गजेन्द्रकुम्भोद्भिदुरान्पृषत्कान्ससर्ज शुष्काशनिभीमरूपान् ॥९९
इतोऽमुतो भग्नविशीर्णसेनामात्मानमत्यन्तसुरक्षताङ्गम्[3] ।
समीक्ष्य चापस्य च भङ्गमाजौ विपन्नबुध्यस्त्रवपुर्बभूव ॥ १००
ततोऽवरुह्याशु स मेघनादात्क्षतस्रवच्छोणितवारणेन्द्रात् ।
हयं समारुह्य तदातिभीतः पराप्रतस्थे मधुरावनीशः ॥ १०१
गते नरेन्द्रे मधुराधिपे तु विनायकं त्रस्तभयेतवीर्यम्[4] ।
बलं तदा वातसमूहघातविशीर्णतूलप्रतिमं बभूव ॥ १०२
ततश्च कश्चिद्भट ऊर्जितश्रीर्हतावशेषं बलमाजिघांसन् ।
अनुप्रतस्थे सशरौघवर्षी रूपी प्रजाः संहरतीव कालः ॥ १०३

१ [°निनीषु]. २ म नेतारमथो. ३ [°शरक्षताङ्गम्]. ४ क °भयोत्थवीर्यम्.

केषांचिदङ्गान्यसिना चकर्ष[1] पिपेष वीरो गदया शिरांसि ।
चिदार्य केषांचिदुरांसि चक्रैर्निपातयामास वसुंधरायाम् ॥ १०४
केषांचिदुत्क्षिप्तसुचामराणि छत्राणि चन्द्रोदयपाण्डुराणि ।
धनूंषि पुष्पध्वजकेतुमालाः शरावपूर्णानि सुधीश्चकर्त ॥ १०५
शङ्खाभिवर्तक्रमसौष्ठवाभ्यां सतोमराभ्यां स्थिरधीः कराभ्याम् ।
वर्माणि वर्मप्रतियातनानि क्षणाद्विभेदाप्रतिमान्यरीणाम् ॥ १०६
छिन्नाग्रहस्ता विमुखाश्च केचित्केचिन्नताः साञ्जलयो विभीताः ।
केचिच्च तत्रैव विमोहमायुर्[2]लल्लम्बिरेऽन्ये गजमस्तकेभ्यः ॥ १०७
अन्तर्दधुर्गुल्मलतासु केचित्केचिच्च वाल्मीकशिखाधिरूढाः[3] ।
केचित्तृणादाः प्रतिमुक्तकेशा गतासवः केचिदुपेयुरुर्वीम् ॥ १०८
यतो यतस्त्वप्रतिमल्लनागं स्थूलोच्चयेनैव गतिक्रमेण ।
संचारयामास स जातहर्षस्ततस्ततः शत्रुबलं दधाव ॥ १०९
अथावशिष्टां रिपुवाहिनीं तां निरुध्य सर्वांश्च कृतानुयात्रान् ।
स्वपक्षदृप्त्यै परपक्षभीत्यै दधौ स शङ्खं बृहदभ्रघोषम् ॥११०
ततोऽरिचक्रं प्रविजित्य धीमान्निदाघमध्याह्नरविप्रकाशम् ।
उपेत्य राजानमुदारकीर्तिं ननाम पादौ कमलावदातौ ॥ १११
विलोक्य पादावनतं नरेन्द्रः प्रोत्थाप्य नागात्स्वपुरो निवेश्य ।
प्रसारितेनात्मभुजद्वयेन स हृष्टचेता भृशमालिलिङ्गे ॥ ११२
दृष्टं मया पौरुषमेतदार्य तवाद्वितीयं युधि दुःप्रधर्षम् ।
त्वत्तः परोऽन्यो न च मेऽस्ति बन्धुरित्यब्रवीद्धर्षविबुद्धवक्त्रः ॥
मन्त्रीश्वरश्रेणिगणप्रधानाः समक्षभूताः परिहृष्टभावाः ।
त्वयाद्य कश्चिद्भट साधु साधु नामानुरूपं कृतमित्यवोचन् ११४

१ [चकर्त]. २ [विमोहमापु°]. ३ [वल्मीक].

संपूज्य तं सागरवृद्धिमिभ्यं कश्चिद्भटं चाप्रतिमप्रभावम् ।
गजेन्द्रमारोप्य धृतातपत्रः पुरं विवेशावनिपः सलीलम् ॥ ११५
आनन्दभेर्यः पटहा मृदङ्गा वीणाः सवंशाः सह कंसतालैः ।
जयं नरेन्द्रस्य निवेदनार्थमाशीर्गिरश्चाप्याधिकं विनेदुः ॥ ११६
गृहे गृहे चन्दनधामचित्राः समुच्छ्रिताः पञ्चविधाः पताकाः ।
प्रभञ्जनस्पर्शविवर्तिताङ्गा रेजुस्तरङ्गा इव सागरस्य ॥ ११७
प्रासादगर्भादभिनिस्सृतानि वराङ्गनानां मुखपङ्कजानि ।
बभुर्भ्रमत्षट्चरणावलीभिः सबन्धनानीव सरोरुहाणि ॥ ११८
वातायनेभ्यः खलु पुष्पवर्षं वराङ्गनाबाहुलताः सलीलाः ।
प्रचक्षरुश्चूर्णरजोविमिश्रं वातावधूता इव कामवल्ल्यः ॥ ११९
पुराङ्गनास्ताः पुरमाविशन्तं कश्चिद्भटं भूपतिनैव सार्धम् ।
समीक्ष्य वाक्यानि मनोनुगानि जातप्रहर्षा कथयांबभूवुः ॥१२०
कश्चिद्भटं पश्यत पश्यतैनं श्रियोज्ज्वलन्तं विबुधेन्द्रलीलम् ।
एकोऽप्यनेकान्बलवीर्यदृप्तांजिगाय शत्रूनिति काश्चिदूचुः ॥१२१
एकस्य हेतोः करिणो नरेन्द्रः स माधुरो दूरतरादथैत्य ।
स्त्रियं सुतं कोशगजांश्च सारानुत्सृज्य यातस्त्विति काश्चिदाहुः१२२
जगज्जनानां पुरपुण्यतस्तु रिपुं जिगायायमथाश्रमेण ।
अतोऽन्यथा केवलमानुषेण कुतो जयो लप्स्यत इत्यवोचन् ॥१२३
काश्चिन्नरेन्द्रार्जितपूर्वपुण्यात्काश्चित्सुनन्दासुकृतप्रभावात् ।
काश्चित्स्वयं स्वेन पराक्रमेण रिपुं जिगायेत्यवदंस्तरुण्यः ॥१२४
कुतस्तु कश्चिद्भट एष धीमान्कुतो वणिक्केवलमानुषोऽयम् ।
कुतो वणिक्त्वं कुत एतदैश्यं नास्माकमस्मात्खलु विस्मयोऽस्ति ॥

१ क दृष्टान्.

राज्ञा सहायान्तमिभेन्द्रमूर्ध्नि विलोक्य तं सागरवृद्धिमूचुः ।
इदं पुनः पश्यत दर्शनीयं कश्चिद्भटाय[1] श्रियमेष भुङ्क्ते ॥ १२६
येनात्मनोपार्जितमत्र पुण्यं तेनैव भोक्तव्यमिति प्रदिष्टम् ।
इदं विपर्यस्तमिवोपलक्ष्यं परैः कृतं यद्धि परस्तु भुङ्क्ते ॥ १२७
अवश्यमन्यत्र महाकृतिभ्यामाभ्यां सहैवाचरितं तपः स्यात् ।
तदेतदुद्धतफलप्रपञ्चं सुव्यक्तमासीदिति काश्चिदूचुः ॥ १२८

इत्येवं ललितपुराधिवासिनीभिः
प्रीत्या तौ कथितौ विलासिनीभिः ।
तेनैव क्षितिपतिना वणिक्सुतौ तौ
संप्राप्तौ नृपगृहमृद्धिवृद्धिशालम्[2] ॥ १२९
राज्ञीभिर्मदनरसं प्रदायिनीभिः[3]
कान्ताभिः प्रचलितचारुभूषणाभि
युद्धश्रीश्रुतिसंकथारताभिर्हृष्टः
स [— —] नृपतिरथाविशत्स्वगेहम् ॥ १३०

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
कश्चिद्भटविजयो नाम
अष्टादशः सर्गः ।

---

१ [कश्चिद्भटस्य]. २ क °ऋद्धिवृद्धिशालम्, [°ऋद्धिमद्विशालम्].
३ [°रसप्रदायिनीभिः].

[एकोनविंशः सर्गः]

अथान्यदा वृद्धतमैर्नरेन्द्रैः[1] सुखं निषण्णः तनयां प्रदित्सुः ।
आहूय कश्चिद्भटमासयित्वा पप्रच्छ वंशानुगतां प्रवृत्तिम् ॥ १
विज्ञानकान्तिद्युतिसत्त्वयुक्तो यतो दिगन्ते प्रथितोरुकीर्तिः ।
धन्यौ ततस्ते पितरौ कुतस्तौ विज्ञातुमिच्छामि न चेद्विरोधः ॥२
स्मित्वा ततः सोऽर्थपरोङ्गितज्ञः कश्चिद्भटो नात्मगुणप्रशंसी ।
प्रच्छाद्य सद्भूतमदार्थमन्यद्वचो बभाषे क्षितिपाय युक्त्या ॥ ३
कश्चिद्भटः शूर उदारकीर्तिः श्रेष्ठ्यङ्गसूनुस्त्विति लोकवादः ।
स एव मे बन्धुतमः पिता च पिता न चान्यो भुवि विद्धि राजन् ॥४
जानामि तेऽहं क्रियमाणमर्थं वचोविकारैर्हृदि वर्तमानम् ।
कुतस्त्वयं किं कुलमस्य वेति कन्याप्रदानं प्रति ते विमर्शः ॥ ५
सा तिष्ठतु स्वा सुसुतानवद्या न तां महीपाल वृणे त्वदीयाम् ।
वणिक्सुतश्चेति मनो निधाय प्रसीद मे वा परिणामरम्याम् ॥६
सभागतास्तद्वचनं निशम्य प्रसन्नतां वीक्ष्य विनीततां च ।
आकूतमीशस्य च संप्रबुध्य विज्ञापयां भूमिपतिं बभूवुः ॥ ७
त्वयेन्द्रसेनः समरे जितश्चेत्तुभ्यं प्रदास्ये सुतयार्धराज्यम् ।
इत्येवमाघोष्य सभासमक्षं भूयो विचारस्तव नानुरूपः ॥ ८
यत्पूर्वमाख्याय सदस्सु राज्ञां तत्प्रत्यनीकं न च युक्तिमेति ।
महाजनानां परिहास एष धर्मस्य चात्यन्तविरुद्धमेतत् ॥ ९
ब्रवीति चक्षुर्मनसो विकारं ब्रवीति सौख्यं वपुषश्च शोभा ।
कुलं हि नृणां विनयो ब्रवीति इत्येवमुक्तं सदसि प्रधानैः ॥ १०

१ [नरेन्द्रः]. २ [सद्भूतमपार्थ°].

स्वैर्मन्त्रिभिः स्वस्य हितं ब्रुवद्भिस्तथा त्वनुज्ञातमिदं मयेति ।
कन्याप्रदाने कृतनिश्चयोऽभून्मुदा नरेन्द्रो मतिमान्विधिज्ञः ॥ ११
ततो नरेन्द्रो विजयप्रधानैः समेत्य वृद्धैः पुरवासिभिश्च ।
प्रहृष्टचेताः कृतसत्यसन्धो विवाहकार्याय शशास सर्वान् ॥ १२
नित्यप्रवृद्धाः प्रचलत्पताका नित्योत्थितान्येव च तोरणानि ।
नित्योत्सवाढ्यां ललिताह्वपुर्यां तानेव संपादितमास पूर्वम्[2] (?) ॥
त्रिकांश्चतुष्कानथ चत्वरांश्च वीथीप्रदेशान्सुमहान्पथांश्च ।
विशोध्य सच्चन्दनतोयगन्धैः पुष्पाणि तत्र[3] प्रकिरन्विधिज्ञाः ॥१४
यावद्गृहद्वारमिलाधिपस्य यावत्पुनः सागरवृद्धिगेहम् ।
तावच्च संस्कारितमृद्धिमद्भिः प्रेक्षागृहैश्चित्रितमण्डपैश्च[4] ॥ १५
क्वचिच्च मुक्तास्तरलाः पराढ्याः क्वचित्क्वचिद्द्रुमदामकानि ।
क्वचिच्च हैमाम्बुरुहाणि रेजुः प्रलम्बितान्यप्रतिमानि तानि ॥१६
क्वचिद्विचित्रं ननृतुस्तरुण्यः क्वचिच्च गीतं मधुरं जगुश्च ।
आस्फोट्य भाण्डाः करतालशब्दान्विलम्बनां[5] चक्रुरितोऽमुतश्च ॥
श्रीमण्डपे लम्बितपुष्पदाम्नि विचित्रविन्यस्तबलिप्रदेशे ।
सिंहासने काञ्चनपादपीठे निवेश्य कश्चिद्भटमीशपुत्र्या ॥ १८
पद्मापिधानैर्वरहैमपुष्पैः सुशीतगन्धोत्कटवारिगर्भैः ।
श्रेणिप्रधानेश्वरमन्त्रिमुख्यास्तौ स्नापयां प्रीतिमुखा बभूवुः ॥
ज्वलत्किरीटं[6] प्रणिधाय मूर्ध्नि स्वयं नरेन्द्रस्तु बबन्ध पट्टम् ।
कृत्वाग्निधर्मोदकसाक्षिभूतं कश्चिद्भटाय प्रददौ सुनन्दाम् ॥ २०

---

१ म किंतु प्रदाने सुविचार्य कार्यं कन्याप्रदान कृतनिश्चयोऽभूत्। २ क दान्वेव सपादितमास°. ३ क रत्न, [पुष्पाणि रत्नान्याकिरन्]. ४ म प्रेष्या. ५ [विडम्बना]. ६ क ज्वलत्तिरीट.

मत्तद्विपानां तु सहस्रसंख्या द्विषट्सहस्राणि तुरङ्गमानाम् ।
ग्रामाः शतेन प्रहताः सहस्रा हिरण्यकोट्यश्च चतुर्दशैव ॥ २१
द्वात्रिंशदायोजितनाटकानि वृद्धाः किराता विविधाश्च दास्यः ।
सुशिल्पिनः कर्मकरा विनीता दत्तानि पित्रा विधिवद्दुहित्रे ॥
अन्यच्च लोकेऽतिशयप्रवृत्तसुसंस्कृतं द्रव्यमनेकभेदम् ।
क्रीडानुरूपं विधिना विभूत्यै प्रीत्या ददौ भूमिपतिः सुतायै ॥
सद्रत्नसंस्कारितचारुरूपां दिवाकरांशुप्रतिमां महाहीम्[1] ।
आरुह्य तौ तां शिबिकां महर्ध्यां प्राचक्षितां सागरवृद्धिगेहम् (?)
अष्टादशश्रेणिगणप्रधानैरष्टादशान्येव दिनानि तत्र ।
कश्चिद्भटस्यावनिपात्मजायाश्चक्रे विभूतिं महतीं महद्भिः ॥ २५
ताम्बूलवस्त्रोत्तमभूषणानि विलेपनं स्रग्वरभोजनानि ।
प्रस्पर्धयेवाहरहस्तदानीं संप्रेषयन्ति स्म नरेन्द्रपत्न्यः ॥ २६
स्वबाहुवीर्यार्जितभोगवत्या भूपश्रिया साधु विभासमानम् ।
कश्चिद्भटं राजसुतां च वीक्ष्य जगज्जनः स्वैरमभाषतेत्थम् ॥२७
किं किन्नरीणां मिथुनं त्विदं स्यादाहोस्विदायातमथेन्द्रलोकात् ।
विद्याधराणां विषयादपेतं यदृच्छयेहागतमित्यमंस्त ॥ २८
अज्ञातवंशः परदेशजातो धन्योऽयमस्याः पतितामुपेतः ।
पुण्यान्वितानां हि नृणां नृलोके पुण्यान्विता एव भवन्ति भार्याः ॥
ईदृक्सुरूपाणि महीगतानां कीदृक्[2] शिवा तत्र नभश्चराणाम् ।
ईदृग्यदि स्याल्ललितं नराणां कीदृक्सुराणामिति किं वचोऽस्ति ३०
किं वानयोः पूर्वकृतं तपः स्यात्काराधिताभ्यां खलु देवता वा ।
व्रतानि कान्याचरितान्युभाभ्यामित्यब्रवीद्विस्मयफुल्लनेत्रः ॥ ३१

१ [महार्हां]. २ [कीदृक्श्रियस्तत्र].

एवं जनानां स्थितवान्मनस्सु स्वपूर्वनिर्वर्तितपुण्यभागी ।
विस्मित्य[1] काश्चिद्भट आत्मबन्धूंरेमे नवैर्बन्धुजनैः समेतः ॥ ३२
नरेन्द्रपुत्रीमनवद्यरूपामवार्यकान्तिद्युतिसौकुमार्यैः ।
रहोविहारेष्वनुवर्तितैः[2] स्वैः स रञ्जयामास गुणैर्गुणज्ञः ॥ ३३
गन्धर्वगीतश्रुतिगन्धयुक्त्या काव्यप्रयोगेन कथाप्रपञ्चैः ।
नाट्यावलोकेन कथाविशेषैस्तस्या मनस्स्वैः स्वबबन्ध[3] वध्वाः[4]॥३४
साप्यात्मनीयैर्ललितैरुदारैः कलागुणज्ञानकथाविशेषैः ।
दाक्षिण्यवेषैर्विनयोपचारैर्जहार चेतः सततं स्वभर्तुः ॥ ३५
उद्यानयानैश्च नदीविहारैर्वनप्रदेशाद्रिनिरीक्षणैश्च ।
महार्हहर्म्येषु रतिप्रमोदैः काश्चिद्भटस्तां रमयांबभूव ॥ ३६
अन्योन्यसंभाषणसक्तचित्तमन्योन्यसंदर्शनतत्पराक्षम् ।
अन्योन्यमङ्गेषु कृताङ्गरागमन्योन्यमेवं मिथुनं जहर्ष ॥ ३७
एवं तयोस्तु प्रथितोरुकीर्त्योः परस्परोद्वर्तितभोगरत्योः ।
विश्रम्भभावानुगतप्रणीत्योः कालो व्यतीतः पुरपुण्यमूर्त्योः॥३८
ततः कदाचिन्नृपसेवनार्थं काश्चिद्भटाख्यं नृपतिं विशन्तम् ।
मनोरमा नाम नरेन्द्रकन्या यदृच्छयापश्यदतुल्यशौर्यम् ॥ ३९
समीक्ष्य रूपं च युवत्वमस्मिन्नास्थां चकार क्षितिपालकन्या ।
लब्धावकाशो[5] मदनस्तदानीं हृदि प्रविव्याध मनोरमायाः॥ ४०
अनङ्गमुक्तः स च तीक्ष्णबाणः संप्राप्य वेगादथ चित्तलक्ष्यम् ।
ददाह तस्यास्तनुमन्तरन्तो वह्निर्यथान्तःसुषिरं द्रुमस्य ॥ ४१
नालङ्कृता[6] सा न सखीभिरासे संभाष्यमाणा न ददौ च वाचम् ।
नैवास[7] किंचिन्न पपौ न सास्मो[7] कन्दर्पदर्पाभिहता वराङ्गी ॥ ४२

---

१ [विस्मृत्य]. २ म °वर्तितैस्तै . ३ [स बबन्ध]. ४ म बन्ध्वाः. ५ म शब्दावकाशो. ६ [नैवाश]. ७ [साञ्चीत्].

कदाचिदुद्यानवनैकदेशे स्थिता पुनः सास्मितनिश्चलाक्षी ।
काश्चिद्भटं चित्रकलाविदग्धा लिलेख पुंस्त्री[1] नृपतेः शिलायाम् ४३
अवेक्ष्य चित्रस्थमतीवविद्धं तद्दुर्लभत्वं च विचिन्तयन्त्याः ।
सदीर्घनिःश्वासमुखं रुदन्त्या हिमाहताम्भोजमिवास तस्याः ॥४४
सखी तिरोऽभ्येत्य ततस्तदानीं वैचिन्त्यमस्या ह्यवगम्य युक्त्या ।
सा पृष्ठतस्तां शनकैरुपेत्य नेत्रद्वयं तत्पिदधौ कराभ्याम् ॥ ४५
सख्याः कराग्रप्रतिमर्शनेन मृगीव तत्रास तदानभिज्ञा ।
तद्वाक्यतः सा विदितानयेति किंचित्प्रहस्यात्मनि सा ललज्जे॥४६
अन्यार्थसंव्रीडनवेपिताङ्गी हस्तद्वयेन प्रममर्ज चित्रम् ।
सखी च तद्वीक्ष्य जगाद वाक्यं चित्रं किमेतद्वद मे निशङ्का[2] ॥४७
भूयश्च तस्या वदनं निरीक्ष्य ससाध्वसं मूढमनोभवार्ता ।
एकाकिनी त्वं हि किमर्थमासे वने वदेत्येवमथाभ्यपृच्छत् ॥ ४८
सा चैवमुक्ता धरणीन्द्रपुत्री सख्या तदाचारगुणं ह्यवत्या[3] ।
नैवालि मे कार्यमवश्यभावि क्रीडाप्रसङ्गादहमागतास्मि ॥ ४९
इत्थं ब्रुवाणा कुशला सखी सा विज्ञाय तस्या हृदि वर्तमानम् ।
अन्यापदेशेन सदर्थमन्यं मनःप्रसादार्थमिमां जगाद ॥ ५०
मुखं परावर्तितकान्ति कान्ते ग्लानिं गता ते तनुरङ्गतन्वी ।
विगूहसे[4] किं हृदि यद्व्यलीकमेकाकिनी वोढुममुं समर्था ॥ ५१
मातुः पितुश्चैव विलासिनीनां विश्रम्भनीया ननु साध्वि सख्याः
नियन्त्रणां त्वं मयि संविधत्स्व शक्ता विनेतुं हृदयस्य तापम् ५२
जानामि विद्यां विविधप्रकारां मायामदृश्यां मदनप्रयोगम् ।
आवेशनं भूतवशीकृतिं च यदीच्छसि त्वं प्रवदेत्यवोचत् ॥ ५३

१ [पुत्री]. २ [विशङ्का]. ३ [ह्यवेत्य]. ४ क विगूहसि, [निगूहसे].

संश्रुत्य सा तद्वचनं यथार्थं लब्ध्वावकाशं नरदेवकन्या ।
मनोगतार्थप्रतिबोधनाय समानपूर्वा[1] गिरमित्थमूचे ॥ ५४
का मे प्रिया का च हितप्रवक्त्री मनःप्रसादस्य च का नियोक्त्री ।
का देवता कः सुजनोऽनुवर्ती ऋते भवत्या शरणं न मेऽस्ति॥५५
नरेन्द्रसेवार्थमिहागतं तं यदा नु कश्चिद्भटमभ्यपश्यम् ।
तस्मिंस्तदैवात्ममनः ससङ्गे किं गूहितव्यं हितमित्युवाच ॥ ५६
यथा यथा तं मनसा स्मरामि मृगेन्द्रविक्रान्तमनङ्गरूपम् ।
तथा तथा मां प्रदहत्यनङ्गः कुरुष्व तच्छान्तिमरं[2] वयस्ये ॥ ५७
एवं प्रदिष्टा मनसो विकारं विज्ञाय तस्याः कमलायताक्ष्याः ।
सर्वैरुपायैस्तव कार्यमार्ये संसाधयामीति ततो जगाद ॥ ५८
अथामितं तं शनकैरुपेत्य कश्चिद्भटं सा तु विविक्तदेशे ।
मनोरमायाः सकलामवस्थां व्यजिज्ञपद्वागुपपत्तिदक्षा ॥ ५९
नयादपेतं बहुदोषमूलं निशम्य तस्या वचनं पृथुश्रीः ।
कश्चिद्भटो मेरुरिवाप्रकम्प्यो न युक्तमेतद्विनयादवोचत् ॥ ६०
एतद्वचस्ते न च युक्तरूपं विभ्राजते कर्मणि नैव भासः ।
स्वदारसंतोषमणुव्रताख्यं साध्वीश्वरो[3] मह्यमुपादिदेश ॥ ६१
इत्युक्तवत्युत्तमचारुरूपे कश्चिद्भटे सापि पुनर्जगाद ।
व्रतोपदेशात्समनुग्रहीतुं मनोरमां नेच्छसि मे सखीं ताम् ॥ ६२
प्रत्यक्षभूतं फलमुद्विहाय परोक्षपातं मृगये ह्यपार्थम् ।
न पण्डितस्त्वं बत बालिशोऽसि संदिग्धवस्तुन्यथ मुख्यमास्ते[4] ॥
व्रते दिवं यान्ति मनुष्यवर्या दिवश्च सारोऽप्सरसो वराङ्ग्यः ।
व्रताभिगम्या यदि देवकन्या इयं हि ताभ्यो वद केन हीना ॥ ६४

---

१ [संमानपूर्वं]. २ [तच्छान्तिकरं]. ३ क साध्वीति रोमाञ्चमुपादिदेश. ४ [मुख्यता ते].

सा चापि तन्वी त्वयि सक्तभावा प्रसीद नाथानुगृहाण भद्राम् ।
इति ब्रुवाणां परिशुद्धबुद्धिः सहेतुकं वाक्यमिदं जगाद ॥ ६५
ये शीलवन्तो मनुजा व्यतीता दृढव्रताः ते जगतः प्रपूज्याः ।
परत्र देवासुरमानुषेषु परं सुखं शाश्वतमाप्नुवन्ति ॥ ६६
न मज्जयन्त्यम्बुनिधौ सुशीलान्न दग्धुमीशो ज्वलदार्चिरग्निः ।
न देवता लङ्घयितुं समर्था विघ्ना विनश्यन्ति दशामयत्नात् ॥६७
इहाप्यशीलाः परिभूयमाना दुःखान्यनेकानि समश्नुवन्ति ।
परत्र तीव्राण्यसुखानि भद्रे ध्रुवं लभन्ते नरकेषु मूढाः ॥ ६८
ये शीलवेलामिह लङ्घयेयुर्दमं महान्तं नृपतेर्लभन्ते ।
यथा तथा दर्शय वाग्मुखानां नृणां परत्रापि यशश्च साध्यैः ॥
सुशीलमाहात्म्यवशेन पूर्वं विमुक्तशापोऽहमभूवमेषः ।
ततो मया लङ्घयितुं न शक्या व्रतस्थितिः सा मुनिसाक्षिभूता ॥
यद्यप्यनुज्ञां कुरुते नरेन्द्रो गृह्णामि कन्यां विधिपूर्वकेन ।
आप्तोऽन्यथा सर्वजनापवादं वोढुं न शक्तो न हितं परत्र ॥ ७१
इत्येवमुक्ता प्रतिभग्नवाक्या सखी विनिर्गम्य नरेन्द्रपुत्रीम् ।
मनोरमां मन्मथशापबद्धामाश्वासनार्थं मधुरं जगाद ॥ ७२
यत्प्रार्थितं राजसुते त्वया तु तत्सर्वमाचक्षितमन्वियाय ।
सोऽप्यादरेणानुमतः क्रियार्थः प्रकाशयामात्ममनो बभूव ॥ ७३
तस्मात्सुखं साध्वि सखीभिरास्स्व स्नात्वा हि भुंक्ष्व त्वमलंकुरुष्व
द्वित्रिष्वहस्सु प्रतिपादयिष्ये शोकं विनुद्य स्थिरधीर्भव त्वम् ॥
मद्विप्रलम्भार्थमयं प्रयोगः श्रोत्रप्रियः केवलमर्थदूरः ।
ज्ञातुं मया मन्दधिया हि शक्यं धन्या न जाताश्च मृता युवत्यः ॥७५
एवं वदन्ती व्यपयातहर्षा सरोदनारोपितरक्तदृष्टिः ।
फलोदयं स्वस्य पुराकृतस्य पुनः पुनस्तं तरुणी जहाई ॥ ७६

१ [मज्जयत्यम्बुनिधिः]. २ [साध्यम्]. ३ म सुशीलसंपन्नवयेन. ४ [जगाई].

पृथुश्रियं यौवनकर्कशाङ्गं पद्मेक्षणं मत्तगजेन्द्रलीलम् ।
कश्चिद्भटं वश्यमनं न लप्स्ये सलज्जवत्या न हि मेऽस्ति शान्तिः ॥

इति नरपतिपुत्री कामवह्निप्रतप्ता
ज्वलदनलशिखार्ता प्रातपत्रा लतेव ।
अहरहरभिमानक्षीयमाणाङ्गयष्टि-
र्नभसि बहुलपक्षे चन्द्रलेखेव सासीत् ॥ ७८

यदि मम गृहधर्मे जीवितं जीवयोनौ
भवति भवतु सम्यक्त्वेन[1] कश्चिद्भटेन ।
वदनकमलसङ्गं तेन सार्धं मम स्या-
द्दूरचरणसुबोधं लब्धं मे मुक्तिमार्गम् ॥ ७९

जिनवरमतमग्र्यं स्वर्गसोपानपङ्क्ति-
र्यदि मम न हि भाग्यात्संपनीपद्यते[3] चेत् ।
स्फुरदनलकलापज्वालमालासु देहं
मदनशरसुलक्ष्यं[4] तद्रहोप्ये (?) तमाशु ॥ ८०

स्थिरमतिरकृतार्था सम्यगीदृक्प्रतिज्ञा
व्रतगुणनियमान्ता[5] भावयन्ती क्रमेण ।
स्वसनदवथपक्ष्मास्वासभाषा[6] च साध्वी
प्रियगतिरतितृष्णालापदा[7] पाण्डुगण्डा ॥ ८१

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
मनोरमामतिविभ्रमो नाम
एकोनविंशतिः[8] सर्गः ।

---

१ म सम्यक्तेन. २ क लब्ध ते, [लभ्यते]. ३ [सप्रती°]. ४ क मदनशत. ५ [°नियमास्तान्]. ६ [श्वसनदवथुपक्ष्माश्वासभाषा]. ७ [प्रियमति°]. ८ [एकोनविंश.].

[विंशतितमः सर्गः]

अथ च धार्मिकसात्त्विकमानवै-
बहुकलागुणशास्त्रविशारदैः ।
ललितपूर्वपुरप्रतिवासिभि-
श्चिरमरंस्त सुखेन वणिग्नृपः ॥ १

नृपतिकान्तसुतां कुलनन्दिनी-
ममरराजवधूप्रियदर्शनाम् ।
जनपदार्धहयद्विपनाटकैः
समुपलभ्य न चैव मदं ययौ[1] ॥ २

प्रवरहर्म्यतलेषु च शर्वरीं
नयत[2] शीलगुणानथ पर्वसु ।
द्रविणमर्थिषु साधुजनेषु च
[.....] ॥ ३

अनुभवन्विषयांश्च मनोहरान्
सुकृतकर्मफलोदयपाकतो ।
ललितनामपुरे पुरुषोत्तमः
सुखमुवास नृपात्मजया तया ॥ ४

पुनरितः क्रमतः पितृपुत्रयोः
अमितसत्त्वपराक्रमधैर्ययोः ।
प्रवरधर्म[3]सपूर्ववराङ्गयोः
यदभवत्कथयामि तदीक्ष्यतां ॥ ५

---

१ म मुदं. २ [नयति]. ३ [°धर्मजपुण्य°].

अपहृते सुसुते वरवाजिना
नरपतेर्मनसोऽसुखशान्तये ।
मतिवरप्रमुखा नृपमन्त्रिणः
समभिमन्त्र्य सुषेणमतिष्ठिपन् ॥ ६
युवनृपत्वमवाप्य नृपात्मजः
प्रतिविबुद्धनवाम्बुरुहाननः ।
भृशतरं स कृतार्थतया बभौ
गतघने च निशीव निशाकरः ॥ ७
उदितबालदिवाकरतेजसो
विषयरागवशीकृतचेतसः ।
जगदनर्थगणात्परिरक्षतः
कतिपयानि दिनान्यगमन्मुदा ॥ ८
परनरेन्द्रबलेन विमर्दितं
स्वविषयं परिभूयं महाजनम् ।
अथ कदाचिदवेत्य युवाधिपः
स्वयमियाय सं योद्धुमना बलैः ॥ ९
रथपदातितुरङ्गमवारणैः
समुपगम्य भृशं युयुधे युधि ।
रिपुनृपोऽतिरुषा भृकुटीपुटः
प्रतिजघान सुषेणबलं बलात् ॥ १०
युवनृपोऽभिहतो रिपुसेनया
क्षणविभिन्नविचूर्णितशासनः ।

१ [परिभूत°]. २ म रुषा स बलान्वितः. ३ [भृकुटीधरः].

अथ जितः समरे सतुरङ्गमो
द्रुततरं प्रययौ पुरमात्मनः ॥ ११
रिपुनरेन्द्रबलाहतपौरुषं
प्रतिनिवृत्तमवेक्ष्य पुनः सुतम् ।
नरपतिश्चिरमात्मनि संस्मरन्
वरतनोः स्मृतवान्बहुशो गुणान् ॥ १२
विनयशीलविचित्रसमन्वितं
बहुजनप्रियमप्रतिपौरुषम् ।
परमधार्मिकमाहववल्लभं
समुपलभ्य न चाहमवञ्चितः ॥ १३
स्वतनुदुर्बलतां जरयान्वितां
परिभवं रिपुभिः कृतमात्मनः ।
वरतनोश्च गुणाननुसंस्मर-
न्न च शशाक स धीरयितुं[1] धृतिम् ॥ १४
युवनृपस्य ततः प्रपलायनं
विबलतामुपलभ्य च भूपतेः ।
हयरथद्विपदेशधनेच्छया
रिपुनृपस्त्वरया पुनराययौ ॥ १५
दलितभागतया वयमास्थिता
विषयभाग इतो भवतामिति ।
जनपदार्धमथ प्रविरुध्य त-
त्प्रविससर्ज ततः स वचोहरम् ॥ १६

१ [धारयितुं].

परुषवाक्यसमन्वितमीश्वरः
समभिवीक्ष्य च पत्रगताक्षरम् ।
अतिकषायविषाञ्चितलोचनः
प्रतिजगर्ज मृगेन्द्र इव द्विपम् ॥ १७
यदि मदात्स[1] कुलोचितया तया
प्रथितया धरया न हि संस्थितः ।
ध्रुवमहं विनिहत्य मदोद्धतं
परनृपाय ददाम्यतिवर्तिनम्[2] ॥ १८
इति वचः सदसि प्रविलोक्य सः
स[3]मजगर्ज मृगेन्द्रपराक्रमः ।
सपरुषं प्रतिलेखविसर्जनं
प्रतिविहाय[4] तदैव ययौ पुरात् ॥ १९
परिवृतो नृपतिश्चतुरङ्गया
रिपुमदप्रशमप्रदसेनया ।
चलदुरुध्वजचित्रपताकया
स निविवेश[5] गताध्वनियोजनम् ॥ २०
सुमतयोऽजितचित्रसुरादयो
विनयतः समुपेत्य नरेश्वरम् ।
वचनमित्थमिदं हितमर्थव-
ज्जगदुरेवमनिन्दितपौरुषम् ॥ २१
तव नरेश्वर सत्त्वपराक्रमौ
सुविदितौ जगता[6] न विलङ्घितौ ।

१ क °स्वकुलाचितया. २ म ददाम्यनुवर्तिनः, ३ [समजगर्जदथेन्द्र°].
४ म प्रतिविवाय, [प्रतिविधाय]. ५ क निनिवेश. ६ क जगता.

प्रतिविधानवियुक्ततया वयं
परिचितेन च वक्तुमुपाश्रिताः ॥ २२
सखिजनाः स्वसुताः कृतपौरुषाः
परबलस्य मदं प्रतिभञ्जिनः ।
तव न सन्त्यरयोऽपि बलोत्कटाः
कथमिदं त्वपरीक्ष्य कृतं त्वया ॥ २३
विगतगाधमथोदकमप्लवः
समुपलङ्घयितुं विघटेत कः ।
रिपुबलार्णवमुत्क्रमितुं पुन-
र्नृप न शक्यमपक्षवतस्तव ॥ २४
ललितसाह्वपुराधिपतिर्भृशं
प्रियहितोऽहितदर्पविघाटनः ।
यदि वयं नरदेव वचोहरान्
प्रविसृजामहि[1] चेद्भवमेष्यति ॥ २५
अथ च युक्तिमदर्थसमन्वितं
हितमिताक्षरसारसमुच्चयम् ।
अनुनिशम्य हि मन्त्रिवचोऽवद-
न्नृपतिराशु तथा क्रियतामिति ॥ २६
क्षितिपशासनतीव्रतया [⏑–]
जनपदस्य विनाशभयेन च ।
स्वपतिभक्तितया च वचोहरा
ललितसाह्वपुरं प्रययुर्द्रुतम् ॥ २७

---

१ [प्रविसृजेमहि]. २ क (जवैः), [तदा].

समभिवीक्ष्य तथोचितवृत्तितः
क्षितिपतेरथ लेखमदर्शयत् ।
तमवगृह्य निधाय स मस्तके
प्रतिविमुच्य तदर्थमबुध्यत ॥ २८
समवतार्य मृगेन्द्रधृतासना-
त्समुपविश्य ततोऽन्यदुपह्वरे ।
अभिजिजल्पिषुराप्ततमैः सह
नृपतिराह्वयदाशु वणिग्नृपम् ॥ २९
वरतनोस्तुरगेण विनाशनं
रिपुबलाच्च सुषेणपराभवम् ।
परनृपस्य पुनः समराङ्गणं
ह्यकथयत्सकलं सकलार्थवित् ॥ ३०
प्रकटमास्स्व भवान्परिपालयन्
जनपदं स्वपुरं निरुपद्रवम् ।
मम धुरंधरता च भवत्वथो
जिगमिषामि सुहृद्व्यसनार्थ्यहम् ॥ ३१
इदमिह प्रहितं जनकेन मे
त्वमभिपश्य गुणार्णव पत्रकम् ।
करपुटेन नवाम्बुरुहत्विषा
समुपगृह्य पुनस्तदवाचयत् ॥ ३२
परिभवं द्विषतः पितृदुःस्थितिं
वरतनोर्गमनं पितृराष्ट्रतः ।

१ म °दुस्थितं.

प्रतिनिशम्य च पत्रगतं त्वभू-
त्सलिलबिन्दुपरिप्लुतलोचनः ॥ ३३
नयनवारिपरिप्लुतमाननं
हृदयवेपथुना सह वीक्ष्य च ।
अथ नृपो ललिताख्यपुराधिपः
प्रतिविबुध्य सुधीरनुमानतः ॥ ३४
वरवराङ्ग पुरा विदितो मया
कथमिहोषितवानसि संवृतः ।
इति वदन्नुपसृत्य नरेश्वरो
हर्षफुल्लमुखः[1] परिषस्वजे ॥ ३५
वनगतोऽहमथोदधिवृद्धिना
करुणया परया तनयीकृतः ।
तदनु ते[2] तनयामुपधाय मे[3]
नरपतित्वपदे त्वमधिष्ठिपन्[4] ॥ ३६
अथ ततो भवतो ह्यधिको न मे
भुवि न कश्चन बन्धुतमः परः ।
इति वदन्तमवेक्ष्य पितुर्जन-
श्चरणयोरपतत्करुणं ब्रुवन् ॥ ३७
गतवति त्वयि नाथ समन्ततो
गिरिगुहासु वनेषु नदीषु च ।
नृपनियोगधराः परिबभ्रमु-
र्न विविदुश्च भवन्तमिहागतम् ॥ ३८

१ [हृषित°]. २ [मे]. ३ [मा]. ४ [त्वमतिष्ठिपः].

इति निवृत्तगिरि स्वजने ततो
नृपतिरित्थमुवाच मुदान्वितः ।
भवत एव मया परिवर्धितं
परिगृहाण पुनस्तनयाशतम् ॥ ३९
अनुनिशम्य स मातुलभारतीं
हृदयपङ्कजकुड्मलबाधिनीम् ।
नृपगणः कुरुतात्तव शासनं
समरुषं त्वनयेत्यवदत्पुनः ॥ ४०
स्वभगिनीसुतवाक्यरतो नृपो
गुरुतयाभिदधौ[1] स निगृह्य तम् ।
परिगृहाण गुणोदयभूषणां
प्रियसुतां मम वत्स मनोरमाम् ॥ ४१
नृपतिवाक्यमुदारमतिस्तत-
स्तदनुमत्य तथास्त्विति संजगौ ।
युवनृपाय मतङ्गजगामिने
समददात्तनयां मुदितस्तदा ॥ ४२
प्रणयवानपि यन्नृपतिः पुरा
स्वजनताश्रुतिबद्धमनोरथः ।
द्विगुणया स महोत्सवसंपदा
प्रतियुयोज सुधीर्भगिनीसुतम् ॥ ४३
इति समाप्य विवाहमनुत्तमं
जिगमिषुः स्वपुरात्परमर्दितः ।

---

१ क विदधौ.

स्वसुतया सकलैः[1] सह बन्धुभि-
नरपतिः कृतवान्सह भोजनम् ॥ ४४
मदनतापनखेदितचेतना
पतिमुपेत्य मनोगुणितं चिरम् ।
रविकराभिहता जलदागमे
वसुमतीव जहर्ष मनोरमा ॥ ४५
अथ यियासुरतुल्यपराक्रमो
वरतनुर्विषयं प्रति चात्मनः ।
उदधिवृद्धिमुपेत्य वचः स्फुटं
समधुराक्षरमित्थमभाषत ॥ ४६
असुहृदो वनगोचरिणो भवा-
न्मम पिता न पितापि पिताभवत् ।
किमिह खेदकरैर्बहुभाषितै-
रुभयलोकहितो न परो गुरुः ॥ ४७
विनय एव हि भूषणमुत्तमं
विनयमूलमिदं जगतः पदम् ।
तत इतो विनयं वणिजां पते
तव करोमि यशःपरिवृद्धये ॥ ४८
अविदितं भवता न च विद्यते
नरपतेरिदमस्य चिकीर्षितम् ।
रणनिमित्तमनेन हि गच्छता
जिगमिषामि सहानुमतेन ते ॥ ४९

१ म सबलैः.

इति वचः कथितं तनयेन त-
त्समवबुध्य पिता पुनरभ्यधात् ।
इह भवन्तमपास्य हि जीवितुं
मम मतिः सुमते न च वाञ्छति ॥ ५०
तव गुणेन च पुत्र गुणप्रिय
प्रथितकीर्तिरभूवमहं भुवि ।
नृपतिना समतां पुनराप्तवा-
ननुपमां जगतो बहुमानताम् ॥ ५१
इह विहाय हि मां प्रगते त्वयि
किमवलम्ब्य मया प्रतिषज्यते ।
व्रजसि मन्दरधीर यतो यत-
स्तनय मां च नयस्व ततस्ततः ॥ ५२
इति वचोविरते वणिगीश्वरे
वरतनुस्त्वथ चास्त्विति चोक्तवान् ।
अथ पुरान्नृपतेर्ललिताह्वया-
दुदयितुं समयश्च तदाभवत् ॥ ५३
विविधबन्दिमहाविटमागध-
स्फुटमुखोष्ठपुटप्रविजृम्भितः ।
जय जयेति जयावह ऊर्जित-
स्त्वविरतध्वनिरास समन्ततः ॥ ५४
अपि च पर्वणि वृद्धिमथर्च्छतः[1]
पवनघट्टितचारुतरङ्गिणः ।

१ क वृद्धिमथार्चतः

ललितपूर्वपुरं नृपतेर्गमे[1]
जलनिधेः सकलध्वनिमादधौ ॥ ५५
हयरथद्विपपादविघट्टना-
त्स्फुटसमुच्छ्रितधूलिविधूसरः ।
न ददृशे खलु तत्क्षणमम्बरं
दिनकरश्च परिस्फुरदंशुमान् ॥ ५६
अपनयाशु जड[2] स्वतुरङ्गमं
मदविभिन्नकटद्विरदान्तिकात् ।
तुरगपूर्वगतां च किशोरिका-
मपनयेति रवः परिशुश्रुवे ॥ ५७
मधुरवाक्यरसैरनुगच्छतः
पुरजना नृपतिं त्ववशिष्यताम् ।
युवनृपेण दिवाकरतेजसा
परबलोन्मथनार्थमतोत्युधैः (?) ॥ ५८
प्रबलकेतुपतद्विहगाकुला
प्रथितमुत्तमनामपुरार्णवम् ।
ललितपूर्वपुराद्रिगुहामुखा-
दभिससार च सैन्यनदी द्रुतम् ॥ ५९
तदनु सागरवृद्धिवणिक्पतिः
शकटसार्थसहस्रसमन्वितः ।
नृपसुताशिबिकाग्रगतस्ततो
बहुभटानुवृतः प्रययौ शनैः ॥ ६०

---

१ [नृपनिर्गमे]. २ क जडः.

गिरिगुहामुखकाननसंकटे
नरपतेर्व्रजतः परिपार्श्वतः ।
युवनृपः पृतनां परिपालय-
न्नगमदिन्द्रसुतोपमविक्रमः ॥ ६१
स्वविषयाद्विषयान्तमुपेत्य च
प्रतिनिवेश्य नृपस्तु वरूथिनीम् ।
अभिनिवेदयितुं द्रुतमागतं
जलधिवृद्धिमतो विससर्ज सः ॥ ६२
नृपवचोर्थविशेषपरावरं
मनसि वाक्यपटुर्गणयंस्ततः ।
अभिसमीक्ष्य नृपस्स्थितपौरुषं
स्वनृपकार्यमशेषमदुद्रुवत् ॥ ६३
उपगतं ललिताह्वपुराधिपं
जलधिवृद्धिमुखादवबुध्य तम् ।
अपजयं च परस्य जयं स्वकं
मनसि निश्चितवान्स महीपतिः ॥ ६४
परमहर्षविबुद्धमुखाम्बुजो
हृषितरोमचिताञ्चितविग्रहः ।
कुशलतां नृपतेः परिपृच्छ्य तं
पुनरपृच्छदसौ बलसंपदाम् ॥ ६५
कति गजाः समदाः कति वाजिनः
कति हि योधगणाः कति नायकाः ।

१ म स विषयाद्. २ [सुतमागतं]. ३ [नृपं स्थितपौरुष].

कति च मन्त्रविदः कति वल्लभाः
कथय वेदितुमिच्छति मे मतिः ॥ ६६
इति महीपतिना प्रतिचोदितः
स्वपतिचक्रबलस्थितिपौरुषम् ।
युधि वराङ्गविनिर्मितसाहसं
जलधिवृद्धिरजिज्ञपदाशु तत् ॥ ६७
हृदयहारिवचःश्रवणामृतं
सपदि सम्यगिदं समुदाहृतम् ।
सकलमेतदवैमि वराङ्ग इ-
त्यभिहितं भवता वद कीदृशम्[1] ॥ ६८
स्थितिगतिद्युतिरूपपराक्रमैः
प्रियसुतस्तव सोऽस्ति भवत्समः ।
व्यतिगतेषु दिनेष्विभकारणो
नृवर येन कृतः प्रथितो रणः ॥ ६९
इति सरित्पतिवृद्धिवचः पुन-
र्हृदयतुष्टिकरं तु निशम्य सः ।
कटककुण्डलहारवरादिभिः
सदसि पूजितवान्बहुभूषणैः ॥ ७०
गतसुतस्य कथाश्रुतिविस्मितो
विकसितोत्पललोलविलोचनः ।
नृपतया[2] नृपतिश्चतुरंगया
द्रुतमगात्तनयस्य दिदृक्षया ॥ ७१

१ [कीदृशः]. २ [पृतनया].

स्वतनयाभिनिरीक्षणकाङ्क्षया
ह्युदयति क्षितिपे मुदितात्मनि ।
पथि वराङ्गकथाभिरतो जनो
न बुबुधेऽध्वपरिश्रममादृतः ॥ ७२
प्रहतदुन्दुभिशङ्खमहारवै-
स्तमुपगम्य नृपं समुपाश्रितम् ।
परिगतौ[1] युवराट् ललितेश्वर-
श्चरणयोः समुदौ[2] प्रणिपेततुः ॥ ७३
वरवधूस्तनकुट्मललम्पटं
प्रमुदितोत्तमचन्दनकुङ्कुमम् ।
भुजयुगं प्रविसार्य महीपति-
स्तत उभावधिकं परिषस्वजे ॥ ७४
प्रियसुतं च समैथुनमात्मन-
श्चिरतरेण समीक्ष्य महीपतिः ।
वसुमती लवणार्णवमेखला
प्रविजितेति मया स्फुटमभ्यधात् ॥ ७५
अतुलहर्षसमन्वितमानसौ
समनुरक्तजनैः सह भूभुजौ ।
वरतनोः कथया श्रवणीयया
ह्यवसतां तदहर्विगतोत्सुकौ ॥ ७६
प्रतिगमय्य निशामुदयागते
दिनकरे त्वरया कृतमङ्गलः ।

१ [परिगतौ.. ...ललितेश्वरौ चरणयोः]. २ [प्रमृदितोत्तम°]. ३ क सुमैथुन°.

विश पुरं जननीमभिवादय
त्वमिति भूमिपतिः सुतमन्वशात्[1] ॥ ७७
इति नृपाभिहितो रणकर्कशः
पितरमित्थमवोचदिदं वचः ।
तमवतर्प्य रणातिथिमायुधै-
स्तदनु नाथ पुरं प्रविविक्ष्यते ॥ ७८
तमवगम्य चैरैर्बकुलेश्वरो[2]
वरतनोर्भटतां बलसंपदम् ।
अपजगाम मनाग्भयविक्लवं
न्यगपगन्धहतो द्विरदो यथा ॥ ७९
बकुलराजबलाबलमीक्षितुं
नृपनियोगकराः पुरुषा गताः ।
अपगमस्य निवेदनसंभ्रमाः
प्रतिनिवृत्य महीपतये जगुः ॥ ८०
अपरपक्षपराभवसंश्रया-
त्प्रतिविबुद्धमुखाम्बुरुहा नृपाः ।
प्रजहर्षुर्जयदुन्दुभयो ध्वनं (?)
जलधरा इव ते जलदागमे ॥ ८१
उदितबालरविप्रतिमद्युतिं
प्रथमयौवनभूषितविग्रहम् ।
भुवनवल्लभमेकपतिं भुवः
स्वजनमेव जनाः खलु मेनिरे ॥ ८२

१ [सुतमभ्यधात्]. २ क चरैश्च.

अवनिराज्यधुरं भजतामिमां
प्रतिगृहाण न चान्यदिहोच्यताम् ।
इति जगुर्गुरवः सदसि स्थितं
वरतनुं मुदितां[1] गुणभाजनम् ॥ ८३
स च गुरुप्रतिकूलभयादतः
किमपि चात्मगतं हृदि चिन्तयन् ।
न च शशाक निवारयितुं बला-
न्नृपतिता क्षितिपैः समधीयत ॥ ८४
रजतरुक्मघटैरभिषेचितः
प्रवरपट्टविभूषितमस्तकः[2] ।
प्रचलदुज्ज्वलचामरवीजितः
प्रविरराज शशीव गताम्बुदः ॥ ८५
समदवारणमूर्ध्नि प्रतिष्ठितो
नृपतिभिर्बहुभिः परिवारितः ।
प्रचलदुच्छ्रितकेतुलसद्ध्वजः
पुरवरं प्रविवेश महेन्द्रवत् ॥ ८६
प्रवरहर्म्यतलस्थितयोषितो
विलसितामलसन्नयनावलीः ।
सललितं स हरं[3] मुदितः शनै-
रुपससार गृहं स[4] नरोत्तमः ॥ ८७
उदितकाञ्चनतोरणगोपुरं
रुचिमदुच्छ्रितकूटतटोत्कटम् ।

१ म मुदितो. २ क °विभूषणभूषितः. ३ [स हरन्]. ४ [गृहं च].

नृपगृहं प्रविशन्विबभौ नृपो
जलदगर्भमथेन्दुरिवामलः ॥ ८८

प्रमुदिता च वराङ्गवराङ्गना
सकलचन्द्रमुखी कुलनन्दिनी ।
प्रहतमङ्गलतूर्यरवैः सह
प्रविशति स्म मनोरमया पुरम् ॥ ८९

अथ नरपतिरन्तर्गेहलक्ष्मीमिवैकां[1]
सविनयमुपसद्य प्राञ्जलिर्जातहर्षः ।
विकचकमलभासः सन्ननाम स्वसारः
प्रणतजनविभूत्या पादयोः पादयोः सः ॥ ९०

सदयमनुपमाद्यासन्नतान्ताश्च दृष्ट्वा
हृदयमपि वसन्तीर्योषितः[2] संप्रपृच्छय ।
चरितपरिकथां तामात्मनः संनिवेद्य
क्षपितरिपुबलौघः स्वस्थचित्तो बभूव ॥ ९१

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
स्वजनसमागमो नाम
विंशतितमः सर्गः ।

---

१ म लक्ष्मीमिवैता. २ म वसन्ती योषितः.

[एकविंशः सर्गः]

पुरा वराङ्गस्तु कुमन्त्रिमन्त्रित-
स्तदात्मदुर्वृत्तविपाकतश्च सः ।
वनान्तरे व्यालमृगादिसेविते
निरन्तरं दुःखमनेकमाप्तवान् ॥ १
स एव पूर्वार्जितपुण्यपाकतः
समुद्रवृध्यादिभिराप्तसंगतः ।
क्रमेण भूयः समवाप्य सच्छ्रियं
स्वबन्धुमित्रेष्टजनैः सहोषितः ॥ २
विपत्तयश्च व्यसनानि संपदः
सुखासुखोन्मिश्रफलप्रवृत्तयः ।
वियोगसंयोगसमृद्धिहानयो
भवन्ति सर्वत्र मनुष्यजातिषु ॥ ३
जिनेन्द्रसच्छासनमार्गयायिना
त्रिलोकसद्भावविदा महात्मना ।
उदारवृत्तेन शुचं व्यपास्यता
सुखं परत्रेह च लभ्यते ध्रुवम् ॥ ४
ततः कदाचित्सुरसेनभूपतिः
समाप्तकार्यो नृपमायतश्रियम् ।
सुखोपविष्टं समुपेत्य सादरं
व्यजिज्ञपद्यातुमथात्मनः पुरीम् ॥ ५
विचिन्त्य लोकानुगतिप्रवर्तनं
मृगेन्द्रमत्तद्विपविक्रमक्रमः ।

प्रदानमानादिभिरर्चनार्हणैः
समर्च्य राजा विससर्ज भूपतिम् ॥ ६
स देवसेनो भगिनीं सुताद्वयं
समर्प्य लोकस्य गतिस्थितिक्रियाः ।
विमोच्य जामातरमानतद्विषं
स्वदेशमृध्या परया ययौ नृपः ॥ ७
गते वराङ्गः श्वशुरे महाद्युतौ[1]
दिगन्तरख्यातविशिष्टपौरुषः ।
समेत्य कान्तापितृमातृबन्धुभि-
र्गतश्रमः संमुमुदे पुरोत्तमे ॥ ८
अथैवमुर्वीं तु वराङ्गनामनि
प्रशासति न्यायपथेन भूभुजि ।
सुषेणमाता च सुषेणधीवरौ
कृतापराधानिति[3] नैव शिस्यरे (?) ॥ ९
अहो क्षमा धैर्यमहो गभीरता
वराङ्गनाम्नोऽमितसत्त्वतेजसः ।
सति प्रभुत्वेऽपि कृतापराधिनः
कृपान्वितो नः सहते दुरात्मनः ॥ १०
विहाय मानं क्षममस्य दर्शनं
पुरापि नास्मद्वचसि स्थितौ[4] युवाम् ।
यदुक्तमेतद्युपपद्यते यदि
तदेव साध्वभ्युपगम्यतामिह ॥ ११

१ म महोद्यतौ. २ क गतः श्रयः. ३ क कृतापराधा निशि. ४ म स्थितो.

इति प्रधार्यात्मनि ते हिताहितं
विनिश्चितार्थाः प्रणिपातनं प्रति ।
महाभयाकम्पितगात्रयष्टयो
विविक्तदेशे प्रणिपेतुरीश्वरम् ॥ १२
महानथास्माभिरकार्यपण्डितैः
कृतोऽपराधोऽनपराधिनस्तव ।
जिजीविताशाः शरणागता वयं
प्रसादमस्मासु कुरुष्व सांप्रतम् ॥ १३
तामुत्थितो[1] मातरमागतां विभु-
र्ननाम मैवं प्रकृथा[2] इति ब्रुवन् ।
करेण पस्पर्श सुषेणमञ्जसा
जगाद मा भैरिति तं च धीवरम्[3] ॥ १४
विगृह्य येऽत्र प्रतिलोमगाः स्थिता
नयामि तांस्तान्यमसादनं प्रति ।
वशास्थितां[4] ये परिपालयामि तान्
स्थिता प्रतिज्ञा महती ममेदृशी ॥ १५
कृतापराधेषु हि ये क्षमान्विताः
क्षमावतस्तान्पुरुषान्विदुर्बुधाः ।
गुणेषु विन्यस्तधियां कृतागसां
विचेष्टते दैवकृतैव सा क्षमा ॥ १६
वराङ्गवाक्चन्दनतोयबिन्दुभि-
स्त्रयः समाप्यायितमानसास्तदा ।

१ म तमुत्थितो. २ म प्रकथा. ३ क देवर. ४ म यशस्थिता.

प्रहर्षफुल्लाननपङ्कजाः पुन-
व्यपेतशोकाः स्वगृहं ततो ययुः ॥ १७
गतेषु तेषु त्रिषु मित्रभावतः
प्रतापदाक्षिण्ययशोबलान्वितः ।
स्वयं जगामोदधिवृद्धिना सह
पितुः सकाशं खलु कार्यवत्तया ॥ १८
यथोचितन्यायपथेन संश्रितः
प्रणम्य पादौ पितुरायतश्रियः ।
मनोभिसंधारितकार्यगौरवः
कृतावकाशं शनकैर्व्यजिज्ञपत् ॥ १९
प्रशास राजन्स्वकुलोचितां महीं
सुषेण एषोऽपि तदर्धभाक्पुनः ।
अहं च राज्ये विनियोजितस्त्वया
नृपाः पुरेऽस्मिन्कथमासते त्रयः ॥ २०
आदाय तन्मानुषवर्जितं वनं
निवेशयिष्यामि तवाभ्यनुज्ञया ।
यदि प्रसादो मयि विद्यते प्रभो
विमुञ्च मा भूदुपरोध एष ते ॥ २१
निशम्य पुत्रस्य वचो महीपति-
र्जगाद वाक्यं हृदयङ्गमाक्षरम् ।
त्वमेव पुत्रः शरणं गतिश्च मे
विहाय यातुं न हि मामतोऽर्हसि ॥ २२

य एवमुक्तो जनकेन सोऽभ्यधा-
दवैमि राजन्ननुरागमात्मनि ।
तथापि मे बुद्धिरियं विजृम्भते
ह्यपूर्वदेशग्रहणाय शाधि माम् ॥ २३
इति ब्रुवन्तं गमने दृढव्रतं
विबुध्य राजा प्रियमात्मनः सुतम् ।
मनोरथानां परिवृद्धिसंपद-
स्तवाचिरात्सन्त्विति मुक्तवान्सुतम् ॥ २४
ततो वराङ्गः पितरौ प्रणम्य तौ
विमुच्य सर्वान्स्वजनान्यथाक्रमम् ।
कृतानुयात्रान्मुदितैर्महाजनै-
र्ययौ महर्ध्या नगरादथोत्तमात् ॥ २५
पितुर्नियोगाद्वरयोधमन्त्रिणो
विपश्चितोऽथागमसागरान्तगाः ।
अनुप्रयाताः सुतराज्यदुर्धराः
प्रयातमत्तं मदगर्वितां द्विषाम् ॥ २६
मुहूर्तनक्षत्रविलग्नसंपदं
विलोक्य सद्भिः सह चारुविग्रहः ।
मुदा प्रतीतः कमलायतेक्षणो
नगेन्द्रमापन्मणिमन्तमीश्वरः ॥ २७
सरस्वती नाम नदी च विश्रुता
मणिप्रभावान्मणिमान्महागिरिः ।

१ क प्रयातमात्रा, [°मन्तं...°गर्वितद्विषाम्]. २ म नरेन्द्रमापन्मणिमन्त्रमीश्वरः.

तयोर्नदीपर्वतयोर्यदन्तरे
बभूव चानर्तपुरं पुरातनम् ॥ २८
पुरा यदूनां विहगेन्द्रवाहनो
जनार्दनः कालियनागमर्दनः ।
रणे जरासन्धमभीर्निहत्य य-
न्नानर्तवान्नर्तपुरं ततोऽभवत् ॥ २९
वराङ्गराजो मृगराजविक्रमो
जितारिपक्षो विजितेन्द्रियः स्वयम् ।
अनन्तनामप्रमुखैः स्वमन्त्रिभिः
सुमन्त्र्य सम्यग्बहुनीतिपारगैः ॥ ३०
पुरापि यत्कालपरंपरागमा-
न्नरेन्द्रसंक्षोभविशेषजर्जरम् ।
समीक्ष्य तद्वस्तुविदा प्रदर्शितं
निवेशयामास पुरं स पूर्ववत् ॥ ३१
पुरस्य बाह्यं गिरिकूटसंकटै-
स्तडागवापीपृथुदीर्घिकाह्रदैः ।
विबुद्धपद्मैः कलहंसमालिभी
रराज सोद्यानवनैः समाकुलम् ॥ ३२
बभूव यस्मिन्परिखा समुद्रव-
द्विरिप्रकाशः परिवेष्टितश्च यः ।
हिमाद्रिकूटोपममास गोपुरं
शरत्सिताभ्रप्रतिमा गृहावली ॥ ३३

१ म दीर्घिता°

सभाप्रपादेवगृहाश्रमाश्रयं
विभक्तनानात्रिचतुष्कचत्वरम् ।
पुरं विशालं वृतिलोचनप्रियं[1]
बभौ सदोद्घाटितविश्रुतापणम् ॥ ३४
पुरस्य मध्ये प्रविभक्तभूतले
समुन्नते श्रीमति वीरवस्तुनि ।
सुखावलोके बहुशिल्पिनिर्मितं
रराज तद्राजगृहं महर्द्धिमत् ॥ ३५
सभागृहं वासगृहं रहोगृहं
जलाग्निदोलागृहनन्दिवर्धनम् ।
महानसं सज्जनमण्डनाह्वयं
त्रिपञ्चषट्सप्तनवाष्टभूमिकम् ॥ ३६
गजाश्वशालायुधगेहपङ्क्तयः
सुवर्णधान्याम्बरभेषजालयाः[2] ।
पृथक्पृथग्भाण्डविकल्पतस्तदा
सुसंस्कृता राजगृहे समन्ततः ॥ ३७
नरेन्द्रगेहोत्तरदिक्प्रतिष्ठितो
जिनेन्द्रगेहो मणिरत्नभासुरः ।
चलत्पताको ध्वजवृन्दसंकुलः
सहस्रकूटोत्कटसंकटोऽप्यभूत् ॥ ३८
नृपस्य पुण्योदयतो महाजनः
समन्ततः प्रश्रुतवान्समागमत् ।

१ [श्रुति°, स्मृति°]. २ म भैषजालयाः.

महाटवीग्रामसहस्रसंकटो
वनं त्वभूद्गोव्रजसंनिवेशितम्[1] ॥ ३९
तपोधनानां निलया वनान्तरे
शिलालयाः कृत्रिमरम्यभूतलाः ।
महापथोपान्तविरूढपादपाः
क्वचिज्जलोपाश्रितफुल्लवल्लिकाः ॥ ४०
क्वचित्सगोधूमयवातसीतिलाः
क्वचिच्च केदारविपक्वशालयः ।
क्वचित्पुनर्व्रीहिसमाकुला मही
क्वचिच्च मृद्वीक्षुवनं व्यराजत ॥ ४१
सरांसि शालीं जहसुः स्वपङ्कजैः
विबुद्धपत्रैरिव चारुविग्रहैः ।
हियोत्तमाङ्गान्यवनम्य शालयः
स्थिता इव स्थूलतया चकासिरे ॥ ४२
क्वचिच्च नार्यः कमलायतेक्षणाः
पिधाय कुम्भान्कुमुदोत्पलाम्बुजैः ।
सुमङ्गलायैव कृतप्रसादना[2]-
ज्ज्वलत्प्रबभ्रुर्विलसत्पयोधराः ॥ ४३
पथिश्रमाः[3] काञ्चनविभ्रमाञ्चिताः
प्रसज्य कण्ठे वनिताः स्वयं ययुः ।
परस्परं ग्रामसहस्रदर्शिनो
निपेतुरभ्यर्णतया हि कुक्कुटाः[4] ॥ ४४

१ क °संनिवेशितुम्. २ [कृतप्रसाधना जलं]. ३ [पथिश्रयाः] ४ म कुर्कुटाः

उपद्रवासद्भयदोषवर्जना-
त्प्रदानमानोत्सवमङ्गलोद्यमात् ।
प्रभूतभोगार्थविशेषसंपदः
कृतार्थतां तत्र जनाश्च मेनिरे ॥ ४५
सुखोपभोगात्सुजनः कुरूपमो
धनागमैरप्रतिमैः सदाकरः ।
प्रदानमानप्रशमोपचारतो
विदेहदेशेन समानतां ययौ ॥ ४६
व्रजास्तु ते ग्रामसमानतां गताः
पुरोपमा ग्रामवरास्तदाभवन् ।
पुरं जहासेव च वज्रिणः पुरं
रराज शक्रप्रतिमो महीपतिः ॥ ४७
पुराकरग्राममडंबपत्तने-
ष्ववाप वृद्धिं क्रमशो जनार्णवः ।
मुदं महीन्द्रो महतीमवाप्नुवान्
पुरा मसंस्कारितपुण्यकर्मणा ॥ ४८
ततः स जित्वाम्बुधिमेखलां धरां
यशोवितानस्थगितां[1]म्बरावधिः ।
सुरेन्द्रवच्चारुमहर्द्धिशोभितो
रराज राजाप्रतिमोरुपौरुषः ॥ ४९
नृपश्च निर्वर्तितकार्यनिश्चयः
सहासितः प्राज्ञतमैश्च मन्त्रिभिः ।

१ म °स्थनिता°.

विचिन्तया सागरवृद्धिना कृतं
नृपाभिषेकाय तदाशिसंमुदा[1] ॥ ५०
निशम्य राज्ञो वचनं वणिक्पतिः
प्रसादमात्मन्यवगम्य धीमतः ।
वणिक्तया दुर्लभतां नृपाश्रियो
हृदि प्रकुर्वन्निदमभ्यधाद्वचः ॥ ५१
नृपाभिषेको नृप नः पुरातनै-
रनाप्तपूर्वः कुलसंततिस्त्वयम् ।
कुलोचितं मार्गमपोह्य मे पुन-
र्नवेन मार्गेण गतिर्न शोभते ॥ ५२
अथैवमुक्तश्च समुद्रवृद्धिना
तमब्रवीन्नान्यदिहोच्यतां त्वया ।
सुतो नृपस्तस्य पिता वणिक्किल
इति प्रहास्यं भुवि किं न बुध्यसे ॥ ५३
ततः प्रसह्यर्द्धिसमन्वितं नृपः
सचामरं विष्टरमुच्छ्रितातपम् ।
ददौ नृपत्वं स समुद्रवृद्धये
भवान्विदर्भाधिपतिर्भवत्विति ॥ ५४
समुद्रवृध्न्यग्रसुताय धीमते
ददौ धनाख्याय महीं सकोशलाम् ।
कलिङ्गराष्ट्रं करिवृन्दसंकटं
वसूक्तये संप्रददौ कनीयसे ॥ ५५

---

१ [तदादिशन्मुदा].

अनन्तनाम्ने स्थिरसत्त्वबुद्धये
दिदेश देशं प्रथितं हि पल्लवम् ।
सकाशिभूमिं विबुधाय मन्त्रिणे
सुचित्रसेनाय च वैदिशं तथा ॥ ५६
अमातिराष्ट्रं त्वजिताय संददौ
प्रतिप्रधानाय च मालवाह्वयम् ।
स्वबन्धुशिष्टेष्टजनोपसेवितां
यथानुरूपं प्रविभक्तवान्महीम् ॥ ५७
ततः सुषेणाय युवाधिपाय तां
महीमपश्यन्नथ संविभाजितुम् ।
विमृश्य सस्मार यदृच्छया पितुः
कृतापराधं च कुलाधिपं[1] तदा ॥ ५८
गुरुं मदीयं परिभूय दुर्मतो
विनाश्य देशं प्रविलुप्य गोधनम् ।
विगृह्य योद्धुं पुनरागतो बलैः
प्रवृद्धभोगोच्छ्रितमानदर्पितः ॥ ५९
तथैव शौर्यं त्वभिमानसंभवं
तदस्ति चेद्योद्धुमिहैतु सांप्रतम् ।
उत प्रभावो न च तस्य विद्यते
विमुच्य देशं वनमभ्युपेतु वा ॥ ६०
इति प्रगर्ज्यात्मसखासमक्षतो
व्यपेतसामं प्रतिलेख्य लेखकम् ।

१म वकुलाधिपं.

वचोहरानाप्ततमान्मनस्विनः
शशास सद्यश्च कुलाधिपान्तिकम् ॥ ६१
असामयुक्तं प्रसमीक्ष्य लेखकं
उपप्रदानाद्रहितं च शासनम् ।
निशम्य वाक्यं च वचोहरोदितं
सदश्चकम्पे सहसैव साकुलम् ॥ ६२
कृतापराधादकृतात्मवीर्यतो
निराश्रयान्निःप्रतिकारकारणात् ।
मृगेन्द्रनिर्भर्त्सनतो मतङ्गजो
यथाहवे विद्धि कुलाधिपस्तथा ॥ ६३
बलेन वित्तेन पराक्रमेण च
महीपतिभ्योऽतिमहान्महीपतिः ।
कृतार्थकृत्यस्त्वनवार्यवीर्यवान्
किमत्र योग्यं वदतार्थचिन्तकाः ॥ ६४
स्वनाथवाक्यं हि निशम्य मन्त्रिणो
हिताहितोपायविचारदक्षिणः
मनोहरं तच्च हितं मिताक्षरं
स्वकार्यसिध्द्यर्थमुदाहरन्वचः ॥ ६५
सुखं हि साम्नैव तु कार्यसाधनं
ह्युपप्रदानेन च मध्यमं भवेत् ।
प्रभेददण्डौ खलु मृत्युनाशगौ[1]
चतुष्टयी वृत्तिरिहावतां[2] महीम् ॥ ६६

१ क °नाशनौ. २ क वृत्तिहिवाहता.

अतो वरिष्ठा तनया मनोहरां
प्रदाय सम्यग्विधिना महीपतेः ।
कृतैककार्याः सुखमास्महे वयं
न चान्यथास्तीश्वर सन्धिकारणम् ॥ ६७
स्वमन्त्रिसंदर्शितनीतिचक्षुषा
विचिन्त्य दीर्घं प्रविचार्य चात्मनि ।
प्रदातुकामो वरविग्रहाय तां
निनाय पुत्रीमनवद्यरूपिणीम् ॥ ६८
निवेद्य चात्मागमनं महीपते-
रनुज्ञया तस्य विवेश मन्दिरम् ।
विलोक्य सिंहासनमध्यधिष्ठितं
ननाम मूर्ध्ना नमितात्मशत्रवे ॥ ६९
कुलोचितं राज्यमपोह्य मामकं
विभज्य तावत्स्वमनोऽनुवर्तिने ।
कृतापराधस्तु[1] मया सहस्व तं
नृनाथ इत्येवमयाचत प्रभुम् ॥ ७०
अनुप्रभाष्यैवमतीव नीतिवि-
न्नरेन्द्रचित्तं च कुलेश्वरोऽहरत् ।
स्वभावभद्रः कृपया समन्वितो
नृपः स तस्मै कृतवाननुग्रहम् ॥ ७१
प्रसादलाभात्परितुष्टमानसः
कृतार्थतां तामवगम्य चात्मनः ।

१ [कृतोऽपराधस्तु].

मनोहरां मूर्तिमतीमिव श्रियं
ददौ सुतां भूपतये मनोहराम् ॥ ७२
यया हि भूतिः[1] कनकावदातया
मनोहरश्रोणिकुचप्रदेशया ।
नरेन्द्रपुत्र्या नरदेवसत्तमो
न सा विभूतिर्गदितुं हि शक्यते ॥ ७३
तुरङ्गमानां तु सहस्रमात्रया
मतङ्गजानां शतसख्यया तथा ।
हिरण्यकोट्या वरलम्बिकाशतै-
र्वराङ्गराजं च कुलोऽभ्यमूमुदत् ॥ ७४
ततः परेषामविलङ्घ्यशासनः
स्ववीर्यसंपादितकार्यसाधनः[2] ।
रराज रक्षन्सकलां वसुंधरां
पुरन्दरो द्यामिव सुव्रतालयाम् ॥ ७५
नवान्नवान्हर्षविशेषहेतवः[3]
प्रियाङ्गनाभृत्यसुमित्रबान्धवान् ।
सुरत्नहस्त्यश्वरथान्महीपतिः
समाप्तवान्निम्नतलं जलं यथा ॥ ७६
समस्तसामन्तसमाहृतैर्दिनै-[5]
र्नरेन्द्रनीत्यायतबाहुकर्षितैः ।
भृशं पुपूरे नरदेवसंमतं[6]
सरित्प्रवेगैरिव वारिधेर्जलम् ॥ ७७

---

१ क यया हि सस्ना. २ क कार्यसाधिन.. ३ [°हेतून्]. ४ क प्रशस्त°. ५ [°र्धनै°]. ६ [°सपद].

दिगन्तविख्यातवसुंधरेश्वराः
कुलर्द्धिदेशार्थसमन्विताः तदा ।
प्रसादमन्विष्य वराङ्गराजतः
प्रचक्रुरानर्तपुरस्य सेवनम् ॥ ७८
इति गुणवति शासत्यप्रतिख्यातकीर्तौ
सुजनजनपदं तं सर्वसंपत्तिमन्तम् ।
व्रतनियमसुदानैर्देवपूजाविशेषै-
र्मुनिभिरपि च शान्तै रेमिरे तत्र मर्त्याः ॥ ७९
जनयति रतिकार्या श्रीमदानर्तपुर्या
बहुगुणजनवत्यां धर्मकर्मार्थवत्याम् ।
नरपतिरभिवृद्धिं कोशदेशार्थसारै-
रहरहमुपयातः शुक्लपक्षे यथेन्दुः ॥ ८०

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
आनर्तपुरनिवेशो नाम
एकविंशतितमः सर्गः ।

[द्वाविंशः सर्गः]

वसुंधरेन्द्रस्य[1] तदा पृथिव्यामनेकहस्त्यश्वपदातिदेशैः ।
वराङ्गनाभिर्बहुरत्नदेशैरवर्धतात्यर्थमनर्थघाती ॥ १
सवारणं सर्वजगत्प्रधानं धर्मार्थकामत्रयरत्नपुण्यम् ।
तदात्मनीनस्य जनस्य सम्यक् स संविभेजे हि समाहितात्मा[3] ॥२

१ [वसुधरेन्द्रश्च]. २ [°कोशैः]. ३ क समाहितार्था.

सोत्साहधैर्यद्युतिपौरुषाणि संदर्शयां शत्रुगणे बभूव ।
सत्यार्जवक्षान्तिदयादमादीन् गुर्वङ्गनासाधुषु संचचार ॥ ३
नापत्सु मूढो व्यसनेष्वसक्तो न विस्मितस्त्वभ्युदये नतारिः ।
अकृत्यकृत्यप्रतिपक्षपक्षमित्रारिमित्रप्रकृतिक्रियाज्ञः ॥ ४
स्त्रीबालवृद्धाश्रमदुर्गतानामनाथदीनान्धरुजान्वितानाम् ।
बलाबलं सारमसारतां च विज्ञाय धीमानथ संबभार ॥ ५
धर्मैककार्यान्गुरुवन्ननाम प्रशान्तवैरान्सुतवद्ररक्ष ।
दर्पोच्छ्रितात्मानमदावलेपान् दूरं स्वदेशादतिनिश्चकास ॥ ६
पुरार्जितात्यन्ततपःप्रकर्षात्सदिन्द्रियप्रार्थितभोगभागी ।
जगज्जनाक्षिक्षमचारुरूपो मृष्टार्थशिष्टेष्टविशिष्टभाषी ॥ ७
खरां[1] मृदूनां क्रमनायिनां च स्वकालनिर्वर्तितसद्गुणानाम् ।
श्रियं नरेन्द्रोऽनुभवन्नराज शरद्विनिर्धौत इवेन्दुराजः ॥ ८
शरद्यथार्कांशुविजृम्भितायां प्रसन्नदिक्कायनभस्तलायाम् ।
विपक्वशालीनवलोकमानो महीपतिर्भूमितलेऽतिरेमे ॥ ९
हेमन्तकाले रतिकर्कशाभिः क्रीडानुषङ्गक्रमकोविदाभिः ।
प्रियाभिरापीनपयोधराभिश्चिक्रीड रम्येषु निशामुखेषु ॥ १०
शीतार्दितासेवितबालभानौ[2] तुषारसंसर्गविशीर्णपद्मे ।
करीन्द्रवृन्दैः शिशिरे नरेन्द्रो बभ्राम देशान्स विहारयोग्यान् ॥ ११
ततो वसन्ते वरुणातिकान्ते फुल्लद्रुमार्त्तभ्रमरोपगीते[4] ।
तमिन्दुवक्त्राः कुसुमावतंसाः कान्ता वनान्ते रमयांबभूवुः ॥ १२
मयूरमातङ्गमदावहायां विरूढबालाङ्कुरशाड्वलायाम्[5] ।
प्रियावृतः[6] प्रावृषि नीरदाभान्बभ्राम राजा धरणीधरांस्तान् १३

---

१ म खलो २ म बालभागौ. ३ क °द्रुमार्तभ्रमतोप°. ४ म °नीते. ५ [°शाद्वलायाम्]. ६ म स्त्रियो वृतः.

वर्षासु भीमाशनिगर्जितासु विद्युल्लतानद्धबलाहकासु ।
खद्योतनात्माकुलितक्षपासु प्रासादमालासु दिनान्यनैषीत् ॥ १४
अहीनपञ्चेन्द्रियकल्पगावो यदृच्छयाभ्यागतशक्रकल्पः ।
तत्कालयोग्यान्विविधप्रकारानिष्टैः समेतोऽनुबभूव भोगान् ॥१५
कदाचिदुद्यानवनेषु रेमे रेमे पुनः काननपर्वतेषु ।
क्वचिन्नदीनां पुलिनेषु रेमे रेमे सरस्स्वम्बुजसंकुलेषु ॥ १६
कदाचिदाप्तैः सुतबन्धुमित्रैः शिष्टैश्च[1] तुष्टैर्बहुशास्त्रगोष्ठ्या ।
युद्धातिशौण्डैर्यमदण्डकल्पैः सुरैः सुरूपैः सुभगैश्च रेमे ॥ १७
गन्धर्वगीताभिरतिः कदाचित्कदाचिदर्हत्कथया प्रसक्तः ।
प्रासाददेशेषु वराङ्गनानां क्रीडासु रेमेऽतिमनोहरासु ॥ १८
यद्यन्नृलोके पुरुषेश्वराणां प्राप्तव्यमासीदनवाप्यमन्यैः ।
महीपतिः सोऽप्रतिमप्रकाशस्तत्तत्समग्रं समवाप सम्यक् ॥ १९
इत्थं व्यतीते च सुखेन काले महीपतिः प्राप्तमनोरथानाम् ।
रन्त्वा कदाचिद्वनकाननेषु कृतानुयात्रः पुरमाविवेश ॥ २०
तस्याग्रपत्नी पुरमाविशन्तं प्रजातिकान्तं सततोपशान्तम् ।
द्विषज्जनान्तं विविधर्द्धिमन्तं प्रासादजालान्तगता ददर्श ॥ २१
तस्यास्तदानीमवलोकयन्त्या मनस्यभूवन्सकला विशेषाः ।
पुरप्रमोदो जनतानुरागः सन्माननीयत्वमथात्मनश्च ॥ २२
पुरा तु मत्स्वामिनि निर्गतेऽस्मिन्नन्याङ्गनासह्यमवापि दुःखम् ।
तदागमाम्भःपरिषेकयोगान्मनः पुनः सा कुरुतामपेतम् (?)॥२३
कृतं मदीयं कियदस्ति भद्रं कियच्चिरं तिष्ठति वा मयि श्रीः ।
इतः किमु स्याद्भवितव्यता वा मया पुनः किं करणीयमत्र॥२४

१ म शिष्यैश्च.

एतानि चान्यानपि चिन्तयन्त्याः सामीप्यमभ्यैद्धरणीपतिश्च ।
ससंभ्रमा सा प्रविलोक्य देवं ननाम पादाम्बुरुहाय तस्य ॥ २५
अनुज्ञया तस्य नृपस्य देवी पार्श्वोपविष्टा हि तदा प्रहृष्टा ।
कृताञ्जलिं[1] पङ्कजकुड्मलाभां विज्ञापयामात्मवती[2] बभूव ॥ २६
कथं सुखं केन कुतश्च किं वा कथं भवेत्कर्म सुखानुबन्धि ।
अखण्डितं तन्निरुपद्रवं च श्रोतुं मनो मां त्वरयत्यतीव ॥ २७
निशम्य वाणीं सकलां प्रियायाः स्वभावसद्धर्मरतिर्नरेन्द्रः ।
विमुक्तिधर्मं प्रविहाय तस्यै[3] प्रोवाच सम्यग्गृहिधर्ममेव ॥ २८
स्थूलामहिंसामपि सत्यवाक्यमचौरतादाररतिव्रतं च ।
भोगोपभोगार्थपरिप्रमाणमन्वर्थदिग्देशनिवृत्तितां च ॥ २९
सामायिकं प्रोषधपात्रदानं सल्लेखनां जीवितसंशये च ।
गृहस्थधर्मस्य हि सार एषः संक्षेपतस्तेऽभिनिगद्यते स्म[4] ॥ ३०
अनन्यदृष्टित्वमनन्यकीर्तिर्निःशङ्कता निर्विचिकित्सता च ।
जिनेन्द्रपादार्चनतत्परत्वं नामार्हतीं दृष्टिमभिष्टुवन्ति ॥ ३१
शीलानि दानानि तपांसि पूजाः सम्यक्त्वपूर्वाणि महाफलानि ।
सत्पुण्यनिर्वर्तनकारणानि चतुर्विधानीह वदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३२
सर्वेषु तेष्वप्रतिमेषु भद्रे तत्साधनेषु प्रवरा जिनार्चा ।
सास्मद्विधानामपि शक्यरूपा शेषं तु सर्वं गृहिणामशक्यम् ॥ ३३
ख्यातार्ककीर्तिर्वृषभस्य सूनुः प्रजापतिश्चक्रभृतां वरिष्ठः ।
धर्मार्थकामत्रयरत्नमूर्तिः स नः प्रमाणं भवतो नरेन्द्रः ॥ ३४
गृहाश्रमे संवसतां[5] नराणां धर्मार्थिनामत्र[6] सुखप्रियाणाम् ।
अस्मद्विधानां मनुरादिराजः सोऽष्टापदेऽतिष्ठिपदर्हदर्चाः ॥ ३५

---

१ [कृत्वाञ्जलिं]. २ क °मात्मपती, [°मात्मपतिं]. ३ म तस्मै. ४ म निनिगद्यते. ५ [संवसता]. ६ क धर्मार्थिनामर्थ°

शचीपतिर्दक्षिणलोकपालो महाप्रभावोऽष्टगुणर्द्धियुक्तः ।
जिनेन्द्रसेवां परया मुदासौ करोति सम्यक्त्वविशुद्धिरित्थम् ॥ ३६
नन्दीश्वरेऽर्हत्प्रतिमार्चनाय समुद्यमन्ते प्रतिवर्षमिन्द्राः ।
कथं न कुर्याम वयं जिनार्चां संसारपाशच्छिदुरप्रभावाम् ॥३७
एकापि शक्ता जिनदेवभक्तिर्या दुर्गतेर्वारयितुं हि जीवान् ।
आसीद्धितत्सौख्यपरं परार्थं पुण्यं नवं पूरयितुं समर्था ॥३८
ध्रुवो विनाशोऽर्जितपापराशेर्ध्रुवा हि दुःखस्य विपत्तिरिष्टा ।
सुखान्यवश्यं स्वयमाश्रयन्ते भक्तिर्दृढा यस्य जिनेश्वरेषु ॥३९
अनेकजात्यन्तरसंचितं यत्पापं समर्था प्रविहर्तुमाशु ।
तमः समस्तं हि दिगन्तरस्थं भानोः प्रभाचक्रमिवोदयस्थम् ॥४०
जन्मानुबन्धीनि सुदारुणानि संसारदीर्घीकरणव्रतानि ।
कर्माणि मर्त्या जिनपूजनेषु विरूढमूलान्यपि निर्धुनन्ति ॥ ४१
पूज्यानि तान्यप्रतिशासनानि रूपाणि लोकत्रयमङ्गलानि ।
संस्थाप्य नित्यं समुपासयन्तः प्रत्यक्षसर्वज्ञफलं लभन्ते ॥४२
जन्मस्वतीतेषु जिनेन्द्रपूजामुपास्य ये तीर्थकरा बभूवुः ।
आस्थाप्य तेषां पुनरर्चनानि भूयः स्वयं तीर्थकरा भवन्ति ॥४३
नोदैष्यदर्को यदि लोकभूत्यै लोकान्धकारे न्यपतिष्यदेवम् ।
जिनेन्द्रबिम्बं यदि नाभविष्यदज्ञानगर्तेषु जनो न्यमंक्ष्यत् ॥ ४४
परीषहारींश्चतुरः कषायान्विधूय जातिं च जरां च मृत्युम् ।
ये निर्वृतिस्थानमवापुरीशास्तदर्चनान्नाधिकमन्यदस्ति ॥ ४५
इहैव पूजाफलतो जिनानां स्वेष्टार्थसंसिद्धिफलं लभन्ते ।
जन्मन्यमुत्रापि च देवलोके प्राप्स्यन्ति दिव्यान्विषयोपभोगान्४६

१ [आसीद्धि] २ [लोकोऽन्धकारे].

अल्पश्रमेणाल्पपरिव्ययेन जिनालयं यः कुरुतेऽतिभक्त्या ।
महाधनोऽत्यर्थसुखी च लोके गम्यश्च पूज्यो नृसुरासुराणाम् ॥४७
अनार्यभावैरजितेन्द्रियैर्ये कुदृष्टिदृष्टान्तयथानुरक्तैः[1] ।
उन्मोहितास्तान्सुगतौ दधाति ये ऽतिष्ठिपच्चैत्यगृहं जिनानाम् ४८
अनाप्तचर्यागमदुर्विदग्धमधःपतन्तं नरलोकमेनम् ।
उत्पातवातैरभिहन्यमानं पोतं प्रसन्नानिलवद्रियेतु[3] ॥ ४९
योऽकारयद्वेश्म जिनेश्वराणां धर्मध्वजं पूततमं पृथिव्याम्[4] ।
उन्मार्गयातानबुधान्वराकान्सन्मार्गसंस्थांस्तु क्षणात्करोति ॥५०
येनोत्तमर्द्धि जिनदेवगेहं संस्थापितं भक्तिमता नरेण ।
तेनात्र सा निःश्रयणी धरण्यां स्वर्गाधिरोहाय कृता प्रजानाम् ॥५१
त्रिलोकनाथप्रतिमाग्र्यसेवां ये कुर्वते शुद्धमनोवचोऽङ्गैः ।
विभिद्य कर्मारिमहोग्रसेनां क्रमेण ते निर्वृतिमाप्नुवन्ति ॥ ५२
इत्येवमर्हत्प्रतिमालयस्य फलं विशालं नृपतिर्जगाद ।
निशम्य तत्सर्वमतिप्रहृष्टा प्रोवाच वाचं मधुरार्थसाराम् ॥ ५३
यशोऽर्थकामाश्च मयानुभूतास्त्वत्पादपद्मद्युतिसंश्रयेण ।
जिनेन्द्रबिम्बार्चनमर्चयिष्ये चैत्यक्रियायां प्रणवत्सबुद्धिम्[5] ॥ ५४
सदा जिनेन्द्रोदितधर्मभक्तो विज्ञाप्यमानः क्रियया नरेन्द्रः ।
अमात्यमाहूय शशास सद्यो जिनालयं त्वं लघु कारयेति ॥ ५५
संदेशमीशस्य मुदावधार्य बुधः प्रगल्भो विबुधः स नाम्ना ।
अल्पैरहोभिर्नगरस्य मध्ये प्राचीकरच्चैत्यगृहोत्तमं तत्[6] ॥ ५६
सगोपुराट्टालकचित्रकूटं महाभ्रसंघट्टिततुङ्गकूटम् ।
चामीकरानद्धसहस्रकूटं घण्टारवैस्त्रस्तकपोतकूटम् ॥ ५७

---

१ [°पथानुरक्तैः]. २ [योऽतिष्ठिप°]. ३ क °वध्रियेव, [°वध्रियेत]. ४ क पृथुव्या. ५ [°क्रियायां प्रणयत्स्वबुद्धिम्]. ६ [प्राचीकरच्चैत्य°]

व्यालोलमालाकुलितान्तरालं मुक्तास्रगालिङ्गितचारुलीलम् ।
विचित्ररत्नस्फुरदंशुजालं रेजेऽतिमात्रं वरहर्म्यमालम् ॥ ५८
सुशिल्पिनिर्मापितरम्यशालं मृदङ्गगीतध्वनिनुङ्गशालम् ।
वन्दारुदिव्यस्तुतिपूरिताशं बभूव तच्चैत्यगृहं विशालम् ॥ ५९
क्वचित्प्रवालोत्तमदामयष्टिः क्वचिच्च मुक्तान्तरलोलुयष्टिः[1] ।
ललम्बिरे ताः सह पुष्पयष्ट्या द्वारे पुनः कामलता विचित्राः ॥६०
द्वारोपविष्टा कमलालया श्रीरुपान्तयोः किन्नरभूतयक्षाः ।
तीर्थंकराणां हलिचक्रिणां च भित्त्यन्तरेष्वालिखितं पुराणम् ॥६१
हयद्विपस्यन्दनपुङ्गवानां मृगेन्द्रशार्दूलविहङ्गमानाम् ।
रूपाणि रूप्यैः[2] कनकैश्च ताम्रैः कवाटदेशे सुकृतानि रेजुः ॥ ६२
स्तम्भैर्ज्वलद्भिस्तपनीयकुम्भैर्विचित्रपत्रांशुपरीतशोभैः ।
तैः स्फाटिकैर्दम्पतिरूपयुक्तैः रेजे जिनेन्द्रप्रतिमागृहं तत् ॥ ६३
प्रवालकर्केतनपुष्परागैः पद्मप्रभैः सस्यकलोहिताक्षैः ।
महीतलं यस्य मणिप्रवेकैस्तारासहस्रैरिव खं व्यराजत् ॥ ६४
वैडूर्यनालैस्तपनीयपद्मैर्महेन्द्रनीलैर्भ्रमरावलीकैः ।
प्रवालमुक्तामणिभिर्विचित्रैर्नित्योपहारैः[3] कृतमङ्गलं तत् ॥ ६५
जिनेन्द्रगेहो वरधर्मदेहः[4] सुधामयस्तुङ्गविचित्रशृङ्गः ।
दूरावगाढ्यो[5] गगनेऽभ्यराजद्द्वितीयकैलास इवाद्वितीयः ॥ ६६
प्रेक्षासभावल्यभिषेकशालाः स्वाध्यायसंगीतकपट्टशालाः ।
सतोरणाट्टालकवैजयन्त्यश्चलत्पताका रुचिरा विरेजुः ॥ ६७
प्राकारमालाभिरथो परीतं चैत्यं बभासे जिनपुङ्गवानाम् ।
मेघावलीभिः परिवेष्ट्यमानः समुल्लसन्तीभिरिवारराज ॥ ६८

---

१ क मुक्तान्तरलोरुयष्टिः, [°लोल]. २ क रूपैः. ३ म नित्योपहाराः. ४ क °धमगहः. ५ [दूरावगाढो]. ६ म प्रेष्या°.

प्रियङ्ग्वशोकद्रुमकर्णिकारः पुन्नागनागाशनचम्पकानाम् ।
वाप्यो[1] विरेजुः सविहारयोग्या बहिःप्रदेशे भुवनोत्तमस्य[2] ॥ ६९
आम्रान्तका दाडिममातुलुङ्गैर्बिल्वाश्च चूताः क्रमुकाभयाश्च ।
तालीद्रुमास्तालतमालवृक्षा बभूवुरुद्यानवनान्तरेषु ॥ ७०
सुवर्णवासन्तिककुब्जकानां बन्धूकगन्धोत्कटमल्लिकानाम् ।
समालतीजात्यतिमुक्तकानां वीर्याभिरम्याणि[3] वनानि रेजुः ॥ ७१
खर्जूरमृद्वीकमरीचवल्ल्यो[4] लवङ्गकङ्कोलकनालिकेराः ।
ताम्बूलवल्ल्यः कदलीवनानि नित्यप्रवृत्तानि मनोहराणि ॥ ७२
अन्तर्बहिश्चापि समाप्तकर्मा प्रमाणसंवर्धितदिव्यमूर्तिः ।
जिनेन्द्रगेहो रमणीयरूपः पुरस्य भूतां गणितां[5] जगाम (?) ॥७३
यः सर्वसंपत्तिगुणोपपन्नः पुण्यावहः पापहरः प्रजानाम् ।
दिशः स्वभासा प्रतिभासयन्स लीलामुवाहेव महाचलस्य ॥ ७४
नाम्नेन्द्रकूटो नयनाभिरामो रत्नद्युतिहेपितबालभानुः ।
सर्वत्रसौख्यः सकलेन्दुसौम्यः सदैव स श्रीनिलयो बभूव ॥ ७५
उद्भिद्य भूमिं स्वयमुच्छ्रितः स्यादहो विमानं नभसश्च्युतं तत् ।
उत्पश्यतां कामगमागतं तदित्यासताका[6] भुवि मानवानाम् (?)७६
नृपाज्ञयार्हत्प्रतिमालयस्य सुशिल्पिनिर्वर्तितकौशलस्य[7] ।
विभूतिरित्थं विबुधोपमेन निर्मापिता सा विबुधेन तेन ॥ ७७

इत्येवं क्षितिपतिशासनेन धीमान्
दिव्याख्यः प्रियहितमन्त्रिवर्गमुख्यः ।
निष्ठाप्य क्रमविदनुत्तमं नु चैत्यं
भूपायाकथयदथार्थजातमार्यः ॥ ७८

---

१ [वाप्यो]. २ [भवनोत्तमस्य]. ३ [वीथ्याभि°]. ४ म मृद्वीक. ५ [भूतेर्गणितं]. ६ क °सुताका. ७ क पुंशिल्पि°.

तत्प्रोक्तां हितमहितां निशम्य वाणीं
संपूज्य प्रियवचनार्थदानमानैः ।
भूयस्तं मुदितमनाः शशास राजा
सद्यस्त्वं जिनमहवृत्तये यतस्व ॥ ७९

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
सिद्धायनप्रतिष्ठापनो नाम
द्वाविंशतितमः सर्गः ।

[त्रयोविंशः सर्गः]

अथ प्रशस्ते तिथिलग्नयोगे मुहूर्तनक्षत्रगुणोपपत्तौ ।
क्षपाकरे च प्रतिपूर्यमाणे[1] ग्रहेषु सर्वेषु समस्थितेषु ॥ १
संहेपयन्ती स्वरुचा वितानैर्दिवाकरांशून्प्रतिमा जिनस्य ।
संस्थापिता चैत्यगृहे विशाले नृपाज्ञया स्थापनकर्मदक्षैः ॥ २
तदाप्रभृत्येव मुदा प्रतीतो धर्मप्रियो भूपतिशासनेन ।
क्रियाविधिज्ञः पृथुधीरमात्यः प्रवर्तयां तन्महिमानमास ॥ ३
सर्वत्र भेरीं परिघोष्य पुर्यां किमिच्छकं त्वर्थिजनाय दत्वा ।
धर्मक्रियोद्योगनिविष्टबुद्धी राजा जिनेन्द्रालयमभ्यगच्छत् ॥ ४
मन्त्रिप्रधानाः पृथुधीविशेषा[2] विद्यासमृद्धाः प्रथिताः सदस्याः[3] ।
हयद्विपैश्चापि पदातिभिश्च महाविभूत्या तमनुप्रजग्मुः ॥ ५
देवी नृदेवप्रियकारिणीभिर्यथोपचारैरनुवर्तिनीभिः ।
जिनेन्द्रपूजाभिदिदृक्षया सा नरेन्द्रपत्नीभिरमा जगाम ॥ ६

१ क प्रतिसूर्यमाणे. २ म पृथुवी°. ३ क समस्याः.

अनेकयुद्धप्रतिलब्धकीर्तिः सर्वज्ञवक्त्रोद्गतपुण्यमूर्तिः ।
जगत्प्रजानन्दकरः प्रदोषे नान्दीमुखं प्रतिमुखश्चकार[1] ॥ ७
दीपावलीभिर्ज्वलितप्रभाभिरपूर्ववर्गैश्च चरुप्रकारैः ।
गन्धैश्च पुष्पैर्बलिभिः सुधूपैर्निवेदयां रात्रिबलिं बभूव ॥ ८
जिनेन्द्रचक्रायुधकेशवानां महर्षिविद्याधरचारणानाम् ।
हलेशवागीशपुरन्दराणां बद्धानि नानाचरितानि यानि ॥ ९
गन्धर्वगीतश्रुतितालवंशमृदङ्गवीणापणवादिमिश्रैः ।
लास्यप्रयोगेष्वथ ताण्डवेषु स्वायोज्य चित्रं ननृतुस्तरुण्यः ॥ १०
कुर्वद्भिरन्यैश्च कथोपदेशान्स्तोत्रैश्च देवानपरैः स्तुवद्भिः ।
प्रदीपभासा वरधर्मपुस्तान्[2]संवाचयद्भिश्च सुकण्ठरागैः ॥ ११
कुदृष्टिपक्षं क्षपयद्भिरन्यैरुद्भासयद्भिः समयंस्त्वमन्यैः[3] ।
तपस्विवर्यैर्वरधर्मकार्यैर्नीता त्रियामा निरपेतनिद्रैः ॥ १२
प्रदीपचन्द्रग्रहतारकाणां प्रभासु पाण्डुत्वमुपागतासु ।
भेर्यः सशङ्खाश्च समर्दलाश्च प्रणेदुरम्भोनिधिमन्द्रघोषाः ॥ १३
एवं प्रकारेण कथान्तरेण तस्यां रजन्यामपविद्रुतायाम् ।
अथोदयो[4] भानुहिरण्यकुम्भान्भक्त्या जिनं बिभ्रदिवाभ्यराजत् ॥
चूर्णैश्च पुष्पैरपि तण्डुलैश्च दशार्धवर्णैर्बलिकर्मयोग्यैः ।
नानाकृतींस्तत्र बलीन्विधिज्ञा भूमिप्रदेशे रचयांबभूवुः ॥ १५
उपर्युपर्युच्छ्रितचित्रकूटं मणिप्रभालङ्कृतसत्कवाटम् ।
प्रयत्नसंवर्धितवृक्षवाटं रराज भूयो नरराजवेश्म ॥ १६
तस्मिन्पृथुश्रीमति राजगेहे पुरोहितेनातिहितेन राज्ञः ।
द्रव्यं जिनानां स्नपनक्रियार्थं संभारयां बुद्धिमता प्रचक्रे ॥ १७

१ [प्रतिमुखः]. २ म °धर्महस्तान्. ३ [समयं स्वमन्यैः]. ४ म अथोदये.

आपः पयः पुष्पफलानि गन्धा यवाज्यसिद्धार्थकतण्डुलाश्च ।
लाजाक्षताः कृष्णतिलाः सदर्भा अर्घ्याणि दध्ना रचितानि तत्र १८
आपो हि शान्त्यर्थमुदाहरन्ति आप्यायनार्थं हि पयो वदन्ति ।
कार्यस्य सिद्धिं प्रवदन्ति दध्ना दुग्धात्पवित्रं परमित्युशन्ति ॥ १९
दीर्घायुराप्नोति च तण्डुलेन सिद्धार्थका विघ्नविनाशकार्थाः ।
तिलैर्विवृद्धिं प्रवदन्ति नृणामारोग्यतां याति तथाक्षतैस्तु ॥ २०
यवैः शुभं वर्णवपुर्घृतेन फलैस्तु लोकद्वयभोगसिद्धिः ।
गन्धास्तु सौभाग्यकरा नराणां लाजैश्च पुष्पैरपि सौमनस्यम् ॥ २१
सौवर्णरौप्यामलताम्रकांस्यादिन्द्रादिदिक्षु प्रणिधानयोग्यान् ।
विभागवित्तं तु यथानुसंख्यं पात्रप्रकारान्रचयांबभूवुः ॥ २२
सनादकाकाञ्चनका घटाश्च भृङ्गारिकापालिकवर्तकानि ।
शङ्खादिनानाकृतिभाजनानि प्रापूय यन्त्राणि हरिन्मयानि ॥ २३
नदीजलं प्रश्रयणोदकं च कौप्यं च वाप्युद्भवसारसं च ।
तडागतीर्थोद्भवपुण्यतोयं पुरोधसा संजगृहे यथावत् ॥ २४
पयोदधिक्षीरघृतादिपूर्णा फलाग्रपुष्पस्तबकापिधाना ।
घटावली दामनिबद्धकण्ठा सुवर्णकारैर्लिखिता रराज ॥ २५
अष्टोत्तराः शीतजलैः प्रपूर्णाः सहस्रमात्राः कलशा विशालाः ।
पद्मोत्पलोत्फुल्लपिधानवक्त्रा जिनेन्द्रबिम्बस्नपनैककार्याः ॥ २६
चतुःप्रकारा ह्युपमानिकाख्या हारिद्रगन्धोदनसत्कृताश्च ।
निर्वर्तितास्त्राः परिधाप्य सूत्रं दूर्वाङ्कुराग्रै रचिताः शिरस्सु ॥ २७
सुदर्शनीयाः फलजातयश्च क्षीरद्रुमाणां च कषायवर्गाः ।
मनःशिलाहिङ्गुलकुङ्कुमाद्या वर्णप्रकाराश्च सुसंगृहीताः ॥ २८

१ म ताम्रकस्स्यादिन्द्रादि, [ताम्रकास्यानिन्द्रादि°]. २ क प्रणिदान°.
३ सनादता°. ४ म °पुटाश्च.

गोशीर्षसंज्ञं वरचन्दनं च गन्धान्सुगन्धीन्विविधप्रकारान् ।
पृथग्विधान् धूपवरानथान्यान्पूजाविधिज्ञो विदधौ पुरोधाः ॥
विचित्रवर्णान्वरवासचूर्णान्दशार्धवर्णांश्च चरूननेकान्[1] ।
माल्यं च संघातिमकादिरम्यं विपञ्चयाः[2] पञ्चविधा बभूवुः ॥३०
ततो नृपेण प्रतिचोद्यमाना वृद्धाः कराग्रार्पितवेतदण्डाः ।
इतोऽमुतस्ते त्वरया विचेरुस्त्वरध्वमित्येवमुदाहरन्तः ॥ ३१
स्नानानुलिप्तास्तनुशुक्लवस्त्राः कण्ठावसक्तामललोलमालाः ।
ते ब्रह्मचर्यव्रतपूतगात्रा बभ्रुर्बलींस्तान्बलिनो युवानः ॥ ३२
तेषां बलीनां ज्वलनान्पुरस्थान्[3] कृतोपवासाः शुचिशुक्लवस्त्राः ।
दृढव्रताः श्रावकपुण्डरीका मौलिं यथा मौलबलिं दधार ॥ ३३
प्रदीपमालामणिमण्डितानां मालाकलापैः परिमण्डितानाम् ।
विभासतामष्टशतैर्बलीनां पेतुः पुरस्त्रीनयनोत्पलानि ॥३४
व्याधूयमानानि विलासिनीभिर्वृन्दानि तान्युत्तमचामराणाम् ।
उत्पश्यतां तत्र समागतानां समुत्पतद्धंसनिभान्यभूवन् ॥ ३५
प्रोतैश्च सूत्रैर्मणिभिर्महार्घैः प्रान्ते निबद्धा विलसद्वितानाः ।
समुच्छ्रिताः काञ्चनदण्डतुङ्गा गङ्गातरङ्गा इव ते विरेजुः ॥३६
हंसांसकुन्दच्छदपाण्डुराणि वैडूर्यदण्डानि मनोहराणि ।
सकिङ्किणीकानि सदा महान्ति[4] छत्राणि रेजुर्युवभिर्धृतानि ॥ ३७
भृङ्गारिकादर्शनपालकाद्यान्[5]समुल्लसच्चित्रपटान्सपुष्पान्[6] ।
हस्तेषु धृत्वा विविधप्रकारांस्तेषां पुरस्ताल्ललना निरीयुः ॥ ३८
चक्रासिनाराचवराङ्कुशानां युग्मानि च स्वस्तिकबन्धनानि ।
श्रीमङ्गलार्थानि विभूतिमन्ति कान्ताकराग्रावधृतानि रेजुः ॥ ३९

---

१ म चरीननेकान्. २ [विपञ्चिका.]. ३ [ज्वलता पुरस्तात्]. ४ [महान्ति]. ५ [भृङ्गारिका]. ६ क °पालिकाद्यान्. ७ म °सपट्टान्.

तासामथाग्रे तडिदग्रभासां रूपश्रिया ह्यप्सरसा समानाः ।
सुगन्धिरक्तोत्पलवर्णपूरांस्तान्वर्णपूरानबलाः प्रणिन्युः ॥ ४०
पुण्याम्बुपूर्णान्विहितानयोजैरष्टाधिकांस्तत्र सहस्रमात्रान् ।
प्रस्पर्धयेवातिविलासवन्त्यो जह्रुस्तरुण्यो वररुक्मकुम्भान् ॥ ४१
हसन्ति ये स्वाकृतिमत्तया च विलासिनीनां स्तनकुट्मलानि ।
समृन्मयांस्तान्कलशाननेकान जग्राह तोयैर्वनितासहस्रम् ॥ ४२
कन्याः स्मरास्त्रागतलक्ष्यभूताः प्रोद्भिद्यमानाः स्तनकुट्मलिन्यः ।
शरावसंवर्धितवल्लरीभिः पिधाय माङ्गल्यघटान्प्रणिन्युः ॥ ४३
मृगेन्द्रपद्मोक्षरथाङ्गवस्त्रैः सुपर्णनागेन्द्रमहेन्द्रकेतून ।
ऊर्द्वौ चलत्कुण्डलहारयष्टीन भ्राजिष्णुदेहाः पुरुषाः प्रजग्मुः ॥४४
स स्नापकैः स्नातविलिप्तगात्रो यक्षः सदक्षः स्नपने प्रवीणः ।
भृङ्गारकं हेममयं विचित्रं वहन्बभौ सूर्यमिवोदयाद्रिः ॥ ४५
पुष्पाणि सत्केसरधूसराणि गन्धावबद्धभ्रमरावलीभिः ।
सिक्तानि सच्चन्दनतोयगन्धैर्ययुः किरन्तः पुरतस्तथान्ये ॥ ४६
नटाश्च भण्डाः खलु मागधाश्च विदूषकाश्चापि विडम्बकाश्च ।
विचित्रवेषाः परिहासयन्तः पूजाजनं तं परितः प्रशंसुः ॥ ४७
मृदङ्गभेरीरवमर्दलास्य मन्द्रो ध्वनिस्तत्र नृणां श्रवस्सु ।
विवर्धमानस्य हि सर्वसन्ध्यो महार्णवस्येव रवो बभूव ॥ ४८
सिता बलाकाश्रयमादधानाः काश्चिच्च सन्ध्यारुणिताम्बराभाः ।
नीलाश्च पीता हरिताश्च काश्चिद्दशार्धवर्णा विबभुः पताकाः ॥४९
परार्ध्यनानामणिमिश्रितानि समुल्लसत्काञ्चनदामकानि ।
विलम्बिमुक्तातरलाञ्चितानि वीथीषु रेजुर्वरतोरणानि ॥ ५०

१ क °विहितान्ययोजैः. २ [°वक्त्राः]. ३ म ऊर्ध्वा°. ४ म सस्नापकाः. ५ [पूजार्चनं]. ६ [मर्दलस्य].

तीर्थाम्बुपूर्णाः स्वविभाकराला: कण्ठावसक्तोज्ज्वलचारुमालाः ।
पद्मापिधानास्तपनीयकुम्भा रेजुः प्रतिद्वारमुदग्धरूपाः ॥ ५१
स्वभावनिर्वर्तितभूतियुक्तं जिनेन्द्रपूजाद्विगुणीकृतार्थम् ।
ततस्तदानर्तपुरं क्षणेन वस्वोकसारश्रियमुद्वभार ॥ ५२
चलत्पताका निपतद्बलाका जनोदकाँ चामलहंसमाला ।
वितानकोर्मिर्बलिफेनराशिः पूजामहापुण्यनदी ससार ॥ ५३
नरेन्द्रगेहाज्जिनदेवगेहं तदोत्तमर्द्धिश्च शनैः प्रयान्ती ।
पूजोद्गतानां विरराज पङ्क्तिः तारागणानां नभसीव पङ्क्तिः ॥ ५४
द्विषत्स्वसृयां प्रमदास्वनङ्गं धनानि दीनेषु मुदं निजेषु ।
ददन्कटान्तभ्रमरप्रतानं राजाधिरूढः करिणं जगाम ॥ ५५
पौराङ्गनाभिः कृतभूषणाभिर्वृद्धैर्नरैः पोष्यजनैः परीताः ।
नरेन्द्रपत्नीशिबिकाः प्रयाता गन्तुं प्रवृत्ता इव सौधमालाः ॥ ५६
एवं प्रभूत्या नरदेवपत्न्यो नृपेण संप्राप्य जिनेन्द्रगेहम् ।
प्रदक्षिणीकृत्य बलिं प्रविश्य परीत्य तस्थुर्ह्यभिषेकशालाम् ॥ ५७
सुगन्धिगन्धोदकधौतपाणिस्तुरुष्कसंधूपितधूपपाणिः ।
पुष्पाक्षतक्षेपणदक्षपाणिः स स्नापको दर्भपवित्रपाणिः ॥ ५८
मृदङ्गगम्भीरनिनादनादं लसत्पताकोरुतरङ्गरङ्गम् ।
व्यालोलसच्चामरफेनमालं पूजासरस्तन्छनकैर्जगाहे ॥ ५९
आनीय लोकत्रयनाथबिम्बमास्थाय मौनव्रतमासमाप्तम् ।
आस्थाप्य रत्नाञ्चितपीठिकायां पूजाविधौ यत्नपरो बभूव ॥ ६०
प्रणम्य पूर्वं सुसमाहितात्मा भृङ्गारवर्यं परिगृह्य दोर्भ्याम् ।
पादाभिषेकं प्रथमं विकृत्य तत्याज निर्माल्यकमुत्तरेण ॥ ६१

१ [प्रतिद्वारमुदग्र°]. २ म स्वभार°. ३ [वस्वेक]. ४ [जनोदकार्चा°]. ५ क दधन्.

प्रमार्ज्य हस्ताम्बुरुहद्वयेन अर्घ्यं च वामाग्रकरे निधाय ।
अङ्गुष्ठमार्गेण निपात्य तोयं स्वाहा जिनादिभ्य इति प्रमन्त्र्य ॥६२
सम्यग्विधायार्घ्यमथोत्तमाङ्गे मन्त्राक्षराण्यप्युपजाप्य धीमान् ।
उच्चैः पठंस्तोत्रवरं जिनस्य मूर्ध्नाभिषेकं[1] मुदितः प्रचक्रे ॥ ६३
संधौतहस्तः कुसुमाक्षतानि निक्षिप्य पादाम्बुरुहे जिनस्य ।
तैर्वर्णपूरैरुपमानिकाभिर्निपातयंस्तोयघटैः सहैव ॥ ६४
स्वच्छाम्बुपूर्णैर्वरहेमकुम्भैस्तैर्मृन्मयैः सत्कुसुमावकीर्णैः ।
घटैरनेकैरभिषिच्य नाथं तं गन्धपङ्केन विलिम्पति स्म ॥ ६५
सुगन्धिसच्चन्दनतोयसिक्ताः स्वकेशरव्याततचूर्णचाम्राः[2] ।
पर्यन्तमत्तप्रचलद्विरेफा आरोपयामास सुपुष्पमालाः ॥ ६६
सुवर्णपुष्पैर्विविधप्रकारैः रत्नावलीभिस्तडिदुज्ज्वलाभिः ।
विभूषणानि प्रतिभूषयन्तीं विभूषयामास तदा जिनार्चाम् ॥६७
प्रदाप्य दीपांश्च हविर्निवेद्य निवेदयामास महाबलिं च ।
स्थानं विदित्वा गृहदेवतायां[3] दिशाबलीनार्द्रकरः प्रचक्रे ॥ ६८
अद्भिः पवित्रीकृतहस्तपद्मः प्रदर्शयामास स दर्पणादीन् ।
विमुच्य मौनं ह्यभिषेचनान्ते स स्वस्तिकां त्रिर्निरुवाच वाचम् ६९
मङ्गल्यगीतस्तुतिमन्त्रयुक्तः कृताञ्जलिः साधुगणो हि तत्र ।
परीत्य सर्वोऽतिविशुद्धभावः सर्वज्ञबिम्बं प्रणनाम भक्त्या ॥७०
धर्मोऽर्हतां सर्वजगद्धिताय प्रवर्धतामित्यभिघोषयन्सः ।
साशीर्वचस्तूर्यमृदङ्गनादैः प्रवेशयां तां प्रतिमां बभूव ॥ ७१
ततो वचःकायमनोविशुद्धः प्राविश्य राजा जिनदेवगेहम् ।
प्रियासमेतः प्रणिपत्य भक्त्या जग्राह शेषां जिनदेवतायाः ॥७२

१ म मूर्धाभिषेक. २ क चूम्रा, [धूम्राः]. ३ [गृहदेवतानां].

मनोरथं प्राप्य नरेन्द्रपत्नी महेन्द्रपत्नीव विराजमाना ।
उपोपविष्टा प्रभुनैव सार्धं मुदं परामात्मनि सा जगाम ॥ ७३
जिनेन्द्रसिद्धान्तविधौतबुद्धिर्वाक्कायचित्तत्रयजातशुद्धिः ।
प्रशान्तभावाहितधर्मवृद्धिः कश्चिन्मुनिर्धर्ममवोचदित्थम् ॥ ७४
इह प्रणिवर्तितसत्क्रियस्य जिनेन्द्रगेहस्य फलादमुत्र ।
सर्वर्द्धिमत्सद्रतिसौख्यवन्ति विमानवर्याणि नरा लभन्ते ॥ ७५
महामहं यः कुरुते जिनानां सौधं मुदा दृष्टि न भोगवृद्धौ[1] ।
भुक्त्वा चिरं तं नृसुरासुराणां सुखं ततो यास्यति मोक्षसौख्यम् ७६
संस्थाप्य यत्नात्प्रतिमां[2] जिनानां नरामराणां सुखमभ्युपैति ।
क्षीराभिषेकप्रमुखक्रियाभी राज्याभिषेकस्य भवेत्स भागी ॥७७
गन्धार्चनैश्चम्पकनागगन्धान्मूर्त्या[3] स्वगन्धैरतिशेरते तान् ।
धूपप्रदानैः कुलकेतवः स्युस्तेजस्विनः स्युर्वरदीपदानैः ॥ ७८
माल्यप्रदानैर्विरतेश्वरेभ्यो भवन्ति हेमाङ्गदभूषिताङ्गाः ।
भवन्ति भास्वन्मकुटप्रदानात्स्फुरत्किरीटोत्तमपट्टचिह्नाः[4] ॥ ७९
शुद्धिं लभन्ते वरदर्पणेन भृङ्गारतः स्युः कमनीयरूपाः ।
शान्तिं भजन्ते कलशप्रदानात् स्थालाद्धनेनाढ्यतमा भवन्ति॥८०
चक्रप्रदानाद्विनतारिपक्षास्तूर्यैस्त्रिलोकप्रथितप्रणादाः ।
विद्याधरत्वं हि वितानदानाच्छत्रप्रदानाद्विपुलं हि राज्यम् ॥८१
घण्टाप्रदानान्मधुरः स्वरः स्याद्ध्वजैर्विचित्रैरभिवारिताङ्गैः[5] ।
सर्वैः प्रवन्द्यो जिनवन्दनेन सर्वर्तुसर्वर्द्धिसुखैकभागी ॥ ८२
इत्येवमुक्त्वा तदनुग्रहार्थं पूजाफलं दानफलेन सार्धम् ।
ज्ञेयार्णवस्यान्तमितो महात्मा धर्मोपदेशाद्विरराम साधुः ॥ ८३

१ क °गृद्धौ. २ म प्रतिमा. ३ [मर्त्याः]. ४ क °तिरीटोत्तम°. ५[अभिधारिताङ्गः].

ततस्तु राज्ञाधिकतः प्रगल्भो[1] विद्यासरित्तोयनिधिः प्रशान्तः ।
प्रमादहीनो गुणशीलमालः स्तुत्यर्थवादान्वितमित्थमाख्यत् ॥८४
त्वं नन्द वर्धस्व धनैश्च धर्मैः संपन्नसस्या धरणी तवास्तु ।
वक्षस्स्थले ते रमतां च लक्ष्मीरर्हत्प्रसादान्नृप जीव दीर्घम् ॥८५
शास्ता भव प्रस्खलितात्मकानां त्राता भव त्वं विनयान्वितानाम् ।
स्त्रीबालवृद्धान्विभृहि[2]त्प्रियत्वात्सनातनः क्षत्रियधर्म एषः ॥ ८६
त्वं देवि राज्ञः प्रियकारिणी च स्वपुत्रपौत्रैरभिवृद्धिमेहि ।
शीलोपवासव्रतदानधर्मसर्वज्ञपूजाभिरता च भूयाः[3] ॥ ८७
यदैहिकामुष्मिकसौख्यमूलं संपादितं चैत्यगृहं त्वयेदम् ।
यथा गमिष्यत्यतिदीर्घकालं तथा कुरुष्वेति जगाद राज्ञीम् ॥ ८८
श्रुत्वा मुनिश्रावकयोर्वचांसि मनोगतं चाप्यवबुध्य देव्याः ।
शौर्यावधूतारिगणो नरेन्द्रः प्रीतान्तरात्मा प्रशशास सर्वान् ॥ ८९
यद्यच्च लोके रमणीयरूपमुपस्करं द्रव्यमनेकभेदम् ।
निर्वर्तितं चारु हिरण्यरूप्यैस्तत्तच्च निःशेषमदान्महीशः ॥ ९०
अष्टोत्तरग्रामशतं वरिष्ठं दासांश्च दासीभृतकान्गवादीन् ।
संगीतकं सान्ततिकं प्रमोदं समर्पयामास जिनालयाय ॥ ९१
आहारदानं मुनिपुङ्गवेभ्यो वस्त्रान्नदानं श्रवणार्यिकाभ्यः ।
किमिच्छदानं खलु दुर्गतेभ्यो दत्त्वा कृतार्थो नृपतिर्बभूव ॥ ९२
अर्हन्मुनीन्द्रागमचक्रपाणिविद्याधराणां चरितानि तानि ।
श्रुत्वा च दृष्ट्वा वरपट्टकेषु सनायकः संमुमुदे जनौघः ॥ ९३
अष्टाह्निकं शिष्टजनाभिजुष्टमन्यैर्नरेन्द्रैर्मनसाप्यचिन्त्यम् ।
एवंप्रकारेण नरेन्द्रवर्यो जिनेन्द्रपूजां प्रयतो निनाय ॥ ९४

१ म प्रगल्भ्यो. २ [°वृद्धान्बिभृहि प्रियत्वात्]. ३ म भूयात्.

समन्दरं विश्वजनाधिगम्यं समस्तलोकाभ्युदयैकहेतुम् ।
विशुद्धिशुद्धोऽधिकवृद्धितेजाः पूजार्णवं भूमिपतिस्ततार ॥ ९५
सुश्रावकः सर्वगुणाधिवासः सद्गन्धपुष्पाक्षतपूर्णपाणिः ।
स्वस्त्यादिभिर्मङ्गलभारतीभिः शशंस सच्चूतफलावसानैः ॥९६
आचन्द्रतारं जयतूर्जितश्रीः सद्धर्ममार्गः परमार्थसारः ।
सुखीभवत्वार्हतसर्वसंघः सिद्धालयाः स्फीततमा भवन्तु ॥ ९७
देशो भवत्वाधिकगोधनाढ्यः सुभिक्षनित्योत्सवभोगयुक्तः ।
राजा जितारिर्जिनधर्मभक्तो न्यायेन पायात्सकलां धरित्रीम् ॥९८
पाषण्डिनः स्वाश्रमवासिनश्च कृतां स्वसंस्थां न विलङ्घयन्तु ।
यशांसि तिष्ठन्तु चिरं पृथिव्यां दोषाः प्रणाशं सकलाः प्रयान्तु९९
इत्येवमादि स्फुटमर्थतत्त्वं वाक्यं जनश्रोत्रसुखं जगाद ।
महाजनस्तं सकलं निशम्य प्रतिप्रसादोदयवान्[1] बभूव ॥ १००
ततः प्रहृष्टो वरचूर्णवासैः सद्गन्धिमिश्रैः सलिलैः सलीलम् ।
लाक्षारसैरञ्जनरेणुभिश्च चिक्षेप गात्रेषु परस्परस्य ॥ १०१
जिनेन्द्रपादाम्बुरुहार्पणेन प्रसिद्धनामग्रहणेन भूयः ।
पूतां च पुण्यां पुरुसिद्धशेषां वसुंधरेन्द्रो निदधौ स्वमूर्ध्नि ॥१०२
पूजातपःशीलगुणप्रधानैः समर्च्य सद्धर्ममुदारबुद्धिः ।
महीपतिस्तूर्यरवैर्ननद्भिः सान्तःपुरो राजगृहं विवेश ॥ १०३

प्रविश्यात्मगेहं सुरेन्द्रप्रतापो
जिनेन्द्रोरुपूजाकथाकाव्यरागः ।
नृपो धर्मकामार्थकार्यप्रवीणः
प्रतुष्टान्तरात्मा सुखं संनिषण्णः ॥ १०४

---

१ म °प्रसादोदयवाक्.

कुतीर्थप्रणीतान्विवादान्निहत्य
प्रतिष्ठाप्य भूयो जगत्संप्रवादान[1] ।
प्रकाश्योरुभक्तिं सतीमार्हतीं च
सदा संदधौ स्वं मनः सद्दयायाम् ॥ १०५
ददत्पात्रदानं विधिज्ञा[2] यतिभ्यो
धनं[3] बन्धुमित्रार्थिशिष्टप्रियेभ्यः ।
महापर्वसंधिव्रतैः सोपवासै-
र्नयन्दीर्घकालं नरेन्द्रोऽभिरेमे ॥ १०६
जिनेन्द्रप्रणीतं शुभं सिद्धिमार्गं
प्रबुध्यात्मशक्त्या गृहीत्वा व्रतानि ।
नरेन्द्राग्रपत्न्यः सदा सिद्धपूजां
नयन्त्यो वराङ्ग्यः कृतार्था बभूवुः ॥ १०७

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
अर्हन्महामहवर्णनो नाम
त्रयोविंशतितमः सर्गः ।

[चतुर्विंशः सर्गः]

अथ भूमिपतिस्त्रिकालयोग्यान्[4]
न विरोधेन नयन्सुखार्थधर्मान् ।
जगति प्रवरां यशःपताकां
सकलां कान्तिमिवेन्दुवद्बभार ॥ १

---

१ क °संप्रदानान्. २ [विधिज्ञो]. ३ म वनं. ४ क °योग्यानविरोधेन यत्°.

शशिनः किरणाः स्वभावशीता
दिनकृत्तीक्ष्णवपुर्जगत्प्रभुः ।
हुतभुग्दहनप्रकाशनात्मा
जगदाप्यायनपण्डितो महेन्द्रः ॥ २
पृथिवी[1] कठिनात्मिका प्रकृत्या
द्रवता स्नेहगुणस्तथाप्सु वद्यः[2] ।
सकला नृपतौ गुणाः समेताः
सति वैरुध्यतमेऽप्यबाधमानाः ॥ ३
ऋतुषु[3] क्रमसंभवेषु तेषु
प्रतिसंवत्सरमागतेषु तेषु ।
परिपूर्णपयोधराभिरीशो
वनिताभिर्विषयान्सुखं निषेवे[4] ॥ ४
वरवंशमृदङ्गगीतशब्दा-
न्मुरजध्वानविमिश्रितान्सरागान् ।
अशृणोच्छ्रवणेन्द्रियप्रियांस्ता-
न्प्रमदानां मधुराक्षरप्रयुक्तान् ॥ ५
शयने विमले मणिप्रदीपे
कमलाख्यैः[5] परिरभ्य कामिनं तम् ।
वदनैर्जघनैस्स्तनप्रदेशै-
र्मृदुहस्तैरपि पस्पृशुर्महीन्द्रम् ॥ ६
मदिरामललोललोचनानां
वनितानां सुरतोत्सवप्रियाणाम् ।

१ क पृथुवी. २ [वन्द्यः]. ३ [ऋतुषु] ४ [सिषेवे]. ५ [कमलाक्ष्यः].

गलितांशुकलोलमेखलानां
न ततर्प प्रपिबन्सुखानि[1] तासाम् ॥ ७
बकुलोत्पलजातिमालतीनां
सुरभीणां सकदम्बचम्पकानाम् ।
ललनालककेशपाशबद्धा
वरमालाश्च मुहुर्मुहुः स जहौ ॥ ८
जिनदेवमहीन्द्रकेशवानां
चरितान्यप्रतिमानि नाट्यसन्धौ ।
रसनाट्यसमन्वितानि शश्व-
त्समपश्यद्धरणीपतिः प्रियाभिः ॥ ९
वसुधोदधिशैलसंभवं य-
द्वररत्नं रजतं च हेम कुप्यम् ।
गजवाजिरथायुधप्रधानं[2]
क्षितिकाः[3] प्राभृतकं समानयंस्तत् ॥ १०
विधिना परिपालकः प्रजानां
परिशास्ताद्दुरनुष्ठितक्रियाणाम्[4] ।
अगतीनबुधाञ्जनान्दरिद्रा-
नशरण्यांश्च बभार सर्वकालम् ॥ ११
नियमैश्च यमैर्व्रतोपवासै-
र्निरवद्यैरपि दानधर्मयोगैः ।
जिनदेवविशेषपूजनैश्च
प्रययौ पर्वसु भूपतेः स कालः ॥ १२

१ म प्रपिबेत्. २ म प्रदानं. ३ [क्षितिपाः]. ४ [°शास्ता दुरनुष्ठित°].

स कदाचिदतुल्यधीर्नृसिंहः
स्वभुजध्वंसितशत्रुसैन्यवीर्यः ।
प्रविवेश सभागृहं नरेन्द्रो
मतिमद्भिर्वरमन्त्रिभिश्च शिष्टैः ॥ १३
मणिहारकिरीटपट्टचिह्नः[1]
प्रचलत्कुण्डलचारुघृष्टगण्डः ।
स मृगेन्द्रवरासने निषण्णो
विबभौ भानुरिवोदयस्य मूर्ध्नि ॥ १४
विपुलर्द्धियशःश्रिया ज्वलन्तं
शरदीवामलपूर्णचन्द्रसौम्यम् ।
नृपतिं प्रसमीक्ष्य मन्त्रिवर्गः
प्रजजल्प स्वमनोगतं वचस्तत् ॥ १५
अयमिन्द्रसमो महर्द्धिकीर्त्या
विभवेनाप्रतिमेन लोकपालः ।
वपुषा यशसा च कामदेवः
कुत एतत्त्रयमस्य संशयो नः ॥ १६
पुरुषैश्वरकालकर्मदैवा-[2]
द्रुहतो वात्र नियोगतः स्वभावात् ।
प्रलयस्थितिसंभवाः प्रजानां[3]
नियताद्यैरिति लोकसत्प्रवादः ॥ १७
इति पक्षबहुत्वयोगतस्ते
न समर्था गदितुं स्वपक्षमेकम् ।

१ क °तिरीट°. २ [पुरुषेश्वर°]. ३ [प्रजाना].

अनपेक्षिततत्त्वदृष्टिचेष्टाः[1]
परिपप्रच्छुरथावनीन्द्रमित्थम् ॥ १८
सदसन्नियतिस्वभावपक्षा
विदिता लौकिकवैदिकास्त्वयेश ।
विविधांश्च नयानवैपि सूक्ष्मा-
न्वद तत्त्वमसंशयं[2] प्रभो नः ॥ १९
इति मन्त्रिवरैः प्रहृष्टमर्थं
प्रविचार्यात्मनि दृष्टधर्मतत्त्वः ।
नृपतिर्मधुराभिधानयुक्तं
वचनं प्रारभत प्रवक्तुमेवम् ॥ २०
बहुदृष्टिनिविष्टदुर्मतीनां
कुकवीनामथवान्यभिप्रपन्नाः[3] ।
अतिमुग्धतया नरा विबोद्धुं
परमार्थान्न हि शक्नुवन्ति बालाः ॥ २१
यदि दैवनियोगतो महर्द्धि
लभते चेन्मनुजस्त्वरोगतां वा ।
सुतभा [⌣] मवद्यलब्धियुक्तं
स तु दैवः कथमेति दैवभावम् ॥ २२
यदि तस्करको यजेत विद्वान्
वरमित्थं स्त्वथ..... ।
उभयोर्यजनं प्रतिगृहीता
ननु देवो विमतिः स किं करोति ॥ २३

१ म °सत्त्वदृष्टि°. २ म तत्त्वं न संशय. ३ क °न्यभिप्रसगाः, [वाक्य-विप्रपन्नाः]. ४ म यच्चेत.

गृहमप्युदितं भगवद्धनेन
भवदीयं ननु यस्य दीपतैलम्[1] ।
चरकैर्वरगन्धमाल्यधूपाः[2]
स च किं[3] दास्यति निर्धनः परेभ्यः ? ॥ २४
वरमन्त्रपदैः सुसंस्कृतं य-
द्धविमादाय समक्षतोऽत्ति काकाः[4] ।
बलिभुक् सुशृगालविट्प्रलिप्ताः[5]
स हि किं रक्षति दुर्बलः परं स्वम् ॥ २५
क्षुधितः परिदाप्य तं शृगालो
विबलं छागमुपाहरेत्प्रसह्य ।
पुरुषानपि तान्प्रसह्य तद्व-
द्यदि गृह्णाति स एव देवदेवः ॥ २६
पललोदनलाजपिष्टपिण्डं
परदत्तं प्रतिभुज्यते च येन ।
स परानगतिं कथं बिभर्ति
धनतृष्णां त्यज देवतस्तु तस्मात् ॥ २७
यदि कालबलात्प्रजायते चे-
द्विबलः कर्तृगुणः परीक्ष्यमाणः ।
बलवानथवा यदि कृती स्या-
द्विबलः काल इति प्रवेदितव्यः ॥ २८
अथ जीवगणेष्वकालमृत्युः
फलपुष्पाणि वनस्पतिष्वकाले ।

---

१ म न दीप यस्य. २ म चरकेवर°. ३ म स किं. ४ [काकः]. ५ [°प्रलिप्तः].

भुजगा दशनैर्दशन्त्यकाले
मनुजास्तु प्रसवन्त्यकालतश्च ॥ २९
अथ वृष्टिरकालतस्तु दृष्टा
न हि वृष्टिः परिदृश्यते स्वकाले ।
तत एव हि कालतः प्रजानां
सुखदुःखात्मकमित्यभाषणीयम् ॥ ३०
ग्रहतो जगतः शुभाशुभानि
प्रलपन्तो विमतीन्प्रवञ्चयन्ति ।
न तु तत्त्वमिदं वचो यदि स्या-
त्स्वयमेवात्महितानि किं न कुर्युः ॥ ३१
ग्रहयोगबलाच्छुभं भवेच्चे-
त्स च रामः प्रियया कथं विहीनः ।
मविनास्युशनःप्रयुक्तनीतिः[1]
सकलत्रः स च रावणो विनष्टः ॥ ३२
बलिनो बलवान्न चास्ति लोके
स च बद्धो रिपुणा मुरारिणासौ ।
जगति प्रथितः स कामदेवः
सशरीरस्तु पिनाकिना स दग्धः ॥ ३३
धनवीर्यपराक्रमातिसत्त्वो
मघवान्देवगुरुप्रणीतचक्षुः ।
बहुमित्रसुमन्त्रभृत्यकोशः
स च शप्तः किल गौतमेन तेन ॥ ३४

१ [अविनाश्युशनः].

धरणीसुत उग्रवीर्यतेजा
ग्रहराजः स च रावणेन बद्धः ।
बृहतां पितरप्रमेयवृद्धिः
सकलत्रो म्रियते स वासवेन ॥ ३५
रविचन्द्रमसोः ग्रहपीडां (?)
परपोषत्वमथेन्द्रमन्त्रिणश्च ।
विदुषां च दरिद्रतां समीक्ष्य
मतिमान्कोऽभिलषेद्ग्रहप्रवादम् ॥ ३६
जगदीश्वरशासनाद्यदि स्या-
त्परपक्षप्रभवविलुप्तता हि न स्यात् ।
कुलजातिवपुर्वयोविशेषा-[1]
न्न च युक्त्या घटते तदुप्सनीयम्[2] ॥ ३७
अथ सर्वमिदं स्वभावतश्चे-
न्ननु वैयर्थ्यमुपैति कर्मकर्तुः ।
अकृतागमदोषदर्शनं च
तदवश्यं विदुषामचिन्तनीयम्[3] ॥ ३८
स्वयमेव न भाति दर्पणः स-
न्न वह्निः स्वमुपैति[4] काष्ठभारः ।
न हि धातुरुपैति काञ्चनत्वं
न हि दुग्धं घृतभावमभ्युपैत्यवीनाम् ॥ ३९
धनधान्यानि न यान्ति वृद्धिमत्र
ननु यस्य भवेत्स्वभावपक्षः ।

---

१ [°विशेषो न]. २ [तदीप्सनीयम्]. ३ [विदुषा हि चिन्त°] ४ क समुपैति, [हि वह्नित्वमुपैति°].

[.....]

स तु दोषे बहुभिः परिप्लुतः स्यात् ॥ ४०

नियतिर्नियता नरव्ययस्य[1]
प्रतिभग्नस्थितिकर्मणामभावः ।
प्रतिकर्मविनाशनात्सुखी स्या-
त्सुखहीनत्वमनिष्टमाप्तग्राह्यम् ॥ ४१

पुरुषो यदि कारकः प्रजानां
सुखदुःखान्यनवाप्तपौरुषाणाम् ।
व्रतदानतया विनिष्फलानि
परघातानृतमैथुनक्रियाश्च ॥ ४२

प्रकृतिर्महदादि भाव्यते चे-
त्कथमव्यक्ततमान्नु मूर्तिमत्स्यात् ।
इह कारणतो नु कार्यमिष्टं
किमु दृष्टान्तविरुद्धतां न याति ॥ ४३

यदि शून्यमिदं जगत्समस्तं
ननु विज्ञप्तिरभावतामुपैति ।
तदभावमुपागतोऽनभिज्ञो
विमतिः केन स वेत्ति शून्यपक्षम् ॥ ४४

अथ सर्वपदार्थसंप्रयोगः
सुपरीक्ष्य सदसत्प्रमाणभावान् ।
न च संभवति ह्यसत्सुशून्यं
परिदृष्टं विगमे सतो महद्भिः ॥ ४५

---

१ [नरस्य यस्य].

क्षणिका यदि यस्य सर्वभावा[1]
फलस्तस्य[2] भवेदयं प्रयासः ।
गुणिनां हि गुणेन च प्रयोगो
न च शब्दार्थमवैति दुर्मतिः ॥ ४६
ध्रुवता जगतो यदीष्यते चे-
द्विपदा तुल्यमतो व्ययः स्वयं स्वभावात् ।
गमनागमनक्रियानिवृत्ति-
र्न च संसारफलोदयो न मोक्षः ॥ ४७
यदि सर्वमिदं प्रतीत्यसिद्धं
ननु सर्वस्य विलोपना प्रसिद्धा ।
असतस्तु कुतः प्रतीत्यसिद्धे-
स्तदसिद्धौ वचनं मृषा परस्य ॥ ४८
यदिहेप्सितमात्मनः प्रदातुं
ननु कर्मेति तदाहुराप्तवर्गाः ।
असतीहेतरश्च कर्मनाश-
स्तव भावाफलता कुतोऽस्ति लोके ॥ ४९
असिवद्यदिकोशवच्च लोके
पृथगेवात्र न लक्षितः स चात्मा ।
इति यो विवदेदहृष्टतत्त्वः
स च तेन प्रतिभासतोऽन्तरात्मा[3] ॥ ५०
घटपिण्डवदेव जीवराशिः
क्रियते चेत्परमेष्ठिनेति यस्य ।

१ म सर्वभाषा. २ [विफलस्तस्य]. ३ [प्रतिभासितो°].

अनपेक्षिततत्त्वमार्गदृष्टि-
नेनु नित्येतरतामुपैति तस्य ॥ ५१
अथ सर्वगतं वदेन्नरो यो
न हि गत्यागतिबन्धमोक्षभावः ।
प्रथमाङ्गुलिपर्वरूपमात्रो
परमात्मेति वदेच्च यः स मूढः ॥ ५२
सुखदुःखफलात्प्रयत्नतश्च
ननु गत्यादिविशेषलिङ्गभावात् ।
स न विद्यत इत्यनल्पबुद्धिः
कथमात्मानमिहात्मना ब्रवीमि ॥ ५३
गतयोऽभिहिता न ताश्च शून्याः
सुखदुःखानुभवोऽस्ति जीवराशेः[1] ।
स च कर्मपथेन नीयमानो
मतिमांस्तासु गतीषु बंभ्रमीति ॥ ५४
अनुपायवती ह्युपायपूर्वा
व्यवसायस्य गतिर्द्विधा विभिन्ना ।
अनुपायवतां न कार्यसिद्धि-
र्भवतीत्येवमुदाहृतं महद्भिः ॥ ५५
परिगृह्य नरो धमन्नधातुं
न सुवर्णं लभते चिरादपीह ।
परिमन्थ्य महाश्रमेण वह्निं
लभते नैव पुमाननर्तिकाष्ठम्[2] ॥ ५६

१ म जीवराशि., २ [पुमाननर्थ्य°].

प्रचलोत्थितया दवाग्निशम्य[1]
परिवाचं प्रपतत्प्रचक्षुरग्नौ[2] ।
न च क्षरते पयो विषाणा-
दिति दुग्ध्यं मतिगौनुपायवत्स्यात् ॥ ५७
अवगम्य बुधस्तु देशकालौ
शनकैः क्षीरमथाददाति गोभ्यः ।
मतिमान्कनकं लभेत धातो-
रनलार्थी लभतेऽग्निमाशु काष्ठात् ॥ ५८
अनिलाहतवृद्धमिद्धमग्निं
प्रसमीक्ष्येक्षणवाञ्शनैरपैति ।
व्यवसायवतामुपायपूर्वाः
सफलास्ते च यथा सुखक्रियार्थाः ॥ ५९
विधिर्वा[4]नकृतान्तकालदैव-
ग्रहभाग्येश्वरपौरुषस्वभावाः ।
कथितास्तु नयैकमार्गयुक्त्या
न हि निःश्रेयसकारणं भवन्ति ॥ ६०
सकला नयभङ्गमार्गनीता
यदनेकान्तविशेषितास्त एव ।
महतां वचनानुसारनीता
विदुषां श्रेयसि हेतवो भवन्ति ॥ ६१
स्वपुराकृतकर्मपाशबद्धा-
न्नरकादींश्च गतीरनन्तकालम् ।

१ क °याददानिशम्य. २ [प्रपतत्य°]. ३ [दुह्य मतिमानु°]. ४ [विधिर्कर्म-कृतान्त°].

प्रतिसंसरति स्वयं स जीवो
न च मुक्तिं लभते विनष्टचेताः ॥ ६२
बलवांस्तु यदा क्रियामुणैः स्या-
न्न च मुक्तिं लभते स कल्मषात्मा ।
स यदा बलवान्गुणी गुणेभ्यः
प्रविमुच्याशु नियाति मुक्तिमात्मा ॥ ६३
[.....
.....।]
शुभकर्मयुतः शुभानुबन्धं
फलमश्नाति परत्र सोऽन्तरात्मा ॥ ६४
नरकेष्वतितीव्रवेदनेषु
ह्यमनोज्ञेष्वसुखावहेषु जीवाः ।
अकृतार्थतया तमोधृतेषु
परिपत्यानुभवन्ति घोरदुःखम् ॥ ६५
वधबन्धपरिश्रमाद्यनर्था-
न्बहुला भीमतमास्तिरश्चजीवाः ।
जननार्णवमप्लवा भ्रमन्तः
स्वकृताङ्गैः फलतः समश्नुवान्ति ॥ ६६
दुरितान्मनुजा गुणैर्विहीनाः
परभृत्यत्वमुपेत्य दीनभावाः ।
अवयामि भयार्दिता विषण्णा
मुरणं यान्त्यथवार्थिनो वराकाः ॥ ६७

१ [स्वकृतानां]. २ [अपयान्ति]. ३ म भवार्थिता.

परिवारधनाप्रमेयलक्ष्मी-
मतिविज्ञानयशःप्रकाशवंशाः ।
द्युतिकीर्तिबलप्रतापभोगाः
सुकृतादेव हि नृणां भवन्ति सर्वे ॥ ६८
नृपती[1] द्विरदेन्द्रमस्तकस्था-
नुदितादित्यसमानसत्किरीटान्[2] ।
शरदिन्दुनिभातपत्रचिह्नान्
प्रचलच्चामरवीज्यमानलीलान् ॥ ६९
प्रविराजितरत्नबद्धहारान्
बहुभृत्यैः परियाचितान्समीक्ष्य ।
स्वपुरार्जितसत्क्रियाफलेन
प्रचलन्तीति बुधाश्च वर्णयन्ति ॥ ७०
यदतुल्यपराक्रमातिसत्त्वान्[3]
कुलरूपद्युतिकान्तिभिः समानान् ।
बहुकोटिनरानथैक एव[4]
ननु पूर्वार्जितपुण्यतः प्रशास्ति ॥ ७१
इह जन्मनि यः शुभक्रियार्थः
स परत्राभ्युपगम्य नाकलोकम् ।
अणिमादिगुणैर्गुणप्रधानैः
सुचिरं क्रीडति निर्गमप्रबन्धैः ॥ ७२
अजराम्बरहेमभूषणाना-[5]
मपरिम्लानसुदामधारिणीनाम् ।

---

१ क नृपतिं, [नृपतीन्]. २ क सत्तिरीटान्. ३ क °सर्वान्. ४ क एवन्ननु, [एवं ननु]. ५ [अरजोऽम्बर°].

शुभरूपकलागुणान्वितानां
प्रतिभावं[1] व्रजति द्युसुन्दरीणाम् ॥ ७३
स्मितपूर्वमनोज्ञभाषिणीभिः
सुरतप्रीत्यनुकूलकारिणीभिः ।
वरवेषविलासविभ्रमाभी
रमते नित्यमतन्द्रितः श्रियाभिः ॥ ७४
रविकोटिसहस्रभासुराणां[2]
प्रचलत्कुण्डलहारविभूषितानाम्[3] ।
कुरुते विभुतादिवश्यतीनां-
ममरेन्द्रः सुकृतादपेतसाकः[5] ॥ ७५
इति मधुरवचोभिरर्थवद्भिः
समपनयन्दुरनुष्ठितान्पदार्थान् ।
अधिगतनयहेतुवादमार्गः
स्फुटमवदन्नृपतिस्तदा सभायाम् ॥ ७६
अबुधहृदयवञ्चनानिमित्तं
परिपठितं शठवादिभिर्द्विजैर्यत् ।
पुनरपि नृपतिर्विशालबुद्धिः
कथयितुमारभते स्म वेदगुह्यम् ॥ ७७

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
परवादिविघातको नाम
चतुर्विंशतितमः सर्गः ।

---

१ [पतिभावं]. २ म °सहस्रप्रभा°. ३ [हारभूषितानाम्]. ४ [विभुता दिवस्पतीनाममरेन्द्रः]. ५ [°शोकः].

[पञ्चविंशः सर्गः]

अथावनीन्द्रः स महासभायां प्रकाशयन्धर्मकथापुराणम् ।
मिथ्यामहामोहमलीमसानां चित्तप्रसादार्थमिदं जगाद ॥ १
अष्टैक एवात्र यदि प्रजानां कथं पुनर्जातिचतुष्प्रभेदः ।
प्रमाणदृष्टान्तनयप्रवादैः परीक्ष्यमाणो विघटामुपैति ॥ २
चत्वार एकस्य पितुः सुताश्चेत्तेषां सुतानां खलु जातिरेका ।
एवं प्रजानां च पितैक एव पित्रैकभावाच्च न जातिभेदः ॥ ३
फलान्यथोदुम्बरवृक्षजातेर्यथाग्रमध्यान्तभवानि यानि ।
रूपाक्षतिस्पर्शसमानि तानि तथैकतो जातिरपि प्रचिन्त्या ॥ ४
ये कौशिकाः काश्यपगौतमाश्च कौण्डिन्यमाण्डव्यवसिष्ठगोत्राः ।
आत्रेयकौत्साङ्गिरसाः सगार्ग्या मौद्गल्यकात्यायनभार्गवाश्च ॥ ५
गोत्राणि नानाविधजातयश्च मातृस्नुषामैथुनपुत्रभार्याः ।
वैवाहिकं कर्म च वर्णभेदः सर्वाणि चैक्यानि भवन्ति तेषाम् ॥ ६
न ब्राह्मणाश्चन्द्रमरीचिशुभ्रा न क्षत्रियाः किंशुकपुष्पगौराः ।
न चेह वैश्या हरितालतुल्याः शूद्रा न चाङ्गारसमानवर्णाः ॥ ७
पादप्रचारैस्तनुवर्णकेशैः सुखेन दुःखेन च शोणितेन ।
त्वग्मांसमेदोऽस्थिरसैः समानाश्चतुःप्रभेदाश्च कथं भवन्ति ॥ ८
कृते युगे नास्ति च वर्णभेदस्त्रेताप्रवृत्तावथवाथ भृत्यम् ।
आभ्यां युगाभ्यां च निकृष्टभावाद्द्वापरं वर्णकुलाकुलं तत् ॥ ९
इति प्रवादैरतिलोभमोहैर्द्वेषैः पुनर्वर्णविपर्ययैश्च ।
विश्रम्भघातैः स्थितिसत्यभेदैर्युक्तः कलिस्तत्र भविष्यतीति ॥ १०
क्रियाविशेषाद्व्यवहारमात्राद्दयाभिरक्षाकृषिशिल्पभेदात् ।
शिष्टाश्च वर्णाश्चतुरो वदन्ति न चान्यथा वर्णचतुष्टयं स्यात् ॥ ११

१ [अस्त्वेक]. २ [रूपाकृति]. ३ क चैत्यानि.

वेदाः प्रमाणं यदि यस्य पुंसस्तेन ध्रुवो यज्ञविधिस्त्वभीष्टः ।
हिंसानुबन्धाः खलु सर्वयज्ञाः हिंसा परप्राणिविहिंसनेन ॥ १२
प्राणातिपातश्च महानधर्मः सर्वेषु वर्णाश्रमिणां मतेषु ।
अधर्मतोऽन्धे तमसि प्रविश्य जीवः समाप्नोति विचित्रदुःखम् १३
यज्ञे[1] वधे नैव वधोऽस्ति कश्चिद्वध्यो ध्रुवं याति सुरेन्द्रलोकम् ।
इदं वचो धूर्तविटस्य वेद्यं दयोपशान्तिश्रुतिवर्जितस्य ॥ १४
स्वबन्धुमित्रान्प्रियपुत्रपौत्रान्[2] दारिद्र्यदुःखार्तिवियोगखिन्नान् ।
सुखार्थिनस्तान्सुगतिप्रकाशान् जुहुर्न[3] चेत्तथ्यमिदं वचः स्यात् ॥
पशूनथाज्ञानगतीननाथान्न वाञ्छतः स्वर्गसुखं कदाचित् ।
आहारमात्राभिरतानभद्रान् हत्वा जडान्किं लभते वराकान् ॥
यद्यत्र सत्त्वान्विमतीन्निहत्य वेदापदेशाद्विगतानुकम्पैः ।
द्यौर्गम्यते वेदकृतात्मभिस्तैः कैर्गम्यते श्वभ्रसुखं वदन्तु ॥ १७
स्वायंभुवैर्यज्ञविधावहिंसा प्रोक्ता पुनर्जीवदयार्थमेव ।
वर्षत्रयप्रोषितपिण्डपिण्डैर्यदिष्यते सत्रिसमैः[4] पुराणैः ॥ १८
नभश्चरः सर्वनृपप्रधानो वसुर्महात्मा वसुधातलेऽस्मिन् ।
एकेन मिथ्यावचनेन राजा रसातलं सप्तममाससाद ॥ १९
अद्यापि तस्य क्षितिपोत्तमस्य द्विजातिभिर्मन्त्रपदप्रवीणैः ।
उत्थापनं यत्क्रियतेऽभिज्ञैस्तदेव पर्याप्तमिहात्मवद्भ्यः ॥ २०
साकेतपुर्यां सुलभानिमित्तं कृतं निदानं[5] मधुपिङ्गलेन ।
पुरावराभ्यागमनं च तस्य को नाशृणोद्भारतजातमर्त्यः ॥ २१
तस्माच्च मायामदलोभरागैर्द्वेषेण रोषेण च संनिबद्धाः ।
वेदाश्च वेदाध्ययनप्रसक्ता हितार्थिभिस्त्याज्यतमा मनुष्यैः ॥२२

१ [याज्ञे]. २ भ °पौत्रपुत्रान्. ३ क जहुर्न. ४ क सत्रितयैः. ५ क निधानं.

दत्तं पुरा क्रूरनृपेण दानं किमिच्छकं सर्वजनाय शक्त्या ।
इति प्रतीता किल तस्य कीर्तिर्यदुप्रवीरस्य महीतलेऽस्मिन् ॥२३
तेनान्नरक्षार्थमदुष्टबुध्द्या स्वांकारितः काष्ठमयोऽतिरौद्रः ।
निर्भर्त्सितस्तेन पुनर्द्विजान्धः पञ्चत्वमापत्सहसातिभीतः ॥ २४
एकस्य विप्रस्य विराधनेन श्वभ्रं गतः क्रूर इति श्रुतिश्चेत् ।
समस्तसत्त्वातिनिपातनेन यज्ञेन विप्रा न कथं प्रयान्ति ॥ २५
धर्मक्रियाया हि दयैव मूलं दया विनष्टा परसत्त्वघातात् ।
तेनाश्नुते दुःखशतानि जीवस्ततो हि हिंसा परिवर्जनीया ॥२६
फलं कदल्या न हि [–ु] पायान्नेक्षुर्नतो कोद्रवतो न शालिः ।
ततः सुखैषी सुखमेव कुर्यात्सुखं च दद्यात्क्रियया परेभ्यः ॥२७
द्विजातयो मुख्यतमा नृलोके तद्वाक्यतो लोकगतिः स्थितिश्च ।
देवाश्च तेषां हवनक्रियाभिस्तृप्ति प्रयान्तीति च लोकवादः ॥२८
पत्राणि पुष्पाणि फलानि गन्धान्वस्त्राणि नानाविधभोजनानि ।
संगृह्य सम्यग्बहुभिः समेताः स्वयं द्विजा राजगृहं प्रयान्ति ॥२९
प्रवेष्टुकामाः क्षितिपस्य वेश्म द्वारस्थैर्निरुद्धाः क्षणमीक्षमाणाः ।
तिष्ठन्त्यभद्राः करुणं ब्रुवाणा नालं किमेतत्परिभूतिमूलम् ॥ ३०
यदीश्वरं प्रीतिमुखं त्वपश्यंस्ते मन्यते भूतलराज्यलाभम् ।
पराङ्मुखश्चेन्नृपतिस्तथैव राज्याद्विनष्टा इव ते भवन्ति ॥ ३१
भवन्ति रोषान्नृपतेर्द्विजानां दिशो दश प्रज्वलिता इवात्र ।
द्विजातिरोषान्नृपतेः पुनः स्याद्भल्लातकस्नेह इवाप्यपृष्ठे ॥ ३२
ये निग्रहानुग्रहयोरशक्ता द्विजा वराकाः परपोष्यजीवाः ।
मायाविनो दीनतमा नृपेभ्यः कथं भवन्त्युत्तमजातयस्ते ॥ ३३

१ [श्वा कारितः]. २ क °नेक्षुर्नता, [°नेक्षुर्नडात्].

तेषां द्विजानां मुखनिर्गतानि वचांस्यमोघान्यघनाशकानि ।
इहापि कामान्स्वमनःप्रकृष्टान्[1] लभन्त इत्येव मृषावचस्तत् ॥ ३४
रसस्तु गौडो विषमिश्रितश्च द्विजोक्तिमात्रात्प्रकृतिं स गच्छेत् ।
सर्वत्र तद्वाक्यमुपैति वृद्धिमतोऽन्यथा श्राद्धजनप्रवादः ॥ ३५
इह प्रकुर्वन्ति नरेश्वराणां दिने दिने स्वस्त्ययनक्रियाश्च ।
शान्तिं प्रघोष्यन्ति धनाशयैव क्षान्तिक्षयं तेऽप्यनवाप्तकामाः॥३६
कर्माणि यान्यत्र हि वैदिकानि रिपुप्रणाशाय सुखप्रदानि ।
आयुर्बलारोग्यवपुःकराणि दृष्टानि वैयर्थ्यमुपागतानि ॥ ३७
सुमन्त्रपूताम्बुहुताग्निसाक्ष्यः[2] पत्न्यो म्रियन्ते च परैर्म्रियन्ते ।
कन्याश्रितव्याधिविशीर्णदेहा वैधव्यमिच्छन्त्यथवा चिरेण ॥३८
विपत्तिमृच्छन्ति च गर्भ एव केचित्प्रसूतावपि बालभावे ।
दारिद्र्यमन्ये विकलेन्द्रियत्वं द्विजात्मजाश्चेदिह को विशेषः॥३९
यथा नटो रङ्गमुपेत्य चित्रं नृत्तानुरूपानुपयाति वेषान् ।
जीवस्तथा संसृतिरङ्गमध्ये[3] कर्मानुरूपानुपयाति भावान् ॥ ४०
न ब्रह्मजातिस्त्विह काचिदस्ति न क्षत्रियो नापि च वैश्यशूद्रे ।
ततस्तु कर्मानुवशा हितात्मा[4] संसारचक्रे परिबंभ्रमीति ॥ ४१
अपातकत्वाच्च शरीरदाहे देहं न हि ब्रह्म वदन्ति तज्ज्ञाः ।
ज्ञानं च न ब्रह्म यतो निकृष्टः शूद्रोऽपि वेदाध्ययनं करोति ॥ ४२
विद्याक्रियाचारुगुणैः प्रहीणो न जातिमात्रेण भवेत्स विप्रः ।
ज्ञानेन शीलेन गुणेन युक्तं तं ब्राह्मणं ब्रह्मविदो वदन्ति ॥ ४३
व्यासो वसिष्ठः कमठश्च कण्ठः शक्त्युद्गमौ द्रोणपराशरौ च ।
आचारवन्तस्तपसाभियुक्ता ब्रह्मत्वमायुः[5] प्रतिसंपदाभिः[6] ॥ ४४

---

१ म °मनःप्रकर्षान्. २ क °साक्ष्यः. ३ म संवृति. ४ [कर्मानुवशाद्धतात्मा]. ५ [ब्रह्मत्वमापुः]. ६ म °संप्रदाभिः.

यः शङ्करस्योज्झितनिर्मलानि पादेन मोहाद्यदि संप्रवृद्धिः[1] ।
स षष्टिवर्षाणि निकृष्टयोनौ कृमिर्भवेदित्यवनौ श्रुतिः स्यात् ॥४५
पुरा निविष्टा शिरसीश्वरस्य गङ्गापि नैर्मल्यमतो जगाम ।
यः स्नाति शौचं प्रकरोति तस्यां कां वा गतिं यास्यति सोऽनुनेयः ।
योऽश्नाति गङ्गोदकमादरेण पुनाति तस्यादशनाकुलं तत्[3] ।
इति प्रवादो जगति प्रतीतो व्यर्थो भवेत्सोऽपि परीक्ष्यमाणः ॥४७
भीष्मो हि गङ्गातनयो महात्मा महारथो युद्धमुखे च शूरः ।
शरार्दितः शान्तनजो[4] नृपर्षिः क्षेत्रे कुरूणां निपपात धीमान् ॥४८
आगर्भतो घातसुखस्य[5] [–ु][6] नोद्घाटितं धर्ममहाकवाटम् ।
गङ्गाकुरुक्षेत्रमथाजिशौर्यं निरर्थकं तत्त्रयमित्युशन्ति ॥ ४९
षाण्मासिकं तेन तपोऽतिघोरं शरासनेन क्रियते स्म यस्मात् ।
तस्मात्तपोमूलमिदं समस्तं जगच्च सेन्द्रासुरमानुषाख्यम् ॥ ५०
तीर्थानि लोके विविधानि यानि तपोधनैरध्युषितानि तानि ।
स्तुत्यानि गम्यानि मनोहराणि जातानि पुंसां खलु पावनानि॥५१
यथैव लोके गुडमिश्रितानि पिष्टानि माधुर्यमभिव्रजन्ति ।
तपःप्रकृष्टैरुषितानि यानि स्थानानि तीर्थान्यभवंस्तथैव ॥ ५२
यः कार्तिकेयः स तपश्चकार कुमारकाले भगवान्कुमारः ।
सिद्धिं च तस्मिन्नतुलामवाप तेनाभवत्स्वामिगृहं[7] पवित्रम् ॥ ५३
यस्याः कुमार्यास्तपसः प्रभावात्प्रकाशिता सा खलु दक्षिणाशा ।
ततः कुमारी वरधर्मनेत्री बहुप्रजानामभवत्स तीर्थम् ॥ ५४
भागीरथिश्चक्रधरस्य नप्ता वर्षाण्यनेकानि तपः प्रचक्रे ।
अधोगतानुद्धरणाय धीरो भागीरथी पुण्यतमा ततोऽभूत् ॥५५

१ [संप्रमर्षेत्]. २ क गन्धोदक°. ३ [तस्यादश नृन् कुले]. ४ क शान्तनवो, [शान्तनवो]. ५ क पूतसुखस्य, [ब्रात°]. ६ [तस्य]. ७ म °सामिगृहं.

कुरुर्महर्षिः कुरुवंशजातः कुमारभावे स तपस्त्वतप्तम् ।
प्रजाहिताय प्रथितप्रभावस्ततः कुरुक्षेत्रमभूत्प्रधानम् ॥ ५६
आतापयोगं परिगृह्य धीराः पाण्डोः सुताः क्लेशविनाशनाय ।
प्रचक्रिरे तत्र तपोऽतिघोरं मातापनीतेन पवित्रमासीत् ॥ ५७
श्रीपर्वते श्रीः किल संचकार तपो महद्वर्षसहस्रमुग्रम् ।
श्रीपुष्करेऽतप्त हि पुष्कराख्यः कैलासशैले वृषभो महात्मा ॥ ५८
तमुज्जयन्तं धरणीधरेन्द्रं जनार्दनक्रीडवनप्रदेशम् ।
यो दिव्यमूर्तिर्यदुवंशकेतुः सोऽरिष्टनेमिर्भगवान्बभूव ॥ ५९
गवामसृक्क्षीरघृतैश्च देवास्तृप्ताः परांस्तेऽपि च तर्पयन्ति ।
देवाश्रयान्मेध्यतमास्तु गावः पूताश्च पुण्या इति घोषणैषा ॥ ६०
गोदानतस्ते च सुरर्षिसंघा दत्ता द्विजेभ्यः सकला भवन्ति ।
पितृभ्य एवं बहुसारमौल्यं दत्तं भवत्यत्र हि गोप्रदानात् ॥ ६१
आरोहवाहस्य धनप्रतोदं प्रदोहवाहो दमनक्रियाभिः ।
प्रपीडिताः क्लेशगणान्भजन्ते देवर्षिसंघातसुखानि तेषाम् ॥ ६२
कुदृष्टिदृष्टान्तवचोऽभिधानाद्देवाश्च दासा इव वर्णितास्ते ।
तेषां विरोधाचरितादवश्यं जगत्प्रणाशं स्वयमभ्युपैति ॥ ६३
द्विजैश्च काकैर्यदि भुक्तमन्नं मृतान्पितॄंस्तर्पयते परत्र ।
पुरार्जितं तत्पितृभिर्विनष्टं शुभाशुभं तेन हि कारणेन ॥ ६४
स्वस्रात्सुताद्यः स्वयमेव पुत्रो जातिश्च जातिस्मर एव कश्चित् ।
विनाशभुङ्क्ते पितृपिण्डमन्नं ततो ह्यशक्यं पितृकार्यमेतत् ॥ ६५
पितुश्च पुत्रस्य च तामसः स्यात्पुत्रो विषान्नं प्रददौ द्विजेभ्यः ।
तद्वर्जितं तैरनृतार्थवद्भिरतश्च मिथ्या पितृकार्यमत्र ॥ ६६

१ [तपस्त्वतप्त]. २ [स्वस्मात्] ३ [जातश्च]. ४ [विनाशि].

यादृशि दानानि पुरा द्विजेभ्यो दत्तानि नानारसवर्णवन्ति ।
फलन्ति तादृशि नृणामयत्नाज्जन्मन्यमुत्रेति जनप्रवादः ॥ ६७
श्वभिः शृगालैरपि गृध्रकाकैः सगर्दभैः सूकरचासकूर्मैः ।
यान्यत्र लब्धान्यशुचीनि तैश्च दत्तानि तान्येव तु किं द्विजेभ्यः ।
नापुत्रका लोकमिमं जयन्ति नापुत्रकाः स्वर्गगतिं लभन्ते ।
इतीह पक्षो यदि यस्य पुंसः कुमारभूरि प्रति नो निविष्टाः ॥६९
यद्यच्च लोके बहुभिर्न दृष्टं तत्तत्प्रमाणं यदि यस्य न स्यात् ।
वेदश्रुतीहासपुराणधर्मास्ते ब्राह्मणैकेन न तु प्रदिष्टाः ॥ ७०
असत्प्रसूतिस्त्वसतो यदि स्याच्छशस्य शृङ्गान्मृगतृष्णिका स्यात् ।
सतः प्रसूतिस्त्वसतो यदि स्याद्वटस्य बीजं शशशृङ्गतः स्यात् ॥७१
असत्प्रसूतिश्च सतो यदि स्याद्गोशृङ्गतः किं न भवेच्च पुष्पम् ।
सतः प्रसूतिस्तु सतो यदि स्यादग्नेर्जलं वानलकोऽम्बुतो वा ॥७२
द्रव्ये सति क्षेत्रयुते च काले भावे च भावान्तरसंनिबद्धाः ।
भवन्ति भावा भुवनत्रयस्य सहेतुकाः केचन निर्निमित्ताः ॥ ७३
नाप्तो हि रुद्रस्त्रिपुरप्रणाशादुमापतित्वाद्रतिसंभवाच्च ।
अनङ्गभङ्गादसुरोपघाताज्जटाक्षिसूत्रवृषवाहनाच्च ॥ ७४
अग्निर्मुखं वेदसुरेश्वराणां योऽपीश्वरस्यापि मुखं ध्रुवं सः ।
आत्मानमात्मैव च वर्षयेद्यः सोऽन्यान्कथं मुञ्चति वञ्चितात्मा ७५
ब्रह्मापि नाप्तो हरिसारथिः स्यान्निशुम्भशुम्भासुरमर्दनाच्च ।
तिलोत्तमाङ्गप्रतिदर्शनेन चक्रे यतो वक्त्रचतुष्टयत्वम् ॥ ७६
नाप्तो हि विष्णुर्बलिबन्धनेन तुरङ्गमास्यप्रविदारणाच्च ।
अनोविनाशाद्गजदन्तकर्षाच्चाणूरकंसाहिसुराभिघातात् ॥ ७७

१ क शूकरभास°, [सूकरचाष°]. २ क वानलतोऽम्बुतो वा. ३ क हरिः
४ क निःशुम्भ°.

यो गर्दभाय प्रतिनर्दनाय नमश्चकारार्थितया स विष्णुः ।
अरातिभीतः सुचुक्रुन्दनान्तः पर्यङ्कदेशातिथितां प्रयातः ॥७८
वज्रायुधो गौतमभार्ययासौ विभिन्नवृत्तः किल तेन शप्तः ।
उमासुतः सोऽपि कुमारनामा भग्नव्रतोऽभूद्वनगोचरिण्या ॥ ७९
त्रिशूलवज्रायुधचक्रहस्ता धनुर्गदाशक्त्यसिपाणयश्च ।
सतोमरा देववरा यदि स्युश्चोराः सुखल्वत्र हि कीदृशाः स्युः ॥८०
स्त्रीभूषणै रागिण एव देवाः क्रोधोऽस्ति तेषां स हि सापशुध्यै ।
परिग्रहैरायुधसंग्रहैश्च भयं सुराणामपि लोकसिद्धम् ॥ ८१
नैरात्म्यशून्यक्षणिकप्रवादाद्बुद्धस्य रत्नत्रयमेव नास्ति ।
रत्नत्रयाभावतया च भूयः सर्वं तु न स्यात्कुत आप्तभावः॥८२
मृषैव यत्नात्करुणाभिमानो न तस्य दृष्टा खलु सत्त्वसंज्ञा ।
तया विना का करुणोपपत्तिः कृपाकथा बालकवञ्चनैषा ॥ ८३
प्राणान्तकृद्ब्रह्मवचो दुरन्तं रुद्रस्तु सर्वत्र हि रौद्र एव ।
विष्णुः शठात्मा रतिरोषयुक्तो बुद्धस्तु रौद्रो निरनुग्रहश्च ॥ ८४
ब्रह्मादयो यद्यनवाप्तकार्या आयुष्यमाप्तुं न हि शक्नुयुश्चेत् ।
के नो भवन्त्यात्मगुणोपपन्नास्तेभ्योऽधिकांस्तान्वद पार्थिवाप्तान्
ये दर्शनज्ञानविशुद्धलेश्या जितेन्द्रियाः शान्तमदा दमेशाः ।
तपोभिरुद्भासितचारुदेहा आप्ता गुणैराप्ततमा भवन्ति ॥ ८६
निद्राश्रमक्लेशविषादचिन्ताक्षुत्तृड्जराव्याधिभयैर्विहीनाः ।
अविस्मयाः स्वेदमलैरपेता आप्ता भवन्त्यप्रतिमस्वभावाः ॥ ८७
द्वेषश्च रागश्च विमूढता च दोषाशयास्ते जगति प्ररूढाः ।
न सन्ति तेषां गतकल्मषाणां तानर्हतस्त्वाप्ततमा वदन्ति ॥ ८८

१ [मुचुकुन्द°]. २ [चोरास्तु खल्वत्र]. ३ [शापशुद्ध्यै]. ४ [यस्मात्]. ५ क निरनुग्रहैश्च. ६ म गुणैरात्मतमा.

अर्हन्त एवाभयदानदक्षा अर्हन्त एवाप्रतिवीर्यसत्त्वाः ।
अर्हन्त एवामलसत्त्वरूपा अर्हन्त एवातिशयर्द्धियुक्ताः ॥ ८९
अर्हन्त एवाकृपया विहीना अर्हन्त एवारिभयैरपेताः ।
अर्हन्त एवाचलचारुसौख्या अर्हन्त एवातुलमोक्षभासः[1] ॥ ९०
अर्हन्त एव त्रिजगत्प्रपूज्या अर्हन्त एव त्रिजगच्छरण्याः ।
अर्हन्त एव त्रिजगद्वरेण्या अर्हन्त एवाखिलदोषमुक्ताः ॥ ९१
तानर्हतस्त्वाप्ततमान्विदित्वा तद्वाक्यनीतार्थमतं प्रपन्नाः ।
संसारनिष्ठामुपगम्य धीरा निर्वाणसौख्यं परमाप्नुवन्ति ॥ ९२
तैस्तैः पुनर्लौकिकवैदिकाद्यैरनेकशास्त्रार्थमतिप्रवीणैः ।
विवक्तुभिर्वीक्षितपक्षरागैः स्वपक्षसिद्धिं निजगाद राजा ॥ ९३
कुहेतुदृष्टान्तविनष्टमार्गान्कुज्ञाननीत्यावृतलोचनांस्तान् ।
निरुत्तरैर्वाक्यपदैर्नरेन्द्रो विबोधयामास तदा सदस्याम्[2] ॥ ९४
प्रधानमन्त्रीश्वरशिष्टवर्गाः पुरोहितामात्यसभाविदश्च ।
प्रबुद्धपद्मप्रतिमाननास्ते भृशं प्रहृष्टा गतपक्षरागाः ॥ ९५
नरेन्द्रसद्वाक्यविबुद्धतत्त्वाः प्रसन्नबुद्धीन्द्रियरागमोहाः ।
विपन्नमिथ्यात्वकषायदोषाः शान्ता बभूवुर्बहवोऽपि तत्र ॥ ९६

इति विमतिमतिप्रबोधनार्थं
स्वमभिमतं च धृतिप्रबृंहणाय[3] ।
सुहृदयपरिनिर्मलत्वमिच्छ-
न्सदसि जजल्प मनोहरैर्वचोभिः ॥ ९७
पुनरपि जिनशासनातिभक्तः
परसमयानपविध्य भूमिपालः ।

---

१ [°भाजः]. २ [सदस्यान्]. ३ म द्रुति°.

स्वसमयममितार्थमुत्तमश्री-
र्विगदितुमप्रतिमं मनः प्रचक्रे ॥ ९८

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
मिथ्याश्रुतिविघातको नाम
पञ्चविंशतितमः सर्गः ।

[षड्विंशः सर्गः]

अर्हन्मतमिदं पुण्यं स्याद्वादेन विभूषितम् ।
अन्यतीर्थैरनालीढं वक्ष्ये द्रव्यानुयोजनम् ॥ १
अनन्तपर्ययं द्रव्यं सामान्यादिकमिष्यते ।
तच्च द्वेधा विनिर्दिष्टं जीवाजीवस्वभावतः ॥ २
तदेव त्रिविधं प्रोक्तं गुणैर्द्रव्यैश्च पर्ययैः ।
चतुर्धा भिद्यते तच्च रूपारूपक्रियागुणैः ॥ ३
पञ्चास्तिकायभेदेन पञ्चधा भिद्यते पुनः ।
तदेव भिद्यते षोढा षड्द्रव्यप्रविभागतः ॥ ४
जीवपुद्गलकालाश्च धर्माधर्मौ नभोऽपि च[1] ।
षड्द्रव्याण्युदितान्येवं तेषां लक्षणमुच्यते ॥ ५
उपयोगलक्षणा जीवा उपयोगो द्विधा स्मृतः ।
ज्ञानेन दर्शनेनापि यदर्थग्रहणं हि सः ॥ ६
जीविष्यन्ति च जीवन्ति जीवा यच्चाप्यजीविषुः[2] ।
ते च जीवास्त्रिधा भिन्ना भव्याभव्याश्च निष्ठिताः ॥ ७

---

१ म धर्माधर्मनभासि च. २ [ये चाप्यजीविषुः].

अश्रद्दधाना ये धर्मं जिनप्रोक्तं कदाचन ।
अलब्धतत्त्वविज्ञाना मिथ्याज्ञानपरायणाः ॥ ८
अनाद्यनिधनाः सर्वे मग्नाः संसारसागरे ।
अभव्यास्ते विनिर्दिष्टा अन्धपाषाणसंनिभाः ॥ ९
अर्हद्भिः प्रोक्ततत्त्वेषु प्रत्ययं संप्रकुर्वते ।
श्रद्धावन्तश्च तेष्वेव रोचन्ते ते च नित्यशः ॥ १०
अनादिनिधने काले निर्यास्यन्ति त्रिभिर्युताः ।
भव्यास्ते च समाख्याता हेमधातूपमाः स्मृताः ॥ ११
सर्वकर्मविनिर्मुक्ताः सर्वभावार्थदर्शिनः ।
सर्वज्ञाः सर्वलोकार्च्याः सर्वलोकाग्रधिष्ठिताः ॥ १२
निर्बन्धा निःप्रतीकाराः समसौख्यपरायणाः ।
ये च सर्वोपमां[1] नीतास्ते सिद्धाः संप्रकीर्तिताः ॥ १३
षट्प्रकारविभक्तं तत्पुद्गलद्रव्यमिष्यते ।
तस्य नाम विभक्तं तत्प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् ॥ १४
स्थूलस्थूलं तथा स्थूलं स्थूलसूक्ष्मं यथाक्रमम् ।
सूक्ष्मस्थूलं च सूक्ष्मं च सूक्ष्मसूक्ष्मेण षड्विदुः ॥ १५
भूम्यद्रिवनजीमूतविमानभवनादयः ।
कृत्रिमाकृत्रिमद्रव्यं स्थूलस्थूलमुदाहृतम् ॥ १६
तनुत्वद्रव्यभावाच्च छेद्यमानानुबन्धि यत् ।
तैलोदकरसक्षीरघृतादि स्थूलमुच्यते ॥ १७
चक्षुर्विषयमागम्य ग्रहीतुं यन्न शक्यते ।
च्छायातपतमोज्योत्स्नं स्थूलसूक्ष्मं च तद्भवेत् ॥ १८

१ [सर्वोपमातीताः].

शब्दस्पर्शरसो गन्धः शीतोष्णे वायुरेव च ।
अचक्षुर्ग्राह्यभावेन सूक्ष्मस्थूलं तु तादृशम् ॥ १९
पञ्चानां वैक्रियादीनां शरीराणां यथाक्रमम् ।
मनसश्चापि वाचश्च वर्गणा याः प्रकीर्तिताः ॥ २०
तासामन्तरवर्तिन्यो वर्गणा या व्यवस्थिताः ।
ताः सूक्ष्मा इति विज्ञेया अनन्तानन्तसंहताः ॥ २१
असंयुक्तास्त्वसंबद्धा एकैकाः परमाणवः ।
तेषां नाम समुद्दिष्टं सूक्ष्मसूक्ष्मं तु तद्बुधैः ॥ २२
धर्माधर्मौ यथासंख्यं गतिस्थित्योस्तु कारणम् ।
तत्परिणामिनामेतौ[1] तयोः शेषैः[2] समो मतः ॥ २३
यथोदकं तु मत्स्यानां गतिकारणमिष्यते ।
स्थानक्रियासमेतानां महीवाधर्म उच्यते ॥ २४
धर्मद्रव्यं त्रिधा भिन्नमस्तिदेशाप्रदेशतः ।
अधर्मश्च त्रिधा प्रोक्तश्चास्तिदेशप्रदेशतः ॥ २५
अस्तिकस्तु[3] स्वपर्यायैर्लोकमापूर्य धिष्ठितः ।
देशः संक्षेपभागस्तु प्रदेशोऽसंख्यभागताम् ॥ २६
वर्तनालक्षणः कालस्त्रिधा सोऽपि प्रभिद्यते ।
अतीतोऽनागतश्चैव वर्तमान इति स्मृतः ॥ २७
वर्तमानमुपस्पृश्य व्यतीतोऽतीत उच्यते ।
वर्तमानस्तु संप्रत्युपस्थास्यत्यनागतः ॥ २८
उभयोरन्तरालः स्याद्वर्तमानस्तु संप्रति ।
एष कालविभागस्तु कालविद्भिरुदाहृतः ॥ २९

१ [परिणामिनावेतौ]. २ [तयोरेषः]. ३ म आस्तिकस्तु.

समयावलिनाड्यश्च मुहूर्तदिनरात्रयः ।
पक्षमासर्तुवर्षाश्च युगाद्याः कालपर्ययाः ॥ ३०
आकाशं व्यापि सर्वस्मिन्नवगाहनलक्षणम् ।
तच्च प्रोक्तं द्विधा भूयो लोकालोकसमन्वितम् ॥ ३१
द्रव्यैस्तु पञ्चभिर्व्याप्यं[1] लोकाकाशं प्रतिष्ठितम् ।
अलोके खलु पञ्चानां द्रव्याणां नास्ति संभवः ॥ ३२
परिणामाज्जीवभावान्नित्यत्वात्कारणादपि ।
कर्तृत्वात्सत्क्रियत्वाच्च मूर्तिमत्त्वाद्विभुत्वतः ॥ ३३
एकक्षेत्रात्तथैकत्वात्सप्रदेशाद्यथाक्रमम् ।
सर्वं तद्विविधं[2] द्रव्यं विज्ञातव्यं विचक्षणैः ॥ ३४
जीवाश्च पुद्गलाश्चैव परिणामगुणान्विताः ।
परिणामं न गच्छन्ति शेषाणीति विदुर्बुधाः ॥ ३५
जीवद्रव्यं हि जीवः स्याच्छेषं निर्जीव उच्यते[3] ।
मूर्तिमत्पुद्गलद्रव्यममूर्तं शेषमिष्यते ॥ ३६
धर्माधर्मवियज्जीवास्ते नैकक्षेत्रवर्तिनः ।
एकक्षेत्रस्तु कालः स्यादेको नैकश्च पुद्गलः ॥ ३७
परमाणुश्च कालश्च निःप्रदेशावुदाहृतौ ।
शेषाणि सप्रदेशानि वर्णितान्यृषिसत्तमैः ॥ ३८
धर्माधर्मैकजीवाश्च असंख्येयाः प्रदेशतः ।
प्रदेशा वियतोऽनन्ता इति सर्वविदां मतम् ॥ ३९
जीवाश्च पुद्गलाश्चैव कालश्च बहवः स्मृताः ।
धर्माधर्मावथाकाशमेकैकं वर्णितं जिनैः ॥ ४०

१ [पञ्चभिर्व्याप्तं]. २ म तद्द्विविधं. ३ क निर्जीवमुच्यते.

पुद्गला जीवकायाश्च नित्यानित्या इति स्मृताः ।
कालद्रव्यमनित्यं तन्नित्यान्येवेतराणि च ॥ ४१
सत्क्रियाः पुद्गला जीवा निःक्रियाणीतराणि च ।
आकाशं च विभुद्रव्यं शेषमव्यापि तद्विदुः ॥ ४२
कार्यकारणसंयुक्तं पुद्गलद्रव्यमुच्यते ।
शेषाण्यकारणान्येव न कार्याणि कदाचन ॥ ४३
कर्तृ कर्तृत्वसंयुक्तं पुद्गलद्रव्यमुच्यते ।
द्रव्याण्यन्यान्यकर्तृणि सर्वाणीत्यार्हतं मतम् ॥ ४४
तेषामधिगमोपायः प्रमाणनयवर्त्मना ।
प्रत्यक्षं च परोक्षं च प्रमाणं तद्द्विधा स्मृतम् ॥ ४५
प्रत्यक्षं भिद्यते त्रेधा सावधिश्चित्तपर्ययः ।
रूपिद्रव्यनिबद्धौ तौ केवलं विश्वगोचरम् ॥ ४६
परोक्षं तर्हि[1] निर्दिष्टं द्वेधा तत्त्वार्थदर्शिभिः ।
सप्रभेदा मतिश्चैव द्विविकल्पमपि श्रुतम् ॥ ४७
संक्षेपतो नयौ द्वौ तु द्रव्यपर्यायसंश्रितौ[2] ।
तन्मात्रस्याभिवित्सायामर्थशब्दविशेषितौ ॥ ४८
तयोर्भेदा नया जैनैराख्याता नैगमादयः ।
नीयते यैरशेषेण लोकयात्रा विशेषतः ॥ ४९
नैगमः संग्रहश्चैव व्यवहारस्तथैव च ।
द्रव्यार्थिकनयस्यैते भेदाः प्रोक्ताः मनीषिभिः ॥ ५०
ऋजुसूत्रश्च शब्दश्च तथा समविरूढकः[3] ।
इत्थंभूतश्च चत्वारो विकल्पाः पर्ययार्थिनः ॥ ५१

१ [तद्धि]. २ [°सश्रितौ]. ३ [समभिरूढकः].

नाम च स्थापना चैव द्रव्यं द्रव्यार्थिकस्य च ।
निक्षेपादित्रयः प्रोक्ता भाव एवेतरस्य च ॥ ५२
न हि द्रव्यार्थिको नाम नयः कश्चिदवस्थितः ।
पर्यायार्थिको वापि किंतु भावाव्यवस्थितिः ॥ ५३
उत्पद्यन्ते विनश्यन्ति नियमात्पर्यायवाचिनः ।
न जायन्ते न नश्यन्ति भावा द्रव्यार्थिकस्य च ॥ ५४
ऋते द्रव्यान्न पर्याया द्रव्यं वा पर्ययैर्विना ।
स्थित्युत्पत्तिनिरोधोऽयं द्रव्यलक्षणमुच्यते ॥ ५५
प्रोक्ता स्थित्यादयस्तेऽपि तयोः प्रत्येकलक्षणम् ।
न भवन्ति यतस्तस्मान्न तत्त्वं तौ नयौ स्मृतौ ॥ ५६
न संभवति संसारे द्रव्यार्थिकनयस्य यत् ।
न पर्ययोऽर्थिकस्यापि[1] यद्ध्रौव्यच्छेदवादिनौ ॥ ५७
सुखदुःखोपभोगस्तु नित्यस्यापरिणामिनः ।
घटते नाप्यनित्यस्य सर्वथोच्छेददर्शनात् ॥ ५८
योगतः कर्म बध्नाति स्थितिस्तस्य कषायतः ।
एकान्तनित्यानित्यत्वान्न बन्धस्थितिकारणम् ॥ ५९
तस्मादुक्ता नयाः सर्वे स्वपक्षाभिनिवेशिनः ।
मिथ्यादृशस्त एवैते तत्त्वमन्योन्यमिश्रिताः ॥ ६०
मणयः पद्मरागाद्याः पृथक्पृथगथ स्थिताः ।
रत्नावलीति संज्ञां ते न विदन्ति महर्धिणः ॥ ६१
यथैव कुशलैरेते यथास्थाने नियोजिताः ।
रत्नावल्यो हि कथ्यन्ते प्रत्येकाख्यां त्यजन्ति च ॥ ६२
तथैव च नयाः सर्वे यथार्थं विनिवेशिताः ।
सम्यक्त्वाख्यां प्रपद्यन्ते प्राक्तनीं संत्यजन्ति च ॥ ६३

१ [पर्यायार्थिकस्यापि].

द्रव्यार्थिकनयस्यात्मा कर्मकृत्फलभृत्क्षमः ।
पर्यायार्थिकयस्यान्यः[1] कर्ता भोक्ता तथापरः ॥ ६४
[द्रव्यार्थिकस्य यः कर्ता स एव फलमश्नुते ।
पर्यायार्थिकयस्यान्यः[1] कर्ता भोक्ता तथापरः] ॥ ६५[2]
तस्मात्सर्वप्रपञ्चोऽयं लोकयात्रासमन्वितः ।
नययोरनयोर्भेदान्न संभवति युक्तिभिः ॥ ६६
गुणप्रधानभावेन यदा त्वेतौ परस्परम् ।
अपेक्षेते तदा तत्त्वं भजतो[3] भजनाश्रितौ ॥ ६७
अयमेव महापन्थाः पुंसां निःश्रेयसार्थिनाम् ।
अविरोधात्ततोऽन्यस्तु मिथ्यात्वप्रतिपादकः ॥ ६८
यावन्तो वचसां मार्गा नयास्तावन्त एव हि ।
तावन्ति परतीर्थानि यावन्तो नयगोचराः ॥ ६९
अस्त्यात्मा स हि कर्ता च ध्रुवो भोक्ता च मुक्तिमान् ।
अस्त्येव मुक्त्युपायश्च षोढा मिथ्यात्वमुच्यते ॥ ७०
नास्त्यकर्ता न भोक्ता च भङ्गुरो न च मुक्तिमान् ।
नास्त्येव मुक्त्युपायश्च षोढा मिथ्यात्वमुच्यते ॥ ७१
प्रकृतेः पुरुषात्कालात्स्वभावान्नियतेरपि ।
दैवादीश्वरतश्चापि यदृच्छातो विधानतः ॥ ७२
सर्वप्रपञ्चसंसिद्धिरेतेभ्यः संप्रचक्ष्यते ।
केचिदेकान्ततस्तेषां मिथ्यात्वं न निवर्तते ॥ ७३
तस्मादेवार्हतं युक्तमनेकान्तावलम्बनात् ।
अविरोधस्तु सर्वत्र सङ्गतार्थप्रदर्शनात् ॥ ७४

१ क °यस्यायम्, [पर्यायार्थिनयस्यान्यः]. २ क-पुस्तके एव. ३ क भजते.

अविरोधः कुतः स्याच्चेदेकपक्षपरिग्रहात् ।
स पुनः केन चेत्युक्तं नयद्वयपरिग्रहात् ॥ ७५
[स्याद्वादः खलु पूर्वस्मिन्परस्मिन्नुभयोरपि ।
उभयोः पादयोर्न स्यादिति केचित्प्रचक्षते] ॥ ७६[1]
स्याद्वादस्तु विशेषेण सर्वत्र यदि कल्प्यते ।
अथवा न प्रकल्प्येत दोषस्तस्य प्रसज्यते ॥ ७७
कस्तत्र दोष इति चेदेकान्तत्वं प्रसज्यते ।
एकान्तवादतः किं न लोकयात्रा विनश्यति ॥ ७८
लोकयात्राप्रसिद्ध्यर्थं युक्तिवादः प्रकल्प्यते ।
दृष्टान्तास्तस्य चत्वारस्तैर्व्यक्तिमभिगच्छति ॥ ७९
जीवः स स्यान्मनुष्यस्तु नाजीवो मृद्घटस्तथा ।
सद्द्रव्यमिति[2] सर्वत्र स्याद्वादस्य विकल्पना ॥ ८०
स्याद्वादः खलु पूर्वस्मिन्परस्मिन्नुभयोरपि ।
उभयोः पादयोर्न स्यादिति केचित्प्रचक्षते ॥ ८१
अनेकान्तोऽपि चैकान्तः स्यादित्येवं वदेत्परः ।
अनेकान्तोऽप्यनेकान्त इति जैनी श्रुतिः स्मृता ॥ ८२
तस्यानेकान्तवादस्य लिङ्गं स्याच्छब्द उच्यते ।
तदुक्तार्थे विनाभावे लोकयात्रा न सिध्यति ॥ ८३
नयानामपि सामग्री प्रकृत्यादीनां च संहतिः ।
सम्यक्त्वमिति विज्ञेयं नान्यच्छ्रेयोऽस्त्यतः परम् ॥ ८४
प्रमाणनयनिक्षेपप्रक्रमोपहितं पुनः ।
एकान्तैकात्मकं वस्तु भावाभावोपबृंहितम् ॥ ८५

१ म-पुस्तक एव. २ म स द्रव्यमिति.

द्रव्यार्थिकव्यवस्थायामेकं स्यात्पर्ययार्थिनः ।
अनेकमिति निर्दिष्टं तदेव जिनशासने ॥ ८६
पितृपुत्रादिसंबन्धे[1] एकस्मिन्पुरुषे यथा ।
न ह्येकस्य पितृत्वेन सर्वेषामपिता भवेत् ॥ ८७
चतुर्विधस्वभावोऽयं पर्यायो वस्तुनः स च ।
प्रमेयत्वं हि हेतुः स्याद्घटो दृष्टान्त उच्यते ॥ ८८
तस्मात्तत्त्वपरीक्षायामिदमेव समञ्जसम् ।
स्वायंभुवं प्रवचनं विद्वद्भिः समुपासितम् ॥ ८९
मिथ्यावादसमूहस्य भद्रं जैनस्य धर्मतः[2] ।
अमृतः स्वादुतः[3] पुंसां सुगमश्च सुमेधसाम् ॥ ९०
श्रद्धां कुर्वन्ति ये तस्मिन्नेधन्ते[4] भावतश्च ये ।
ते सम्यग्दृष्टयः प्रोक्ताः प्रत्ययं ये च कुर्वते ॥ ९१
तन्मूले ज्ञानचारित्रे मुक्तेरेतानि साधनम् ।
रत्नत्रयमिदं प्रोक्तं सोपानं स्वर्गमोक्षयोः ॥ ९२
एतन्मृत्युजराजातिसंततातङ्कभेषजम् ।
निर्वाणस्वास्थ्यसंधानं पवित्रं परमं शिवम् ॥ ९३
त्रयाणां समवायेन मुक्तिमार्गः प्रशस्यते ।
त्रिविष्टपैकदृष्टान्तात्प्रत्येकं न प्रसिध्यति ॥ ९४
तथापि तेषु सम्यक्त्वं श्रेष्ठमित्यभिधीयते ।
महीसलिलजीवानां सति योगे तु जीववत् ॥ ९५
दर्शनाद्भ्रष्ट एवानुभ्रष्ट इत्यभिधीयते ।
न हि चारित्रविभ्रष्टो भ्रष्ट इत्युच्यते बुधैः ॥ ९६

---

१ क °संबन्धं. २ [धर्मकः]. ३ [स्यादतः]. ४ म तस्मिन्नेदं ते.

महता तपसा युक्तो मिथ्यादृष्टिरसंयतः ।
तस्य सर्वज्ञसंदृष्ट्या संसारोऽनन्त उच्यते ॥ ९७
सम्यग्दृष्टेस्तु संसारो यद्युत्कृष्टो भवेत्पुनः ।
सागराणां तु षट्षष्टिः नातः परतरो भवेत् ॥ ९८
क्रियाहीनं च यज्ज्ञानं न तु सिद्धिं प्रयच्छति ।
परिपश्यन्यथा पङ्गुमुग्धो [1]दग्धो दवाग्निना ॥ ९९
ज्ञानहीना क्रिया चापि नात्र कार्यं प्रसाधयेत् ।
नेत्रहीनो यथा धावन्पततिस्त्वनलार्चिषि[2] ॥ १००
तौ यथा संप्रयुक्तौ तु दवाग्निमधिगच्छतः ।
तथा ज्ञानचरित्राभ्यां संसारान्मुच्यते पुमान् ॥ १०१
पुमानर्थानथाप्रेप्सुः संपन्नः साधनैरपि ।
दैवहीनः क्रियावांस्तु[3] न कर्मफलमश्नुते ॥ १०२
संपन्नो दैवसंपत्त्या साधनैश्च समन्वितः ।
पुमान्पौरुषहीनस्तु सोऽपि नार्थं स गच्छति ॥ १०३
युक्तौ विचार्यमाणायां य एवोभयवान्भवेत् ।
स एवेप्सितभागग्नैर्दण्डोऽरण्ये[4] इवोद्भवेत् ॥ १०४
एवं जने[5] क्रियायुक्तस्त्रिगुप्तः संयतेन्द्रियः ।
निर्धूय सर्वसंकल्पान् ध्रुवमेत्यचलं पदम् ॥ १०५
द्रव्याणि षट् च गतिभेदसमन्वितानि
युक्त्या प्रमाणनयमार्गविकल्पितानि ।
तान्येव तत्त्वपदवीसमुपाश्रितानि
स्वैर्लक्षणैरभिहितानि नरेश्वरेण ॥ १०६

१ [पङ्गुर्मुग्धो]. २ [पतितस्त्वनलार्चिषि]. ३ क °दैवहीनक्रिया°.
४ [°भागग्नैर्दण्डो°]. ५ [जनो].

कालस्य हानिमथ वृद्धिमपि प्रसंख्यं
संज्ञां च तस्य खलु भारतवर्षभूमौ ।
तस्यां तु कारणमहापुरुषांश्च तेषां
नामादि विस्तरविहीनमतोऽभिधास्ये ॥ १०७

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
द्रव्यादिकालो नाम
षड्विंशतितमः सर्गः ।

[सप्तविंशः सर्गः]

ततो नरेन्द्रः प्रथमानुयोगं प्रारब्धवान्संसदि वक्तुमुच्चैः ।
सभा पुनस्तस्य वचोऽनुरूपं शुश्रूषयामावहिता बभूव ॥ १
कालायुषी क्षेत्रमतो जिनांश्च जिनान्तरं चक्रभृतस्तथैव ।
प्रख्यातवंशौ बलवासुदेवौ तयोश्च शत्रूंश्च निशामयध्वम् ॥ २
कालं पुनर्योगविभागमेति निगद्यतेऽसौ समयो विधिज्ञैः ।
संख्याव्यतीताः समयाश्च दृष्टा एका बुधैः सावलिकेति तेऽपि ॥३
शब्दः स एके गणनाव्यतीतास्ताः सप्तभिस्तोकमुदाहरन्ति ।
स्तोकैर्लवः सप्तभिरेव चैकस्तेनाधिकास्त्रिंशदथाष्टयुक्ताः ॥ ४
एको मुहूर्तः खलु नाडिके[1] द्वौ[2] त्रिंशन्मुहूर्ता दिनरात्रिरेका ।
त्रिपञ्चकैस्तैर्दिवसैश्च पक्षः पक्षद्वयं मासमुदाहरन्ति ॥ ५
ऋतुस्तु मासद्वय एक उक्त एषां त्रयं स्यादयनं तथैकम् ।
वर्षं तथा द्वे अयने वदन्ति संख्याविभागक्रमकौशलज्ञाः ॥ ६

---

१ म नाधिके. २ [द्वे].

दशाहतां वृद्धिमतः परं तु संख्यां प्रवक्ष्यामि यथाभिधानाम् ।
एकं दशैवाथ शतं सहस्रं दशाहतं तद्व्ययुतं वदन्ति ॥ ७
दशाहतं तं त्वयुतं हि लक्ष्या शताहतां तां च वदन्ति कोटीम् ।
लक्ष्या ह्यशीति त्वधिका चतुर्भिः पूर्वाङ्गमेकं मुनिभिः प्रदिष्टम् ॥८
कृतिस्तु तस्यैव हि पूर्वमेकं पूर्वाङ्गमाहुः कृतिताडितं तत् ।
तेनाहतं तच्च हि सर्वमेकं[1] सर्वाहतं चापि [-] नाङ्गमाहुः ॥ ९
ततः परं तस्य परस्परेण गुण्यं च विन्द्याद्गुणकारकं च ।
तेषां तु संज्ञाः क्रमतः प्रवक्ष्ये पृथक्पृथक्पूर्वमुनिप्रणीताः ॥ १०
ततो नतं तन्नलिनाङ्गमस्मात्ततश्च भूयो नलिनं निराहुः ।
ते द्वे महाशब्दयुते च पूर्वे पद्मं ततः स्यात्कमलं च तस्मात् ॥११
ततः परं तत्कुमुदं तुटीयं ततश्च भूयोऽथ टटं निराहुः ।
ततश्च विद्यां डमनं तथाहं[3] महं ततस्त्यात्प्रयुतं प्रतर्क्यम् ॥ १२
ततः शिरीषं त्वतिसंयुतं च प्रहेलिका चापि च चर्चिका च ।
संख्याव्यतीतं च ततः प्रमाणमौपम्यगम्यं मुनयो वदन्ति ॥ १३
संख्येयमादौ प्रवदन्ति तज्ज्ञास्ततस्त्वसंख्येयमनन्ततां च ।
एकैकमेषां त्रिविधप्रकारं नवप्रकारं द्वयमामनन्ति ॥ १४
व्यवहारपल्यं प्रथमं वदन्ति न तेन किंचिद्व्यवहार्यमस्ति ।
उद्धारपल्यं च ततो द्वितीयमद्धारपल्यं च पुनस्तृतीयम् ॥ १५
विष्कंभमानं खलु योजनं स्यात्परिक्षिपन्तं त्रिगुणाधिकं च ।
उत्सेधतो योजनमेव यस्य तत्पल्यमाहुर्गणितप्रधानाः ॥ १६
एकाहिकं सप्तदिनानि यावज्जातस्य रोम्णां खलु बर्करश्च[5] ।
अनेककल्पप्रतिखण्डितानां निरन्तरं तिन्दुसमं प्रपूर्णम् ॥ १७

---

१ क पर्वमेकं. २ क दमन. ३ क तदाहं. ४ [महत्ततः स्यात्]. ५ [बर्करस्य].

पूर्णे तथा वर्षशते च तस्मादेकैकमुद्धृत्य हि लोमखण्डम् ।
निष्ठां प्रयाते खलु रोमराशौ पल्योपमं तं प्रवदन्ति कालम् ॥१८
तेषां पुनः स्यादथ पल्यनाम्नां दशाहतां सा खलु कोटिकोटिः ।
प्रमाणमेतत्खलु सागरस्य निगद्यते वीतमलैर्जिनेन्द्रैः ॥ १९
ततश्च तस्माद्व्यवहारपल्याद्वालाग्रमेकं परिगृह्य सूक्ष्मम् ।
अनेककोट्यब्दविखण्डितं तत्तस्यातिपूर्णं निचितं समन्तात् ॥२०
पूर्णे समासान्तशते[1] ततस्तु एकैकशो रोम समुद्धरेच्च ।
क्षयं च जाते खलु रोमपुञ्ज उद्धारपल्यस्य हि कालमाहुः ॥२१
पल्योपमानां खलु कोटिकोटी दशाहता सागरमेकमाहुः ।
अनेन मानेन मिता मुनीन्द्रैर्द्वीपाः समुद्रा द्वितियार्धसंख्याः ॥२२
उद्धारपल्यात्प्रतिगृह्य चैकं तद्रोमखण्डं शतशः प्रकल्प्यम् ।
अनेककोट्यब्दमुहूर्तखण्डं पूर्णं च तेषां निचितं च पल्यम् ॥ २३
पाते तथैवाब्दशते क्रमेण रोमैकमेकं तत उद्धरेच्च ।
निष्ठां प्रयाते खलु रोमराशावद्धारपल्यं समुदाहरन्ति ॥ २४
तेषां दशघ्ना खलु कोटिकोटी तन्मानमाहुः किल सागरस्य ।
दिवौकसां नारकपुंस्तिरश्चामिति स्थितिः कर्मभवाभुवां[2] च ॥२५
ततस्तु तेषां खलु सागराणां दशाहतास्ता अपि कोटिकोटीः ।
उत्सर्पिणीं तां प्रवदन्ति तज्ज्ञा भूयस्ततस्तामवसर्पिणीं च[3] ॥२६
उत्सर्पिणी वाप्यवसर्पिणी च अनाद्यनन्ताविह यौतकाले[4] ।
तौ भारतैरावतयोः प्रदिष्टौ पक्षौ यथैवात्र हि शुक्लकृष्णौ ॥२७
सुशब्दपूर्वास्तु भवन्ति तिस्रो दुस्सुपसर्गा सहिते समे द्वे ।
तथातिदुर्भ्यां सहिता समैका एकस्य कालस्य हि षट् प्रभेदाः २८

१ म समाशान्त°. २ क कर्मभवाभवां. ३ क °सर्पिणीं तां. ४ [यौ च काले].

आद्यश्च संख्याः कथिताश्चतस्रस्ततो द्वितीयस्य पुनश्चतस्रः ।
ततो द्वितीयस्य पुनश्च तिस्र उदाहृते द्वे च तृतीयकस्य ॥ २९
स्यात्सागराणां खलु कोटिकोट्यश्चतुर्थकालस्य हि कोटिकोटी
सप्ताहता षट् च सहस्रहीना त्रिसप्तसप्ताष्टसमासहस्रम् ॥ ३०
स्यान्मानमेतत्किल पञ्चकस्य षष्ठस्य कालस्य तदेव मानम् ।
त्रैकाल्यविद्भिः कथितं यथावच्चतुर्थकालस्य हि मध्यकाले ॥ ३१
उत्पेदिरे कारणमानुषास्ते जिनाश्चतुर्विंशति तत्र जाताः ।
ते चक्रिणो द्वादश राजवर्या नव प्रदिष्टा खलु वासुदेवाः ॥ ३२
नवैव तेषां प्रतिशत्रवश्च प्रतिश्रुतिश्चैव हि संमतिश्च ।
क्षेमंकरस्तत्र तृतीय आसीत्क्षेमंधरश्चापि चतुर्थकः स्यात् ॥ ३३
सीमंकरः पञ्चमको बभूव सीमंधरः षष्ठ उदाहृतश्च ।
ततश्च राजामलवाहनः स्याच्चक्षुष्मता तेन तथाष्टमस्तु ॥ ३४
ततो यशस्वानभिचन्द्रसंज्ञश्चन्द्राभनामा मरुदेवसाह्वः ।
प्रसेनजिन्नाभिरनन्तरश्च ततः प्रसूतो वृषभो महात्मा ॥ ३५
तस्याग्रपुत्रो भरतो बभूव एते स्मृता वंशकरा विशिष्टाः ।
यशस्विनः षोडशभूमिपालास्त एव लोके मनवः प्रदिष्टाः ॥ ३६
नाभेय आद्योऽजितशंभवौ च ततोऽभिनन्दः सुमतिर्यतीशः ।
पद्माभनामा च तथा सुपार्श्वः चन्द्रप्रभश्चैव हि पुष्पदन्तः ॥ ३७
श्रीशीतलाख्यो मुनिराजकेतुः श्रेयो जिनेन्द्रो वरवासुपूज्यः ।
ततो जिताशो विमलो यतीशोऽप्यनन्तजिद्धर्मजिनौ च शान्तिः ३८
कुन्थुस्त्वरो मल्लिरतुल्यवीर्यः श्रीसुव्रतोऽथो नमिरिन्द्रवन्द्यः ।
अरिष्टनेमिस्त्वथ पार्श्वदेवः श्रीवर्धमानेन जिनाः प्रदिष्टाः ॥ ३९

१ [आद्यस्य]. २ [°विंशतिरत्र]. ३ क तथोष्टमस्तु, [ततोऽष्टमस्तु].

आद्यश्च चक्री भरतेश्वरोऽभूत्ततो द्वितीयः सगरो महात्मा ।
तृतीय आसीन्मघवान्नरेन्द्रः सनत्कुमारश्च चतुर्थकोऽभूत् ॥ ४०
शान्तिश्च कुन्थुस्त्वथ सप्तमोऽरः सुभौमनामा च महादिपद्मः ।
हरिश्च तस्माज्जयसेननामा श्रीब्रह्मदेवश्च ततोऽन्तिमोऽभूत् ॥ ४१
आद्यस्त्रिपिष्टश्च ततो द्विपिष्टस्तस्मात्स्वयंभूः पुरुषोत्तमश्च ।
नृसिंहनामापि च पुण्डरीको दत्तश्च नारायणकृष्णसाह्वः ॥ ४२
गुणैरुपेतो विजयोऽचलश्च धर्मस्ततोऽभूदथ सुप्रभश्च ।
ततः सुदृष्टोऽपि च नन्दिनामा स्यान्नन्दिमित्रश्च हि रामपद्मौ ॥ ४३
ग्रीवोऽश्वपूर्वस्त्वथ तारकश्च समेरको वै मधुकैटभश्च ।
ततो निशुम्भो बलिपार्थिवश्च प्रह्लादको रावणकृष्णशत्रू ॥ ४४
नाभेयतीर्थे भरतो बभूव तथाजितोऽभूत्सगरो नृपेन्द्रः ।
त्रिपिष्ट आसीत्खलु शैतले च द्विपिष्टकः श्रेयसि तीर्थजातः ॥४५
अभूत्स्वयंभूर्वरवासुपूज्ये स वैमले वै पुरुषोत्तमश्च ।
दातुश्च तीर्थे मघवान्नृपेन्द्रः सनत्कुमारो नरसिंहराजः ॥ ४६
शान्तिश्च कुन्थुस्त्वररादत्रयोऽपि आर्हन्त्यचक्रत्वगुणोपपन्नाः ।
श्रीपुण्डरीकश्च सुभौमराजोऽप्यरस्य तीर्थे तु बभूवतुस्ते ॥ ४७
श्रीमल्लितीर्थे च महादिपद्मे नारायणो दत्तहरी च जातः ।
नमेः सुतीर्थे जयधर्मकृष्णे स ब्रह्मदत्तश्च बभूव नेमेः (?) ॥ ४८
स सप्तहस्तो जिनवर्धमानः पार्श्वो जिनेन्द्रो नवहस्तदीर्घः ।
आद्यो जिनेशस्तु समुच्छ्रयेण सर्वर्ष्मणा पञ्चधनुः शतानि ॥४९
अथाष्टपञ्चाष्टकसंस्मितानामूनानि कुर्यात्क्रमशो जिनानाम् ।
दशाहताः पञ्चदशाथ पञ्च धनूंषि नाभेयसमुच्छ्रयात्तु ॥ ५०

१ [तथाजितेऽभूत्]. २ [धर्मस्य]. ३ [बभूवतुस्तौ]. ४ क महादिपद्मा, [पद्मो]. ५ म नारायणोऽधत्त हरी. ६ म सवर्ष्णा. ७ [संस्थितानां°].

शताहतं तच्च सहस्रमेकं द्विसप्तषड्व्याहतपूर्वनाम्नाम् ।
आयुस्स्मृतं नाभिसुतस्य सम्यग्द्विसप्ततिश्चाप्यजितस्य पूर्वाः ५१
स्यात्षष्टिरेका जिनशंभवस्य दशोदिता पञ्चसु तीर्थकृत्सु ।
क्रमेण च द्वे खलु पुष्पदन्तः श्रीशीतले त्वेकमुदाहरन्ति ॥ ५२
द्विसप्तषट्ताड्यसमासहस्रं शताहतं श्रेयसमायुरुक्तम् ।
द्विसप्ततिश्चापि हि वासुपूज्ये षष्टिस्तथायुर्विमले जिनेन्द्रे ॥ ५३
त्रिंशद्दशैकं च तथा त्रयाणां शून्यत्रयं पञ्चनवैककुन्थोः ।
षड्वर्जिता स्यान्नवतिस्त्वरस्य मल्लिस्त्रिशून्योत्तरपञ्च पञ्च ॥५४
त्रिंशत्सहस्रं मुनिसुव्रतस्य नमेः सहस्रं दशसंगुणं तत् ।
नेमेः सहस्रं शतमेवं पार्श्वे द्विसप्ततिः स्यात्खलु वर्धमाने ॥ ५५
समुद्रकोटीस्त्वाजितेन ताड्या शताहता पञ्चगुणा च भूयः ।
तदन्तरं स्याद्वृषभे जिनेशे चेति प्रदिष्टं हि पुराणविद्भिः ॥५६
त्रिंशद्दशातो नवतिः प्रदिष्टा अतः सहस्रं नवतिस्तथातः ।
शतं सहस्रं नवसंगुणे द्वे स्यात्सप्तमस्यान्तरमर्हतस्तु ॥ ५७
ततोऽन्तरं तन्नवतिस्तु कोट्यो नवैव कोट्यो नवमान्तरं तत् ।
समुद्रकोटीगणितप्रमाणात्स्यादर्हतामन्तरकं नवानाम् ॥ ५८
षट्षष्टिसंख्या नियुतप्रमाणं षड्विंशतिश्चापि सहस्रपिण्डः ।
शतेन युक्ता किल सागराणां कोटी तथोना दशमान्तरं स्यात् ५९
षट्घ्ना नवत्रिंशदथो नवाथ चत्वार एव त्रितये तथान्यत् ।
पादोनपल्योनसमुद्रसंख्या षण्णां जिनानामिदमन्तरं स्यात् ६०
शान्तेऽन्तरं प्रोक्तमथार्धपल्यं कोटीसहस्रोनकृतं समानम् ।
अद्यर्धपल्यं किल कौन्थवं तत्कोटीसहस्रैकमरान्तरं स्यात् ॥ ६१

१ म षट्तोद्य°. २ क शतमेव पार्श्वे. ३ म °मतान्तरं स्यात्.

लक्षाहताः षण्णवकास्तु वर्षाः षडेव वर्षास्तु नमेस्तु पंच ।
सहस्रताड्यास्तु पुनस्त्र्यशीतिरर्धाष्टमैश्चापि शतैः समेताम् ॥६२
पंचाशतां द्वे च शते समेते पार्श्वान्तरं तं कथितं यथावत् ।
त्रिसप्तसंख्यं च सहस्रमेकं वीरस्य तीर्थान्तरमुक्तमेतत् ॥ ६३
चतुर्थभागोऽथ पुनर्द्विभागः पादोनभागः परिपूर्णभागः
पादोनकश्चापि पुनर्विभागः पल्यस्य तस्यापि चतुर्थकश्च ॥ ६४
एतावता कालपरिच्छदेन तीर्थस्य विच्छेद उदाहृतश्च ।
सपुष्पदन्तादिषु सप्तसु स्यादाद्यन्तयोः संतत एव जातः ॥ ६५
नाभेयशान्ती ह्यथ कुन्थुधर्मावमीह सर्वार्थविमानमुख्यात् ।
नन्दाजितौ तौ विजयाद्विमानात्तौ वैजयन्तात्सुमतीन्दुभासौ ॥६६
नेमिस्त्वथारस्य हि तौ जयन्तान्मल्लिर्नमिश्चाप्यपराजिताख्यात् ।
तौ प्राणतात्पार्श्वमुनिव्रताख्यावभ्यागतावप्रतिमप्रतापौ ॥ ६७
श्रेयांस्तथानन्तजिदन्तिमश्च पुष्पोत्तरादायसुरप्रमेयाः ।
शुक्रान्महादेरथ वासुपूज्यः श्रीशीतलस्त्वारुणतश्च्युतत्वात् ॥६८
सहस्रपूर्वाद्विमलस्त्वरान्तादथारुणाख्यात्खलु पुष्पदन्तः ।
ग्रैवेयकाधः प्रथमाद्विमानादभ्यागतः संभवसंयतेन्द्रः ॥ ६९
सुपार्श्वनामा किल मध्यमाख्यादूर्ध्वं च पद्मप्रभ आययौ सः ।
इत्यर्हतां कारणभावितानामभ्यागतिर्वः कथिता मयेयम् ॥ ७०
आद्यस्तु नाभिर्जितशत्रुनामा तृतीय आसीज्जितराजसंज्ञः ।
स्वयंवरश्चैव हि मेघराजः स्यात्सुप्रतिष्ठश्च महाबलश्च ॥ ७१
सुग्रीवनामा सुदृढो रथान्तो विष्णुर्वसुः स्यात्कृतवर्मसंज्ञः ।
श्रीसिंहसेनस्त्वथ भानुराजः स विश्वसेनः किल शौर्यधर्मा ॥ ७२

१ म शनैः. २ म पञ्चाशतादूद्वे. ३ क °विमानसंख्यात्. ४ [नेमिस्त्वथारश्च]. ५ म °राजहसः.

सुदर्शनश्चैव हि कुम्भराजः सुमित्रनामा जयधर्मराजः ।
समुद्रपूर्वो विजयोऽश्वसेनः सिद्धार्थराजः पितरोऽर्हतां च ॥ ७३
आद्याभवत्सा मरुदेव्यतश्च तथा द्वितीया विजयादिसेना ।
सिद्धार्थसंज्ञा किल मङ्गला च सौम्या च देवी पृथिवी[1] तथैव ॥ ७४
सा लक्ष्मणासीन्नवमी च नाम्ना नन्दा च देवी खलु वैष्णवी च
जया तथा श्यामिनिका च देवी सर्वाश्रिया सुव्रतयोरवाचा ॥ ७५
पद्मालया मित्रसमाह्वया च सरक्षिला विश्रुतसोमदेवी ।
सा वप्रिणी चैव शिवाग्रदेवी सब्रह्मदत्ता प्रियकारिणी च ॥ ७६
बभूवुरेता जिनमातरश्च अनन्यनारीसदृशैर्गुणौघैः ।
नाम्नोपदिष्टाः प्रथिताः पृथिव्यां[2] ततः परं दानपतीन्प्रवक्ष्ये ॥ ७७
श्रेयांस्तु दानाधिपतिः स आद्यो ब्रह्मा सुरेन्द्रस्त्वथ चन्द्रदत्तः ।
स पद्मजिच्चैव हि सोमदेवो महेन्द्रसोमौ खलु पुष्पदेवः ॥ ७८
पुनर्वसुर्नन्दसुनन्दनौ[3] च जयाभिधानो विजयस्तथैव ।
स धर्मसिंहश्च सुमित्रनामा स्याद्धर्ममित्रस्त्वपराजितश्च ॥ ७९
नन्दी तथैवर्षभदत्तनामा ततः सुदत्तो वरदत्तसंज्ञः ।
धर्मो महात्मा बकुलाभिधानः प्रवर्तितस्तैरवदानधर्मः[4] ॥ ८०
आद्यो जिनेन्द्रस्त्वजितो जिनश्च अनन्तजिच्चाप्यभिनन्दनश्च ।
सुरेन्द्रवन्द्यः सुमतिर्महात्मा साकेतपुर्यां किल पञ्च जाताः ॥८१
कोशावकश्चैव हि पद्मभासः श्रावस्तिकः स्याज्जिनसंभवश्च ।
चन्द्रप्रभश्चन्द्रपुरे प्रसूतः श्रेयाञ्जिनेन्द्रः खलु सिंहपुर्याम् ॥ ८२
वाराणशौ[5] तौ च सुपार्श्वपार्श्वौ काकंदिकश्चापि हि पुष्पदन्तः ।
श्रीशीतलः खल्वथ भद्रपुर्यां चंपापुरे चैव हि वासुपूज्यः ॥ ८३

१ क पृथुवी. २ क पृथुव्या. ३ म °नन्दगौ. ४ [°तैरथ दानधर्मः]. ५ [कौशाम्बिक°]. ६ म वाणारसौ.

काम्पिल्यजातो विमलो मुनीन्द्रो धर्मस्तथा रत्नपुरे प्रसूतः ।
श्रीसुव्रतो राजगृहे बभूव नमिश्च मल्लिर्मिथिलाप्रसूतौ ॥ ८४
अरिष्टनेमिः किल शौर्यपुर्यां वीरस्तथा कुण्डपुरे बभूव ।
अरश्च कुन्थुश्च तथैव शान्तिस्त्रयोऽपि ते नागपुरे प्रसूताः ॥ ८५
इक्ष्वाकुवंश्याः खलु षोडशैव चत्वार एवात्र कुरुप्रवीराः ।
द्वौ चोपदिष्टौ हरिवंशजातावुग्रस्तथैकः किल नाथ एकः ॥ ८६
सुवर्णवर्णः खलु षोडशैव चन्द्रप्रभौ द्वौ च जिनौ जिताशौ ।
द्वौ द्वौ च संध्याञ्जनतुल्यवर्णौ द्वावेव दूर्वाङ्कुरकाण्डभासौ ॥ ८७
अरिष्टनेमिर्मुनिसुव्रतश्च द्वावप्यमू गौतमगोत्रजातौ ।
शेषा जिनेन्द्रा ऋषभादिवर्याः ख्याताः पुनः काश्यपगोत्रवंश्याः
मल्लिश्च पार्श्वौ वसुपूज्यपुत्रोऽप्यरिष्टनेमिश्च तथैव वीरः ।
कौमारकाले वयसि प्रयाता भुक्त्वा भुवं ते प्रययुश्च शेषाः ॥८९
अरिष्टनेमिर्वृषभो जिनेन्द्रः स वासुपूज्यश्च जिनो महात्मा ।
पल्यङ्कतः सिद्धिमुपागतास्ते स्थित्यैव शेषाः परिनिर्वृताः स्युः ९०
कैलासशैले वृषभो महात्मा चम्पापुरे चैव हि वासुपूज्यः ।
दशार्हनाथः पुनरूर्जयन्ते पावापुरे श्रीजिनवर्धमानः ॥ ९१
शेषा जिनेन्द्रास्तपसः प्रभावाद्विधूय कर्माणि पुरातनानि ।
धीराः परां निर्वृतिमभ्युपेताः संमेदशैलोपवनान्तरेषु ॥ ९२

इति कुलकरदेवदातृमुख्या
हलधरकेशवचक्रपाणयश्च ।
इह च नरवराः श्रुता मया ये
परिकथिता भवतां समासतस्ते ॥ ९३

युगवरपुरुषप्रपञ्चनं य-
त्तदनुनिशम्य महीपतेर्यथावत् ।
प्रथितपृथुधियः सुमन्त्रिणस्ते
प्रतिविविदुः परमार्थमादधुश्च ॥ ९४

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
प्रथमानुयोगो नाम
सप्तविंशतितमः सर्गः ।

[अष्टाविंशः सर्गः]

अथान्यदानर्तपुराधिपस्य संप्राप्तकल्याणफलोदयस्य ।
नित्यप्रवृत्तोत्सवसत्क्रियस्य सबन्धुमित्रार्थिजनप्रदस्य ॥ १
धर्मार्थकामोन्नतिनायकस्य गुणाकरस्याप्रतिपौरुषस्य ।
नृपस्य तस्याग्रमहामहिष्या बभूव गर्भोऽनुपमाह्वदेव्याः ॥ २
जाते च गर्भे जगतस्तदानीमभूतभूतप्रमदोऽतिमात्रम् ।
विनाशमीयुः पुनरीतयश्च प्रशान्तवैरा रिपवो बभूवुः ॥ ३
ततः प्रपूर्णे नवमे च मासे प्राचीव दिग्भानुमुदग्रभासम् ।
देवी पृथुश्रीकनकावदातं कुलध्वजं सा सुषुवे कुमारम् ॥ ४
सामुद्रहोराफलजातकैश्च दृष्ट्वा कुमारं पृथुराज्यभारम् ।
प्रशस्य पुण्यार्पितभारतीभिः सुगात्र इत्येव हि नाम चक्रुः ॥ ५
निदाघमासे व्यजनं यथैव करात्करं सर्वजनस्य याति ।
तथैव गच्छन्प्रियतां कुमारो वृद्धिं च बालेन्दुरिव प्रयातः ॥ ६

---

१ [°मभूदभूत°]. २ [पृथुश्रीः]. ३ [°जातकानि]. ४ क निदाघ°.

रूपेण वर्णेन गतिस्थितिभ्यां वाक्येन दृष्टा[1] वपुषा श्रियो[2] च ।
विज्ञानशीलस्थिरमित्रभावैः पित्रा समो राजसुतो बभूव ॥ ७
प्रमत्तमातङ्गविलासगामी शरत्प्रपूर्णामलचन्द्रकान्तः ।
विचित्रसल्लक्षणमण्डिताङ्गो रेजेऽतिमात्रं नयनाभिरामः ॥ ८
स नीतिचक्षुर्मतिमान्विधिज्ञः कलाविदग्धो व्यसनादपेतः ।
शुचिश्च शूरः सुभगश्च नित्यं बालोऽप्यबालो गुणशीलवृत्तैः ॥ ९
किं देवविद्याधरकिन्नराणां सुतः प्रवञ्च्यावनिमाजगाम ।
आहोस्विदङ्गावयवैरनङ्गो विस्मापनाय स्वयमागतः स्यात् ॥ १०
तथैव शेषाश्च महेन्द्रपत्न्यः सुरेन्द्रपत्नीसमचारुशीलाः ।
अतुल्यरूपांस्तनयानविन्दन् शुभोदये[3] सत्कृतयो यथैव ॥ ११
अमात्यसेनापतिमन्त्रिपुत्राः सुताश्च सामन्तनरेश्वराणाम् ।
पुनः प्रधानर्द्धितमात्मजाश्च नरेन्द्रपुत्रैः[4] सहसंप्रदानाः[5] ॥ १२
समानशीलाः समरूपवेषा गुणैः समेताः सदृशाः क्रियाभिः ।
परस्परस्नेहनिबद्धभावाः शिशिक्षिरे राजसुतैः कलाश्च ॥ १३
यस्यात्मजा नागकुमारकल्पा बलं च यस्यारिजनप्रमाथि ।
यस्यासमो वैश्रवणो धनेन विभूतिरिन्द्रप्रतिमा च यस्य ॥ १४
यस्योरुनीत्या रिपवो हि[6] नाशा गता विनाशं सकलत्रपुत्राः[7] ।
प्रजाश्च सर्वर्द्धिगुणैरुपेता वर्णाश्रमांस्तस्थुरथ स्वमार्गैः[8] ॥ १५
अन्यायवृत्तिर्न बभूव लोके राज्ये च यस्यर्द्धिमभिप्रयाते ।
नवैर्नवैरर्थसुमित्रपुत्रैः स राजवर्योऽनुबभूव भोगान् ॥ १६
महामहत्प्रीतिपुरस्सराणि पुण्याहमङ्गल्यशुभक्रियाणि ।
महोत्सवानन्दसमन्वितानि वर्षाण्यनेकानि गतानि तस्य ॥ १७

१ क दृष्टवा, [दृष्ट्या]. २ म क्रिया. ३ क शुभोदया. ४ म पुरःप्रधान°, [पुरप्रधान°]. ५ क °सप्रधानाः. ६ [हताशा]. ७ क °पुत्रम्. ८ म स्वमार्गे.

कदाचिदीशानसमानतेजा जाज्वल्यमानोत्तममौलिलीलः ।
मृगेन्द्रसत्कुण्डलघृष्टगण्डो ज्वलत्प्रलम्बोत्तमहेममूत्रः ॥ १८
रत्नोत्पलालिङ्गितहारवक्षा निबद्धकेयूरसुपीनबाहुः ।
विमिश्ररक्तोत्पलमाल्यधारी दुकूलवस्त्रोज्ज्वलगात्रयष्टिः ॥ १९
सुगन्धिसच्चन्दनकुङ्कुमाक्तस्तुरुष्ककालागरुधूपिताङ्गः ।
शान्तः पुनः कान्तवपुर्नरेन्द्रः सुखं निषण्णो वरहर्म्यपृष्ठे ॥ २०
नृपो विरेजे मदशालिनीनां मध्ये स्थितः पार्थिवसुन्दरीणाम् ।
शशीव कान्त्या निजया समेतः सुतारकामध्यगतोऽम्बरे ह ॥ २१
यथालकायां सुरसुन्दरीभिः सहैव रेमे भगवान्महेन्द्रः ।
मदेन विभ्राजितलोचनाभी रेमे चिरं भूमिपतिस्तथैव ॥ २२
निजांशुभिर्व्याप्तदिगन्तराणि ज्योतींषि पश्यन्प्रतिदर्शयंश्च ।
प्रियाङ्गनाभ्यः प्रियमावहंश्च निशामुखं भूपतिरध्युवास ॥ २३
शरत्प्रदोषे विगताभ्रवृन्दान्विचित्रनक्षत्रगणाभिरामान् ।
विभासयन्ती भुवमन्तरिक्षमुल्का पपाताशु सविस्फुलिङ्गा ॥ २४
तामापतन्तीं प्रभया परीतामतिप्रवृद्धाग्निशिखामिवोल्काम् ।
समीक्ष्य राजा सह सुन्दरीभिर्विरागतां तत्क्षणतो जगाम ॥ २५
ताराभिराभिः परिवेष्टिता सा यथैव चोल्का खतलात्पपात ।
प्रियाङ्गनाभिः परिवार्यमाणो राज्यात्प्रयास्यामि तथाहमस्तम् २६
चतुर्विधेनापि महाबलेन स्वबन्धुभिर्मित्रजनैः परीतः ।
अहं पुरा दुर्दमितेन तेन नीतोऽस्मि दूरं हयसत्तमेन ॥ २७
एवं पुनर्धर्मपथादपेतो जन्माटवीषु प्रविनष्टचेताः ।
स्वदुष्कृतोपात्तहयाधिरूढः परिभ्रमिष्यामि तथेत्यनैषीत् ॥ २८

१ क °लीनः. २ म °व्याप्य ३ क तथैवनैषीत्.

निःश्वस्य दीर्घं स्वशिरः प्रकम्प्य निर्भिद्य संसारमपारदुःखम् ।
उत्थाय तस्यां नृपतिः सभायां स्ववासगेहं प्रविवेश धीमान् ॥२९
प्रविश्य तं भोगविरक्तचित्तस्तत्त्वार्थमार्गाभिनिविष्टबुद्धिः ।
नैस्संग्यमास्थातुमना नरेन्द्रो लोकस्थिति चिन्तयितुं प्रवृत्तः ॥३०
अनित्यभावं ह्यशरण्यतां च संसारमेकत्वमथान्यतां च ।
अशौचमप्यास्रवसंवरौ च सनिर्जरं बोधिसुदुर्लभत्वम्[1] ॥ ३१
इमं च लोकं परलोकभावं शुभाशुभं कृत्यमकृत्यतां च ।
गत्यागति बन्धविमुक्तिमार्गं विचिन्तयामास यथास्वभावम् ॥३२
अमेयवीर्यद्युतिसत्त्वशौर्या दिवौकसस्त्वष्टगुणाद्धियुक्ताः ।
दिवस्पतिं वज्रधरं महेन्द्रं दिवः पतन्तं न हि वारयन्ति ॥ ३३
द्विसप्तरत्नाधिपतिं निधीशं महौजसं मन्दरसारवीर्यम् ।
सुरक्षमाणं गणबद्धदेवैर्नैवान्तको मुञ्चति चक्रपाणिम् ॥ ३४
जगत्प्रधानाः पुरुषाः पुराणा ब्रह्मा हरो विष्णुरिति त्रयोऽपि ।
तानप्युदारान्विवशीचकार न मृत्युतो वीर्यतमोऽस्ति कश्चित्॥३५
हलीशवागीशगणेश्वराश्च विद्येश्वराः सर्वभुवामधीशाः ।
योगीश्वरा ये च महर्षयश्च पतन्ति कालेन निपात्यमानाः ॥ ३६
तादृग्विधानां जगदीश्वराणां प्रकाशवंशामितपौरुषाणाम् ।
न चास्ति चेन्मृत्युपथा विमुक्तो[2] ह्यस्मद्विधानां च कथैव नास्ति ३७
निदाघमासोत्थमहादवाग्निर्दहत्यरण्ये तृणपर्णकाष्ठम् ।
चराचरं लोकमिदं समस्तं कालाग्निरेवं खलु दंदहीति ॥ ३८
लोहाय नावं जलधौ भिनत्ति सूत्राय वैडूर्यमणिं दृणोति[3] ।
सुचन्दनं चौषधि भस्मनाऽसौ[4] यो मानुषत्वं नयतीन्द्रियार्थे ॥३९

१ क °सुदुर्लभ च. २ [°पथाद्विमोक्षो]. ३ [दृणाति] ४ क °भस्मनासा, [°भस्मनेऽसौ].

हस्तागतं प्राणबलप्रदं च त्यक्त्वामृतं स्वादुरसोपपन्नम् ।
प्रदाय मौल्यं मतिमन्दभावात्पिबेद्विषं हालहलं दुरन्तम् ॥ ४०
तथैव लोकद्वयसौख्यमूलं विहाय धर्मं हततत्त्वबुद्धिः ।
पापाकुलं कर्म यदीह कुर्यां सतां भविष्यामि विगर्हणीयः ॥४१
यथैव शालीक्षुफलप्रदाने सुक्षेत्रयज्ञो निवपेदलाबुम् ।
तथैव निर्वाणफलप्रदाने नृत्वावनौ[1] शोकफलं वपेयम् ॥ ४२
रत्नाकरं द्वीपवरं प्रविश्य महार्घ्यरत्नानि च तानि दृष्ट्वा ।
नरो न संगृह्य हि रिक्तपाणिः पश्चादवाप्नोति निवृत्तयात्राम्[2] ॥ ४३
एवं सुमानुष्यमवाप्य दुःखाद्रूपादिभिश्चापि गुणैर्युतोऽपि ।
नृरत्नसारं यदि नादधीयं[3] मुग्धस्त्ववश्यं निहितो[4] भवेयम् ॥ ४४
मोहावृतो विस्मृतधर्मचेष्टो यद्याचरिष्याम्यहमत्र पापम् ।
योनिष्वनेकासु कृतान्तनीतो दुःखान्यनेकान्यहितानि लिप्स्ये[5] ४५
नायूंषि तिष्ठन्ति चिरं नराणां न शाश्वतास्ते विभवाश्च तेषाम् ।
रूपादयस्तेऽपि गुणाः क्षणेन सविद्युदम्भोदसमानभङ्गाः ॥४६
समुत्थितोऽस्तं रविरभ्युपैति विनाशमभ्येति पुनः प्रदीपः ।
पयोदवृन्दं प्रलयं प्रयाति तथा मनुष्याः प्रलयं प्रयान्ति ॥ ४७
विज्ञाय चात्यन्तमनित्यभावमत्राणतामप्यशरण्यतां च ।
तपो जिनैरभ्युदितं यथावद्यद्यत्र कुर्यां न हि वञ्चितोऽस्मि ॥४८
किमत्र पुत्रैर्द्रविणोपहारैः संसारपाकाङ्कुरशोकमूलैः ।
दारैस्तु किं वा हृदयप्रहारैश्चोरारिसर्पप्रतिमैरशुद्धैः ॥ ४९
किं बान्धवैर्बन्धमयैः[7] सशल्यैरनर्थसंसिद्धिसमर्थलिङ्गैः ।
आशावपाशैः किमनर्थमूलैरर्थैरपार्थैर्दुरितानुबन्धैः ॥ ५०

---

१ म कृत्वा वनौ. २ क निवृत्ति°. ३ क नावदीय. ४ [निहतो]. ५ [लप्स्ये]. ६ म °सर्व°. ७ म बन्धुमयैः.

राज्यैस्तु किं वा बहुचिन्तनीयैः संसारसंवर्धनहेतुभूतैः ।
भोगैः किमायासिभिरप्रशान्तैश्चतुर्गतिक्लेशफलप्रदैस्तैः ॥ ५१
कः कस्य बन्धुस्त्वथ कस्य मित्रं कस्याङ्गना कस्य बलं धनं वा ।
के कस्य पुत्राः कुलजातिदेशा रूपादयः के क्षणदृष्टनष्टाः ॥ ५२
स्वं जीवितं न प्रविगण्य चोरः कस्मै समं वाञ्छति तं प्रयासम् ।
कस्येह चित्तं विमतिं न धत्ते विद्युद्वपुश्चञ्चलजीवितात्मा ॥ ५३
तिर्यग्मनुष्यासुरनारकाणां योनिष्वनेकास्वशुभावहासु ।
अनन्तकालं बहुजीवराशौ बंभ्रम्यते कर्मरथाधिरूढः ॥ ५४
संसारवासे वसताममूनां शोकाय संक्लेशसहस्रभाजाम् ।
जरा च जातिर्मरणं च तेषामवश्यमेतत्क्षयमभ्युपैति ॥ ५५
अलाभलाभादिवियोगयोगं मानापमानप्रसवात्मकं यत् ।
सुखासुखं तद्भवने समस्ते जीवा लभन्ते स्वपुरात्मकेन ॥ ५६
इत्येवमादीन्नृपतिर्विचिन्त्य निर्वेगसंवेगयुतासदर्थम् ।
आहूय तं सागरवृद्धिमाप्तं स्वचित्तसंकल्पितमर्थमूचे ॥ ५७
पिता ममासीन्नृपतिः क्रियातस्त्वं धर्मतो मे पितृतामुपेतः ।
वने भ्रमन्तं कृपया कृतार्थं प्रायुंयुजो मामिह बन्धुवर्गैः ॥ ५८
महायतां युध्यगमस्तदा मे सदाभिभूतं सुखदुःखमात्रम् ।
स्वतन्त्रमुत्सृज्य च मां गुणज्ञः प्रातिष्ठिपच्छ्रीमति राज्यभोगे ॥ ५९
ततो गुरुस्त्वं पितृमातृकल्प आपृच्छनीयश्च समर्चनीयः ।
निःशङ्कया तेन वदामि कार्यं तद्रोचतां ते यदि युक्तिमत्स्यात् ६०
यथैव मां स्थापितवान्नृपत्वे प्रजाहितायात्र गुणैरुदारैः ।
तथाग्रपुत्रं मम तं सुगात्रं राज्यश्रिया योजय साधु साधुम् ॥ ६१

१ म °प्रशान्त्यै°. २ [तद्भवने]. ३ म निर्वेद°. ४ [°सवेगयुतः]. ५ [सहायता].

मास्मत्स्मर त्वं सुतरां कुमारं राज्यप्रकृत्या सह वर्धय त्वम् ।
अहं पुनः कामविरिक्तभावस्तपश्चरिष्यामि विमुञ्च तात ॥ ६२
निशम्य वाचं वसुधाधिपस्य संसारनिर्वेदपरायणस्य ।
स्नेहेन तं सागरवृद्धिरित्थं प्रोवाच धर्माश्रयणीयमर्थम् ॥ ६३
स्वामिन्किमेवं त्वविचार्य कार्यं विचिन्तितं केवलमर्थदूरम् ।
अप्रार्थनीयं मनसापि तादृक् न संमतं स्यात्तदयुक्तिमत्त्वात् ॥६४
अदेशकाले प्रतिसंनिबद्धं बलाबलक्षेमविचारहीनम् ।
यत्स्वल्पमप्यत्र हि कार्यजातं प्रारब्धमज्ञैर्न हि सिद्धिमेति ॥ ६५
इदं हि राज्यं नृपतिर्विशालं जनोऽप्रगल्भस्तरुणः सुतोऽपि ।
स्नेहश्च पित्रोर्जनतानुरागो विचन्तनीयः खलु सर्वमत्र ॥ ६६
अरातिभिर्दुष्टतमैरनिष्टैः सामन्तराजैरटवीश्वरैश्च ।
पुरा त्वया साधु विराधितैस्तैः सद्यो विनश्येत्यथ राज्यमेतत् ६७
प्रमाणभूतस्त्वमिह प्रजानां नीतिप्रगल्भो विदितत्रिवर्गः ।
अतो भवन्तं शिरसाभियाचे मा साहसं कर्म कृथा नरेन्द्र ॥६८
निशम्य तत्सागरवृद्धिनोक्तं वचः सदर्थं परिपाकतिक्तम् ।
महीपतिर्मन्दरतुल्यवीर्यः पुनर्बभाषेऽर्थमचिन्त्यमन्यैः ॥ ६९
नृणां च संपज्जलबुद्बुदाभा तद्यौवनं द्वित्रिचतुर्दिनानि ।
आयुः पुनश्छिद्रघटाम्बुतुल्यं शरीरमत्यन्तमपापिधर्मि ॥ ७०
धनं शरन्मेघचलस्वभावं बलं क्षणेनाभ्युपयाति नाशम् ।
केशास्त्वशुक्ला जरसा भवन्ति मन्दत्वमायान्ति तथेन्द्रियाणि ७१
प्रीतिः पराभावमियर्ति सद्यः सुखं च विद्युद्वपुषा समानम् ।
एकैकरूपैरुपयाति मृत्युर्न तस्य लोके विदितः क्षणोऽस्ति ॥ ७२

१ [मास्मान्°]. २ [नृपतेर्विशाल]. ३ [विचिन्तनीयं]. ४ क वृथा.
५ [अपायधर्मि]. ६ [केशास्तु शुक्ला]. ७ [विहितः].

यान्ति क्षयं ते निचयास्तु सर्वे समुच्छ्रितास्तेऽपि च संपतन्ति ।
वियोगमूलाः खलु संप्रयोगा मृत्योर्मुखं याति च जीवलोकः ७३
पिता च माता बहुबन्धुवर्गाः सहोदरा मित्रकलत्रपुत्राः ।
नष्टस्मृतिं कण्ठगतात्मचेष्टं न मृत्युतो मोचयितुं समर्थाः ॥ ७४
तादृग्विधैर्भोजनमात्रसंख्यैः किं बान्धवैर्मेऽस्ति हि कार्यमेभिः ।
तानप्यहं कर्मपथान्तरस्थान् त्रातुं न शक्तोऽप्यथ निश्चितुं त्वाम्[1] ७५
निरन्तरं तस्य नृपस्य वाक्यं श्रुत्वाब्रवीत्सागरवृद्धिरेवम् ।
यत्कर्तुमिच्छस्यनवद्यरूप तदात्मशक्त्या क्रियते मयापि ॥ ७६
सन्मानमायावनिपैरतीव स्नेहं चकार स्वजनः परश्च ।
वणिक्प्रभुत्वे खलु वर्तमानस्तव प्रसादान्नृपतिस्त्वभूवम् ॥ ७७
मन्त्रे च युद्धे विषयार्थयोश्च सहायतां ते प्रतिपद्य पूर्वम् ।
अहं त्विदानीं यदि धर्मकृत्ये परित्यजेयं त्वधमोऽस्मि राजन् ७८
एवं निगद्य स्थिरधैर्यवीर्यो विचार्य राजा विगतद्विषश्च ।
अन्तःपुरं तस्य हि शासनेन आह्वाययां सागरवृद्धिरास ॥ ७९
आहूयमानास्त्वरया विभूष्य समेखलानूपुरमन्द्रनादाः ।
वराङ्गना भूपतिमभ्युपेत्य तस्थुः पुरस्ताद्विकृतोपचाराः ॥ ८०
स्वभावभद्राः श्रुतिशीलशुद्धा भर्तृप्रियाचारवचोविभूषाः ।
कृतापराधा इव ता विलोक्य क्षमध्वमित्येवमुवाच राजा ॥ ८१
तद्वाक्यवाताहतविह्वलाङ्ग्यः प्रम्लानमाला इव दीनवक्त्राः ।
आक्रम्ययन्तः[2] स्रवदश्रुनेत्रा निपेतुरुर्वीपतिपादयोस्ताः ॥ ८२
हिमाहतानामिव पद्मिनीनां पद्मानि वातातपशोषितानि ।
वियोगभीतानि मुखानि तासां प्रम्लानदृष्ट्यामियतां प्रजग्मुः ८३

१ [निश्चिनु त्वम्]. २ [आक्रन्दयन्त्यः].

प्रोत्थाप्यमाना वसुधेश्वरेण मुहूर्तमात्रादुपलब्धसंज्ञाः ।
सगद्गदाशक्तकलप्रलापा जजल्पुरित्थं विनयानताङ्ग्यः ॥ ८४
भवत्प्रसादोदितसर्वसौख्याः पादद्वयालम्बितजीविताशाः ।
त्यक्तास्त्वया किं करवाम हेऽद्य गच्छाम वा कां गतिमद्य नाथ ॥ ८
आधानतः स्नेहनिबद्धरागा नाथेन चात्मप्रियबान्धवास्ताः ।
कृतापराधाश्च वनभर्त [–] कथं नु नस्त्यक्तुमियेष भक्ताः (?)८६
अनन्यनाथा विमतीरपुण्या जहीहि नास्मान्नगतीर्वराकाः ।
त्वया विना नेत्रनिमेषमात्रं न शक्नुवं स्थातुमपि क्षितीश ॥ ८७
जलेन हीना इव पद्मवत्यः करेणवो वोज्झितयूथनाथाः ।
जिजीविषात्मो न वयं नरेन्द्र त्वया विमुक्ता ध्रुवमित्यवैहि ॥८८
इत्थं ब्रुवाणा नृपतिप्रियास्ताः सुताम्रनेत्रान्तजलाविलास्याः ।
स्वस्नेहपाशैरनुबन्धयन्त्यः प्रत्यब्रवीन्निर्गतरागबन्धः ॥ ८९
यमस्य नाथोऽपि महाप्रतापो वज्रायुधः प्रज्वलितप्रभावः ।
साक्षान्नवीं मृत्युमुखात्सुनालां स्थातुं परः कः पुरुषस्त्रिलोके॥९०
अनेककोट्यप्सरसां समूहाः सामानिकाद्यास्त्रिदशेश्वराश्च ।
शक्रालयाच्छक्रमधः पतन्तं न जातु संतारयितुं समर्थाः ॥ ९१
ये चक्रविक्रान्तदशाङ्गभोगास्तदर्धभोगाश्च सितासिताङ्गाः ।
देवासुरेभ्योऽभ्यधिकप्रभावास्ते मृत्युनीता मम का कथेयम्॥९२
गन्धर्वविद्याधरनागयक्षा योगीश्वराश्चाप्रतिसत्त्ववीर्याः ।
प्रियाः स्वका मृत्युमुखं प्रयान्ति त्रातुं न शेकुर्मम कास्ति शक्तिः ९३
जन्मार्णवे मोहमहातरङ्गे जरारुजामृत्युभयप्रकीर्णे ।
निमज्जनोन्मज्जनसंप्रयुक्तं वृथा हि किं मां शरणं वृणीध्वम् ॥९४

१ क करवामदेह्य. २ [भर्ता]. ३ [न शक्नुमः]. ४ [जिजीविषामो]. ५ [साक्षाद्रवि ...स नाल]. क सनाला. ६ [प्रयान्तीस्त्रातु].

इष्टैर्वियोगोऽप्रियसंप्रयोगो जातिर्जराव्याधिरनित्यभावः ।
यदीह न स्युर्मरणानि लोके रतिर्नृजन्मन्यथ कस्य न स्यात् ॥९५
जवेन नृणां वपुरायुरर्था धावन्त्युपस्थास्यति सा जरा च ।
जरापरिक्षीणबलेन्द्रियाणां मृत्युस्ततो नेष्यति कोऽत्र रागः ॥९६
एका गतिर्निर्वृतिरस्ति लोके निरस्तरोगान्तकजन्मभीतिः ।
यां प्राप्य नश्यन्ति जरादयस्ते महानदीं प्राप्य यथा तृषाद्याः[1] ॥९७
तां प्राप्तुमिच्छा यदि विद्यते चेद्युष्माकमस्माभिर्समा[2] समेताः ।
उपाय एकोऽस्ति मनुष्यलोके धर्मोऽर्हतां प्रापयितुं समर्थः ॥ ९८
अर्हत्प्रणीतश्रुतिसत्सहायाः सद्दर्शनोन्मीलितशुभ्रनेत्राः ।
चारित्रसन्मार्गमभिप्रपद्य सुखाकरं मोक्षपुरं प्रयामः ॥ ९९
पुरापि जैनेन्द्रमतप्रपन्ना नरेन्द्रवाक्यप्रतिबुद्धतत्त्वाः ।
नृदेवदेव्यः समयं प्रयाय भर्त्रा सह प्रव्रजनं प्रपद्युः[3] ॥ १००
मृष्टान्नपानं वरभूषणानि चित्राणि वस्त्राण्यथ गन्धमाल्यम् ।
प्रासादशय्यासनयानकानि दत्वा चिरं नो नृपते बभार[4] ॥ १०१
चन्द्रांशवः सूर्यगभस्तयश्च खराश्च मद्यः पुरुषाश्च[5] वाताः ।
न पस्पृशुर्दुःखनिमित्तभूता भर्तृप्रदानान्न कदाचिदस्मान् ॥१०२
लताः स्वपुष्पस्तबकोत्थिताग्रा[6] यथा न शोभां ददति प्रकृष्टाः ।
द्यौश्चन्द्रहीना च यथा न भाति तथा भवामो नृपतौ प्रयाते ॥१०३
अभूषणानादनगन्धमाल्यास्ताम्बूलधूपाञ्जनगन्धहीनाः ।
अमित्रवर्गैः परिभूयमानाः किमास्महे प्रक्षरदक्षितोयाः ॥ १०४
एवं विचिन्त्योत्तमधैर्यवन्त्यः[7] कृतप्रतिज्ञा विगतस्पृहाश्च ।
स्वानेकभक्तिस्थितिमानसाम्भाः[8] प्रोचुर्नरेन्द्रं गतभोगतृष्णाः ॥

---

१ क तृषाढ्याः २ [°रमा]. ३ [प्रपन्नाः]. ४ [नृपतिर्बभार].
५ [परुषाश्च]. ६ म °स्तबकोर्थिताग्रा. ७ क विचित्रोत्तम°.
८ [स्वाम्येक°].

यद्यत्र नाथ प्रविहाय राज्यं तप क्रियायां मतिमादधीथाः ।
सम त्वयैवात्र तपश्चरित्वा ससारनिष्ठामभिसत्रजाम' ॥ १०६

इति नृपवनिता नृपेण सार्धं
प्रविकसितात्पलचारुपत्रनत्रा ।
भुवि सुखमपहाय ताश्च सद्य
स्तपसि मनांसि समादधुर्वराङ्ग्यः ॥ १०७

अथ जिगमिषुता नृपस्य बुद्ध्वा
नरपतय' परित समेत्य तूर्णम् ।
ददृशुरधिकसभ्रमा नरेन्द्र
त्रिदशपति त्रिदशा इव प्रशान्तम् ॥ १०८

इति धमकथादृशे चतुर्वगसमन्विते ।
स्फुटशब्दाऽसदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
तारादशननिमित्त राज्यभागनिर्वेगा
नामाष्टाविंशतितम सर्ग ।

[एकोनत्रिश. सर्ग]

श्रीधर्मसनप्रमुखा नरेन्द्रा वयाऽनुरूपोज्ज्वलचारुभूषा ।
सभागृहे रम्यतमे विशाल वराङ्गराजन सुख निषेदु. ॥ १
पिता वराङ्गस्य नरेन्द्रमध्य स्नेहेन सद्भावपुरस्सरण ।
परामृशस्तस्य कर करण प्रोवाच साम्नावचनीयमर्थम् ॥ २
राज्य त्वदायत्तमिद हि सर्वमाधारभूतस्त्वमिह प्रजानाम् ।
विशेषतो मे नयन तृतीय बहिश्चरमाण इव द्वितीयः ॥ ३

माता च पत्न्यस्तव पुत्रकाश्च प्राणान्त्ययेऽरं[1] कथमत्र वत्स ।
त्वयि प्रयातेऽहमतोऽभियाचे नास्मद्वचो लङ्घितुमर्हसि त्वम् ॥ ४
विना शशाङ्केन नभो न भाति विना मघोना न विभासते द्यौः ।
विना दयां धर्मपथे[2] न भाति न भाति राज्यं च विना त्वयेदम् ५
भारो यथादौ सुकरः प्रवोढुं पश्चादशक्यः स तु गौरवेण ।
एवं तपःश्रीः सुकरावधर्तुं सुदुर्धरत्वं च शनैः प्रयाति ॥ ६
आरोहणाद्धारवतो नरस्य दोर्भ्यामपाराम्बुनिधिप्रतारात् ।
सरित्प्रवेगे प्रतियातनोऽपि[3] तपोऽतिकष्टं सुखमास्स्व पुत्र ॥ ७
स्मरानलार्चिःप्रतिदग्धवीर्या भृशन्ति[4] तिर्यग्मनुजासुरेन्द्राः ।
तं कामवह्निं शमितुं कुतस्त्वं शक्नोति[5] पञ्चेन्द्रियगोचरस्थः ॥ ८
वयं च सद्धर्ममथार्हतां[6] हि बुद्ध्वापि तत्कर्तुमशक्नुवन्तः ।
गृहेषु जीर्णा विषये प्रसक्ताः पुनस्तपस्ते विषमं प्रकर्तुम् ॥ ९
मास्मत्वरिष्ठाः[7] कुरु धीर राज्यं जयारिवर्गान्विषयान्भजस्व ।
सहैव गत्वा च तपोवनानि तपश्चरिष्याम इहेत्यवोचत् ॥ १०
यथोपनीतक्रममादरेण निशम्य वाक्यं पितुरायतश्रीः ।
वराङ्गराजः स्थितधर्मचित्तः प्रत्यब्रवीदात्महिताय धीमान् ॥ ११
धर्मार्थकामागमसाधनानि व्रजन्ति पूतां सुतरां प्रसिद्धिम् ।
तान्येव तत्साधनसत्क्रियाभिर्विपत्तिमायान्ति गते युवत्वे ॥ १२
विशीर्णदन्तः शिथिलाङ्गसन्धिः कम्पच्छिरश्चञ्चलपाणिपादः ।
कराग्रदण्डो जरसा परीतः कथं तपस्तप्यति मन्दचक्षुः ॥ १३
नष्टश्रुतिर्लुप्तशरीरचेष्टः स्खलत्पदव्याकुलमन्दवाक्यः ।
क्षीणेन्द्रियः क्षीणबलः क्षितीश श्रुतार्णवान्तं कथमभ्युपैति ॥ १४

१ [प्राणान्नयेरन्, °न्वहेरन्]. २ [धर्मपथो]. ३ [प्रतियानतोऽपि]. ४ [भ्रश्यन्ति]. ५ [शक्नोषि]. ६ क प्रशस्ता. ७ [मा त्वं त्वरेथाः].

गृहाद्बहिर्यातुमशक्तिमान्यो यात्वा पुनर्नैव निवर्तितुं वा ।
तादृग्विधः कायपरिग्रहस्य स्थानावियोगस्य च किं समर्थः ॥१५
भित्वार्गलं यान्ति चिरं वनान्तं यथा गजा वारयितुं न शक्याः ।
गृहार्गलं तद्वदहं विभिद्य व्रजामि मान्धी वर एष याचे ॥ १६
बहिर्ययासुर्भवनात्प्रदीप्तात्क्षिपत्यरातिः पुनरेव तत्र ।
दुःखानलादेवमभिप्रयातुमापीपतः पार्थिव शत्रुवन्माम् ॥ १७
क्षुब्धार्णवाद्दुर्गतिवीचिजालात्कृच्छ्रेण कूलान्तमुपागतं तम् ।
नुदत्यरातिस्तु यथैव तत्र मा नूनुदः संसृतिसागरे माम् ॥ १८
सुवर्णपात्रे परमान्नमिष्टं बुभुज्यमानस्य विषं ददाति ।
यथा तथा राज्यविषं ददाति धर्मामृतं भूमिप मे पिपासोः ॥१९
शुभक्रियाणां च विघातको यः पापक्रियाणां च सहायभूतः ।
स एव राजन्भवबद्धवैरो रिपोश्च कष्टं त्वतुलो न शत्रुः ॥ २०
रिपुः कदाचि [~~] दर्थमङ्गं बलं यशो वेह निहन्ति वा न ।
धर्मस्य ये विघ्नकरा नृशंसा निघ्नन्ति ते जन्मसहस्रसौख्यम् २१
आयुर्बलारोग्यवपुर्वयांसि प्रणश्वराणि क्षणिकं शरीरम् ।
धनानि विद्युद्वपुषा समानि द्वितीय एषोऽपि महांस्तु दोषः २२
राज्यं हि राजन्बहुदुःखबीजं चित्ताकुलं व्याकृतिशोकमूलम् ।
वैरास्पदं क्लेशसहस्रमूलं किंपाकपाकप्रतिमं तदन्ते ॥ २३
दुरन्तता राज्यधुरंधराणां धर्मस्थितानां सुखभागिनां च ।
विजानतः साधुसमुत्थितस्य कथं रतिः स्यान्मम राज्यभोगे २४

१ [त्वा धीवर]. २ [बहिर्यियासुं]. ३ [°प्रयात°]. ४ [बोभुज्य°]. ५ [ददासि]. ६ म °बद्धवैरी. ७ [रिपुश्च...नु शत्रुः]. ८ क कदाचियदर्थ°. ९ म व्यावृति° १० क °समस्थितस्य, [°समं स्थितस्य].

निरुत्तरैस्तैर्मधुरार्थगर्भैः सहेतुकैर्भूमिभुजो हि मध्ये ।
मनोहरैर्भूमिपतिर्वचोभिः प्रबोधयां तं पितरं बभूव ॥ २५
प्रवृद्धवैराग्यरसोदयस्य विशुद्धदृष्टेरविकम्पितस्य ।
पिता स्वपुत्रस्य वचो निशम्य प्रसन्नबुध्द्या तमुवाच वाचम् २६
सर्वान्तरायानतिलङ्घ्य वत्स धर्मान्तरायो गुरुतामुपैति ।
जानन्नपि स्नेहपरायणत्वाद्बलादवोचं परिणामतिक्तम् ॥ २७
यदि श्रमादात्मनि मोहतो वा स्वकर्मणां गौरवतोऽतिरागात् ।
न्यायादपेतं वचनं यदस्ति क्षमस्व तत्सर्वमुदारबुद्धे ॥ २८
आबाल्यतः शान्ततमस्य तस्य धर्मानुरागोद्यतसत्क्रियस्य ।
सुनिश्चितां तामवगम्य बुद्धिं मुमोच कृच्छ्रात्तनयं महीन्द्रः ॥ २९
तथैव पौरान्स्वजनाञ्जनांश्च सेनापतिश्रेष्ठिगणप्रधानान् ।
स्वमातरं कृच्छ्रतरान्नृसिंहो विमोचयामास यथाक्रमेण ॥ ३०
आहूय तं पुत्रवरं विनीतं सुगात्रनामानमनङ्गरूपम् ।
निवेश्य पार्श्वे विनयाद्विनम्रं मध्ये नृपाणामिदमित्युवाच ॥ ३१
मातामहोऽयं तव संनिविष्टः पितामहस्त्वेष गुणैर्गरीयान् ।
गुरुद्वयस्यास्य नृपोत्तमस्य कुरुष्व शुश्रूषणमात्मशक्त्या ॥ ३२
वृद्धान्गुरून्प्राज्ञतमानुदारान् दयापरानार्यकलांश्च नित्यम् ।
विश्रम्भपूर्वं मधुरैर्वचोभिर्मन्यस्व मान्यानथ मानदानैः ॥ ३३
अरातिवर्गान्विजयस्व नीत्या दुष्टानशिष्टांश्च सदा प्रशाधि ।
कृतापराधान् शरणागतांस्तान् रक्ष स्वपुत्रानिव सर्वकालम् ३४
पङ्गुवन्धमूकान्बधिरान्स्त्रियश्च क्षीणान्दरिद्रानगतीननाथान् ।
श्रान्तान्सरोगांश्च विधृष्व सम्यक्परराभिभूतान्परिपालयस्व ॥३५

१ म पुत्रा. २ म धर्मान्तराये. ३ म महेन्द्रः.

धर्माविरोधेन समर्जयार्थानर्थाविरोधेन भजस्व कामान् ।
कामाविरोधेन कुरुष्व धर्मं सनातनो लौकिक एष धर्मः ॥३६
दातव्यमित्येव जनाय चित्तं[1] प्रदेहि सन्मानपुरस्सरेण ।
भृत्यापराधानविगण्य वत्स क्षमस्व सर्वानहमीशतेति[2] ॥ ३७
निबद्धवैरानतिदोषशीलान्यमादिनो नीतिबहिष्कृतांश्च ।
चलस्वभावान्व्यसनान्तरांश्च जहाति लक्ष्मीरिति लोकवादः ॥३८
अदीनसत्त्वान् क्रियया समेतान् श्रुतान्वितान्क्षान्तिदयोपपन्नान् ।
सत्येन शौचेन दमेन युक्तानुत्साहिनः श्रीस्स्वयमभ्युपैति ॥ ३९
भृत्यांश्च मित्राण्यथ कोशदण्डानमात्यवर्गाञ्जनतां च दुर्गान् ।
बुधैश्च पूजां यदि वाञ्छसि त्वं कुर्वात्मनात्मानमतीव पात्रम् ॥४०
भूयोऽर्हतां शासनमागमस्थान्सज्ज्ञानचारित्रतपोविशुद्धान् ।
चतुर्विधं संघमथात्मशक्त्या भजस्व सन्मानय सादरेण ॥ ४१
गुणैरुपेता गुरवो बहुज्ञा ये शिष्ययन्त्यात्मसुतान्[3] हिताय ।
सतत्त्वसर्वं बहु शिष्यायित्वा[4] समर्पयामास सुतं गुरुभ्यः ॥ ४२
ततो नृपैर्मन्त्रवरप्रधानैः सामन्तमुख्यैरभिषिच्य सार्धम् ।
बबन्ध पट्टं स्वयमेव राजा प्रजाहितार्थं कुलवृद्धये च ॥ ४३
मुक्तावलीं रत्नपरीतमध्यां कण्ठे च देवेन्द्रधनुर्विचित्राम् ।
सूर्यप्रभाहेपितसत्किरीटं[5] निधाय पुत्रस्य हि मूर्ध्नि तस्य ॥ ४४
श्वेतातपत्रं शरदभ्रशुभ्रं दधार भास्वद्वरहेमदण्डम् ।
अष्टार्धसच्चामरहेममूलं[6] व्युत्क्षेपयामास स सुन्दरीभिः ॥ ४५
तेषां तु मध्ये वसुधाधिपानां स्वबाहुवीर्योर्जितसद्गुणानाम् ।
रेजे सुगात्रो नवराज्यलक्ष्म्या कान्त्या ग्रहाणामिव शीतरश्मिः ४६

१ [वित्तं]. २ [सर्वानहमीशितेति]. ३ [शिक्षयन्त्यात्म°]. ४ [शिक्षयित्वा]. ५ क सत्तिरीट. ६ क हेममाल.

नेदुः समन्ताद्बृहदभ्रनादा मृदङ्गभेरीपटहाः सशङ्खाः ।
उत्कृष्टनादां जनतां[1] चकार लब्धेश्वरा भूवनिता तुतोष ॥ ४७
ततो नृपो निर्वृतिसौख्यरागः स्वपुत्रसंक्रामितराज्यभारः ।
विमुक्तसंगः स्वजनेन सार्धं जगाम तूर्णं जिनदेवगेहम् ॥ ४८
तत्रार्हतामप्रतिशासनानामष्टाह्निकां शिष्टजनैश्च जुष्टाम् ।
यमोपवासव्रतयन्त्रितात्मा चकार पूजां परया विभूत्या ॥ ४९
पूजावसाने प्रतिमापुरस्तात् स्थित्वा महीन्द्रः सुविशुद्धलेश्यः ।
स्तुत्वा जिनानां तु गुणानुदाराञ्जग्राह शेषां मुदितान्तरात्मा ५०
स्तोत्रावसाने प्रणिपत्य देवान्प्रदक्षिणीकृत्य जिनेन्द्रगेहम् ।
आरुह्य राजा शिबिकामनर्घ्यां दिवाकरांशुद्युतिहारिणीं ताम् ५१
अत्युच्छ्रितैः केतुभिरुज्ज्वलाङ्गैः सितातपत्रैर्वरचामरैश्च ।
ध्वजैरनेकैर्नयनाभिरामैर्गच्छन्बभौ शक्र इवावनीन्द्रः ॥ ५२
मृदङ्गशब्दैः पटहस्वनैश्च शङ्खप्रणादैर्गजवाजिघोषैः ।
पुण्यैर्वचोभिर्वरमागधानामभूद्ध्वनिः क्षुब्धसमुद्रतुल्यः ॥ ५३
पौरैर्जनैर्वर्षचरैरमात्यैः[2] सामन्तवर्गैर्नृपपुङ्गवैश्च ।
पदातिनागाश्वरथाधिरूढैर्वृतो गृहेभ्यो निरगान्नरेन्द्रः ॥ ५४
रथैश्च काश्चिद्वरवाजियानैर्मनोहराभिः शिबिकाभिरन्याः ।
धर्मक्रियायां विनिवेश्य बुद्धिं नृपाङ्गना भूपतिनैव याताः ॥ ५५
नृपं प्रयातं प्रसमीक्ष्य केचिद्धर्मप्रियाः पौरजनाः प्रहृष्टाः ।
केचित्पुनर्मोहमहातमोऽन्धा दुर्बुद्धयोऽत्यल्पतमा निनिन्दुः ॥ ५६
मत्स्यामिषाभ्यां च यथा शृगालः प्रवञ्चितो लोभतया विमूढः ।
यथा च नारी युवरूपलुब्धा[3] भ्रष्टोभयाभ्यां पतितस्कराभ्याम् ५७

१ [°नादाञ्जनता]. २ [°वर्षधरै°]. ३ म °लब्धा.

तथा नरेन्द्रो विपुलांश्च भोगान्प्रत्यक्षभूतं प्रविहाय बालः ।
परोक्षमिच्छन्सुरसौख्यमोक्षं प्रवञ्च्यते जम्बुकपुंश्चलीवत् ॥ ५८
स्वर्गोऽस्ति नास्तीति कथं हि शक्यं श्रद्धानुसज्ज्ञानवचां वयो यत्
इतो गतो वा तत आगतो वा पुमान्यदि स्यात्तदिह प्रमाणम् ५९
विमुच्य हस्तागतमर्थकक्षो वनेऽन्यमर्थं मृगयेति कश्चित् ।
इदं हि राज्यं प्रविसृज्य वाञ्छेदृश्यमिन्द्रत्वमवाप्तुमज्ञः ॥ ६०
सुसिद्धमन्नं प्रविहाय कश्चित्पुनः प्रपक्तुं घटते विचेताः ।
स्याद्वा न वा संशयितुं तदन्नं राज्यं तथा सिद्धमसिद्धमैन्द्रम् ॥६१
पञ्चेन्द्रियाणां विषयाश्च पञ्च ते सेवितव्या इति सत्प्रवादः ।
सत्स्विन्द्रियेष्वर्थतमेषु सत्सु किमन्यमर्थान्तरमार्गयेद्वा ॥ ६२
अहो नृपोऽयं निरपेक्षितार्थो व्यामोहितात्मा बत किं करोति ।
न कश्चिदस्यात्महितस्य वक्ता बन्धुः सखा वा खलु विद्यतेऽत्र ६३
इत्येवमादीनि वचांस्यथोच्चैः प्रभाषमाणानफलानभार्यान् ।
भद्राः प्रकृत्या श्रुतधर्मतत्त्वा विलोक्य तेभ्यः पुनरित्थमूचुः ॥ ६४
धर्मात्सुखैश्वर्यधनानि लोके लभन्त इत्येव कथा ततान ।
कुतो भवन्तः समुपागता वा जडा वराका श्रुतिबाह्यभूताः ॥ ६५
शालीक्षुगोधूमयवादिधान्यं बीजाद्विना नाङ्कुरतामुपैति ।
तपोमयं बीजमथायनीयैः स्वर्मोक्षसौख्यं लभते न कश्चित् ॥ ६६
पूजा तपः शीलमपि प्रदानं चत्वारि बीजानि सुखस्य लोके ।
उप्त्वा नरास्तानि महीतलेऽस्मिन् क्रमेण धीराः सुखभागिनः स्युः

१ [°भूतान्प्रविहाय]. २ क °वचां चचो, [°वता वचो]. ३ [°गतमर्थमशो, °गतमर्थकं यो]. ४ [मृगयेत]. ५ म स्याद्वादवासंशयितुं. ६ [संशयितं]. ७ [°मापयेद्वा]. ८ [°फलानभद्रान्]. ९ [बीजमथापनीय].

कान्तिद्युतिज्ञानविभूतियुक्तं सुखान्वितं धान्यधनान्वितं च ।
समीक्ष्यमाणोऽपि नरो नरं तं सुपुण्यवानेष इति ब्रवीति ॥ ६८
पुरार्जितश्रीस्तपसां फलेन इहोपभुङ्क्ते मनुजः सुखानि ।
कृत्वेह पुण्यानि महाफलानि सुरासुराणां कुरुते तदैश्यम्[1] ॥ ६९
एवं च पूर्वार्जितपुण्यपाकादिमां विदित्वा नृपतां नरेन्द्रः ।
विहाय तां देवपतित्वमीप्सुर्वनं प्रयातीति च केचिदूचुः ॥ ७०
त्यजन्ति येऽर्थान्महतश्च भोगांस्त एव धन्याः पुरुषाश्च लोके ।
वयं पुनस्तानसतोऽप्यपुण्यास्त्यक्तुं न शक्ता इति केचिदूचुः ७१
किमास्महे स्वामिनि संप्रयाते वयं हि तेनैव सहाभियामः ।
इति प्रतिज्ञामभिगृह्य केचित्प्रारेभिरे गन्तुमदीनसत्त्वाः ॥ ७२
एवं हि पौरैरपरीक्षितार्थैः स्वचित्तसंकल्पितवाक्प्रलापैः ।
निगद्यमानो नृपतिर्जगाम पुराद्बहिर्निर्गतरागबन्धः ॥ ७३
पुरं क्रमेणाप्रतिधीर्व्यतीत्य वनं च नानाद्रुमपुष्पकीर्णम् ।
रक्तोत्पलैर्वाकुलिताभ्रवृन्दैर्नृपः प्रपेदे मणिमन्त्रसिद्धम्[2] ॥ ७४
तं पर्वतं ज्ञानतपश्चरित्रैर्विस्तीर्णकीर्तिर्मुनिरध्युवास ।
गणाग्रकेतुर्वरदत्तनामा सविग्रहो धर्म इव द्वितीयः ॥ ७५
स केवलज्ञानविशुद्धचक्षुर्महर्षिविद्याधरदेवतार्च्यः ।
धर्मामृतं भव्यजनाय यच्छन्बभौ मुनिर्मेरुरिवातितुङ्गः ॥ ७६
अदूरतस्तं समवेक्ष्य भूपाः स्ववाहनेभ्यस्त्ववतीर्य तूर्णम् ।
प्रदक्षिणीकृत्य विशुद्धभावा नेमुः शिरोभिर्मुनिसत्तमं तम् ॥ ७७
वराङ्गराजः शमितात्मरागः प्रणम्य पादौ वरदत्तनाम्नः ।
स्थित्वा पुरस्तादभिजातहर्षः कृताञ्जलिर्वाक्यमिदं जगाद ॥ ७८

१ म तवैश्वम्. २ क मणिमत्त्व°.

सर्वज्ञ सर्वार्चित सर्ववन्द्य सर्वाश्रमाणां परमाश्रयस्थ ।
शरण्यभूत त्रिजगत्प्रजानां संसारभीतः शरणागतोऽहम् ॥ ७९
चतुर्गतीनामसुखान्वितानां योनिष्वनेकासु चिरं भ्रमित्वा ।
दुःखान्यनेकान्यनुभूय तत्र श्रान्तो भवन्तं शरणागतोऽस्मि ॥ ८०
नालिङ्गितो यो रजसा कदाचिन्नोपप्लुतो जन्मवियोगशोकैः ।
मृत्योरनालीढपदप्रचारो नयस्व मां देशमृषे तमाशु ॥ ८१
ततो मुनीन्द्रस्तदनुग्रहायावदन्महामेघगभीरनादः ।
यथा सुखं त्वं विषयेषु राजन्नास्स्व प्रसाक्षीरिति संदिदेश ? ॥ ८२
विशुद्धजात्यादिसुदुर्लभत्वं सद्धर्ममार्गे प्रतिबोधनं च ।
विमुक्तिधर्माभिसुदुष्करत्वं सर्वं तदाचष्ट गणप्रधानः ॥ ८३
चेष्टाप्रधाना जगतः क्रियाश्च चेष्टावतां कर्म न चास्त्यसाध्यम् ।
चेष्टस्व तस्माल्लभते[1] यदिष्टं स्वर्गादिकं मोक्षसुखावसानम् ॥ ८४
विशालबुद्धिः श्रुतधर्मतत्त्वः प्रशान्तरागः स्थिरधीः प्रकृत्या ।
तत्याज निर्माल्यमिवात्मराज्यमन्तःपुरं नाटकमर्थसारम् ॥ ८५
विभूषणाच्छादनवाहनानि पुराकरग्राममडम्बखेडैः ।
आजीवितान्तात्प्रजहौ स बाह्यमभ्यन्तरांस्तांश्च परिग्रहाद्यान् ॥ ८६
अपास्य मिथ्यात्वकषायदोषान्प्रकृत्य लोभं स्वयमेव तत्र ।
जग्राह धीमानथ जातरूपमन्यैरशक्यं विषयेषु लोलैः ॥ ८७
अन्येऽपि सामन्तनृपा महान्तः कौटम्बिकाश्च[2] द्विजसार्थवाहाः ।
नरेन्द्रभक्त्यार्पितमानसास्ते प्रवव्रजुस्तत्र सहैव राज्ञा ॥ ८८
नरेन्द्रदत्तो वसुमान्वनेशोऽप्यनन्तचित्रौ च मतिप्रगल्भाः ।
प्रवव्रजुः स्वाम्यनुरागबद्धा वणिम्बराः सागरवृद्धिमुख्याः ॥ ८९

१ [लभसे]. २ [कौटुम्बिकाश्च].

ये भूमिपालाः सुकुमारगात्रा विचित्रभोगप्रतिबद्धसौख्याः ।
राज्यानि संत्यज्य महर्द्धिवन्ति कुर्वन्ति चैतेऽपि तपांसि धीराः ९०
वयं प्रकृत्या विभवैर्विहीना नित्यं परप्रेषणतत्पराश्च ।
विशेषतः साधु तपश्चराम इत्येवमुक्त्वा हि परे प्रजग्मुः ॥ ९१
क्षितीन्द्रपत्न्यः कमलायताक्ष्यो विचित्ररत्नप्रविभूषिताङ्ग्यः ।
परीत्य भक्त्यार्पितचेतसस्ता नमः प्रकुर्वन्मुनयो प्रहृष्टाः ॥ ९२
ततो हि गत्वा श्रमणार्जिकानां समीपमभ्येत्य कृतोपचाराः ।
विविक्तदेशे विगतानुरागा जहुर्वराङ्ग्यो वरभूषणानि ॥ ९३
गुणांश्च शीलानि तपांसि चैव प्रबुद्धतत्त्वाः सितशुभ्रवस्त्राः ।
संगृह्य सम्यग्वरभूषणानि जिनेन्द्रमार्गाभिरता बभूवुः ॥ ९४
मन्त्रीश्वरामात्यपुरोहितानां पुरप्रधानर्द्धिमतां गृहिण्यः ।
नृपाङ्गनाभिः सुगतिप्रियाभिर्दिदीक्षिरे ताभिरमा तरुण्यः ॥ ९५

इति नृपतिरपास्य राज्यभारं
व्रतगुणशीलतपांसि संबभार ।
प्रमुदितमनसश्च राजपत्न्यः
परमतपांस्यभिदधिरे हिताय ॥ ९६
नृपनृपवनिताभिरुज्झितानि
वरमकुटाङ्गदहारकुण्डलानि ।
अवनितलमुपागतानि रेजुः
कुरुषु यथा तरुजानि भूषणानि ॥ ९७
नवशरदि भृशं सुपूर्णचन्द्रो
व्यपगतमेघमलीमसाश्च तारा ।

१ [प्रचक्रुर्मुनये].

ग्रहणमिह तामलेवछर्द्याः
प्रतिविरराज मही विभूषणैस्तैः ॥ ९८
यतिपतिमभिवन्द्य सादरास्ते तदनु मुनीन्नवसंयतांश्च भक्त्या ।
वरवरवनिता विमुच्य साध्वीशमुपययुः स्वपुराणि भूमिपालाः ९९

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
वराङ्गदीक्षाधिकारो
नामैकोनत्रिंशतितमः सर्गः ।

[त्रिंशः सर्गः][3]

गतेषु तेषु प्रियबान्धवेषु स्वेभ्यः पुरेभ्यो मुनिसंकथाभिः ।
दीक्षां प्रपन्नाः जहृषुर्नृसिंहा वारीविमुक्ता इव मत्तनागाः ॥ १
निरस्तभूषाः कृतकेशलोचाः प्रसन्नबुद्धीन्द्रियशुद्धभावाः ।
धर्मानुरक्ता मुनिराजपार्श्वं प्रपेदिरे साञ्जलयो यथार्हम् ॥ २
उपाश्रितांस्तान्कृतमूर्ध्निहस्तान्विलोक्य साधून्विगतेन्द्रियाशान् ।
स्वभावतो भव्यजनानुकम्पी व्रतोपदेशं कथयांबभूव ॥ ३
स्थानानि जीवस्य चतुर्दशानि तथैव हि स्थातुचरिष्णुतां च ।
सम्यक्त्वमिथ्यात्वविमिश्रितत्वं शशंस सम्यक्सफलं यतिभ्यः ॥४
दण्डांस्त्रिगुप्तींश्च चतुष्कषायान्द्रव्याणि षड्जीवनिकायभेदाँः ।
दशप्रकारं श्रमणेन्द्रधर्मं तेभ्यः समाचष्ट समाहितेभ्यः ॥ ५

---

१ [ताम्रलेप°]. २ [°त्रिंशत्तमः]. ३ क म श्रीनेमिनाथाय नमोऽस्तु तुभ्यम् । नमोऽस्तु नारायणदर्पहारिणे ॥ ४ क प्रसन्ना. ५ [सम्यक्त्वफल]. ६ [°गुप्तीश्च]. ७ [°भेदान्].

सज्ज्ञानचारित्रगतिव्रतानि दशार्धभेदान्यवदत्स तेभ्यः ।
तपोविधिं द्वादशलक्षणं च संसारविच्छित्तिकरं समाख्यत् ॥ ६
संज्ञाश्चतस्रः करणानि पञ्च चेर्यापथादीन्समितीश्च पञ्च ।
आवश्यकाः षट्च षडेव लेश्या योगत्रयं चाप्यवदद्यथावत् ॥ ७
चतुर्विधन्यासपदप्रपञ्चं नयप्रमाणानि च मार्गणानि ।
अष्टप्रकाराननुयोगभावांस्त्रिपञ्चकांश्चैव गुणप्रभेदान् ॥ ८
त्रिलोकसंस्थागतिमागतिं च स पुण्यपापास्रवसंवरांश्च ।
बन्धं च मोक्षं च शिवप्रमेयं मुनिर्मुनिभ्यः कथयांबभूव ॥ ९
श्रुत्वा मुनीन्द्रोदितमप्रमेयमहीनसत्त्वाः शिवसिद्धिमार्गम् ।
शीलान्यथादाय महाव्रतानि सद्यस्तमाचारमधीयते स्म ॥ १०
ततः सशान्तं शिवदत्तसंज्ञं दयापरं क्षान्तिमुदारवृत्तम् ।
आधारभूतं नवसंयतास्ते प्रपेदिरे संयमसाधनाय ॥ ११
ते भव्यसत्त्वा विदितार्थतत्त्वा जन्मान्तरे भावितमुक्तिमार्गाः ।
अनन्तवीर्याः श्रमणत्वमाप्ताः शिशिक्षिरे तच्च सुशिक्षितव्यम् १२
वराङ्गराजेन सह प्रयाताः समाहिताः क्षत्रियसंयतेन्द्राः ।
वैराग्यनिर्वेदपरायणास्ते प्रारेभिरे कर्मरिपुं विजेतुम् ॥ १३
ममत्वदेहप्रतिकारहीना न हि क्वचित्ते प्रतिबद्धरागाः ।
त्यक्तप्रमादा निरवद्यभावा समा बभूवुः प्रजने जने वा ॥ १४
त्रैलोक्यमप्येकमुहूर्तमात्रादुदीरितो नाशयितुं समर्थः ।
महाबलः क्रोधकषायमल्लः क्षमाबलेनाप्रतिमैर्निरस्तः ॥ १५
मानो महाशैल इवातितुङ्गः स मार्दवेनाप्रतिमेन जिग्ये ।
तथैव माया कुटिलस्वभावा जितेन्द्रियैश्चैव जितार्जवेन ॥ १६

१ [°संस्था]. २ [मोक्ष शिवमप्रमेयं]. ३ [ततश्च शान्तं]. ४ [क्षान्त°].

लब्धास्पदः सर्ज इव प्रवृद्धः शाखोपशाखाप्रतिमानमूर्तिः ।
उन्मीलितो[1] लोभकषायवृक्षः संतोषधृत्या क्रियविद्भिराद्यैः[2] १७
व्रणाः प्रशल्या[3] इव दुश्चिकित्स्या मिथ्यात्वमायासनिदानशल्याः ।
विमुक्तिमार्गाभिरतैरुदारैर्विवर्जितास्ते ऋषिभिर्विशेषात् ॥ १८
जिनेश्वराचार्यबहुश्रुतेषु संघे च धर्मे च जिनालये च ।
सम्यक्त्वचारित्रतपस्सु नित्यं भक्तिं प्रचक्रुस्तनुरागमोहाः ॥ १९
नैसर्ग्यमास्थाय[4] शुभप्रयोगा महर्षयो मन्दरसारधैर्याः ।
चकम्पिरे नैव परीषहेभ्यः प्रभञ्जनैस्तैरचला इवात्र ॥ २०
यथाजिभूमावरिसैन्यमुग्रं पुरा ममर्द स्वपराक्रमेण ।
परीषहारीन्विषयांस्त्रिदण्डांस्तथा ममर्दुर्यतयो जिताशाः ॥ २१
अर्हद्वचःस्तम्भमुपागमय्य बध्द्वा तपोयोगमयैश्च पाशैः ।
मनोगजान्मानमदार्द्रगण्डान् ज्ञानाङ्कुशैस्ते[6] शमयांबभूवुः ॥ २२
दुष्टानिवाश्वानपथप्रपन्नान्पञ्चेन्द्रियाश्वान्विषयानुदारान् ।
संयम्य सम्यग्वररज्जुबन्धैर्महाधियस्ते स्ववशं प्रचक्रुः ॥ २३
यथा मदान्धाः करिणः प्रयोगैरुपायवन्तो वशमानयन्ति ।
तथेन्द्रियेभान् कुलजातिदृप्तान्[7] ज्ञानाङ्कुशेनात्मवशं प्रणिन्युः ॥२४
यथा पुरात्यन्तरदुष्टवर्गानपास्य[8] राज्यं स्वसुखं प्रणिन्युः ।
तथैव रागादिरिपून्विजित्य सुखं निषण्णो मुनितामुपेत्य ॥ २५
शून्यालये देवगृहे श्मशाने महाटवीनां गिरिगह्वरेषु ।
उद्यानदेशे द्रुमकोटरे वा निवास आसीदृषिसत्तमानाम् ॥ २६

---

१ [उन्मूलितो] २ [श्रुतविद्भिरार्यैः]. ३ [सशल्या]. ४ [वैराग्यमास्थाय]. ५ क ममद्दुः. ६ क ज्ञानाशुकै° ७ क °येभाः...दृप्ताः. ८ [पुरात्यन्तिकदुष्ट°].

रात्रिंचरा भीमरवाः शकुन्ताः शार्दूलसिंहद्विपजम्बुकर्क्षाः ।
यत्राकुला भीमभुजंगमाश्च तत्रास वासो यतिपुङ्गवानाम् ॥ २७
वर्षासु शीतानिलदुर्दिनासु घोराशनिस्फूर्जथुनादितासु[1] ।
दिवानिशं प्रक्षरदम्बुदासु ते वृक्षमूलेषु निषेदुरार्याः ॥ २८
स्थलेषु निर्जन्तुषु वीतरागा निषद्य ते स्त्रीपशुवर्जितेषु ।
संसारनिस्सारदुरन्ततां च विचिन्तयामासुरनेकशस्ते ॥ २९
वने पुनर्भीमतमेऽन्धकारे शिवादिवान्धध्वनिरौद्ररूपे ।
जरारुजामृत्युभयातिभीता निद्रावशं रात्रिषु नैव जग्मुः ॥ ३०
धाराभिधौताङ्गमलाः सुलेश्याः खद्योतमालारचितात्ममालाः ।
विद्युल्लतावेष्टनभूषिताङ्गाः प्रज्ञाङ्गरागात्युपभोगशक्ताः ॥ ३१
हेमन्तकाले धृतिबद्धकक्षा दिगम्बरा ह्यभ्रवकाशयोगाः ।
हिमोत्करोन्मिश्रितशीतवायुं प्रसेहिरेऽत्यर्थमपारधैर्याः ॥ ३२
अस्पर्शयोगा मलदिग्धगात्राः प्रसारणाकुञ्चनकम्पहीनाः ।
उच्छ्वासनिःश्वासनिमेषलक्ष्याः[2] संतस्थिरे स्थाणुरिवाप्रकम्प्याः
भूतैः प्रभूतैः सपिपाससंघैः सडाकिनीभिः पिशिताशनीभिः ।
घोरैः पुनर्भीमरवानुकारैस्ते निश्चला[3] तस्थुरमा श्मशाने ॥ ३४
अस्नानभूरिव्रतयोगभाराः स्वेदाङ्गमासक्तरजःप्रलिप्ताः ।
निदाघसूर्याभिमुखा नृसिंहा व्युत्सृष्टगात्रा मुनयोऽभितस्थुः ३५
ऊर्ध्वा[4] दिवार्के प्रदहत्यभीक्ष्णं पार्श्वे च वायौ पुरुषेऽतिवाति[5] ।
अधः पुनस्तप्तमहाशिलासु स्थित्वा प्रदेकुर्घनकर्मकक्षम्[6] ॥ ३६
निदाघतीक्ष्णार्ककरप्रहारानुरस्स्वथादाय निरस्तपापाः ।
अस्तं प्रयाते च रवौ यतीशाः पराङ्मुखेरा विवनेवतेरुः[7] ॥ ३७

---

१ म °नादिकासु. २ क °लक्ष्या. ३ [निश्चलं]. ४ [ऊर्ध्वं]. ५ क पुरुष°. ६ म प्रसेदेकुर्घन°, [प्रदेहुर्घन°]. ७ [विवरेऽवतेरुः].

विशिष्टवातातपवर्षतृष्णाः क्षुद्व्याधिरोगारतिरोषणानि ।
प्रसेहिरे कर्मरजःक्षपाय महर्षयो मन्दरजःप्रकम्प्याः ॥ ३८
वीरासनस्वस्तिकदण्डशय्याः पल्यङ्कवज्रोत्कुटिकासना ये ।
स्थानव्रता मौनपराश्च धीरा महाद्रिकुक्षिष्वभिरेमिरे ते ॥ ३९
एवं तपःशीलगुणोपपन्ना व्रतैरनेकैः कृशतामुपेताः ।
अभग्नचर्याः स्थितसत्त्वसारास्तेपुः सुतीव्राणि तपांसि शूराः ४०
निवृत्तलोकव्यवहारिणस्ते जिनेन्द्रवाक्यानुनयप्रवीणाः ।
धर्मानुरागोद्यतधीरचर्या ध्यानैकतानाः सततं बभूवुः ॥ ४१
तपोभिरापीडितसर्वगात्रा महर्षयो निश्चलमानसास्ते ।
पुरात्मसंक्रीडितकामभोगान्न चैव कांश्चिन्मनसा विदध्युः ॥ ४२
एकान्तशीला विगतान्तरौद्राः प्रशान्तरागाः श्रुतवीर्यसाराः ।
ध्याने पुनस्ते खलु धर्मशुक्ले दध्युः शुभे पापविनाशनाय ॥ ४३
जितेन्द्रियाश्च व्रतभूषिताङ्गाः क्षमाबलास्ते धृतिबद्धकक्षाः ।
दयार्थमेव प्रगृहीतसत्या महीं विजह्रुः समसौख्यदुःखाः ॥ ४४
ग्रामैकरात्रं नगरे च पञ्च समूषुरव्यग्रमनःप्रचाराः ।
ते किंचिदप्यप्रतिबाधमाना विहारकाले समिता विजह्रुः ॥ ४५
नैकप्रकाराकृतिजन्तुमालां चंचूर्यमाणां वसुधां मुनीन्द्राः ।
पीडां परप्राणिषु नैव चक्रुः पुत्रेषु मातेव दयालवस्ते ॥ ४६
यस्मिंस्तु देशेऽस्तमुपैति सूर्यस्तत्रैव संवासमुखा बभूवुः ।
यत्रोदयं प्राप सहस्ररश्मिर्यातास्ततोऽथा पुरि वाप्रसंगाः ॥ ४७
यत्रार्हतां जन्मपुराण्यभूवन्प्रव्रजुर्यत्र च लोकनाथाः ।
यत्रैककैवल्यमभूदतुल्यं यत्रास निर्वाणमृषीश्वराणाम् ॥ ४८

१ [ततो वायुरिवाल्पसंगाः].

तांस्तांश्च देशानथ संविहृत्य विशुद्धवाक्कायमनःप्रयोगाः ।
समीक्षमाणाश्च तपोवनानि ववन्दिरे दुष्कृतपावनानि ॥ ४९
शय्यासनस्थानगतिक्रियासु निष्ठीवनोत्सर्गविधिष्वमूढाः ।
आदाननिक्षेपणभोजनेषु जन्तूञ्जरक्षुः क्रियया समेताः ॥ ५०
नैष्ठुर्यपारुष्यनिरर्थकानि कार्कश्यपैशून्यविकारवन्ति ।
मर्मप्रहाराणि वचांसि वाचा न भाषमाणा यतयो विजह्रुः ॥५१
ससिंहविक्रान्ततवज्रमध्यान्भद्रोत्तरांश्चाम्लविवर्जितानि ।
चान्द्रायणाख्यप्रमुखानि सम्यगुपोषुरन्यानि च सत्तपांसि ॥५२
ते पारणां कर्तुमथ प्रविश्य बाह्यात्पुरस्य प्रतिसंनिवृत्ताः ।
कदाचिदन्तर्नगराच्चरुष्काद्[1]रथ्याप्रदेशात्त्रिकतश्च याताः ॥ ५३
एकान्तभिक्षां प्रविलभ्य याता भिक्षात्रयेण प्रतिमानिवृत्ताः ।
गृहेषु सप्तस्ववगुह्य केचिद्ग्रासार्धतोऽर्धोदरिणः प्रयाताः ॥ ५४
ग्रामान्तरोद्यानवनान्तरे च प्रथान्तरे[2] घोषवति प्रदेशे ।
शिलान्तरे सैन्यनिवेशने च कान्तारदेशे जगृहुश्च भिक्षाम् ॥५५
संत्यज्य मृष्टाशनपानखाद्यं स्वाद्यानि वर्णेन्द्रियवर्धनानि ।
तपोऽभिवृद्ध्यै रसहीनमन्नं प्राभुञ्जताहं न च रात्रिभागे ॥ ५६
उत्पादनं चोद्गमनं सदोषं संयोजनं क्रीडकृतं पुराणम् ।
अज्ञातमन्नं हरितं त्वदृष्टं विवर्जितं तन्मुनिभिस्त्वयोग्यम् ॥ ५७
अस्वादुकं निर्लवणं विशुद्धं स्निग्धं च रूक्षं विरसं विवर्णम् ।
अशीतलं वाथ सुशीतलं वा ववल्गिरे तच्च तपोऽभिवृद्ध्यै ॥५८
प्रतप्तलोहे पतितोऽम्बुबिन्दुर्यथा क्षयं तत्क्षणतोऽभ्युपैति ।
तथा विलिल्ये यतिभिः प्रभुक्तं कदन्नमप्यल्पतया शरीरे ॥ ५९

१ [°चतुष्का°]. २ [पथान्तरे].

अक्षस्य संरक्षणमात्रमन्नं ते भुञ्जते प्राणविधारणाय ।
प्राणाश्च ते धर्मनिमित्तमेव धर्मश्च निश्रेयसलब्धये सः ॥ ६०
सामान्यसत्काञ्चनशत्रुमित्रा मानावमानेषु समानभावाः ।
लाभे त्वलाभे सदृशा प्रयोगास्ते वीरचर्या यतयो बभूवुः ॥६१
अखण्डचारित्रमहाव्रतानामगूढवीर्योरुपराक्रमाणाम् ।
स्वकार्यसंपादनतत्पराणां कुतोऽपि नासीत्तपसि प्रसंगः ॥ ६२
तेषामृषीणां निरपेक्षकाणामनेकयोगव्रतभूरिभासाम् ।
क्लेशक्षयायैव समुत्थितानां तपोऽभिवृद्धिर्महती बभूव ॥ ६३
चतुर्थषष्ठाष्टमपक्षमासाचन्द्रायणाद्यैरुपवासयोगैः ।
आतापनैरभ्यवकाशवासैः सवृक्षमूलैः प्रतिमाप्रयोगैः ॥ ६४
तपोभिरत्युग्रतमैरुदारैः सत्त्वानुकम्पाव्रतभावनाभिः ।
संकल्प्यसंवर्धितधर्मरागैः कर्माणि तेषां तनुतामुपेदुः ॥ ६५
कर्मस्तनुत्वं गतवत्सु तेषु महात्मनां सद्यशसां तपोभिः ।
गते पुनर्वर्षशते यतीनामृद्धिप्रवेका विविधा बभूवुः ॥ ६६
महर्द्धिभिर्नैकविधा निरीशा दुरासदाभिर्नृसुरासुरैश्च ।
प्रत्यक्षविज्ञानविभूतिभिश्च प्रभावयां जैनमतं बभूव ॥ ६७
अर्हत्प्रणीतागमदृष्टिसत्त्वाः सहेतुदृष्टान्तवचःप्रगल्भाः ।
नयप्रमाणप्रणिधिप्रवीणा विवादिनां वादमदं विनिन्युः ॥ ६८
केषांचिदक्षीणमहानसत्वं क्षीराश्रवत्वं वरकोष्ठबुद्धिः ।
संभिन्नता बीजपदानुसारा देवर्द्धिरिष्टैः सगुणैरुपेताः ॥ ६९
केषांचिदामर्शनमात्रमेव तथा परेषामथ विप्लुषस्तु ।
क्ष्वेलामलाश्चैव तपोधनानां सर्वं च भैषज्यमभूत्परेषाम् ॥ ७०

१ [सदृशप्रयोगा°]. २ म °मनूढ°. ३ [संकल्प°]. ४ [तनुतामुपेयुः]. ५ [कर्म स्वणुत्व]. ६ क क्षेला°.

केचिज्जले पुष्पदले च केचित्फलेषु पत्रेषु मरुस्थलेषु ।
श्रेण्यां च तन्तावथ जङ्घया च प्रयान्ति सम्यक्तपसः प्रभावात्
केचिद्बभूवुर्द्विमहातपस्का उग्रैश्च दीप्तैश्च महातपोभिः ।
घोरैस्तथा घोरपराक्रमाश्च तपोऽधिकध्यानपराः कृतार्थाः ॥ ७२
विशिष्टनानर्द्धिगुणोपपन्ना महर्षयः क्षान्तिदयासमेताः ।
निदर्शनं तद्यभवत्परेषां धर्मार्थिनां भव्यजनोत्तमानाम् ॥ ७३

इत्येवं श्रुतविभवा महर्षयस्ते
सच्छीलव्रतगुणभावनाभिरिक्ताः[1] ।
त्यक्ताशाः स्थितमतयः प्रशान्तदोषा-
स्तीर्थानि प्रवरधियो बभूवुरुर्व्याम् ॥ ७४
संक्षेपात्पृथुयशसां तपांसि तेषां
प्रोक्तानि प्रथितमहागुणोदयानाम् ।
भूयोऽपि क्षितिपतियोषितां तपांसि
राजर्षेरमितगुणस्य चाभिधास्ये ॥ ७५

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
महर्षीणां तपोविधानवर्णनो नाम
त्रिंशतितमः[2] सर्गः ।

---

१ [°भिरक्ताः]. २ [त्रिंशत्तमः].

[एकत्रिंशः सर्गः]

नरेन्द्रपत्न्यः श्रुतिशीलभूषा निर्वेदसंवर्धितधर्मरागाः ।
विशुद्धिमत्यः प्रतिपन्नदीक्षास्तदा बभूवुः परिपूर्णकामाः ॥ १
दीक्षाधिराज्याश्रियमभ्युपेता अनर्घ्यसत्संयमरत्नभाजः ।
प्रीतिं परां प्रापुरदीनभावा दारिद्र्ययोषा इव रत्नलाभात् ॥ २
अर्थाननर्थप्रतिमान्विधिज्ञाः विषोपमांस्तान्विषयान्विदध्युः ।
ता मेनिरेऽरीनिव सापरायांस्तत्त्वार्थदृष्ट्याहतधर्मरागाः ॥ ३
व्रतानि शीलान्यमृतोपमानि दयादमौ मातृपितृत्वतुल्यौ ।
गुणान्विशिष्टान्वरभूषणेभ्यो ज्ञानं च दध्युर्नयनं तृतीयम् ॥ ४
ऐश्वर्यवीर्यद्युतिजातिवित्तैर्विज्ञानशिल्पैर्मदिरामदैश्च ।
पुरापि ता मुक्तिपथं प्रपद्य शान्ता बभूवुर्नरदेवपत्न्यः ॥ ५
तपोधनानामपितप्रभावा गणाग्रणी संयमनायिका सा ।
मुनीन्द्रवाक्याच्छ्रमणार्जिकाभ्यो दिदेश धर्मं च तपोविधानम् ॥ ६
ताश्च प्रकृत्यैव कलाविदग्धा जात्यैव धीरा विनयैर्विनीताः ।
आचारसूत्राङ्गनयप्रभङ्गानाधीयते स्माल्पतमैरहोभिः ॥ ७
महाबलानिन्द्रियकुञ्जरांस्तान् दर्पोच्छ्रितान्गर्वमदावलिप्तान् ।
वशं प्रपन्नान्विवशं प्रणिन्युर्बुद्ध्यङ्कुशैः क्षान्तिशिलानिशातैः ॥ ८
अनर्थसंपादनशक्तिमान्यो मनोमहादण्डधरो महात्मा ।
दूरंगमः प्रेरयितेन्द्रियाणां ताभिर्जितो मोहनृपाग्रयायी ॥ ९
वाक्कायचित्ते प्रणिधेः प्रयोगं क्षणेऽपि पापास्रवहेतुभूतम् ।
अनर्थकं तत्त्रिविधं गुणिन्यो नोचुर्न चक्रुर्न हि संस्मरंश्च ॥ १०

---

१ [गुणान्विशिष्टान्], २ [°शिल्पैर्मदिरा°]. ३ म °नासका, [°नायिका]
४ क °निशास्त्रैः. ५ [°शक्तिमान्यो]. ६ क संस्मरश्च, [सस्मरुश्च].

गणाग्रभूषाः पृथुशीलभारा विच्छिन्नकामाङ्कुरपुष्पबीजाः ।
स्वशक्तितः संपरिगृह्य योगं तनूनि ताः कर्मरजांसि चक्रुः ॥११
उपोष्य पञ्चत्रिषडष्टरात्रं पक्षांश्च[1] मासानपि षट्चतुष्कान् ।
तपःकृशीभूतशरीरसंस्था आहारमाजह्रुरथाल्पमल्पम् ॥ १२
तपोऽग्निनिर्दग्धविवर्णदेहा व्रतोपवासैरकृशाः कृशाङ्ग्यः ।
विशीर्णवस्त्रावृतगात्रयष्ट्यस्ताः काष्ठमात्रप्रतिमा बभूवुः ॥ १३
पुरे वनेऽरातिजने जने वा मानापमानादिषु तुल्यभावाः ।
त्यक्तात्मसंगा निरवद्यचेष्टा धर्मानुरागा वसुधां विजह्रुः ॥ १४
यथा प्रसूता महतां कुलेषु यथैव वासन् भुवि राजपत्न्यः ।
यथैव विज्ञानपथं प्रपन्नास्तथैव शेप्तुः[2] सुतपांसि साध्व्यः[3] ॥ १५
अथैवमुक्तानि तपांसि तासां तपस्विनीनां वरशीलभासाम् ।
वराङ्गराजर्षितपोविधानं संक्षेपतस्तत्पृथगेव वक्ष्ये ॥ १६
विहाय राज्यश्रियमद्भुतश्रीस्तपःश्रियं संश्रयितुं कृताशः ।
निस्संगिनीं तां प्रतिपद्य दीक्षां जग्राह धीरः स महाव्रतानि १७
आचारमादौ समधीत्य धीमान्प्रकीर्णकाध्यायमनेकभेदम् ।
अङ्गानि पूर्वांश्च यथानुपूर्व्यामल्पैरहोभिः समुमध्यगीष्ट ॥ १८
विधूय संकल्परतिप्रसंगं जिनेन्द्रवाक्याधिगतार्थतत्त्वः ।
नानाविधानं प्रतिगृह्य योगं तपश्चकारोग्रतपा महात्मा ॥ १९
सज्ज्ञानमत्तद्विरदाधिरूढो दयातपत्रोत्तमपट्टचिह्नः ।
सद्ध्यानचापेरितशीलबाणैर्विव्याध मोहारिमवार्यधैर्यः ॥ २०
चारित्रजात्यश्वमथाधिरूढः स धर्मवर्मावृतगात्रभूषः ।
विज्ञानकुन्तेन हि कर्मशत्रुं निपातयामास यतिर्विभिद्य ॥ २१

१ [पक्षाश्च]. २ [तेपुः]. ३ म साध्यः. ४ म °वर्मामृत°.

पञ्चेन्द्रियैरप्रतिलब्धवीर्यं रागानिलप्रेरितधूमजालम् ।
संकल्प्य[1]संवर्धितकामवह्निं ज्ञानाम्बुकुम्भैः शमयांबभूव ॥ २२
सम्यक्त्वतुङ्गव्रतनेमिबद्धं शीलोपलोत्तेजित[3]तीक्ष्णधारम् ।
तपोरनु[4]ग्रं वरधर्मचक्रं जघान संगृह्य हि कामशत्रुम् ॥ २३
कषायचोरान्विषयारिवर्गान्परीषहान्तःपरिमन्थि[5]तश्च । परिपन्थिनश्च
निर्वेदखड्गेन बलान्निगृह्य[6] स खण्डशः कल्पितवाञ्छिताशः ॥ २४
उद्दामकामातिबलावलिप्तान्पञ्चेन्द्रियारण्यमतङ्गजांस्तान् ।
तपोऽर्गलैरप्रतिभिद्यरूपैः क्षमोरुवीर्यान्निरुरोध धीरः ॥ २५
स मानसानिन्द्रियदुष्टचोरान्सद्धर्मरत्नं प्रतिसंजिघृक्षुः ।
प्रज्ञातपःसंयमशृङ्खलाभिर्बबन्ध दुष्टानिव चोरवर्गान् ॥ २६
लोभोरुवैरान्सह रागभोगान्कामाशयान् क्रोधविषाग्रदंष्ट्रान् ।
इच्छास्फुटानिन्द्रियदुष्टसर्पान्दयाम्बुसेकैः शमयांबभूव ॥ २७ स्म
कूर्मो यथाङ्गानि निजे शरीरे स्पृष्टः पुनः संहरतेऽन्तरन्तः ।
तथैव संसारभयावकृष्टः स्वानीन्द्रियाण्यात्मनि संजहार ॥ २८
मोहातिरोगोद्भववातरोगं द्वेषाभिधानोद्भवपैत्तिकं च ।
तथैव हास्यानि च पञ्च धीमान्यमौषधैस्तान् शमयांबभूव ॥२९
कामोत्तरङ्गं रतिवेगतोयं कषायफेनं विषयोरुमत्स्यम् ।
अगाधसंसारमहार्णवं तं विशोषयामास तपोबलेन ॥ ३०
त्रिगुप्तिधारेण दया[7]प्रभासा चारित्रवेगातिसमीरितेन ।
सम्यक्त्ववज्रेण निहत्य धीमान्विचूर्णयामास स कर्मशैलम् ३१
अज्ञानतुम्बं विषयोरजानि मोहाभिरागप्रतिबद्धनेमिम् ।
कषाय[8]कृष्णायमतीक्ष्णधारं संसारचक्रं समनुर्जिगाय (?) ॥ ३२ ग्र

१ [सकल्प°]. २ क पापवह्निं. ३ म शीलोपलात्तोजित°. ४ [तपोरणोग्र]. ५ [°परिपन्थिनश्च]. ६ क बलान्विगृह्य. ७ म °प्रभासौ. ८ क °कृष्ण°.

कषायवृक्षं विषयोरुकक्षं रागाम्बुसंवर्धितवल्लिगुल्मम् ।
ददाह संसारमहाटवीं[1] तां तपोऽग्निना निष्कलुषान्तरात्मा ॥ ३३
यथा पुराभ्यन्तरदुष्टराशिं समूलका [ं] विधिना चकार । ब
तथा कषायप्रमुखान् दुरन्तान् धीरः समूलोद्धरणं चकार ॥३४
सम्यक्त्वचारित्रतपस्त्रिशूलैर्ध्यानावलीनो निशितैः सुतीक्ष्णैः ।
मनोवचःकायघनीकृतानि बिभेद मिथ्यापटलानि तानि ॥ ३५
क्रोधं ज्वलन्तं कृपया जिगाय मानं जिगायाप्रतिमार्दवेन[2] ।
मायामृजुत्वेन जिगाय धीमान् लोभं विमुक्त्या मतिमान्विजिग्ये
शैलाग्रदुर्गान्तरकन्दरेषु नैवैरगम्येषु[3] च काननेषु ।
नदीतटस्थद्रुमकोटरेषु वने पितॄणामवसत्कदाचित् ॥ ३७
उद्यानमुत्कृष्टगृहान्तराणि तपोधनानां च पुनर्निवासान् ।
महाटवीं व्यालमृगाभिजुष्टां कदाचिदेको न्यवसन्नृसिंहः ॥ ३८
सद्ध्यानचारित्रतपःप्रकर्षैः प्रशान्तरागः प्रविधूतपाप्मा ।
विधिज्ञदेशे निरुपद्रवे च ज्ञानोपयोगं स मुनिश्चकार ॥ ३९
कदाचिदन्यैर्मुनिभिः प्रशान्तैः श्रुतार्णवान्तर्गतवद्भिरार्यैः ।
तपोऽधिकैर्धर्मधुरंधरैश्च सहोपविष्टः सुविशुद्धचेताः ॥ ४०
कदाचिदुन्मार्गनिरञ्जितानां दुर्वृत्तदुर्भाषणतत्पराणाम् ।
मिथ्यामहामोहतमोवृतानां चित्तप्रसादाय दिदेश धर्मम् ॥ ४१
कल्याणभाजां स कदाचिदीशो भव्यात्मनां भावितसत्कृतीनाम्
सद्धर्ममार्गश्रवणप्रियाणां हितोपदेशं प्रचकार धीमान् ॥ ४२
कदाचिदन्तर्गतशुद्धभावो विचित्रपञ्चेन्द्रियरागबन्धः[4] ।
आस्थाय मौनव्रतमप्रकम्प्यस्तस्थौ स रात्रिप्रतिमामभीक्ष्णम् ४३

१ [°महावनं तत्]. २ म °मार्दनेन. ३ [नरैरगम्येषु]. ४ [बद्धः].

कदाचिदुत्कृष्टतपःप्रभावो विविक्तदेशे स चतुर्दिनानि ।
चतुर्मुखस्थानगृहीतयोगं निनाय निष्कम्पधृतिर्महात्मा ॥ ४४
कदाचिदुच्छृङ्गमहागिरीणां सूर्यांशुभिस्तप्तमहाशिलासु ।
प्रलम्बहस्तः समपाददृष्टिस्तस्थौ महर्षिः स्वरजःक्षयाय ॥ ४५
कदाचिदाघूर्णितमण्डलानां सविद्युतां प्रक्षरतां घनानाम् ।
धाराभिधौताचलगात्रयष्टिस्तस्थौ महर्षिः स्वरजःक्षयाय ॥ ४६
कदाचिदाघूर्णितमण्डलानां सविद्युतां प्रक्षरतां घनानाम् ।
धाराभिधौताचलगात्रयष्टिस्तस्थौ रजन्यां स घनागमेषु ॥ ४७
गृही [४८]² ग्योभ्यवकाशयोगो प्रवाति वातायति शीतले च। ॥
तुषारपातातिविरूक्षिताङ्गः कदाचिदासैकमनःप्रविष्टः ॥ ४८
कदाचिदत्यर्थमहोपवासैश्चान्द्रायणाद्यैः प्रथितैरनेकैः ।
कृशीकृताङ्गो नियमैर्यमैश्च मुनिः प्रचक्रे सुतपोऽतिघोरम् ॥ ४९
जिनेन्द्रसूत्रोक्तपथानुचारी संयम्य वाक्कायमनांसि धीरः ।
सुदुर्धरं कापुरुषैरचिन्त्यं द्विषट्प्रकारं तप आचचार ॥ ५०
प्रसन्नभावात्तपसः प्रकर्षात्क्षमान्वितः स्वादशुभप्रणाशात् ।
अखण्डचारित्रवतो महर्षेरुत्पेदिरे तस्य हि लब्धयस्ताः ॥ ५१
सर्वौषधित्वं च महातपस्त्वं क्षीरास्रवत्वं च सचारणत्वम् ।
सुलभ्य लोकातिशयान्गुणौघान्सुखं विजहे भुवि वीतशोकः ॥५२
समाप्तयोगैः परिपक्षविद्यैर्विहर्तुकामैरविषण्णभावः ।
दयात्मभिः साधुगणैरनेकैः क्षितिं विजहे स्वतपोऽभिवृद्ध्यै ५३
क्षान्त्या च दान्त्या तपसा श्रुतेन ऋद्ध्या च वृत्त्या व्रतभावनाभिः
प्रकाशयामास जिनेश्वराणां स शासनं शासनवत्सलत्वात् ॥५४

१ क वाराभि°. २ क (°तयो°), [गृहीतयोग्या°]. ३ [वायावति°].
४ म °प्रमाणात्, [क्षमान्वितत्वादशुभ°].

पुराणि राष्ट्राणि मटम्बखेटान् द्रोणीमुखान्खर्वडपत्तनानि ।
विहृत्य धीमानवसानकाले शनैः प्रपेदे मणिमत्तदेव ॥ ५५
तैः संयतैः सागरवृद्धिमुख्यैर्यथोक्तचारित्रतपःप्रभावैः ।
संन्यासतस्त्यक्तुमनाः शरीरं वराङ्गसाधुर्गिरिमारुरोह ॥ ५६
आरुह्य तं पर्वतराजमित्थं तपस्विभिः सार्धमुपात्तयोगैः ।
निर्वाणभूमौ वरदत्तनाम्नः प्रदक्षिणीकृत्य नमश्चकार ॥ ५७
पवित्रचित्तो गतरागबन्धः पल्यङ्कतस्तत्र निषद्य धीमान् ।
कृताञ्जलिः साधुगणान्समग्रान्क्षमध्वमित्येवमुवाच वाचम् ॥५८
अस्नानकण्डूव्रतमण्डिताङ्गैः प्रपण्डितैः पण्डितसाधुवर्गैः ।
प्रायोपयानं कृतवान्सहैव स पण्डितः पण्डितमृत्युमिच्छन् ॥ ५९
आजीवितान्तादशनादिभेदान्संसारसंवर्धनहेतुभूतान् ।
विहाय धीरः स तु मोक्षकाङ्क्षी कृतप्रतिज्ञः सुखमास तत्र ॥६०
अभ्यन्तरं बाह्यमपि प्रसंगं विमुच्य संक्लेशपदं सुधीमान् ।
द्वन्द्वैर्विमुक्तोऽप्रतिकारदेह आसीन्मुनिः संयमधाम्नि तस्मिन् ६१
स्वजीविताशां मरणानुरागं विहाय मित्रेषु ममत्वसंज्ञाम् ।
स चानुबद्धं वनिताकदम्बमभून्मुनिर्मुक्तिपथैकचेताः ॥ ६२
प्रणम्य पूर्वं तमरिष्टनेमिमरिष्टकर्माष्टकपाशमुक्तम् ।
शेषान् जिनेन्द्रानपि च प्रणम्य यथावदालोच्य मुनिः स तेभ्यः
उदन्मुखस्त्यक्तशरीरचेष्टः प्रसन्नबुद्धिः शमितान्तरात्मा ।
आराधनां तां च चतुष्प्रकारामाराधितुं प्रारभतानुसूत्रम् ॥ ६४
ज्ञानाश्रितां दर्शनकारिणीं च बहुप्रकारोग्रतपःश्रितां च ।
चारित्रभेदोपनिबन्धिनीं च प्रचक्रमे कर्तुमनुक्रमेण ॥ ६५

काले प्रधानैर्विनयप्रधानैस्सन्माननाचिह्नवशप्रयोगैः ।
ग्रन्थार्थयोरप्युभयप्रयोगैः साराधना ज्ञानविधिप्रणीता ॥ ६६
संध्यामहीकम्पतटित्प्रचारपर्वादिनिन्द्येषु च दुर्विनीताः ।
अध्यापनं चाध्ययनं च भूयो व्याम्रेडिताद्याः प्रतिपत्प्रदोषाः ६७
जीवादयो मोक्षपदावसाना भूतार्थतो येऽधिगताः पदार्थाः ।
नयप्रमाणानुगतक्रमेण सम्यक्त्वसंज्ञामिह ते लभन्ते ॥ ६८
अपोह्य शङ्कां विचिकित्सतां च काङ्क्षां निराकृत्य च वत्सलत्वम्
अमूढतास्थापनभावने च सद्दृष्टिलिङ्गान्युपगूहनं च ॥ ६९
शङ्का च काङ्क्षा मतिविप्लुता च परस्य दृष्टेरपि च प्रशंसा ।
भूयः सदानायतनस्य सेवा पञ्चातिचाराः खलु दर्शनस्य ॥७०
नित्याविरोध्युत्तमसंयमस्य खेदो महावाक्तनुमानसानाम् ।
पूर्वार्जितक्लेशविनाशहेतुस्तपः समुद्दिष्टमनाविलं च ॥ ७१
तद्द्विप्रकारं मुनिभिः प्रदिष्टं सान्तर्बहिर्भेदविशेषयुक्त्या ।
आध्यात्मिकं भेदमुपैति षोढा बाह्यं पुनः षड्विधमामनन्ति ७२
बहुप्रकारं हि तपोविधानं तद्विद्यमानाशयशुद्धिहेतोः ।
न्याय्यं हि दोषान्यतमप्रकोपे विशेषभैषज्यविधानदृष्टम् ॥ ७३
रागात्मकानामुपवासयोगाद्द्वेषान्वितानां च विविक्तवासैः ।
षोढान्वितानां मुनिभिः प्रणीतो ज्ञानोपयोगः सततं तपस्त्वम् ७४
महाव्रतान्यप्रतिमानि पञ्च पञ्चैव सम्यक्समितिप्रयोगाः ।
त्रिगुप्तयो या अवशं विधात्र्यश्चारित्रमेतत्सकलं मुनीनाम् ॥ ७५
ईर्यासमादाननिसर्गयत्नो वाणीमनोगुप्तिरपि प्रकाशे ।
अनिन्द्यभुक्तिः प्रथमव्रतस्य ता भावनाः पञ्च मुनिप्रणीताः ७६

---

१ म न्यायं. २ म °दृष्टौ. ३ [°वासयोगो]. ४ म विभक्तावित्तः. ५ [मोहान्विताना].

क्रोधस्य लोभस्य भयस्य चापि हास्यस्य चात्यन्तमपोहनं च ।
वाचः प्रयोगोऽप्यनुवीचियुक्त्या पञ्चैव सत्यव्रतभावनास्ताः ७७
आदाय वक्रानुमतिस्तथैव[1] तस्मिन्नसंगोऽपि च मुक्तिसेवा[2] ।
सधर्मणश्चानुगृहीतिरेवमाहुस्तृतीयव्रतभावनास्ताः ॥ ७८
स्त्रीरूपसंदर्शनसंकथानां तदाकुलावासरतिस्मृतीनाम् ।
त्यागः प्रणीतः सरसस्य चापि ता भावना ब्रह्ममहाव्रतस्य ७९
मनोहरेष्वप्यमनोहरेषु मुनेरसंकल्प्यसमा मतेषु ।
शब्दादिषु स्यात्समवृत्तिचेतस्ता भावनाः पञ्चमसङ्गतस्य ॥ ८०
विसर्जनीयान्यथ वर्जयित्वा गुणानुपादाय यथाक्रमेण ।
ज्ञानोपयोगात्प्रशमेन तेन ज्ञानं समाराधितमात्मशक्त्या ॥ ८१
तथाभिचारातपनीयं[3] सर्वं तद्भावनाश्चापि सुसाधयित्वा ।
नित्योपयोगोऽस्खलितैकदृष्टिः सम्यक्त्वमाराधितवान्यथार्थम् ॥
अध्यापकं चापि ततः पुरस्तात्कृत्वानुपूर्वोत्तरवर्धितं तत् ।
विजित्य सर्वान्स परीषहारींस्तपः समाराधितवान्महात्मा ॥८३
सभावनात्युग्रमहाव्रतानि रक्षन्स यत्नात्समितः समित्या ।
त्रिगुप्तिगुप्तो विगतप्रमादश्चारित्रमाराध्य यथोपदिष्टम् ॥ ८४
संहृत्य सर्वाण्यपि गोचराणि तथेन्द्रियाण्यात्ममनश्च तेभ्यः ।
अचिन्तयन्द्वादश[4] चिन्तनीयान्याराधनोत्कर्षगतो यतीशः ॥ ८५
संध्यातडिद्वह्निशिखाम्बुदोर्मि[5] तृणाग्रलग्नाम्बुकणश्रियं च ।
समाश्रितानीह च जीवितानि नृणामिति प्राहुरनित्यतायाः ॥ ८६
व्यादारितास्ये सति यत्कृतान्ते[6] न प्राणिनां प्राणमिहास्ति किंचित् ।
मृगस्य सिंहोग्रनिशातदंष्ट्रा यत्र प्रविष्टात्मतनोरिवात्र ॥ ८७

१ [°मतिं तथैव]. २ म मुक्तिसेवा. ३ [तथातिचारानपनीय सर्वान्]. ४ [अचिन्तयद्द्वादश°]. ५ क °तटिद्. ६ [कृतान्ते]. ७ [त्राण°].

जातौ तिरश्चामथ देवभावे मानुष्यके नारकदुःखयोनौ ।
जीवो घटीयन्त्रमिवास्वतन्त्रो बंभ्रम्यते संसृतिकल्पनैषा ॥८८
द्वन्द्वत्रयव्याप्तिषु सर्वकालमेकोऽयमात्मा स्वकृतोपभोगी ।
आध्यात्मिकं बाह्यमिहापि वस्तु न किंचिदस्त्यत्र विचिन्तनीयम् ॥
देहात्मनो भेदविकल्पनायां संज्ञादिभेदं स्फुटमन्यथात्वम् ।
विद्वानथैकं कथमत्र कुर्यात्संगं पुमान्भङ्गिनि कः शरीरे ॥ ९०
स्थानेन बीजेन तथाश्रयेण शश्वन्मलस्यन्दनसंप्रयोगात् ।
शरीरमावेदशुचीति मत्वा शुचित्वमस्मिन् विदुषा न कार्यम् ९१
आत्मा नु चेतोविवरेण तेन गृह्णात्ययं कर्म सहेन्द्रियेण ।
तथाम्बु नः छिद्रमतिस्तथैव प्रयोग एवं परिचिन्तनीयः ॥ ९२
संस्तम्भ्य चेतोविवरं यथावत्तथेन्द्रियद्वारमथो पिधाय ।
स्यात्संवृतस्याश्रवसंनिरोधो नावौ यथा वारिणि संवृतायाम् ९३
यथापि दुर्वह्निशिखाभिमर्शान्निमेषमात्रेण सभस्मता स्यात् ।
तपोबलात्प्राक्तनकर्महानिस्तथा मुनेः सा खलु निर्जरोक्ता ॥९४
लोके द्विधा कारणकार्यभावैरुत्पादभङ्गस्थितिसंप्रयुक्तः ।
पञ्चास्तिकायात्मकसंनिबद्धो विचित्ररूपस्त्विति लोकचिन्ता ९५
अनन्तशः संसरतोऽस्य जन्तोः सुदुर्लभा बोधिरिति प्रचिन्त्य ।
तां प्राप्य तस्मिन्न खलु प्रमादः कर्तव्य इत्येव हि बोधिभिक्षा॥
यत्प्राणिनां जन्मजरोग्रमृत्युर्महाभयत्रासनिराकृतानाम् ।
भैषज्यभूतो हि दशप्रकारो धर्मो जिनानामिति चिन्तनीयम् ९७
इत्येवमाद्या अनुचिन्तनीयाः प्रोक्ता यथार्थाः क्रमशो विचिन्त्य ।
प्रसन्नचेता विनिवृत्ततृष्णः समाहितः संयतवाक्प्रचारः ॥ ९८

१ [नौश्छिद्रवती तथैव]. २ [नावो यथा वारिविसंवृतायाः]. ३ [लोको]. ४ [बोधिचिन्ता].

मध्ये ललाटस्य मनो निधाय नेत्रभ्रुवोर्था[1] खलु नासिकाग्रे ।
एकाग्रचिन्ता प्रणिधानसंस्था समाधये ध्यानपरो बभूव ॥ ९९
संसारनिस्सारमपारतीरं[2] त्रिलोकसंस्थानमनादिकालम् ।
द्रव्याणि च द्रव्यगुणस्वभावान्स चिन्तयामास यतिर्यथार्थम् ॥
एकस्तु मे शाश्वतिकः[3] स आत्मा सद्दृष्टिसज्ज्ञानगुणैरुपेतः ।
शेषाश्च मे बाह्यतमाश्च भावाः संयोगसल्लक्षणलक्षितास्ते ॥ १०१
संयोगतो दोषमवाप जीवः परस्परं नैकविधानुबन्धि ।
तस्माद्विसंयोगमतो दुरन्तमाजीवितान्तादहमुत्सृजामि ॥ १०२
सर्वेषु भूतेषु मनः समं मे वैरं न मे केनचिदस्ति किंचित् ।
आशां पुनः क्लेशसहस्रमूलां हित्वा समाधिं लघु संप्रपद्ये ॥१०३
इत्येवमर्थान्बहुशो विचिन्त्य विधूय संकल्पमनल्पबुद्धिः ।
तपःकृशीभूतशरीरबन्धो महामुनिर्मासमथाध्युवास ॥ १०४
कृत्वा कषायोपशमं क्षणेन ध्यानं तथाद्यं समवाप्य शुक्लम् ।
यथोपशान्तिप्रभवं महात्मा स्थानं समं प्राप वियोगकाले ॥१०५
त्रिगुप्तिगुप्तेन दृढव्रतेन द्वारं नयानं [ ]हितं[4] यथावत् ।
स्थितानि कर्माणि कृशीकृतानि तपःप्रभावान्मुनिसत्तमेन ॥१०६
स्थित्वापि सद्ध्यानपथे निरोधात्[5]कृत्वा च चारित्रविधिं यथावत् ।
कर्मावशेषप्रतिबद्धहेतोः[6] स निर्वृतिं नापदतो महात्मा ॥ १०७
परीषहारीनपरिश्रमेण जित्वा पुनर्वान्तकषायदोषः ।
विमुच्य देहं मुनिशुद्धलेश्यः[7] आराधयन्तं[8] भगवाञ्जगाम ॥ १०८

१ [नेत्रभ्रुवोर्वा]. २ [निस्सारसंसारमपार°]. ३ म शास्वतकः. ४ [पिहितं]. ५ क निरोधो. ६ [प्रतिबन्ध°]. ७ [मुनिरुच्च°, सुविशुद्ध°]. ८ [आराधनान्तं].

यथैव वीरः प्रविहाय राज्यं तपश्च सत्संयममाचचार ।
तथैव निर्वाणफलावसानां लोकप्रतिष्ठां सुरलोकमूर्ध्नि ॥ १०९

शेषाश्च सर्वे जितरागमोहा
महाधियः संयतपुङ्गवास्ते ।
सज्ज्ञानचारित्रतपःप्रयोगाद्
विशुद्धलेश्याः सुरलोकमीयुः ॥ ११०

अनन्तरं केचन वैजयन्तं
ग्रैवेयकं ह्यारणमच्युतं च ।
माहेन्द्रकल्पं च ययुर्यतीशाः
सुरर्षयो ज्ञानपरायणास्ते ॥ १११

जिनेन्द्रपूजारतयः प्रकृत्या
विशुद्धसम्यक्त्वधियः प्रकृत्या ।
विशुद्धसम्यक्त्वधियः सुलेश्या
लोकान्तिकाः केचन संबभूवुः ॥ ११२

महेन्द्रपत्न्यः श्रमणत्वमाप्य
प्रशान्तरागाः परिणीतधर्माः ।
दयादमक्षान्तिगुणैरुपेताः
स्वैः स्वैस्तपोभिस्त्रिदिवं प्रजग्मुः ॥ ११३

इत्येवं नरपतिना वराङ्गनाभ्या
यत्प्राप्तं सुखदुःखमप्रचिन्त्यम् ।
राज्यान्ते कृतमिह सत्तपश्च तेन
तत्सर्वं परिकथितं मया समासात् ॥ ११४

तद्भक्त्या चरितमिदं मुनीश्वरस्य
श्रीकीर्तिद्युतिमतिसत्त्वसंयुतस्य ।
संशृण्वन्परिकथयन्पठन्स्मरन्यः
सोऽवश्यं ध्रुवमतुलं पदं प्रयाति ॥ ११५

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते ।
स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वराङ्गचरिताश्रिते ॥
वराङ्गर्षेः सर्वार्थसिद्धिगमनं नाम
एकत्रिंशतितमः[1] सर्गः ।

सर्गसमाप्तिपातनिकोपेतग्रन्थप्रमाणमत्र (३८१९) ।
एकोनविंशत्यधिकाष्टशतयुता त्रिसहस्री ज्ञातव्या ॥

---

१ [एकत्रिंशत्तमः].

वराङ्गचरितपद्यानां वर्णानुक्रमसूची

अकारणक्रोधकषाय	६ २७	अथ जीवगणेषु	२४ २९
अक्षस्य सरक्षण	२० ६०	अथ ततो भवतो	२० ३७
अखण्डचारित्र	३० ६२	अथ त्वरा वास्ति	१६ १९
अग्निर्मुख वेद	२५ ७५	अथ नरपति	२० २०
अङ्गाश्च वङ्गा	१६ ३२	अथ प्रशस्ते	२३ १
अचञ्चल	१० ७	अथ भूमिपति	२४ १
अचलेन्द्रादध सप्त	५ ४	अथ यियासुरतुल्य	२० ४६
अजराम्बरहेम	२४ ७३	अथ युवनृपति	११ ८७
अज्ञातवश	१९ २९	अथर्जुना तेन	१२ ४०
अज्ञानतुम्ब	३१ ३२	अथ वृष्टिरकालतस्तु	२४ ३०
अज्ञानमूढा	३ ५५	अथ सर्वगत	२४ ५२
अज्ञानावृत	१५ ८३	अथ सर्वपदार्थ	२४ ४५
अणुव्रताना	११ ३६	अथ सर्वमिद	२४ ३८
अणुव्रतानि	१५ १११	अथागत	१३ ७८
अत इह मतिमन्ता	३ ६३	अथानयोर्व्याध	१४ ११
अतन्द्रिता	१० १५	अथान्यदा	१४ ७५
अतुलहर्षसमन्वित	२० ७६	अथान्यदानर्त	२८ १
अतुल्यनामा किल	२ ११	अथान्यदा वृद्धतमै	१९ १
अतो वयमिमा	१५ ५१	अथान्यदा सुखासीन	१५ १३६
अतो वरिष्ठा	२१ ६७	अथान्यदोद्यान	१४ ८१
अतो विशिष्टो	१२ ३७	अथामित त	१९ ५९
अत्युच्छ्रितै केतुभि	२९ ५२	अथावनीन्द्र स	२५ १
अत्राणाशाश्वता	१५ ३१	अथावनीश	१२ ४८
अथ गुणगण	१६ ११०	अथावनीशो	१७ १
अथ च धार्मिक	२० १	अथावशिष्टा	१८ ११०
अथ च युक्तिमदर्थ	२० २६	अथाष्टपञ्चाष्टक	२७ ५०
अथ जिगमिषुतां	२८ १०८	अथाष्टौ तानि	४ १०८

अथेतरे मान	११·८१	अधीत्य विद्याश्च	८·२४
अथेतरे वाजिगजा	१२·४५	अधोगतिश्च	५·११
अथेतरेऽप्यस्त्र	१७·७३	अधोऽधो नरका	५·१९
अथेन्द्रसेनश्च	१८·७३	अध्यापकं चापि ततः	३१·८३
अथेन्द्रसेनस्य	१७·४३	अनङ्गमुक्तः स	१९·४१
अथेन्द्रसेनस्य	१८·४७	अनन्त सर्वमाकाशं	५·१
अथैकमत्तद्विरदस्य	१६·४१	अनन्तनाम्ने	२१·५६
अथैवमुक्तश्च	२१·५३	अनन्तपर्ययं द्रव्यं	२६·२
अथैवमुक्तानि	३१·१६	अनन्तरं केचन	३१·१११
अथैवमुक्ता	१३·३५	अनन्तशः संसरतो	३१·९६
अथैवमुर्वीपति	१६·१	अनन्यदृष्टित्वम्	२२·३१
अथैवमुर्वीपतये	६·१	अनन्यनाथा विमतीः	२८·८७
अथैवमुर्वी तु	२१·९	अनर्थकैः किं	१६·३०
अथैव तिरश्चा	६·५४	अनर्थसपादन	३१·९
अथोत्तमपुरे	१५·१	अनागतं कार्य	१२·१९
अथोत्तरीयं	१२·४७	अनागसामप्यपराध	८·३१
अथोत्थाय	१०·६४	अनादिनिधने	२६·११
अथोत्थाय मुनीन्द्रस्य	१५·१३२	अनाद्यनिधनाः	२६·९
अथोपलब्ध	१५·३९	अनाप्तचर्यागम	२२·४९
अथोभयोच्छिन्न	१८·८३	अनामयं	१०·६
अथोभयोर्भूपतयो	१८·६८	अनार्यभावैः	२२·४८
अथो ह्युपस्थान	१६·२२	अनित्यभावं हि	२८·३१
अदीनसत्त्वान्	२९·३९	अनिलाहतवृद्ध	२४·५९
अदूरतस्तं	२१·७७	अनुज्ञया तस्य	२२·२६
अदूरतः साधु	३·३३	अनुनिशम्य	२०·४०
अदेशकाले	२८·६५	अनुपरतमृदङ्ग	१·६९
अद्भिः पवित्रीकृत	२३·६९	अनुपायवती	२४·५५
अद्यापि तस्य	२५·२०	अनुप्रभाष्यैवम्	२१·७१
अधित्सवः केचन	३·२४	अनुभवन्विषयांश्च	२०·४

अनुव्रताना च	९·३०
अनेककोटयप्सरसा	२८·९१
अनेकजात्यन्तर	८·५
अनेकजात्यन्तर	१३·८
अनेकजात्यन्तर	२२·४०
अनेकदीपावलि	१०·३९
अनेकयुद्धप्रति	२३·७
अनेकयोनिष्वति	६·५१
अनेकविज्ञान	१३·३२
अनेकवेषो बहुदेश	१७·१८
अनेकसल्लक्षण	२·४
अनेकहस्त्यश्व	१७·२८
अनेकान्तोऽपि	२६·८२
अनेकोपद्रवाकीर्णो	५·८०
अन्तयुक्तप्रभा	५·१३
अन्तःप्रकोपात्	१७·६०
अन्तर्दधुर्गुल्म	१८·१०८
अन्तर्बहिश्चापि	२२·७३
अन्तर्मुहूर्त कथित	६·४४
अन्धो यथा	११·४२
अन्यच्च लोके	१९·२३
अन्याश्च सन्मान्य	१७·१०
अन्यार्थसंव्रीडन	१९·४७
अन्यायवृत्तिर्न	२८·१६
अन्ये च तेषा	२·७२
अन्येऽपि सामन्तनृपा	२९·८८
अन्ये पुनः प्राक्	३·२७
अन्योन्यगीत	७·६०
अन्योन्यदन्तास्तु	१८·१४
अन्योन्यनाम	१७·३
अन्योन्यमर्माणि	१८·४४
अन्योन्यमुक्तानि च	१८·५१
अन्योन्यसंप्रत्यय	१२·२४
अन्यो·यसंभाषण	१९·३७
अन्योन्यहस्तैः	२·३
अपक्वजम्बूफल	८·४७
अपनयाशु जड	२०·५७
अपरपक्षपराभव	२०·८१
अपराश्चेतना	१५·३७
अपरे सनिवृत्याशु	१५·४
अपहृते सुसुते	२०·६
अपातकत्वाच्च	२५·४२
अपात्रदानाश्च	७·४८
अपात्रदानेन	७·२९
अपास्य मिथ्यात्व	२९·८७
अपि च पर्वणि	२०·५५
अपेतनक्रो	१३·२१
अपेतभाग्यस्थिर	१४·७७
अपेतनिद्राक्षि	९·४७
अपेतसामानि वचांसि	१६·१५
अपोह्य शङ्का	३१·४९
अप्सरोभिश्चिरं	१५·२८
अबुद्धिमद्भिः	१२·२०
अबुधहृदय	२४·७७
अभव्यमिथ्यात्व	११·१३
अभूतपूर्वोत्तम	२·२७
अभूत्स्वयंभूः	२७·४६
अभूषणानादन	२८·१०४

अभेद्यमच्छेद्य १०·९
अभेद्यसत्त्वैः १०·१०
अभ्यन्तरं बाह्यमपि १०·१८
अभ्यन्तरं बाह्यमपि ३१·६१
अभ्यन्तरस्य नगरस्य १·३४
अभ्यर्ण एषोपि १६·६४
अभ्यर्णमायान्तम् १८·४०
अभ्यर्णयोगात् १७·६६
अभ्यागतं १२·२
अभ्यागतानाप्त २·४४
अभ्येत्य दूरादपि १६·८२
अमातिराष्ट्रं त्वजिताय २१·५७
अमात्यसेनापति ३·१४
अमात्यसेनापति २८·१२
अमेयवीर्यद्युति २८·३३
अयत्नतस्त्वं १४·५२
अयमिन्द्रसमो २४·१६
अयमेव महापन्थाः २६-६८
अयं च राजेन्द्र १६·६९
अयं विधिः १३·७
अयःपिण्डो जले ५·२९
अरण्यवासो न १२·५५
अरातिवर्गान् २९·३४
अरातिभिर्दुष्टतमैः २८·६७
अरिष्टनेमिर्मुनि २७·८८
अरिष्टनेमिर्वृषभो २७·९०
अरिष्टनेमिः किल २७·८५
अरिष्टनेमिर्वर ३·१
अरिष्टमैरेय ७·१५
अर्थाननर्थाप्रतिमान् ३१·३
अर्थ्यं यशस्यं १६·७४
अर्धतृतीयद्वीपस्य ४·२१
अर्हत्प्रणीतश्रुति २८·९९
अर्हत्प्रणीतागम ३०·६८
अर्हद्भिः प्रोक्ततत्त्वेषु २६·१०
अर्हद्वचःस्तम्भं ३०·२२
अर्हन्त एवाकृपया २५·९०
अर्हन्त एव त्रिजगत् २५·३१
अर्हन्त एवाभयदान २५·८९
अर्हन्मतमिदं २६·१
अर्हन्मुखागतमिदं १·५
अर्हन्मुनीन्द्रागम २३·९३
अर्हस्त्रिलोक १·१
अलाभलाभादि २८·५६
अल्पश्रमेणाल्प २२·४७
अवगम्य बुधस्तु २४·५८
अवग्रहेहावायाना ४·११
अवज्ञयान्यास्तु १८·३७
अवधिः परमाद्यश्च ४·५६
अवनिराज्यधुरं २०·८३
अवश्यमन्यत्र १८·१२८
अविदितं भवता २०·४९
अविरोधः कुतः २६·७५
अवेक्ष्य चित्रस्थमतीव १९·४४
अशक्रमित्रं १०·८
अशुभशुभफलस्य ७·६७
अश्रद्दधाना ये २६·८
अश्वक्रियासु १२·३६

अष्टादशश्रेणि ११·६३
अष्टादशश्रेणि १४·७१
अष्टादशश्रेणि १९·२५
अष्टानां कर्मणा ४·१०४
अष्टाह्निकं शिष्ट २३·९४
अष्टाभिराभिर्भुवि २·७०
अष्टाविमे भूपतयः २·३१
अष्टोत्तरग्रामशतं २३·९१
अष्टोत्तराः शीतजलैः २३·२६
असत्प्रसूतिश्च सतो २५·७२
असत्प्रसूतिस्त्वसतो २५·७१
असंगतात् १८·३३
असंयतेभ्यो वसति ७·४६
असंयुक्तास्तु २६·२२
असहितं प्राक् २·२४
असातवेदनीयेन ४·२६
असामयुक्तं २१·६२
असिवद्यादिकोशवच्च २४·५०
असुहृदो वन २०·४७
असृक्क्रमि १४·२२
असृक्परिक्लिन्न १८·५०
असौ वराको १६·२५
अस्तिकस्तु स्वपर्यायैः २६·२६
अस्त्यात्मा स हि २६·७०
अस्त्यैक एवात्र २५·२
अस्नानकण्डूवत ३१·५९
अस्नानभूरिव्रत ३०·३५
अस्पर्शयोगा मल ३०·३३
अस्मान्वा नय १५·४७
अस्मिन्पुरे ये १४·७६
अस्मै न मे दन्ति १६·५१
अस्वादुकं निर्लवणं ३०·५८
अस्वामिकार्याणि १६·३६
अहं च अत्रैव १६·८१
अहं पुरा १३·३७
अहं सुदुःखा १३·३१
अहीनपञ्चेन्द्रिय २२·१५
अहो क्षमा धैर्यम् २१·१०
अहो तपस्वी १६·४०
अहो तपस्वी १६·९९
अहो दुरन्ता १३·५५
अहो नृपोऽयं २२·६३
अहो वराका ६·२१

आकर्णपूर्णानि १८·९
आकर्ण्य नादं १२·६४
आकाशं व्यापि २६·३१
आख्यायिकाभिश्च १४·९५
आगर्भतो घातसुखस्य २५·४९
आचन्द्रतारं जयतु २३·९७
आचारमादौ ३१·१८
आ जन्मनोऽवस्थित ९·४४
आजीवशास्त्राणि ८·२५
आजीवितान्ता १०·१३
आजीवितान्तात् ३१·६०
आज्ञापितास्ते ११·५७
आतापयोगं परिगृह्य २५·५७
आत्मा तु चेतो ३१·९२

आत्मैव चात्मनो बंधुः १५·७९
आदर्शसिंहेभ ७·५८
आदाय तन्मानुष २१·२१
आदाय वक्रानुमतिः ३१·७८
आदितस्तु त्रयाणा ४·३९
आदित्यचन्द्र १०·३६
आदित्यतेजो ९·१५
आदित्यतोऽन्यो १०·५६
आदित्यसंख्या ६·४५
आद्यश्च चक्री २७·४०
आद्यश्च संख्याः २७·२९
आद्यस्तु नाभिर्जित २७·७१
आद्यस्त्रिपिष्टश्च २७·४२
आद्यः क्रोधोदयः ४·६६
आद्याभवत्सा २८·७४
आद्ये द्वे मोहनीयं ४·८
आद्यो जिनेन्द्रस्त्वजितो २७·८१
आद्यो मानोदयः ४·७०
आद्यो मायोदयस्तीव्रो ४·७४
आद्यो लोभोदयः ४·७८
आधानतः स्नेह २८·८६
आनन्दभेर्यः १८·११६
आनन्दितप्रीतिमुखे ११·६२
आनन्दिनी नाम ३·१३
आनीतमर्थं १४·५८
आनीय लोकत्रय २३·६०
आपः पयः पुष्प २३·१८
आपृच्छ्य भूयः ३·३६
आपो हि शान्त्यर्थं २३·१९
आप्यायितः १२·५१
आफुल्लचारुविमल १·५६
आबाल्यतः शान्ततमस्य २९·२९
आम्रान्तका दाडिम २२·७०
आयातमारोपित १८·२१
आयान्तमालोक्य १८·५५
आयान्तमालोक्य १८·८
आयुर्नराणामथ ८·६७
आयुर्बलारोग्य २९·२२
आयुश्च पञ्चमं ४·४
आयुष्क नारकं ४·३४
आरुह्य तं पर्वत ३१·५७
आरुह्य नीलाद्रि १८·२७
आरुह्य रत्नोज्ज्वल ३·३०
आरोहणाद्द्वारवतो २९·७
आरोहकाः १०·३०
आरोहवाहस्य २५·६२
आर्तं च रौद्र १०·१६
आर्द्रचन्दन ५·५९
आविष्ट्य तत्पुरवरं १·३६
आश्चर्यमस्मान्न १४·५६
आसाद्य तत् १२·७५
आसामनर्थमूलान्ये ५·६८
आसीद्दिवो निजगुणैः १·२३
आसीन्नरेन्द्रो १६·५
आसुरं भावम् ५·९१
आस्वादन्ते निरास्वादान् ५·८६
आहत्य पुच्छेन १२·५९
आहारदानं मुनि २३·१२

आहूय तं पुत्रवरं २१·३१
आहूयमानास्त्वरया २८·८०
आहोस्वित्कनकमयं १२·८६
आहोस्विदज्ञानतया ११·८

इक्ष्वाकुवंश्याः २७·८६
इक्ष्वाकुहर्युग्र ८·४
इति कथितमुदार ७·६६
इति कुलकरदेव २७·९३
इति गजरथ १७·८५
इति गुणवति २१·७९
इति तस्या वचः १५·७१
इति धर्मकथोद्देशे (सर्गान्ते)
इति धर्मफलं ८·६८
इति नगरनरेन्द्र १·७०
इति नरपतिपुत्री १९·७८
इति नानाविचित्राणि १५·५३
इति नृपतिरपास्य २२·९६
इति नृपवनिता २८·१०७
इति नृपाभिहितो २०·७८
इति निवृत्तगिरि २०·३९
इति पक्षबहुत्व २४·१८
इति प्रगर्ज्यात्म २१·६१
इति प्रचिन्त्यात्मनि १६·९१
इति प्रधार्यात्मनि २१·१२
इति प्रवादैरतिलोभ २५·१०
इति प्रशंसन् १३·८६
इति बहुविधकर्म ४·११३
इति ब्रुवन्तं २१·२४
इति ब्रुवन्नेव १८·९०
इति ब्रुवाणस्य १३·२४
इति मधुरवचोभिः २४·७६
इति मन्त्रिवरैः २४·२०
इति महीपतिना २०·६७
इति वचः कथितम् २०·५०
इति वचः सदसि २०·१९
इति वचोविरते २०·५३
इति विमतिमति २५·९७
इति समाप्य २०·४४
इति सरित्पतिवृद्धि २०·७०
इति स्तुवान १३·१९
इतोऽमुतो भम १८·१००
इत्थ गते १२·६३
इत्थ ब्रुवाणा १९·५०
इत्थ ब्रुवाणा २८·८९
इत्थ व्यतीते च २२·२०
इत्याज्ञाप्य १५·११
इत्युक्तवत्युत्तम १९·६२
इत्युक्तवन्त १२·३२
इत्युक्ता भूभुजा १५·७०
इत्युत्तरं १२·२१
इत्यूचिषि श्रेष्ठिनि १४·७९
इत्येतद्यतिना १५·१३१
इत्येतानि व्रतानि १०·१२६
इत्येवमर्थाधिपतिः १४·७४
इत्येवमर्थान् बहुशो ३१·१०४
इत्येवमर्हत्प्रतिमा २२·५३
इत्येवमाघोष्य १६·२०

इत्येवमात्मनि १२·७
इत्येवमादि स्फुट २३·१००
इत्येवमादीनि ३·६१
इत्येवमादीनि २९·६४
इत्येवमादीन्नृपतिः २८·५७
इत्येवमाद्या ३१·९८
इत्येवमाभाष्य १६·१०५
इत्येवमाभाष्य ११·८४
इत्येवमुक्त्वा तद् २३·८३
इत्येवमुक्ता प्रतिभग्न १९·७२
इत्येवमुक्त्वा २·५०
इत्येवमुक्ता वसुधा- १६·५२
इत्येवमुर्वीश्वर ११·३४
इत्येवं क्षितिपति २२·७८
इत्येवं नरकगतिः ५·१०९
इत्येव नरपतिना ३१·११४
इत्येवं नृपतनयस्य २·९५
इत्येवं नृपवनिता १५·१४५
इत्येवं ललित १८·१२९
इत्येवं श्रुतविभवा ३०·७४
इत्येवं सुरनिलयाश्च ९·६१
इदमिह प्रहितं २०·३२
इदं मनुष्यत्वं १३·२२
इद हि मानुष्यम् ८·६१
इद हि राज्यं २८·६६
इदानीं तव ५·५२
इन्द्राश्च चन्द्रसूर्य १५·९७
इन्द्राश्च सामानिक ९·५०
इन्द्रियाणां च पञ्चानां ४·८८
इमं च लोकं २८·३२
इमामवस्था १३·७३
इमाः स्वसारः १४·७३
इमान्स्वबन्धून् १६·८४
इमे वयं चापि २·७७
इष्टकापाकसंदर्शे ४·९१
इष्टैर्वियोगोऽप्रिय २८·९५
इह जन्मनि यः २४·७२
इह प्रकुर्वन्ति २५·३६
इह प्राणिवर्तित २३·७५
इह विहाय हि २०·५२
इहाप्यशीलाः १९·६८
इहैव पूजाफलतो २२·४६
ईदृक्सुरूपाणि १९·३०
ईर्यापथादिष्वपि ११·३२
ईर्यासमादान ३१·७६
ईलीभिरालालित १७·४५
उच्चनीचद्वयं ४·३६
उत्कृष्टादप्यसंख्येयान् ४·२२
उत्कृष्य खड्गं १४·४१
उत्तरप्रकृतयः ४·३८
उत्पद्य हि दुराचारा ५·३१
उत्पद्यन्ते विनश्यन्ति २६·५४
उत्पद्यमाना शयनीय ९·३८
उत्पन्नान्सहसा ५·३३
उत्पाटयेयुः स्वभुजेन ९·४८
उत्पादनं चोद्गमनं ३०·५७
उत्पेदिरे कारण २७·३२

उत्सर्पिणी वाप्यवसर्पिणी २७·२७
उत्साहमन्त्रप्रभु १६·६०
उत्सूत्रं ये च ४·४५
उदन्मुखस्त्यक्त ३१·६४
उदारवृत्तैरुरु ३·३
उदारा रुरुवक्षासि ५·९३
उदितकाञ्चन २०·८८
उदितबालदिवाकर २०·८
उदितबालरवि २०·८२
उद्दामकामातिबल ३१·२५
उद्धारपल्यात्प्रतिगृह्य २७·२३
उद्भ्राम्य खड्गं १४·२९
उद्भिद्य भूमिं २२·७६
उद्यानपर्वत १·३५
उद्यानपालः प्रविलोक्य ३·९
उद्यानपालस्य वचो ३·१२
उद्यानमुत्कृष्ट ३१·३८
उद्यानयाने १२·२६
उद्यानयानैश्च १९·३६
उपगतं ललिताह्व २०·६४
उपगम्यावनीशस्य १५·४९
उपद्रवासद्भय २१·४५
उपयोगलक्षणा २६·६
उपर्युपर्युच्छ्रित २३·१६
उपवासेन १५·१४२
उपाश्रितांस्तान् ३०·३
उपेन्द्रमुक्तानि १८·४६
उपेन्द्रसेनस्तु १८·१९
उपेन्द्रसेनस्य युवा १८·३२
उपेन्द्रसेनस्य वरायुधानि १८·५९
उपेन्द्रसेनं प्रति १८·२३
उपेन्द्रसेनं युव १८·९३
उपेन्द्रसेनाभिहत १८·२५
उपेन्द्रसेनाहत १८·४८
उपेन्द्रसेनेन विमुक्त १८·५२
उपेन्द्रसेनो बलवानिति १६·७२
उपोष्य पञ्चत्रि ३१·१२
उभयोरन्तरालः २६·२९
उरस्सु केचित् १७·६१

ऊरू परशुभिः ५·५७
ऊर्ध्वप्रहारे १४·४०
ऊर्ध्वा दिवार्के ३०·३६
ऊर्ध्वाधो दिग् १५·११७

ऋजवो वाङ्मनः ४·९८
ऋजुमतिश्च विज्ञेया ४·१९
ऋजुसूत्रश्च शब्दश्च २६·५१
ऋतुषु क्रमसंभवेषु २४·४
ऋतुस्तु मासद्वय २७·६
ऋते द्रव्यान्न २६·५५

एकक्षेत्रात्तथैकत्वात् २६·६४
एकस्तु मे शाश्वतिकः ३१·१०१
एकस्य विप्रस्य २५·२५
एकस्य हेतोः १६·२८
एकस्य हेतो १८·१२२
एकं भयं समासृत्य ४·८६
एकः समुद्रो ९·५५

एकाकिनारण्य	१४·१	एवं जनाना	१२·३२
एका गतिर्निवृतिः	२८·९७	एवं जने	२६·१०५
एकाधिकास्तु	१०·२९	एवं तपःशील	३०·४०
एकान्ततः	१४·९६	एव तयोस्तु	१९·३८
एकान्ततो निम्बरसः	३·५३	एवं दुःखार्णवे	१५·२२
एकान्ताभिक्षा	३०·५४	एवं निगद्य स्थिर	२८·७९
एकान्तशीला	३०·४३	एवं नृपस्यान्य	१६·३
एकापि शक्ता	२२·३८	एवं पापविपाकेन	५·९५
एकाहिकं सप्तदिनानि	२७·१७	एवं पुत्रवियोगेन	१५·३३
एकेन मुच्यते	४·१०६	एवं पुनर्धर्मपथाद्	२८·२८
एकेन्द्रियत्वं प्रतिपद्य	६·८	एवं प्रकारेण	२३·१४
एकेन्द्रियाः स्थूल	६·३	एवंप्रकारे तुमुले	१७·७६
एकैकवृद्धिर्नवसु	९·५८	एव प्रदिष्टा मनसो	१९·५८
एकैकशः केचन	३·७	एवं प्रभूत्या	२३·५७
एको धर्मस्य	१५·१०९	एव प्रवृत्तं समरं	१८·६
एको हि पुण्यार्जित	८·५५	एवं प्रवृत्ते समरे	१७·६७
एको मुहूर्तः	२७·५	एवं प्रवृत्ते	१४·२०
एतद्रचस्ते	१९·६१	एवं बहुप्रकारैस्तु	५·१००
एतन्मृत्युजराजातिं	२६·९३	एवं बहुविधैः	५·५८
एतस्य पूर्वार्जित	११·७१	एवं ब्रुवाणानपरे	१७·३३
एतानि चान्यानपि	२२·२५	एवं ब्रुवाणास्तु	१६·४६
एतान्येव नरके	४·१०९	एवं भटाश्चित्रम्	१७·२५
एतावता काल	२७·६५	एवं महात्मा	१४·९४
एते त्वथैकेन्द्रिय	६·१४	एवं ये धृतिबल	१२·८७
एतैर्गुणैर्न्यूनतमस्तु	१६·३९	एवं वदन्ती	१९·७६
एभिस्त्रिभिर्मन्त्रि	१६·६७	एवं विचिन्त्योत्तम	२८·१०५
एवमाक्रन्दमानाः	१५·४८	एवंविधाना	१२·८३
एवं च पूर्वार्जित	२९·७०	एवंविधा सर्व	१६·७८
एवं जमाना बहुभिः	१७·३६	एवं विनिश्चित्य	१४·२८

एवं स पृष्टो ३·४३
एवं स पृष्टो ११·३
एवं सुमानुष्यं २८·४४
एवं हि धर्माश्च ३·५१
एवं हि पौरैः २९·७३
एषा हि नूनं १६·९०
एषोऽपि शत्रुः १६·५०

ऐकान्तिकं ११·४
ऐकान्तिकात्यन्तिक १०·१
ऐश्वर्यवीर्यद्युति ३१·५

औत्सुक्यप्रतिहतमानसाः १५·१४६

कङ्कैः काकैश्च ५·९४
कचग्रहेण प्रदने १७·४८
कटकं कटिसूत्रं १५·१५
कटकान्यूरु १५·५८
कण्ठिकावत्स १५·५९
कति गजाः समदाः २०·६६
कथं सुखं केन २२·२७
कथाकाव्यपुराणेषु १५·१८
कदाचित् संयतेभ्यः १५·१४४
कदाचिदस्यर्थ ३१·४९
कदाचिदन्तर्गत ३१·४३
कदाचिदन्यैः ३१·४०
कदाचिदभ्यस्य २·७
कदाचिदाघूर्णित ३१·४७
कदाचिदाघूर्णित ३१·४६
कदाचिदाप्तैः २२·१७
कदाचिदीशान २८·१८
कदाचिदुच्छ्रङ्ग ३१·४५
कदाचिदुत्कृष्ट ३१-४४
कदाचिदुद्यान १९·४३
कदाचिदुद्यानवनेषु २२·१६
कदाचिदुन्मार्ग ३१·४१
कन्यापि तेनैव २·४९
कन्याप्रदानादिह ७·३५
कन्यासुभूहेम ७·३४
कन्याः स्मरास्त्रागत २३·४३
कपिञ्जला लावक ६·१८
करोषि यदि मद् १५·६९
कर्त्तृ कर्तृत्वसंयुक्त २६·४४
कर्मस्तनुत्वं ३०·६६
कर्माणि यान्यत्र २५·३७
कर्माणि वा कानि ३·४२
कलत्रपुत्रप्रिय ८·५१
कल्पोपरिष्टाद् ९·१०
कल्याणभाजां स ३१·४२
कश्चिद्भटस्य १४·८५
कश्चिद्भटं पश्यत १८·१२१
कश्चिद्भटं योद्धुम् १७-२६
कश्चिद्भटः कान्त १६·७९
कश्चिद्भटः शूर १९·४
कश्चिद्भटः स्वैः १७·२
कश्चिद्भटः १४·८९
कश्चिद्भटो मे १६·१०६
कश्चिद्भटोऽस्त्राणि १८·५८
कषायचोरान् ३१·२४

कषायवृक्षं	३१·३३	किरीटपट्टोज्ज्वल	१८·७२
कषायशाखं	१०·२१	किरीटहाराङ्गद	७·१७
कस्तत्र दोष	२६·७८	किं किन्नरीणा	१९·२८
कस्य माता पिता	१५·७८	किंचिदुन्मिषितो	४·५४
कः कस्य बन्धुः	२८·५२	किं तेन राज्ञा	१६·६१
काङ्क्षन्ति शक्र	१०·११	किं देवविद्याधर	२८·१०
कांश्चिच्छाल्मलि	५·९२	किं न श्रुत वाक्यं	२·७८
कान्तिद्युतिज्ञान	२९·६८	किं बान्धवैर्बन्ध	२८·५०
का मे प्रिया का	१९·५५	किं वा गृहाद्यैः	१०·५२
कामोत्तरङ्गं	३१·३०	किं वा त्वयाहं	१८·५४
काम्पिल्यजातो	२७·८४	किं वानयोः पूर्व	१९·३१
कार्यकारणसंयुक्तं	२६·४३	किं वा स्ववंशानु	१८·२८
कालस्य कालप्रतिमः	१४·३४	किं वाहनाद्यै	१०·५०
कालस्य हानिमथ	२६·१०७	किं श्रेष्ठिपुत्रस्य	१७·३२
कालं पुनर्योग	२९·३	कुक्कुटान्मेशमार्जारान्	५·६६
कालायुषी क्षेत्रमतो	२९·२	कुण्डलाङ्कित	१५·२७
काले प्रधानैः	३१·६६	कुतश्चिदागत्य	१७·२९
कालो व्यतीतो	१६·७०	कुतस्तवायातिः	१३·८३
काश्चित्कारुण्य	१५·४५	कुतस्तु कश्चिद्	१८·१२५
काश्चिद्धेम	१५·४१	कुतीर्थप्रणीतान्	२३·१०५
काश्चिन्नरेन्द्रार्जित	१८·१२४	कुतो गतो	१४·८८
काश्चिन्मृदुपद	१५·४३	कुदृष्टिदृष्टान्त	११·११
का स्यान्नु	१६·८५	कुदृष्टिदृष्टान्तवचो	२५·६३
किमत्र चिन्त्यं	१३·७०	कुदृष्टिपक्षं	२३·१२
किमत्र चित्रैर्बहुभिः	२·८४	कुन्थुस्त्वरो मल्लिः	२७·३९
किमत्र चित्रैः	१४·३७	कुमतिदुरुपदेशाद्	३·६२
किमत्र पुत्रैर्द्रविण	२८·४९	कुमन्त्रिणा	१३·५२
किमम्बरै	१०·४९	कुम्भीपाकेषु	५·६९
किमास्महे स्वामिनि	२९·७२	कुरु त्वमेकं प्रथमं	१८·७६

कुरुर्महर्षिः कुरुवंश	२५·५६	केचित्पुनर्वानर	६·३९
कुर्वद्भिरन्यैश्च	२३·११	केचित्पुनर्लब्ध	१७·४९
कुर्वन्ति ये	७·४५	केचित्पुनस्ते नरकं	३·५२
कुलेन शीलेन	२·१०	केचित्पुनः पाश	६·१७
कुलोचित राज्यम्	२१·७०	केचिन्पुनः शान्त	८·५८
कुहेतुदृष्टान्ताविनष्ट	२५·९४	केचित्पुनः शुष्क	६·२२
कूटाक्षवृत्ते कुटिल	६·३७	केचित्पुरापि	१७·५३
कूपात्प्रसन्नैकरसं	७·३९	केचित्प्रभिन्ना	१७·५५
कूर्मो यथाङ्गानि	३१·२८	केचित् समुद्धात	१०·२८
कृत मदीय	२२·२४	केचिदश्वानु	१५·१३
कृतान्त निर्भय	१५ ४६	केचिदुष्णप्रतीकारं	५·७९
कृतापराधात्	२१·६३	केचिद्बभूवुर्द्वि	३०·७२
कृतापराधेषु हि	२१·१६	केचिद्विसृष्टानि	१७·७८
कृतार्थकार्य	१४·६५	केचिन्नृसिंहा	१७·५८
कृतिस्तु तस्यैव	२७ ९	केचिल्लोहेषु	५·४०
कृते युगे नास्ति	२५·९	केनापि हयरूपेण	१५·७
कृतोपधानाः	१८·४	केनाभिषिक्तः	११·७९
कृत्वा कषायोपशमं	३१·१०५	केवलिश्रुत	४·६१
कृत्वा स कल्याण	२·५२	केवलेन समाख्यातो	४·२५
कृष्णाः श्वानो	५·८५	केषाचिदक्षीण	३०·६९
केचिच्छशसुनृवरं	२·७५	केषाचिदङ्गानि	१८·१०४
केचिच्छूलेषु	५·४४	केषाचिदामर्शन	३०·७०
केचिज्जले पुष्पदले	३०·७१	केषाचिदास्यानि	१८·७१
केचित्परेषा	८·२२	केषाचिदुत्क्षिप्त	१८·१०५
केचित्पुनर्शान	७·४४	कैलासशैले वृषभो	२७·९१
केचित्पुनर्भूपति	१७·१९	कोशावकश्चैव	२७·८२
केचित्पुनर्मान	६·२८	ककचैस्तुल्य	५·७०
केचित्पुनर्लोभकषाय	६·३१	क्रमात्पुरं तल्लिता	१६·१२
केचित्पुनर्लोह	१७·५४	क्रमेण यान्तः कुला	६·५२

क्रव्यादगीताध्वनिः ६·११
क्रव्यादवर्गैरनु ६·२४
क्रियाहीनं च २६·९९
क्रियाविशेषात् २५·११
क्रीडा यथा मत्त १८·२
क्रोधस्य लोभस्य ३१·७७
क्रोधं ज्वलन्तं ३१·३६
क्रोधादयो १०·१९
क्रोधोत्थानस्तृतीयस्तु ४·६८
क्रोधोदयश्चतुर्थो ४·६९
क्रोधोदयो द्वितीयस्तु ४·६७
क्रोधोद्धता १४·१४
क्रोधो मानश्च माया ४·३१
क्रोधो मानश्च ४·३०
क्रोधो मानश्च माया ४·३२
क्वचिच्च नार्यः २१·४३
क्वचिच्च बन्धूक ७·६
क्वचिच्च मुक्ता १९·१६
क्वचित्क्वचिल्लम्बित २·६७
क्वचित्तरुणा १२·४६
क्वचित्प्रवालोत्तम २२·६०
क्वचित्सगोधूमय २१·४१
क्वचिद्गजाना १७·८३
क्वचिद्विचित्र १९·१७
क्व यासि किं १३·७७
क्षणिका यदि यस्य २४·४६
क्षमाविभूषा- १०·१२
क्षयोपशम एवास्मिन् ४·१८
क्षान्त्या च दान्त्या ३१·५४
क्षितिपशासन २०·२७
क्षितीन्द्रपत्न्यः २९·९२
क्षीराणि वर्णेन ३·५०
क्षुद्रमत्स्यः किल ५·१०३
क्षुद्व्याधिदारिद्र्य ८·३०
क्षुधापमानाङ्ग १३·५७
क्षुधाभिभूतास्तु ६·२०
क्षुधाभिभूतः १२·७१
क्षुधितः परिदाप्य २४·२६
क्षुब्धार्णवाद्दुर्गति २२·१८
क्षेत्रस्वभावप्रतिबद्ध ७·३
क्षेत्रे पथि कुले १५·११४
खड्गैः प्रहन्तॄन् १७·६३
खरान् प्रदेशान् १३·७५
खरोष्ट्रहस्त्यश्व ६·१५
खरो मृदूना २२·८
खर्जूरमृद्वीकमरीच २२·७२
ख्यातार्ककीर्तिः २२·३४
गजं तमायान्त १२·६५
गज परेषां पर १८·३४
गजा जगर्जुः १७·३९
गजाधिरूढैस्तु १८·१०
गजावपातध्वनि १८·८६
गजाश्वशालायुध २१·३७
गजास्तुरङ्गाश्च १७·८०
गजेश्वरस्त्वं १२·६८
गजैर्गजाः प्रफुरद् १७·७९
गणाग्रभूषाः ३१·११

गण्डदेशे करं	१५·४२	गुणैरुपेता गुरवो	२९·४२
गण्डस्थलं करे	१५·१७	गुणैरुपेतो विजयो	२७·४३
गतयोऽभिहिता	२४·५४	गुरुं मदीयं	२१·५९
गतवति त्वयि	२०·३८	गुर्वीभिर्ध्वीभिः	१७·४७
गतसुतस्य कथा	२०·७१	गृहमप्युदितं भगवद्	२४·२४
गतासुमुद्वीक्ष्य	१३·६१	गृहस्थधर्मे प्रति	३·२५
गतिं तृतीया	७·१	गृहाद्बहिर्यातुम्	२०·१५
गते नरेन्द्रे	१[illegible]·१	गृहश्रमे संवसते	२२·३५
गते नरेन्द्रे	१८·१०२	गृहीतयोग्याभ्यवकाश	३१·४८
गते वराङ्गः	२१·८	गृहीतसम्यक्त्वमति०	११·१८
गतेषु तेषु	१३·६९	गृहीतसम्यक्त्व	११·४४
गतेषु तेषु	२१·१८	गृहे गृहे	१८·११७
गतेषु तेषु	३०·१	गोत्राणि नानाविध	२५·६
गदाश्च गुर्व्यः	१८·१३	गोत्रायुषी नाम	१०·२३
गन्धताम्बूल	१५·११८	गोत्रे तु द्विविधं	४·७
गन्धर्वगीतश्रुति	२९·३४	गोदानतस्ते	२५·६१
गन्धर्वगीतश्रुति	२३·१०	गोशीर्षसंज्ञं	२३·२९
गन्धर्वगीताभिरतिः	२२·१८	ग्रन्थार्थौ च न	४·१४
गन्धर्वविद्याधर	२८·९३	ग्रहतो जगतः	२४·३१
गन्धार्चनैश्चम्पक	२३·७८	ग्रहयोगबलाच्छुभं	२४·३२
गर्भेऽथ जातावथ	८·६६	ग्रहाश्च तारा	११·७३
गवामसृक्क्षीर	२५·६०	ग्रहेषु चन्द्रो	८·११
गायन्ति गीतानि	१४·४	ग्रामाकराश्चापि	१२·४४
गिरा पतिं	१३·१०	ग्रामान्तरोद्यान	३०·५५
गिरिगुहामुख	२०·६१	ग्रामेषु राष्ट्रेषु	१४·६४
गुणदेवी स्नुषा	१५·५६	ग्रामैकरात्रं नगरे	३०·४५
गुणप्रधानभावेन	२६·६७	ग्रीवोऽश्वपूर्वस्त्वथ	२७·४४
गुणाधिकेन	१४·९२	ग्रैवेयकाद्याः	१०·४८
गुणांश्च शीलानि	२९·९४	ग्रैवेयकेभ्यस्तु	९·११

ग्लानातिबाल ११·५२
घटपिण्डवदेव २४·५१
घण्टाप्रदानात् २३·८२
घण्टारवोन्मिश्रित १८·२६
घनोदधिर्घनवातः ५·५
घनोदधेस्तु ५·७
घर्माभितप्तां १०·६१
घर्मा वंशा शिलाख्या ५·१२
चक्रप्रदानात् २३·८१
चक्रायुधस्याप्रति ७·६५
चक्रासिनाराच २३·३९
चक्षुर्दर्शनावरणं ४·५५
चक्षुर्विषयमागम्य २६·१८
चतुर्गतीनाम् १९·८०
चतुर्गतीना च निगोद ६·४९
चतुर्थभागोऽथ २७·६४
चतुर्थषष्ठाष्टम ३०·६४
चतुर्विधस्वभावो २६·८८
चतुर्विध मतिज्ञानं ४·१०
चतुर्विधामेत्य १३·१४
चतुर्विधन्यासपद ३०·८
चतुर्विधेनापि २८·२७
चतुर्विधो वराहारः १५·१२४
चतुष्पदानामथ ६·४३
चतुष्पदाना दश ६·४८
चतुष्प्रकारमायुष्कं ४·३३
चतुःप्रकारा २३·२७
चतुःशतसहस्राणि ५·१६
चत्वार एकस्य २५·३
चत्वारिंशच्चरित्रस्य ४·४०
चन्द्राशवः सूर्य २८·१०२
चन्द्रार्कनक्षत्र ११·१०
चमूपमन्त्रीश्वर १७·१४
चरित्रजात्यश्वम् ३१·२१
चरित्रमोहं ४·६५
चरुभिः पञ्चवर्णैः १५·१४१
चलच्चामर १५·२९
चलज्ज्वलत्कुण्डल १८·६४
चलत्पताका २३·५३
चलत्पताका ११·६६
चातुर्यहावगति १·६०
चारित्रमोहनीयेन ४·८२
चिकित्सवः केचन ३·२३
चिरकालं तु ५·१०७
चिरं हि तीर्त्वा १३·३
चूर्णैश्च पुष्पैरपि २३·१५
चेतासि बद्धदृढ १·५४
चेष्टाप्रधाना जगतः २२·८४
छत्रं पभम्रं १८·८१
छित्त्वा ये पर ५·४२
छिन्दन्त्यसिभि ५·४७
छिन्नाग्रहस्ता १८·१०७
छेदं भेदवधौ १५·१२०
जगज्जना ११·६९
जगज्जनानां १८·१२३
जगत्प्रधानाः पुरुषाः २८·३५

जगदीश्वरशासनात् २४·३७
जनयतिरतिकार्यो २१·८०
जनस्य सर्वस्य २·२२
जन्मस्वतीतेषु जिनेन्द्र २२·४३
जन्माटवीषु कुटिलासु १·२०
जन्मानुबन्धीनि २२·४१
जन्मान्तरे तप्ततपः २·८३
जन्मार्णवं कथमयं १·१२
जन्मार्णवे मोह २८·९४
जम्बूद्वीपं निमेषेण ५·२४
जयश्रिया संजनितानु १८·२२
जयारिसेना १७·३४
जरया मृत्युना १५·१०२
जलप्रभाभिः कृत २·५३
जलप्रवेशादनल ९·२९
जलेन हीना इव २८·८८
जवेन नृणा २८·९६
जाज्वल्यमानोत्तम ७·४
जाते च गर्भे जगतः २८·३
जातेर्दुःख परं १५·१०४
जातौ तिरश्चामथ ३१·२२
जानामि ते शौर्यम् १६·९३
जानामि तेऽहं १९·५
जानामि विद्या १९·५३
जितेन्द्रिया जीवदया ९·३५
जितेन्द्रियाश्च ३०·४४
जित्वा रिपूनप्रतिम १७·३५
जिनवरमतमग्र्यं १९·८०
जिनदेवमहीन्द्र २४·९
जिनेन्द्रगेहो वरधर्म २२·६६
जिनेन्द्रचक्रायुध २३·९
जिनेन्द्रपादाम्बुरुह २३·१०२
जिनेन्द्रपूजारतयः ३१·११२
जिनेन्द्रप्रणीतं शुभं २३·१०७
जिनेन्द्रसच्छासन २१·४
जिनेन्द्रसिद्धान्त २३·७४
जिनेन्द्रसूत्रोक्त ३१·५०
जिनेश्वराचार्य ३९·१९
जिह्वान्त्राणि च ५·४१
जिह्वाश्चोत्पाटयन्ति ५·५४
जीवद्रव्यं हि २६·३६
जीवपुद्गलकालाश्च २६·५
जीवस्य मिथ्यात्व ११·२
जीवः स स्यात् २६·८०
जीवदयो मोक्षपद ३१·६८
जीवादितत्त्वं ११·५
जीवाश्च केचित् ३·४०
जीवाश्च पुद्गलाश्चैव २६·३५
जीवाश्च पुद्गलाश्चैव २६·४०
जीविष्यन्ति च २६·७
ज्ञानधर्मार्हता ४·१००
ज्ञानविद्वेषिणो ४·४३
ज्ञानहीना क्रिया २६·१००
ज्ञानं तु येषा ७·५१
ज्ञानं व्रतं तपः ४·८५
ज्ञानावरणमाद्यं ४·३
ज्ञानाश्रिता दर्शन ३१·६५
ज्ञानेन येन १·४

ज्योतिर्गणा १० ४७
ज्योतिर्गणैरिन्दुरिव ३०३४
ज्योतिष्मती ज्योतिष ९०६०
ज्योत्स्नातपौ १० ४०
ज्वलत्किरीट १९ २०
ज्वलत्किरीट प्रविलम्बि ३ ३५
ज्वलत्किरीटाङ्गद १७ ३७
ज्वलद्बृहद्रत्न ९ १६
ज्वलन्महादीप ६ १०

तक्र दधि क्षीर ६ ३५
तच्छौयवीय १८ २४
ततश्च कश्चिद्भट १८ १०३
ततश्च तस्मात् २७ २०
ततस्तु तेषा खलु २७ २६
ततस्तु राजा १६ १२
ततस्तु राज्ञाधिकत २३ ८४
तत कञ्चुकिनो १५ ५४
तत कदाचित् २१ ५
तत कदाचित् १२ २९
तत कदाचिन्नृप १९ ३९
तत करीन्द्रा १८ ६९
तत कुसुम्भप्रमुखा १३ ६५
तत पर तत्कुमुद २७ १२
तत पर तस्य २७ १०
तत परिजनै १५ २४
तत परेषाम् २१ ७५
तत पुलिन्दाधिपते १३ ६८
तत प्रजास्ता १६ ४७
तत प्रपूर्णे नवमे २८ ४
तत प्रभाते च १३ ५८
तत प्रवक्ष्य ९ १
तत प्रशस्ते १४ ६१
तत प्रसह्यर्द्धि २१ ५४
तत प्रहृष्टो २३ १०१
तत शिरीष २७ १३
तत स जित्वाम्बुधि २१ ४९
तत सशान्त ३० ११
तत सुषेणाय २१ ५८
तत स्वभर्तार १४ ६८
ततो गुरुस्त्व २८ ६०
ततो नत २७ ११
तता नरेन्द्र २७ १
तता नरेन्द्रो १९ १२
ततो नृपण २३ ३१
तता नृपेणाप्रति २ ३८
तता नृपैर्मन्त्रिवर २९ ४३
तता नृपा निर्वृति २९ ४८
तता नृपा १३ ६३
ततोऽन्तर तत् २७ ५८
ततो बृहद्रत्न १७ ९
ततो महत्त्व तु १८ २
तता मुनिपति १५ ७४
ततो मुनीन्द्र २९ ८२
ततो मुहूर्तात् १४ ५५
ततो यशस्वान् २७ ३५
तता राजा १५ १३३
ततोऽरिचक्र १८ १११

ततो वचःकाय	२३·७२	तथापि भूपाः	१६·७३
ततोऽवतीर्य	५·७५	तथापि मैत्री	१७·७
ततो वराङ्गः	२१·२५	तथाभिचारातपनीय	३१·८२
ततोऽवरुह्याशु	१८·१०१	तथेन्द्रसेनोऽति	१८·७९
ततो वसन्ते	२२·१२	तथैव च नयाः	२६·६३
ततो वामनिकाः	१५·३६	तथैव पौरान्	२९·३०
ततो विज्ञापितो राजा	१५·१३७	तथैव मिथ्या	११·२३
ततो विमुक्तो	१३·४२	तथैव मृत्युमातङ्ग	१५·९९
ततो विसृष्टो	१६·२२	तथैव लोकद्वय	२८·४१
ततोऽस्तु सम्यक्	१८·९१	तथैव शीत	५·९७
ततो हि गत्वा	२९·९३	तथैव शेषाश्च	२८·११
ततो हि दूतः	१६·११	तथैव शौर्यं	२१·६०
तत्तीक्ष्णशक्ति	१८·५३	तदनु सागरवृद्धि	२०·६०
तत्तीरफुल्लद्रुम	१२·७३	तदाप्रभृत्येव	२३·३
तत्प्रोक्ता हितमाहिता	२२·७९	तदेक कर्म	४·२
तत्रापि भोज्य	८·७	तदेव कैश्चित्	१२·१२
तत्रावनीन्द्र	१४·४८	तदेव कौसुम्भि	१३·५९
तत्राहंतामप्रति	२९·४९	तदेव त्रिविध	२६·३
तत्रैव पापाधिकतो	३·५४	तदैव दिग्रक्षण	१४·६
तत्रोपविश्य	१२·५०	तद्देवसेनस्य तु	१८·९२
तत्रोपविश्य	१२·५	तद्भक्त्या चरितं	३१·११५
तत्रोपविष्टो	११·४९	तद्युक्तिमत्स्यात्	१६·५८
तथा कर्मपथारूढाः	१५·९१	तद्वाक्यतः	१४·५९
तथा कुलतरुं	१५·८९	तद्वाक्यलब्धावसरः	१२·३१
तथा जीवाः	१५·९३	तद्वाक्यवाताहत	२८·८२
तथा तपस्को	११·४७	तद्वाक्यसंत्रस्त	१६·९२
तथा नरेन्द्रो	२९·५८	तद्विद्वप्रकारं	३१·७२
तथापि कर्माणि	२·८१	तद्विनाशोऽवधि	४·१६
तथापि तेषु सम्यक्त्वं	२६·९५	तनुत्वद्रव्यभावाच्च	२६·१७

तन्मूले ज्ञानचारित्रे २६.९२
तपश्च सज्ज्ञानं १३.२३
तपोऽग्निर्निर्दग्ध ३१.१३
तपोधनाना ३१.६
तपोधनाना निलया २१.४०
तपोभिरत्युग्र ३०.६५
तपोभिरापीडित ३०.४२
तमवगम्य चरैः २०.७९
तमाप्नुवन्तं १८.[illegible]६
तमिन्द्रसेनो वर १६.१०
तमुज्जयन्तं धरणी २५.५९
तमूचिवान् १३.६१
तमोगृहे १३.५६
तया पुनः ११.३१
तयोदितं वाक्यं १३.३६
तयोर्भेदा नया २६.४९
तव गुणेन च २०.५१
तव नरेश्वर २०.२२
तवागतात्र १५.२६
तस्माच्च मायामद २५.२२
तस्मात्तत्त्वपरीक्षायाम् २६.८९
तस्मात्सर्वप्रपञ्चः २६.६६
तस्मात्सुखं साध्वि १९.७४
तस्मादुक्ता नयाः २६.६०
तस्मादेवार्हतं २६.७४
तस्माद्धर्मे मतिं १५.१०८
तस्माद्धि धर्मश्रवण ३.४७
तस्मान्मतंगजविषाण १.३१
तस्मिन् देशे तथा ५.६४
तस्मिन्पुरं सर्व ३.५
तस्मिन्पृथुश्रीमति २३.१७
तस्मिन् रणे १८.८४
तस्मिन्स्वकाले २.९
तस्याग्रपत्नी २२.२१
तस्याग्रपुत्रो भरतो २७.३६
तस्याग्रशिष्यो ३.२
तस्यात्मजः कान्त २.४७
तस्यानेकान्तवादस्य २६.८३
तस्यास्तदाङ्गममलेन्दु १.६६
तस्यास्तदानीम् २२.२२
तस्या तु पुर्या १६.४
तस्येश्वरस्याप्रति १७.२१
तस्येश्वरः प्रथित १.४६
तस्यैकदेशे रमणीय ३.६
तं पर्वतं ज्ञानतपः २९.७५
तं स्नापयित्वा १४.६०
तादृग्विधं कश्मल ८.६३
तादृग्विधाना २८.३७
तादृग्विधैर्भोजन २८.७५
तादृङ्महासार ८.१७
तानर्हतस्त्वात २५.९२
तानन्तरिक्षे स्वधनुर् १८.९७
तान्साधुवर्गान् ३.११
तान्येव कर्मभाण्डानि ४.११२
तान्येव प्रिय ४.११०
ताभिराश्लिष्य ५.६३
ताभ्यां धनुर्वेद १८.४३
ताभ्या यथेष्टमभि १.६८

तामापतन्ती प्रभया	२८·२५	तिर्यग्मनुष्य	२८·५४
तामुत्थितो मातरं	२१·१४	तिर्यग्योनिषु	१५·१००
ताम्बूलधूपाञ्जन	१२·२७	तिर्यग्लोकप्रमाणेन	५·३
ताम्बूलवस्त्रोत्तम	१९·२६	तिस्रस्तु वेद्याः	६·४६
ताराधिपः कुमुद	१·५५	तीर्थानि लोके	२५·५१
ताराभिराभिः	२८·२६	तीर्थाम्बुपूर्णाः	२३·५१
तालद्रुमश्च	१०·२६	तीव्रक्रोधाहि	४·६४
तालवृन्तानिलैः	१५·३८	तीव्रमध्यम	१५·८४
तावत्प्रमाणोऽयःपिण्डः	५·२३	तुम्बीफलं	१०·२४
ताश्च प्रकृत्यैव	३१·७	तुरङ्गम गाङ्ग	१२·३९
ताश्चापिभास्वद्रमणीय	२·९२	तुरङ्गमाना तु	२१·७४
तासामथाग्रे तडिद्	२३·४०	तुरुष्ककालागरु	७·९
तासामन्तरवर्तिन्यो	२६·२१	तुला विना	१०·५७
तासां गतीना	५·१०	तृणं जलं गुल्म	७·१२
तासां चतस्रो	१०·६	तृणानि यस्या	७·७
तासा वधूना रमण	२·९१	तृतीयायां तु	५·१०५
तासा समाजे	१२·४	तृतीये द्विप्रकारं	४·६
तासु क्षितीन्द्रहृदय	१·६३	तृणैरावेष्ट्य	५·४८
ता चित्रसेनाभिहिता	२·२६	ते कल्पवृक्षाश्च	७·२५
ता नदी क्लेशतः	५·८१	ते कुञ्जराः काञ्चन	१७·१३
तां प्राप्तुमिच्छा यदि	२८·९८	ते चापि योधाः	१७·६८
ता मत्तमातङ्गशिरो	१६·८७	ते चापि राज्ञां	२·३५
ता श्रेष्ठपत्नी	१४·६७	ते तोमराघात	१८·१२
तांस्ताश्च देशानथ	३०·४९	ते दिव्यमाल्याम्बर	९·४१
तिरश्चा मानुषाणा	४·१७	तेनान्नरक्षार्थमदुष्ट	२५·२४
तिर्यक्त्वसामान्यतया	६·२	तेनाश्वशास्त्र	१२·३३
तिर्यग्गतेर्दुःखं	६·३२	ते पञ्चभिः	८·२
तिर्यग्भराणाम्	१०·५९	ते पारणां कर्तुं	३०·५३
तिर्यग्भ्य उत्कृष्ट	१०·४६	ते पृच्छमाना	१६·८८

ते भव्यसत्त्वा	३०·१२	तैरीर्यमाणा	१७·४२
तेऽभ्युत्थाय	५·७६	तैस्तैः पुनर्लौकिक	२५·९३
तेभ्यो नमः प्रयत	१·२२	तैः संयतैः सागर	३१·५६
ते मडम्बपुर	१५·१२	तैः संव्रजद्भिर्बहु	२·४१
ते मन्त्रिणस्तान्	११·८५	तौ यथा संप्रयुक्तौ	२६·१०१
ते मन्त्रिमुख्या	२·१४	तौ वारणेन्द्रौ	१८·४९
ते योधमुख्याः	१७·७७	त्रयाणां समवायेन	२६·९४
ते शैलाच्छीर्य	५·७४	त्रासयन्तोऽथ	५·३४
तेषामत्यल्पनरका	५·१७	त्रिकालविद्भिः	११·२०
तेषामथ दुरन्ताना	४·४२	त्रिकाश्चतुष्कानथ	१९·१४
तेषामथैको गुणवान्	२·३६	त्रिकेन्द्रियाणां	६·४२
तेषामाधिगमोपायः	२६·४५	त्रिगुप्तिगुप्तेन	३१·१०६
तेषामृषीणा	३०·६३	त्रिगुप्तिधारेण	३१·३१
तेषा तद्वचनं	१५·८	त्रिलोकगुरवो	१५·६८
तेषां तु मध्ये	२९·४६	त्रिलोकनाथप्रतिमा	२२·५२
तेषा तु संनाहवतां	१८·११	त्रिलोकबन्धुः	१३·१६
तेषां दशघ्ना	२७·२५	त्रिलोकमूल्यं	८·१८
तेषां द्विजाना	२५·३०	त्रिलोकसंस्थां	३०·९
तेषां पुनर्मान	११·७६	त्रिशून्यपूर्वास्तु	९·५९
तेषां पुनः प्रद्रवतां	१८·१८	त्रिशूलवज्रायुध	२५·८०
तेषा पुनः स्यादय	२७·१९	त्रिंशत्पञ्चकवर्गश्च	५·१५
तेषां पुरस्तात्	२·१९	त्रिंशत्सहस्रं मुनिसुव्रतस्य	२७·५५
तेषां बलीनां ज्वलनान्	२३·३३	त्रिंशद्दशातो नवतिः	२७·५७
तेषां मदोद्भिन्न	१७·५६	त्रिंशद्दशैकं च	२७·५४
तेषां यतीनां हि	३·८	त्रैलोक्यमप्येक	३०·१५
तेषां वचो वाक्यविदां	२·४८	त्यजन्ति येऽर्थान्	२९·७१
तेषां व्रताना	११·४१	त्वग्घ्राण जिह्वाश्रुति	८·५४
तेषां स्त्रीबाल	१५·५५	त्वयेन्द्रसेनः	१९·८
तेषां हितप्रीति	११·५६	त्वं केवलज्ञान	३·३१

त्वं देवि राज्ञः	२३·८७
त्वं नन्द वर्धस्व	२३·८५
दण्डपाशबिडालाः	१५·११९
दण्डाभिघातैः	१४·१५
दण्डास्त्रिगुप्तीश्च	३०·५
दण्ड्यन्ते दण्डका दण्डैः	१५·८७
दत्त पुरा क्रूरनृपेण	२५·२३
ददत्पात्रदान	२३·१०६
दन्तानुत्पाट्य	५·५३
दयातपोदान	९·४२
दयापरा ये	९·२६
दयास्त्रीबाल	१५·५२
दयासंप्रयुक्तो	१३·८८
दरिद्रता नीचकुले	८·३३
दर्शनाद्रष्ट एवानु	२६·९६
दलितभागतया	२०·१६
दशप्रकारा	९·२
दशवर्षसहस्राणि	५·१०६
दशाहता वृद्धिमतः	२७·७
दशाहतं तं त्वयुतं	२७·८
दातव्यमित्येव	२९·३७
दानधर्मे दया	४·५८
दानलाभौ च भोगश्च	४·३७
दानविघ्नकरा	४·१०१
दानं च दाता	७·२७
दानं तपःसंयम	२·८२
दानं पुनस्तद्विविध	७·२८
दानेन भोगाः	७·२६
दायादकाना	११·७२
दारेषु मातर्यथ	२·२८
दिगन्तविख्यात	२१·७८
दिग्रक्षकाणा	१४·८
दिवा इषन्तं	१८·६१
दीक्षाधिराज्यश्रिय	३१·२
दीप विना नयन	१·९
दीपावलीभिर्ज्वलित	२३·८
दीपाश्च दीपाश्च	१०·३८
दीर्घायुराप्नोति च	२३·२०
दुकूलकौशेयक	७·२१
दुरन्तता राज्य	२९·२४
दुरात्मभिः	१३·५१
दुरितान्मनुजा	२४·६७
दुर्गन्धनासामुख	८·३७
दुर्वाङ्कुरश्यामल	९·१३
दुष्टानिवाश्वान्	३०·२३
दुःखबीजानि	४·१११
दुःखशोकवध	४·५७
दुःखप्रणाशात्	११·१६
दुःखाय शस्त्राग्नि	७·३६
दुःशिक्षया	१२·४१
दूताः परे तेऽपि	२·३९
दृढव्रतत्वे	१३·३९
दृष्टं मया पौरुष	१८·११३
दृष्टिमोहवृता	४·६३
दृष्ट्वा तमाराद्	१८·९५
दृष्ट्वा पलायमानान्	५·३६
देयं तथैकं	७·४२

देवतातिथि १५·११२
देवाना सुकृत ९·६२
देवी नृदेवप्रिय २३·६
देवेन्द्रो गगन २·९४
देवेषु पूजा २·५
देशं च काल च १६·९७
देशाकरग्राम १८·७५
देशान्विहाय हि १·२८
देशार्थसंग्राम १७·२०
देशे च काले ७·३८
देशो भवत्वाधिक २३·९८
देहत्यागश्च १५·६६
देहात्मनो भेद ३१·९०
द्युसुन्दरीणाम् ९·५४
द्रव्यं फलं प्रकृतमेव १·६
द्रव्याणि षट् च २६·१०६
द्रव्याणि षड् १·७
द्रव्याण्यशक्त ४·४८
द्रव्यार्थिकनयस्यात्मा २६·६४
द्रव्यार्थिकव्यवस्थायाम् २६·८६
द्रव्यार्थिकस्य २६·६५
द्रव्ये सति क्षेत्रयुते २५·७३
द्रव्यैस्तु पञ्चभिर्व्याप्य २६·३२
द्वन्द्वत्रयव्यातिषु ३१·८९
द्वात्रिंशदायोजित १२·२२
द्वाभ्यां भुजाभ्याम् १२·४३
द्वारैश्च जाम्बूनद ९·२१
द्वारोपविष्टा कमलालया २२·६१
द्वाविंशतिर्वर्ष ६·४०
द्वावेव सोत्कर्ष १०·३१
द्विजातयो मुख्यतमा २५·२८
द्विजातिवक्त्रोद्गलित २·५५
द्विजैश्च काकैर्यदि २५·६४
द्विभेदमवधिज्ञानं ४·१५
द्विविधं नाम ४·३५
द्विविधं मोहनीयं ४·२७
द्विषट् सहस्रं १४·६३
द्विषण्मुहूर्ता ४·४१
द्विषत्स्वसूया २३·५५
द्विसप्तरत्नाधिपतिं २८·३४
द्विसप्तषट्ताड्य २७·५३
द्वीपः समुद्रो भवनं ७·५७
द्वेषश्च रागश्च २५·८८

धनधान्यानि न २४·४०
धनवीर्यपराक्रमाति २४·३४
धनं शरन्मेघ २८·७१
धनं शरीरं १६·७१
धनेन देशेन १६·५७
धरणीसुत उग्रवीर्य २४·३५
धर्मक्रियाया हि २५·२६
धर्मद्रव्यं त्रिधा २६·२५
धर्मप्रियस्य रति १·६२
धर्मश्रुतेः पापमुपैति ३·४६
धर्मात्सुखं पाप २·७९
धर्मात्सुखैश्वर्य २९·६५
धर्माधर्मवियत् २६·३७
धर्माधर्मौ यथासंख्यं २६·२३

धर्माधर्मैकजीवाश्च २६·३९
धर्मानुबन्धा दुरित ३·४८
धर्मानुबन्धात्सुख ३·४९
धर्मान्विताः सर्व ८·२०
धमार्थकामागम २९·१२
धमार्थकामोन्नति २८·२
धर्माविरोधेन २९·३६
धर्मेण संप्राप्त २·१
धर्मेण देवासुर ८·५९
धर्मे मतिं यन्न ८·२९
धर्मैककार्यान् २२·६
धर्मो दयामयः १५·१०७
धर्मोऽर्हता सर्व २३·७१
धातुः स काञ्चन १·८
धाराभिधौताङ्गमलाः ३०·३१
धिक्शूरसेनाधि १८·८९
ध्रुवता जगतो २४·४७
ध्रुवो विनाशः २२·३९

न केवलं वाक् १८·३८
नक्तं दिवं क्लेश ८·३५
न चामिषा सा १२·६२
न चारिकोऽहं १३·७९
न चोभयं मे १३·७४
न जीवितुमितः १५·६२
नटा विटाः १४·६२
नटाश्च भण्डाः २३·४७
नदीजलं प्रश्रयणोदकं २३·२४
नदीरगाधा १३·४५
नन्दी तथैवर्षभदत्त २७·८०
नन्दीश्वरेऽर्हत्प्रतिमा २२·३७
न ब्रह्मजातिस्त्विह २५·४१
न ब्राह्मणाश्चन्द्र २५·७
नभश्चरः सर्व २५·१९
न मज्जयन्त्यम्बु १९·६७
न मन्त्रिणा वा १६·४२
नयनवारि २०·३४
नयादपेत १९·६०
नयानामपि सामग्री २६·८४
नरकादुष्णबाहुल्यात् ५·९६
नरकाः पुरसस्थाना ५·१८
नरकेष्वतितीव्र २४·३५
नराश्च सर्वे ७·५९
नरेन्द्रकन्या धृति २·६३
नरेन्द्रगेहाजिन २३·५४
नरेन्द्रगेहोत्तर २१·३८
नरेन्द्रदत्तो २२·८९
नरेन्द्रपत्न्यः ३१·१
नरेन्द्रपुत्रः १३·८२
नरेन्द्रपुत्रीम् १९·३३
नरेन्द्रपुत्रो १४·८२
नरेन्द्रपुत्रो ११·४६
नरेन्द्रसद्वाक्य २०·९६
नरेन्द्रसेवार्थ १९·५६
नरेश्वरा ये १८·१
नरेश्वरो भास्वर १७·११
नव प्रकृतयः ४·४९
नव प्रदिष्टाश्चतुर ६·४७

नवभिर्नोकषायैः	४·९२	नामं च स्थापना	२६·५२
नवशरदि भृशं	२१·९८	नाम्नेन्द्रकूटो	२२·७५
नवा न काम्यस्मि	१३ ३८	नारका भीमरूपा	५·३२
नवान्नवान्हर्ष	२१·७६	नारकाणा च दुःखस्य	५·२१
नवान्नवान्	१५·२८	नारकी वाथ	५·९
नवैव तेषा	२७·३३	नालङ्कृता सा न	१९·४२
न शक्यते	१२ १८	नालिङ्गितो यो	२९·८१
न शक्यतेऽर्कः	११·८०	नायूंषि तिष्ठन्ति	२८·४६
न श्रेष्ठिपुत्रस्तु	१६·१०८	नास्त्यकर्ता न	२६·७१
नष्टश्रुतिर्लुप्तशरीर	२२·१४	निगूह्य भावं	१३·२९
नष्टान्धकारा	७·१८	निजाशुभिर्व्याप्त	२८·२३
न संभवति ससारे	२६·५७	नित्यप्रवृत्तातिशय	९·४५
न सा सुनन्दा	२५·६	नित्यप्रवृद्धाः	१९·१३
न स्यात् सुतः	१२·६	नित्य परप्रेषण	१२·८४
न हि द्रव्यार्थिको	२६·५३	नित्याविरोध्युत्तम	३१·७१
नाचारवन्तो विकृता	९·३२	निदाघतीक्ष्णार्क	३०·३७
नाज्ञानतोऽन्यद्	३·५६	निदाघमासे व्यजनं	२८·६
नात्मप्रशसा न	९·६४	निदाघमासोत्थ	२८·३८
नायोऽयमस्माकं	८·५०	निद्रा निद्रा च	४·२४
नानाप्रकारोज्ज्वल	२·५६	निद्राश्रमक्लेश	२५·८७
नानाविधक्षत्रिय	८·५७	निपत्य तस्मिन्	१२·४९
नानाविधैस्तैः पटहैः	३·२९	निपातदेशेष्वभिलीन	६·२३
नापत्सु मूढो	२२·४	निबद्धवैरान्	२९·३८
नापुत्रका लोकमिम	२५·६९	नियतिर्नियता	२४·४१
नासो हि रुद्रस्त्रिपुर	२५·७४	नियमैश्च यमैः	२४·१२
नासो हि विष्णुर्बलि	२५·७७	निरङ्कुशो	३·५७
नाभेय आद्यो	२७·३७	निरन्तरं तस्य	२८·७६
नाभेयतीर्थे भरतो	२७·४५	निरर्था इव	१५·४०
नाभेयशान्ती	२७·६६	निरस्तदुर्नीति	१३·१८

निरस्तभूषाः ३०·२
निराशयास्ते ८·३४
निराश्रये १३·२८
निरीक्ष्य यातं १३·२०
निरुत्तरैस्तैः २९·२५
निरुध्यमानः १४·३१
निर्गत्य गर्भाद्दिवसांस्तु ७·५५
निर्जग्मुरेके नरदेव ३·१८
निर्बन्धा निष्प्रतीकाराः २६·१३
निर्मुच्य स्वजनगतं १२·८८
निर्विण्णो दीर्घनिश्वासः ४·८७
निर्वीर्यता राज १८·६०
निवर्तमानान्स्वपुरान् २·८९
निवृत्तलोकव्यवहारिणः ३०·४१
निवेद्य चात्मागमनं २१·६९
निशम्य तद्वाक्यं १३·८५
निशम्य तत्सागर २८·६९
निशम्य तेषां १६·८९
निशम्य पुत्रस्य २१·२२
निशम्य भव्यस्य ११·४०
निशम्य राज्ञो २१·५१
निशम्य वाचं २८·६३
निशम्य वार्णी २२·२८
निशम्याशु धर्मं १०·६३
निशाम्य लेखं च २·३७
निह्नवं ये च ४·४४
निःशीला निर् १५·६७
निःश्वस्य दीर्घं २८·२९
नीचानुवृत्तेः १२·९
नीरोगशोक १·४५
नृकुञ्जराः केचित् १७·५७
नृणां च संपत् २८·७०
नृणां प्रियोऽसौ १४·९३
नृणां ह्यानाना १७·६९
नृत्यन्ति तत्राप्सरसो ९·४०
नृपवचोर्थं २०·६३
नृपतिकान्तसुतां २०·२
नृपतिरनुनिशम्य १६·१११
नृपतिवाक्यम् २०·४२
नृपती द्विरदेन्द्र २४·६९
नृपनृपवनिता २९·९७
नृपश्च निर्वर्तित २१·५०
नृपस्तु पुत्रस्य ११·५३
नृपस्य पुण्योदयतो २१·३९
नृपं प्रयातं २९·५६
नृपाङ्गनाभिः १२·१
नृपाज्ञया राज २·६४
नृपाज्ञयार्हत्प्रतिमा २२·७७
नृपाज्ञया केचिद् ३·१७
नृपात्मजेन १४·४४
नृपाभिषेको नृप २१·५२
नृपाश्च भृत्याः ७·११
नृपेन्द्रसेनो बृहद् १६·३८
नृपैर्नृपाणा समरे १८·२९
नृपोत्तमः शान्तरिपुः २·४६
नृपोपकारं मम १६·८६
नृपो विरेजे २८·२१
नेच्छाफलाप्तिः ८·३९

नेत्रैः पश्यन्ति ५·८७
नेदुः समन्ताद् २९·४७
नेमिस्त्वथारस्य हि २७·६७
नैकप्रकारमहिमोत्सव १·४१
नैकप्रकाराकृति ३०·४६
नैगमः सग्रहश्चैव २६·५०
नैरात्म्यशून्य २५·८२
नैवाब्रवीस्त्वं १४·५३
नैवासि भद्रार्थ १७·२७
नैवेह कार्यो १६·५३
नैष प्रहारो १४·३२
नैष्ठुर्यपारुष्य ३०·५१
नैसर्गिक तद् ११·२१
नैसर्ग्यमास्थाय ३०·२०
नोकषायः कषायश्च ४·२८
नोदासीना न ५·८९
नोदैष्यदर्को यदि २२·४४
नो वत्स कार्य १२·८
न्यायविदुष्ट १५·५०
न्यायादपेतं १२·१६
न्यायार्जितद्रविण १·४०
न्यायोपदेशेन १२·३४

पङ्गुवन्धमूकान् २९·३५
पञ्च चत्वारि च ५·८
पञ्चानामिन्द्रियाणा ५·२८
पञ्चाना वैक्रियादीनां २६·२०
पञ्चाशता द्वे च २७·६३
पञ्चास्तिकायभेदेन २६·४
पञ्चेन्द्रियाणा १२·८१
पञ्चेन्द्रियाणां २९·६२
पञ्चेन्द्रियैरप्रति ३१·२२
पञ्चोत्तरास्ते कुरवः ७·२
पतङ्गषट्पाद्मधु ६·७
पतितैरङ्गतः १५·६०
पत्राणि पुष्पाणि २५·२९
पथिश्रमाः काञ्चन २१·४४
पद्मापिधानैः १९·१९
पद्मालया मित्रसमाह्वया २७·७६
पयोदधिक्षीर २३·२५
पयो भवेद्धेनु ७·४०
परनरेन्द्रबलेन २०·९
परमहर्षविबुद्ध २०·६५
परस्पराक्रीडन ७·६१
परस्पराघात १७·६२
परस्परोद्वञ्चन १४·३८
पर न गृह्णाति १८·९९
पराङ्मुखानामथ १८·१७
परार्ध्यनानामणि २३·५०
परिगम्य मुनिं १५·१३५
परिगृह्य नरो २४·५६
परिणामाजीव २६·३३
परिभवं द्विषतः २०·३३
परिभ्रमन्काल इव १८·९४
परिभ्रमन्तं १३·४७
परिभ्रमन्ती १३·३०
परिवारधना २४·६८
परिवृतो नृपतिः २०·२०

परीत्य सर्वे १३·४८
परीषहाणां क्षणम् ९·३४
परीषहारीश्चतुरः २२·४५
परीषहारीन् ३१·१०८
परुषवाक्य २०·१७
परे पराक्षीणि १७·५१
परोक्ष तर्हि २६·४७
परोपघातानृत ११·३९
पर्यन्तवैडूर्यशिला ७·१३
पर्याप्तपर्याप्तक ६·४
पर्यायाक्षरसंघातः ४·१२
पललोदनलाज २४·२७
पल्योपमाना खलु २७·२२
पवित्रचित्तो ३१·५८
पशूनथाज्ञानगतीन् २५·१६
पश्यामि तावत् १६·३७
पादप्रचारैस्तनु २५·८
पापक्रियाभियुक्तेषु ४·८४
पार्थिवाः खेचराः १५·९६
पालयित्वा महीं ५·१०१
पाषण्डिनः स्वाश्रम २३·९९
पाषण्डिनो ये ९·२७
पाषण्डिशिल्पिबहु १·४४
पितरं तस्य १५·५
पिता च माता २८·७४
पिता ममासीत् २८·५८
पिता वराङ्गस्य २९·२
पितुर्नियोगाद्वर २१·२६
पितुश्च पुत्रस्य च २५·६६
पितृपुत्रादिसंबन्ध २६·८७
पित्रैवमुक्तः सुत १६·१००
पिधाय पापास्रवं १०·१४
पिबन्ति रुधिरा ५·४६
पिषन्ति गन्धवत् ५·४५
पिष्टपाकमुखेष्टिके ५·३०
पीड्यन्ते तिल ५·७१
पुण्यान्यकृत्वा ८·२८
पुण्याम्बुपूर्णान् २३·४१
पुद्गला जीवकायाश्च २६·४१
पुनरथ सकलान् १४·९८
पुनरन्तर्मुहूर्तेन ५·८५
पुनरपि जिनशासनः २५·९८
पुनरपि यतिराडघः ४·११४
पुनरितः क्रमतः २०·५
पुनर्मानुषीं ता ६·५५
पुनर्वसुर्नन्द २७·७९
पुनः पर्याप्त ५·७३
पुनः प्रभाते १३·७६
पुनः सरोऽन्तर्गत १३·२
पुपूषवः पापरजासि ३·२२
पुमानर्थानथाप्रेप्सुः २६·१०२
पुरस्य बाह्यं २१·३२
पुरस्य मध्ये २१·३४
पुरं क्रमेणाप्रति २९·७४
पुरं विशालं ११·४५
पुराकरग्राममडम्ब ३·४
पुराकरग्राम २१·४८
पुराङ्गना ११·६०

पुराङ्गनास्ताः	१८·२०	पुष्पाणि सत्केसर	२३·४६
पुराणि राष्ट्राणि	३१·५५	पुंवेदः स्त्र्यभिसंदर्शात्	४·९०
पुरा तु मत्स्वामिनि	२२·२३	पूजातपःशीलगुण	२३·१०३
पुरात्मचरितं	१५·३२	पूजा तपःशीलमपि	२९·६७
पुरा त्वनेन	१४·९१	पूजावसाने प्रतिमा	२९·५०
पुराद्बहिर्मण्डल	१२·३५	पूज्यानि तान्यप्रति	२२·४२
पुरा निविष्टा	२५·४६	पूतं च पुण्यं	१०·५
पुरापि जैनेन्द्रमत	२८·१००	पूर्णे तथा वर्षशते च	२७·१८
पुरापि यत्कालपरंपरा	२१·३१	पूर्णे समासान्तशते	२७·२१
पुराप्यशृण्वन्	१६·१०७	पूर्वजन्मकृत	५·६२
पुरा मया किंतु	१३·५३	पूर्वं तु पुण्य	१४·८७
पुरा यदूना	२१·२९	पूर्वमष्टाह्निकं	१५·१४०
पुरार्जितात्यन्ततपः	२२·७	पूर्वं तत्कृत्वा सुकृतं	२·८०
पुरार्जितश्रीः	२९·६९	पूर्वं त्वमेव	१४·३०
पुरा वराकानटवी	१७·३०	पूर्वं महीपालसुतः	१२·६९
पुरा वराङ्गस्तु	२१·१	पूर्वापराधान्	५·३५
पुरा हि सच्चन्दन	१२·८०	पृथग्विधैर्यै	९·१७
पुरुषैश्चिरकालकर्म	२४·१७	पृथिवी कठिनात्मिका	२४·३
पुरुषो यदि कारकः	२४·४२	पृथुश्रियं यौवन	१९·७७
पुरे वनेऽरातिजने	३१·१४	पौरप्रधाना नरदेव	२·७३
पुरे वने वापि	३·१०	पौराङ्गनाभिः	२३·५५
पुरे च राष्ट्रे च	१३·६	पौरैर्जनैर्वर्षचैरः	२९·५४
पुलिन्दकाना	१४·२३	प्रकटमास्स्व	२०·३१
पुलिन्दनाथस्य	१४·३९	प्रकृतिर्महदादि	२४·४३
पुलिन्द्रनाथौ	१४·१२	प्रकृतेः पुरुषात्	२६·७२
पुलिन्द्रसेनागम	१४·७०	प्रकृत्यनुज्ञात	११·५५
पुलीन्द्रनाथेन	१३·६२	प्रगृह्य मानाकृति	१४·२
पुलीन्द्रपल्लीं	१३·५०	प्रचण्डवातोद्धत	८·२३
पुष्पाणि ताम्बूल	११·७८	प्रचलेत्थितया	२४·५७

प्रजायमानान्	९.३९	प्रमार्ज्य हस्ताम्बु	२३.६२
प्रजाहितक्षेम	१६.१०२	प्रमुदिता च	२०.८९
प्रजेष्टकारी	११.५१	प्रलम्बहारोज्ज्वल	१३.२५
प्रणम्य पूर्वं	३१.६३	प्रवरहर्म्यतलेषु	२०.३
प्रणम्य पूर्वं	२३.६१	प्रवरहर्म्यतल	२०.८७
प्रणयवानपि	२०.४३	प्रवर्धमानः किल	१४.८३
प्रतप्तलोहे पतितो	३०.५९	प्रवालकर्केतन	२२.६४
प्रतिगमय्य निशाम्	२०.७७	प्रवालमुक्तामणिभिः	२.६८
प्रतिमाः स्थापिताः	१५.१३९	प्रवालमुक्तामणि	६.३६
प्रत्यक्षभूत फल	१९.६३	प्रवालमुक्तामणि	९.१८
प्रत्यक्ष भिद्यते	२६.४६	प्रविराजितरत्न	२४.७०
प्रत्यागतास्तान्	१४.१३	प्रविश्य त भोगविरक्त	२८.३०
प्रत्यागताना	२.४०	प्रविश्यात्मगेह	२३.१०४
प्रत्यागतानुद्यत	१७.५२	प्रवृद्धकान्तिद्युति	१८.७८
प्रदानमानैकरसाप्त	१६.३५	प्रवृद्धधूमाकृति	१७.७०
प्रदाप्य दीपाश्च	२३.६८	प्रवृद्धवैराग्य	२९.२६
प्रदाप्य पाद्य	१३.८७	प्रवेष्टुकामा. क्षितिपस्य	२५.३०
प्रदित्सव. केचन	३.१९	प्रशस्तनक्षत्र	२.८६
प्रदीपचन्द्रग्रह	२३.१३	प्रशस्य तावद्	१८.३९
प्रदीपमालामणि	२३.३४	प्रशस्यता दृष्टि	१३.१३
प्रधानमन्त्रीश्वर	२५.९५	प्रशान्तपङ्कोदक	११.२७
प्रपतन्त्यसिपत्राणि	५.८२	प्रशान्तरेणौ	१७.७१
प्रपिष्यमाणाश्च	६.९	प्रशास राजन्	२१.२०
प्रबलकेतुपतत्	२०.५९	प्रसन्नतोयेषु	६.१२
प्रभञ्जनप्रेरित	१८.६६	प्रसन्नमिथ्यामल	११.२४
प्रभञ्जनाभ्याहत	१७.३८	प्रसन्नभावात्तपसः	३१.५१
प्रमत्तमातङ्गविलास	२८.८	प्रसादलाभात्परितुष्ट	२१.७२
प्रमाणभूतस्त्वमिह	२८.६८	प्रस्तारैः कुतपश्चा	५.१४
प्रमाणनयनिक्षेप	२६.८५	प्रहतदुन्दुभि	२०.७३

प्रहाससंलाप १४·५
प्रहृष्य भूयः १३·६६
प्रहृष्टरोमः परितुष्ट ३·१५
प्राकारमालाभिरथो २२·६८
प्राज्ञस्य हेतुनय १·१७
प्राणातिपातश्च महान् २५·१३
प्राणान्तकृद्ब्रह्मवचो २५·८४
प्रातः कुमारः ११·४८
प्रामव्यतायाः १२·३८
प्राप्येत येन १·३
प्राभृत प्राभृतं ४·१३
प्रायेण प्राणिनो १५·७५
प्रालम्बकाद्यानि १२·५६
प्रासादकूटवलभी १·३७
प्रासादगर्भाद् १८·११८
प्रियङ्ग्वशोक २२·६९
प्रियव्रता चक्र २·६१
प्रियसुतं च २०·७५
प्रियाङ्गनाभिर्वर २·९०
प्रियाणि कुर्वन् ८·३८
प्रियाभिराभिः १२·७०
प्रीतिपूर्वं कृतं १५·८०
प्रीतिं त्वमीषा १४·८४
प्रीतिः पराभावं २८·७२
प्रीतिः सन्ध्याम्बुद १५·७७
प्रेक्षासभावली २२·६७
प्रोक्ता स्थित्यादयस्ते २६·५६
प्रोतैश्च सूत्रैः २३·३६
प्रोत्थाप्यमाना २८·८४
फलं कदल्या न हि २५·२७
फलान्यथोदुम्बर २५·४
फुल्लारविन्दवदना १·५८

बका बलाका जल ६·१९
बकुलराजवल २०·८०
बकुलोत्पलजाति २४·८
बध्नात्यष्टविधं ४·१०५
बध्यन्ते बन्धकास्तीव्रं १५·८६
बन्धुभिर्भृत्य १५·८१
बभूव यस्मिन् २१·३३
बभूवुरेता जिनमातर २७·७७
बलवास्तु यदा २४·६३
····· २४·६४
बलाहकाख्यं १८·७
बलिनो बलवान्न २४·३३
बलेन वित्तेन २१·६४
बहिर्ययासुर्भवना २९·१७
बहुदृष्टिनिविष्ट २४·२१
बहुप्रकारं हि ३१·७३
बहुप्रकारान् पुर ३·१६
बाधिर्यमान्ध्यं ८·३६
बालः कृशाङ्गः १४·१०
बालोऽसहायो १४·५१
बाल्यात् प्रभृत्येव ११·७४
बाहुल्यमष्टौ १०·३
बाह्यं पुनः ९·८
बाह्याभ्यन्तर १५·१२५
बीजादिव परं ४·१०७

बृहत्पृषत्कैः ६·२५
बृहत्पृषत्कैस्त्वथ १८·४२
ब्रवीति चक्षुः १९·१०
ब्रह्मादयो यद्यनवाप्त २५·८५
ब्रह्मापि नाप्तो २५·७६

भद्रान्वयो भद्रमना १६·९
भद्राः प्रकृत्या ७·२५
भवत्प्रसादोदय ११·३७
भवत्प्रसादोदित २८·८५
भवन्ति रोषान्नृपतेः २५ ३२
भागीरथिश्चक्रधरस्य २५·५५
भारो यथादौ २९·६
भार्यास्त्वनुपमा १५·३४
भित्वार्गल यान्ति २९·१६
भिन्नात्मकेतुः १८·८२
भीष्मो हि गङ्गातनयो २५ ४८
भुक्तान्नवीर्येण ७·४३
भुजङ्गमातङ्ग १२·५७
भुवा तृणाना ७·२४
भूताः पिशाचा ९·५
भूतैः प्रभूतैः ३०·३४
भूमिः पुनर्गर्भ ७·३७
भूम्यद्रिवनजीमूत २६·१६
भूम्यम्बुवाय्वग्नि ६·५
भूयश्च तस्या १२·४८
भूयोऽप्युपेन्द्रस्य ५८·५६
भूयोऽर्हता २९·४१
भूशैलतोय १·३९
भृङ्गारिकादर्शन २३·३८
भृत्याश्च मित्राणि २२·४०
भोगविघ्नकरा ४·१०२
भोगाभिलाषात्तव १६·९६
भोगान्विता शास्त्र ८·४८
भो दूत आस्ता १६·१७

मक्षिका मशकाँ ५·४९
मङ्गल्यगीतस्तुति २३·७०
मणयः प्रद्मरागाद्याः २६·८१
मणिहारकिरीट २४·१४
मतिश्रुतावधि ४·९
मत्तद्विपस्यायत ३·३१
मत्तद्विपस्कन्ध ८·४९
मत्तद्विपाना चरणाभि १७·६५
मत्तद्विपाना तु १९·२१
मत्तोऽधिकाः शक्ति १६·२४
मत्पुण्यतो वा १७·८
मत्स्यामिषाभ्या २९·५७
मदनतापन २०·४५
मदप्रभिन्नस्रवदार्द्र १७·१३
मदप्रभिन्नार्द्रकट ३·२८
मदिरामललोल २४·७
मदोद्धतानामथ १७·७५
मदोद्धतैः ११·३८
मद्याङ्गतूर्याङ्ग ७·१४
मद्वाक्यनीतौ १६·२७
मद्विप्रलम्भार्थमयं १९·७५
मधुरवाक्यरसैः २०·५८

मध्ये भवन्तीन्द्रक ९.१२
मध्ये ललाटस्य ३१.९९
मध्वाक्ततीक्ष्णासि १०.४३
मनसैव विचिन्त्यात्र ५.१०२
मनुष्यजातिस्तु ८.६०
मनुष्यजातौ भगवत् ८.५६
मनुष्यभूमौ व्रतशील ८.१९
मनुष्यजातिर्व्रत ८.१३
मनुष्यजातिर्व्रत ८.१२
मनोवाक्काय ४.९७
मनोरथं प्राप्य २३.७३
मनोहरेष्वपि ३१.८०
मन्त्रिप्रधानाः २३.५
मन्त्रीश्वरश्रेणि १८.११४
मन्त्रीश्वरामात्य २९.९५
मन्त्रे च युद्धे २८.७८
मन्दप्रवाताभिहतानि ७.८
मन्नाथवत्सप्रिय ८.४१
ममत्वदेहप्रतिकार ३०.१४
ममाशरण्यस्य १२.६७
मयूरपारावत ९.१४
मयूरमातङ्ग २२.१३
मया वियोजिताः १५.३०
मल्लिश्च पार्श्वौ २७.८९
महता तपसा २६.९७
महर्द्धिभिर्नैकविधा ३०.६७
महर्षिपादौ ११.४३
महाजिभूमौ १७.८२
महानथास्माभिः २१.१३
महापदं प्राप्य १३.७१
महाबलस्यास्य १६.४३
महाबलानिन्द्रिय ३१.८
महाबलौ १४.७
महामहत्प्रीति २८.१७
महामहं यः २३.७६
महाव्रतान्यप्रतिमानि ३१.७५
महाहवः शोणित १४.२१
महीमहेन्द्रोऽथ २.३२
महेन्द्रसेनप्रवरा १६.३१
महेन्द्रनीलै रुचकः ७.५
महेन्द्रनीलैर्मणिभिः २.६५
महेन्द्रपत्न्यः ३१.११३
महेन्द्रसौवीरक १६.३३
माता च पत्न्यस्तव २९.४
मातामहोऽयं २९.३२
मातुः पितुश्चैव १९.५२
मात्रैवमुक्तो १२.११
मानात्पुनः केचन ६.२९
मानोत्थानस्तृतीय ४.७२
मानोदयश्चतुर्थो यो ४.७३
मानोदयो द्वितीयस्तु ४.७१
मानोऽन्तरं सर्व १६.५५
मानोन्नतं नावनतं १८.६५
मानो महाशैल ३०.१६
मा भूवं विक्लवाः १५.१३४
मायातिवञ्चन ४.९४
मायोत्थानस्तृतीयस्तु ४.७६
मायोदयश्चतुर्थो ४.७७

मायोदयो द्वितीयस्तु	४·७५
मायादिभिर्ये	६·३०
मार्गसंदूषण	४·६२
माल्यप्रदानैः	२३·७९
माल्याभरणवस्त्राणि	५·६०
मासे चत्वारि	१५·१२३
मास्मत्वरिष्ठाः	२९·१०
मास्मत्स्मरं त्व	२८·६२
माहेन्द्ररत्नोज्ज्वल	९·१८
मिथ्यातिमिर	५·२७
मिथ्यात्वतो	११·१४
मिथ्यादृशः सद्व्रत°	७.५४
मिथ्यानिवृत्ति°	११·२८
मिथ्यान्धकारोदय	११·२५
मिथ्यावादसमूहस्य	२६·९०
मिथ्याविनाशात्	११·१५
मित्रं बलीयः	२·२९
मित्रंसहः कोशल	२·६२
मुक्तावलीं रत्न	२९·४४
मुख्येषु भेद	१६·६३
मुखण्डिभिः	१८·७०
मुखं परावर्तित	१९·५१
मुनीन्द्रवाक्यात्	११·३५
मुमुक्षवः केचन	३·२१
मुहूर्तनक्षत्र	२१·२७
मूलप्रकृतयः	४·५
मूले षोडश संख्याता	५·६
मृगेन्द्रपद्मोक्ष	२३·४४
मृगेन्द्रशावाविव	१८·४१
मृत्सारिणीमहिष	१·१५
मृदङ्गगम्भीर	२३·५९
मृदङ्गभेरीरव	२३·४८
मृदङ्गवीणावर	७·१६
मृदङ्गशब्दैः पटह	२९·५३
मृषैव यत्नात्	२५·८३
मृष्टान्नपानं	२०·१०१
मृष्टान्नपानानि	१४·२४
मेघचुम्बितकूटाग्रं	१५·१६८
मेरुप्रमाणोऽयः	५·२२
मैव त्वनुपमे	१५·६४
मोहक्षयात्	१०·२२
मोहातिरोगोद्भव	३१·२९
मोहावृतो विस्मृत	२८·४५
य एव पर्याप्त	१२·८२
य एवमुक्तो	२१·२३
यतिपतिमभिवन्द्य	२२·९९
यतो यतस्त्वप्रति	१८·१०९
यतौ बुवाणे	१०·६२
यत्कारणः स्याद्	१६·६८
यत्पूर्वमाख्याय	१९·९
यत्प्राणिनां जन्म	३१·९७
यत्प्रार्थितं राजसुते	१९·७३
यत्र जीवस्य जातिः	१५·१०३
यत्रार्हतां जन्मपुराणि	३०·४८
यत्सुखं त्रिषु	४·६०
यथाब्जिभूमावरि	३०·२१
यथा दवाग्नेरपसृत्य	३·६७

यथा दवाग्नेरपसर्तु	३·५९	यथैव राज्यात्	१३ ७२
यथा नटो रङ्गमुपेत्य	२५·४०	यथैव लोके गुड	२५·५२
यथा नभसि	१५·९५	यथैव लोके	१०·२७
यथा नभसि	४·४६	यथैव वीरः	३१·१०९
यथा नाव समारुह्य	१५·९०	यथैव शालीक्षुफल	२८·४२
यथा पतन्ति	१५·९२	यथोचितन्याय	२१·१९
यथा पितृभ्या	१२·१४	यथोदक तु मत्स्याना	२६·२४
यथापि दुर्वह्निशिखा	३१·९४	यथोदयात्	१०·२०
यथा पुरात्यन्त	३०·२५	यथोदितस्य	१५·९४
यथा पुराभ्यन्तर	३१·३४	यथोपनीतक्रम	२९·११
यथा प्रसूता महता	३१ १५	यदतुल्यपराक्रमाति	२४·७१
यथा मदान्धाः	३०·२४	यदि कालबलात्	२४·२८
यथा मधूच्छिष्ट	१०·३५	यदि तस्करको	२४·२३
यथा मयि	११·६८	यदि दैवनियोगतो	२४·२२
यथा यथा	१३·६४	यदि प्रयात पुरतो	१८·३१
यथा यथा त	१९·५७	यदि मदात्स	२०·१८
यथालकाया	२८·२२	यदि मम गृहधर्मे	१९·७९
यथा हृतमणि	१५·२१	यदि शून्यमिद	२४·४४
यथैव कुशलैरेते	२६·६२	यदि श्रमादात्मनि	२९·२८
यथैव चक्षुः	११·२२	यदि सर्वमिद	२४·४८
यथैव चन्द्रोदधि	१०·५३	यदिहेप्सितमात्मनः	२४·४९
यथैव ताडी	१०·३२	यदीश्वर प्रीतिमुख	२५·३१
यथैव तीक्ष्णाङ्कुश	३ ५८	यदैहिकामुष्मिक	२३·८८
यथैव पूर्व भरतेश्वरः	३·३२	यद्दुःख त्रिषु	४·५९
यथैव बीज	१०·२५	यद्दूतसंप्रेषण	१६ ६६
यथैव मत्तमातङ्ग	१५·९८	यद्देयमस्मै	१६·५९
यथैव मा	२८·६१	यद्यङ्गनावद्धृदि	१२·५४
यथैव मेघाशनि	९·३७	यद्यच्च लोके	२३·९०
यथैव मेरुः प्रवरो	८·१०	यद्यच्च लोके	२५·७०

यद्यत्र सत्त्वान्	२५·१७	या गतिर्दुःख	५·२५
यद्यद्विनिर्मितं	१५·८२	याशे वधे नैव	२५·१४
यद्यत्र नाथ	२८·१०६	याते तथैवाब्दशते	२७·२४
यद्यन्नृलोके	२२·१९	यादृशि दानानि	२५·६७
यद्यस्ति पुण्यं	१२·२३	या धर्मसेननयना	१·६५
यद्यप्यनुज्ञा कुरुते	१९·७१	यानि लोकेषु	५·९९
यद्येवं शकट	१२·८५	यान्तं संस्थापयति	४·५३
यद्योजनपृथक्त्वे	४·२०	यान्ति क्षयं ते	२७-७३
यद्वत् पूर्णशरत्	१५·२०	यावद् गृहद्वारमिला	१९·१५
यमस्य नाथोऽपि	२८·९०	यावन्तो वचसा	२६·६९
यमानतं तन्नवमं	९·९	युक्ताधिरोह	१·५७
यया हि भूतिः	२१·७३	युक्तौ विचार्यमानायां	२६·१०४
यवैः शुभं वर्ण	२३·२१	युगवरपुरुष	२७·९४
यशोऽर्थकामाश्च	२२·५४	युद्धं त्वया यत्	१६·९८
यस्मिन्दिशश्च रहितालि	१·२५	युद्धाध्वभारक्षम	१७·१७
यस्मिन्प्रसूते	२·२	युद्धेषु भिन्नकट	१·५३
यस्मिन्वनानि फल	१·२६	युद्ध्वापि केचित्	१६·९४
यस्मिन्सदा गरुड	१·३०	युवनृपतिमुदीक्ष्य	११·८६
यस्मिंस्तु देशेऽस्तम्	३०·४७	युवनृपत्वमवाप्य	२०·७
यस्याज्ञया स्वपथ	१·५१	युवनृपस्य	२०·१५
यस्यात्मजा नागकुमार	२८·१४	युवनृपोऽभिहतो	२०·११
यस्याहितं प्रकुरुते	१·५२	युवराजाधिरूढं	१५·३
यस्याः कुमार्याः	२५·५४	युवराजमपश्यन्तो	१५·१४
यस्योरुनीत्या रिपवो	२८·१५	युवराजवियोगेन	१५·७३
यः कामिनीजनमनो	१·४७	यूना वरिष्ठस्तु	८·४२
यः कार्तिकेयः	२५·५३	ये कल्पवासा गणना	९·३
यः शक्तिमांस्तं	१६·४५	ये कामतो ब्रह्म	९·२८
यः शङ्करस्योज्झित	२५·४५	ये कौशिकाः काश्यप	२५·५
यः सर्वसंपत्ति	२२·७४	ये चक्रविक्रान्त	२८·९२

ये जात्यादि	४·९९
येऽर्थास्त्वया प्रश्न	३·४४
ये दर्शनज्ञानविशुद्ध	२५·८६
येनात्मनोपार्जित	१८·१२७
ये निग्रहानुग्रहयो	२५·३३
ये निर्वृतानाम्	१०·५५
ये निष्कृपा न्याय	१७·२३
येनेह मोहतरु	१·२
येनोत्तमर्द्धि	२२·५१
ये भूमिपालाः	२९·९०
ये मार्दवाः क्षान्ति	९·३३
ये वञ्चकाः कूट	६·३३
ये शीलवन्तो	१९·६६
ये शीलवेलामिह	१९·६९
येषा च सज्ज्ञानं	९ ३६
येषा तु चारित्रं	७·५२
ये सिंहला बर्बरकाः	८·३
ये स्वामिनं नः	१७·२४
ये हत्वा प्राणिनः	५·५०
योऽकारयद्वेश्म	२२·५०
योगतः कर्म	२६·५९
यो गर्दभाय	२५·७८
यो दर्शयेद्युक्तिमतीं	१७·६
योधान्गजस्योर्ध्व	१८·१५
यो भूपतेरप्रतिकूल	१७·५
यो वा स वाहं	१८·३३
योऽश्नाति गङ्गोदकम्	२५·४७
यौवनं बाधते	१५·७६
रजतरुक्मघटैः	२०·८५
रणावनौ	१४·४६
रत्नहारप्रवालांश्च	१५·५७
रत्नाकरं द्वीपवरं	२८·४३
रत्नोपलाग्रोपरि	१·२९
रत्नोत्पलालिङ्गित	२८·१९
रथपदातितुरङ्गम	२०·१०
रथाधिरूढाः	१७·७४
रथाश्च सद्रत्न	१७·१६
रथैश्च काश्चिद्दुर	२२·५५
रम्यानदीतटसमीप	१·३३
रविकोटिसहस्र	२४·७५
रविचन्द्रमसोः	२४·३६
रसस्तु गौडो	२५·३५
रागात्मकानाम्	३१·७४
राजंस्त्रिपल्योपम	७·६२
राजा ताभिः	१५·७२
राजात्मजा किं	११·८२
राजा निशम्य	१५·६३
राजानो राज	१५·२
राजानुमत्या	१६·७६
राजापि युद्धाभि	१६·७७
राज्यं त्वदायत्तं	२९·३
राज्यं हि राजन्	१९·२३
राज्यार्धराज्यपृथु	१·२१
राज्यैस्तु किं वा	२८·५१
राज्ञा सहायान्तम्	१८·१२६
राज्ञीभिर्मदन	१८·१३०
रात्रिंचरा भीमरवा	३०·२७

रात्रिस्तमोमयी १५·१०६
रिपुनरेन्द्रबलाहत २०·१२
रिपुः कदाचित् २९·२१
रुदन्त्याक्रन्दताम् ५·५६
रूपलावण्य १५·१०
रूपं वपुः १४·९०
रूपेण काममथ १·५०
रूपेण वर्णेन गति २८·७
रुरुत्सवः केचन ३·२०

लक्षाहताः षण्णवकाः २७·६२
लतां गले १३·४९
लताः स्वपुष्पस्तबक २८·१०३
लप्स्येऽहमुर्वीश १८·३०
लब्धप्रहारः १४·४२
लब्धव्रणाः श्रान्त १७·६४
लब्धव्रणाना १७·८१
लब्धास्पदः सर्ज ३०·१७
लब्ध्वापि सद्धर्म ९·८
लभेत जलधीन् ५·९८
ललितपुरनिवासिभिः १४·९७
ललितपुरपतेः १७·८६
ललितसाह्वपुर २०·२५
लुब्धस्य शीलमधनस्य १·१८
लोकयात्राप्रसिद्ध्यर्थं २६·७९
लोकस्य सारमखिलं १·२४
लोके द्विधाकारण ३१·९५
लोभमोहभय १५·११३
लोभाद्रागात् ५·५१
लोभोत्थानः ४·८०
लोभोदयो द्वितीयस्तु ४·७९
लोभोदयश्चतुर्थो ४·८१
लोभोरुवैरान्सह ३१·२७
लोष्टेष्टका १०·१७
लोहाय नावं जलधौ २८·३९

वक्षस्सु तेषा १४·१८
वक्षासि तेषा स २·३४
वचोऽजितेनाभिहितं २·२३
वचो निशम्य १२·१३
वज्राभिघातादिव १८·८५
वज्रायुधश्चक्रभृता २·३३
वज्रायुधो गौतम २५·७९
वणिक्प्रभुत्वेन १४·८६
वणिग्जनाना १४·५४
वत्स हित्वा १५·२८
वधबन्धपरिश्रमादि २४·६६
वनगतोऽहम् २०·३६
वनस्पतीना दश ६·५०
वने पुनर्भीमतमे ३०·३०
वन्याः करीन्द्रा ६·१३
वपुष्मती विन्ध्य २·५९
वय च सद्धर्म २९·९
वयं न विद्मो १३·८०
वयं प्रकृत्या २२·९१
वयं विशुद्धा १२·१५
वरतनोस्तुरगेण २०·३०
वरमन्त्रपदैः सुसंस्कृतं २४·२५

वरवधूस्तन	२०·७४	विघाटिता	१४·४७
वरवराङ्ग पुरा	२०·३५	विचारयत केन	१५·९
वरवशमृदङ्ग	२४·५	विचित्रवर्णान्	२३·३०
वराङ्गनामा तव	१६·८३	विचित्रसकल्पित	६·१६
वराङ्गनामानमनङ्ग	२·७६	विचिन्त्य माता	१२·५२
वराङ्गराजः	२९·७८	विचिन्त्य लोकानुगति	२१·६
वराङ्गराजेन सह	३०·१३	विच्छिन्नकर्माष्टक	१०·४५
वराङ्गराजो मृगराज	२१·३०	विज्ञानकान्तिद्युति	१९·२
वराङ्गवाक्	२१·१७	विज्ञानरूपद्युति	८·६४
वर्णैश्च वर्णस्य	१०·५४	विज्ञाय चात्यन्त	२८·४८
वर्णोत्तरे पुण्य	८·४०	विज्ञाय भङ्ग	१४·२५
वर्तनालक्षणः कालः	२६·२७	विदार्य वक्त्राणि	१४·१६
वर्तमानमुपस्पृश्य	२६·२८	विद्याक्रियाचारुगुणैः	२५·४३
वर्षासु भीमाशनि	२२·१४	विद्रावयन्ती	१४·२६
वर्षासु शीतानिल	३०·२८	विधिना परिपालकः	२४·११
वसुधोदधिशैल	२४·१०	विधिवान्नकृतान्त	२४·६
वसुधेरेन्द्रस्य तदा	२२·१	विधूय सकल्परति	३१·१९
वाक्कायचित्ते प्रणिधेः	३१·१०	विनय एव हि	२०·४८
वाजिनावार्य	१५·६	विनयशीलविचित्र	२०·१३
वाञ्छन्ति ये	१२·१७	विनष्टकर्माष्टक	१३·११
वातायनेभ्यः खलु	१८·११९	विनष्टमार्गः	१२·७९
वाताहतद्रुमपतत्	१·३२	विना शशाङ्केन	२९·५
वायुनाति	१५·३५	विनिश्चितार्था	१८·१६
वाय्वाश्रिताना त्रिसहस्र	६·४१	विनिपातसहस्राणि	५·९०
वाराणशौ तौ च	२७·८३	विपत्तयश्च व्यसनानि	२१·३
वास्तुक्षेत्रधन	१५·११६	विपत्तिमृच्छन्ति	२५·३९
विक्रीतवान्यो	१८·३५	विपुलर्द्धियशः	२४·१५
विगतगाधम्	२०·२४	विबान्धवास्त्यक्त	८·३२
विगृह्य येऽत्र	२१·१५	विबुध्य नक्रग्रसन	१३·४

विबोध्दुमिच्छामि	१३·२६
विभक्तसंसार	११·३०
विभाति सूर्यस्तु	१०·३७
विभूषणाच्छादन	२९·८६
विभूषणानामति	२·१२
विमुच्य हस्तागतम्	२९·६०
वियोगचिन्ता	१२·६१
वियोगचिन्ता	१३·५४
वियोगताप	१५·४४
विरक्तभृत्यान्यति	२·३०
विरक्ताः काम	१५·१३०
विलपन्तो रुपन्तश्च	५·३८
विलोक्य पादावनत	१८·११२
विविधबन्दि	२०·५४
विशालबुद्धिः	२९·८५
विशिष्ट एवाप्रतिमल्ल	१६·२६
विशिष्टनानर्द्धि	३०·७३
विशिष्टवातातप	३०·३८
विशीर्णच्छिन्न	५·८३
विशीर्णदन्तः	२९·१३
विशीर्णवस्त्राः	१३·४६
विशुद्धजात्यादि	२९·८३
विशुद्धवाक्काय	१३·९
विसर्जनीयान्यथ	३१·८१
विषैर्निर्दह्यमान	५·८४
विषैश्च विषम	१५·१०१
विष्कम्भमानं खलु योजनं	२७·१६
विहाय चाभ्यर्णतया	१७·५०
विहाय मानं	२१·११
विहाय राज्याश्रियम्	३१·१७
वीणामृदङ्गप्रति	८·४५
वीथिप्रवेशोद्धृत	११·५८
वीरासनस्वस्तिक	३०·३९
वीर्यविघ्नकरा	४·१०३
वृक्षाग्र वाथ	४·५०
वृत्तिं विचित्रा	१६·९५
वृद्धाः समेषु	१·४३
वृद्धान्गुरून्	२९·३३
वृद्धोपसेवन	१·४९
वेत्रासनाकृतिः	५·२
वेदाः प्रमाणं	२५·१२
वैडूर्यनालैस्तपनीय	२२·६५
वैवस्वते मे	१४·३६
वैवाहिकी नः कुल	२·२०
व्यतीत्य देशान्	२·४२
व्यपेतदुर्दर्शन	११·२६
व्यपेतमात्सर्य	७·५०
व्यपेतशार्दूल	१३·५
व्यपेतसर्वैषण	१३·१२
व्यवस्थितानेव	१०·४१
व्यवहारपल्यं	२७·१५
व्याघ्रान्विनिघ्नन्ति	६·२६
व्यादारितास्ये सति	३१·८७
व्याधूयमानानि	२३·३५
व्याप्याशु तिष्ठेयुः	९·४९
व्यायामविद्यासु	२·१६
व्यालोलमालाकुलित	२२·५८
व्यासो वसिष्ठः	२५·४४

व्रतशीलतपो १५·११०
व्रजास्तुते ग्राम २१·४७
व्रतातिपातप्रति ३·२६
व्रतशीलगुणैः ४·९३
व्रते दिवं यान्ति १९·६४
व्रणाः प्रशल्या ३०·१८
व्रतानि शीलानि ३१·४

शक्तिप्रहारेण १८·६३
शक्ति सुतीक्ष्णा १८·६२
शङ्काक्षकुक्षि ६·६
शङ्का च काङ्क्षा ३१·७०
शङ्खाश्च भेर्यः १७·४०
शङ्खाभिवर्तक्रम १८·१०६
शचीपतिर्दक्षिण २२·३६
शतधा खण्ड ५·७२
शताहत तच्च २७·५१
शनैराप्यायिता १५·२५
शनैः समुत्थाय १३·४३
शब्दस्पर्शरसो गन्धः २६·१०
शब्दः स एके २७·४
शब्दादयो ये १०·३४
शब्दार्थगन्धर्व २·६
शब्दार्थहेतुगणितादि १·४२
शयने विमले २४·६
शय्यान्नपानाशन ८·५२
शय्यासनस्थान ३०·५०
शय्यासु मृद्वीषु ८·४४
शरणोत्तम १५·१२१

शरत्प्रदोषे विगता २८·२४
शरद्यथार्कांशु २२·९
शरासिपातव्रण १४·४९
शरीरिकायस्थिति १३·१५
शरैः परास्त्राणि १७·४६
शशिनः किरणाः २४·२
शस्त्ररज्ज्वादि १५·६५
शस्त्राणि वज्राग्नि १८·७७
शाखोपशाखासु ७·२०
शान्तिश्च कुन्थुस्त्वपर २७·४७
शान्तिश्च कुन्थुस्त्वथ २७·४१
शान्तेऽन्तरं प्रोक्तम् २७·६१
शार्दूलनिर्भर्त्सन १२·६०
शारीरदुःख त्वपरैः ६·५३
शार्दूललाला १२·७७
शालीक्षुगोधूम २९·६६
शास्ता भव २३·८६
शास्त्राणि निःश्रेयस ७·३२
शास्त्रेण सर्वज्ञमुपैति ७·३३
शिक्षाबलेन १४·३३
शिक्षाबलेनात्म १८·५७
शिरासि १४·१७
शिल्पैरनल्पैः ८·२६
शीतार्दितासेवित २२·११
शीतोष्णवातोरु ७·१०
शीलसंयमहीना ४·९५
शीलानि दानानि २२·३२
शुक्रे पुनः ९·५७
शुक्रार्तवोद्भूत ८·६२

शुद्धान्वया रुचिर	१·६४	श्रीमल्लितीर्थे च	२७·४८
शुद्धिं लभन्ते	२३·८०	श्रीमान्प्रभिन्नकट	१·४८
शुभक्रियाणा च	२९·२०	श्रीशीतलाख्यो	२७·३६
शुभान्वयौ	१२·३०	श्रुत तदर्थ	११·९
शुभे मुहूर्ते	११·६१	श्रुत्वा ततोऽनन्त	२·२१
शुश्रूषताश्रवण	१·१४	श्रुत्वा तेषा वचो	१५·१६
शुष्कताल्वोष्ठ	५·७८	श्रुत्वा पुत्रवियोग	१५·२३
शून्यालये देवगृहे	३०·२६	श्रुत्वा मुनिःश्रावक	२३·८९
शूलैस्तीक्ष्णतरैः	५·५५	श्रुत्वा मुनीन्द्रोदित	३०·१०
शेषकाल जिनेन्द्राणा	१५·१४३	श्रुत्वा वचस्तस्य	२·१८
शेषा जिनेन्द्रास्तपसः	२७·९२	श्रुत्वा वचस्तस्य	२·१३
शेषाश्च सर्वे	३१·११०	श्रुत्वा वचो धर्म	२·८५
शेषाणि सप्रदेशानि	२६·३८	श्रुत्वा वराङ्गस्य	१२·३
शेषाश्च सर्वान्	३·३७	श्रेयास्तथानन्तजित्	२७·६८
शेषाश्च दस्यून्	१४·४३	श्रेयास्तु दानाधिपतिः	२७ ७८
शैलाग्रदुर्गान्तर	३१·३७	श्रेयोर्थिना हि	१·१३
शोको भवेत्	१२·५३	श्रेयो यदज्ञानमिति	११·७
शौर्योद्धतावप्रति	१६ ७	श्रेष्ठी ततः स्व	१४·७२
श्रद्धान्वितो भक्तिः	७·३०	श्रेष्ठी पुनः	१४·७८
श्रद्धा कुर्वन्ति ये	२६·९१	श्रेष्ठी सुतस्य	१६·१०३
श्रीदेवसेनेन पुनर्	१८·८०	श्रोता न चैहिक	१·१६
श्रीदेवसेनो रिपु	१८ ८७	श्लक्ष्णाणि वासासि	८·४३
श्रीधर्मसेनप्रमुखा	२९·१	श्वभिः शृगालैरपि	२५·६८
श्रीधर्मसेनप्रहितै·	२·५७	श्वाभ्रीणा तिमिर	५·११०
श्रीधर्मसेनः सकलत्र	२·८७	श्वेतातपत्र शरत्	२०·४५
श्रीधर्मसेनेन	२·४५		
श्रीपर्वते श्रीः	२५·५८	षट्कर्मधर्माभिरता	८·१
श्रीमण्डपान्मण्डित	७·१९	षट्त्रा नवत्रिंशदथो	२७·६०
श्रीमण्डपे लम्बित	१९·१८	षट्प्रकारविभक्तं	२६·१४

षट्षष्टिसंख्या २७.५९
षष्ठसमयोः शीत ५.२०
षाण्मासिकं तेन २५.५०

स एव पूर्वार्जित २१.२
स एवमुक्तः १३.८४
स कदाचिदतुल्य २४.१३
सकला नयभङ्ग २४.६१
स किं विसोढुं ११.८३
स केवलज्ञान २९.७६
सक्रियाः पुद्गला २६.४२
सखिजना. स्वसुताः २०.२३
सखी तिरोऽभ्येत्य १९.४५
सख्याः कराग्र १९.४६
सगापुराट्टालक २२.५७
स च गुरुप्रतिकूल २०.८४
सजातयो १३.१७
सज्ज्ञानचारित्र २०.६
सज्ज्ञानमत्तद्विरद ३१.२०
स तस्य चित्तानुगत १४.८०
स तस्य संप्रेक्ष्य १२.६६
सतः पदार्थान ११.१२
स ताम्रनेत्रः १६.१४
स ता निरीक्ष्य १३.२७
स तेन दृष्टः १३.६०
स तैः फलैः १३.४४
सत्कारमैत्र्यवन १.११
सत्कृत्य तान्स्मेर २.१५
सत्यार्जवक्षान्ति २.९३

सत्त्वाधिकः ११.७७
सदयमनुपमादि २०.९१
सदसन्नियतिस्वभाव २४.१९
सदा जिनेन्द्रोदित २२.५५
स देवसेनो २१.७
सद्दृष्टिसज्ज्ञान ७.५३
सद्दृष्टिसज्ज्ञान ८.१५
सद्भावविशति ११.२९
सद्ध्यानचारित्र ३१.३९
सद्रत्नसंस्कारित १९.२४
सनत्कुमारस्य मनोज्ञ २.६०
सनादकाकाञ्चनका २३.२३
स नीतिचक्षुर्मति २८.९
सन्तीह पुर्या १६.६२
सन्तो नरा युवतयश्च १.२७
सन्ध्याभ्ररागं ८.६५
सन्मानमायावनि २८.७७
सन्नह्यतस्तान् १४.९
सप्तम्या तु ५.१०४
सप्तैव माहेन्द्र ९.५६
सबन्धनं १३.८१
सबालवृद्धं ११.६७
सभागतास्तद्वचन १९.७
सभागृह वासगृहं २१.३६
सभाप्रपादेव २१.३४
सभावनात्युग्र ३१.८४
सभ्रूविभङ्गाभिनय ८.४६
समता सर्वभूतेषु १५.१२२
समदवारणमूर्ध्नि २०.८६

समन्दरं विश्व २३·९५
समभिवीक्ष्य २०·२८
समयावलिनाज्यश्च २६·३०
समवतीर्य मृगेन्द्र २०·२९
समस्तसामन्त १६·६
समस्तसामन्त १६·१६
समस्तसामन्त २१·७७
समानशीलाः २८·१३
स मानसानिन्द्रिय ३१·२६
समासयोगैः ३१·५३
समीक्षमाणा १२·१०
समीक्ष्य तौ पुत्र २·८
समीक्ष्य रूप च १९·४०
समीक्ष्य सेना १६·४९
समुत्थितोऽस्त २८·४७
समुद्रकोटीस्त्वजितेन २७·५६
समुद्रवृध्यग्रसुताय २१·५५
समुल्लसत्कुञ्चित ९·४६
समेत्य तैर्मन्त्रित २·५१
समेत्य सम्यग्बहु २·७४
समेत्य सर्वे १६·३४
सम्यक्त्वचारित्र ३१·३५
सम्यक्त्वतुङ्गव्रत ३१·२३
सम्यक्त्वमेकं ९·३१
सम्यक्त्वरत्नान्न ११·१९
सम्यक्त्वसज्ज्ञान १०·४२
सम्यग्दृष्टेस्तु संसारो २६·९८
सम्यग्विधाय २३·६३
सरस्वती नाम २१·८
सरः प्रविश्योत्पल १३·१
सरः प्रसन्नोदकं १२·७२
सरागसंयमो ४·९६
सरासि शालीं २१·४२
सर्पेण पीतं ७·४१
सर्वकर्मविनिर्मुक्ताः २६·१२
सर्वक्षितीशेष्वहत १६·२९
सर्वज्ञ सर्वार्चित २१·७९
सर्वज्ञभाषितमहानद १·१०
सर्वत्र भेरीं २३·४
सर्वद्रव्यस्वभावाना ४·२३
सर्वप्रजाभ्यो ह्यभय ३·३८
सर्वप्रपञ्चसंसिद्धिः २६·७३
सर्वाञ्चरेन्द्रान् ११·७०
सर्वायसैःप्रास १८·४५
सर्वार्थसिद्धेस्तु १०·२
सर्वान्तरायान् १९·२७
सर्वासा राज १५·६१
सर्वाः स्त्रियः प्रथम १·५९
सर्वेषा भोगिना १·६७
सर्वेषु तेष्वप्रतिमेषु २२·३३
सर्वेषु भूतेषु मनः ३१·१०३
सर्वौषधित्वं च ३१·५२
सवारणं सर्वजगत् २२·२
स वारणेन्द्रः १६·८
स व्याधिते च १६·८०
स सप्तहस्तो २७·४९
स संप्रहारो १४·१९
ससिंहविक्रान्तित ३०·५२

स स्नापक स्नात	२३.४५	सभाव्यरूप स्वगुणै	२.१७
सहस्रपूर्वाद्विमल	२७ ६९	सभ व्य सम्यङ्	३ ४५
सहायता युध्यगम	२८ ५०	सयोगतो दोषमवाप	३१.१०२
सक्षेपतो नयौ द्वौ	२६ ४८	सश्रुत्य सा तद्वचन	१९.५४
सक्षपात्पृथुयशसा	३०.७५	ससर्गतो य च	८ २७
सख्यानत	१० ४	ससारघोरार्णव	१० ५८
सख्ययमादौ	२७ १४	ससारनिस्सारम्	३१.१००
सगीतगीतकरताल	१.३८	ससारवासे वसता	२८ ५५
सचिन्त्य मत्री	१२.२२	ससारसागर	१ १९
सज्ञानभिज्ञेन	१२ ४२	ससार प्राणिन	४.१
सज्ञाश्चतस्र	३०.७	ससव्य तादृग्विध	११ ७५
सतानमुक्तैर्विशिखै	१८ ९८	सस्तम्भ्य चेताविवर	३१ ९३
सतेजनापाय	१८ ३	सस्थाप्य यत्नात्	२३ ७७
सत्यज्य मृष्टाशन	३० १६	सस्थाप्यमानो-पि	१६ १८
सदशमीशस्य	२२ १६	सहृत्य सवाण्यपि	३१ ८०
सधर्तुकामश्च	१२.२५	सह्पयन्ती स्वरुचा	२३ २
सधौतहस्त	२३ ६४	साकेतपुर्या सुलभा	२१
सध्यातडिद्वह्नि	३१.२६	सा चापि तन्वी	१९.६०
सध्यामहीकल्प	३१.६७	सा चापि तस्य वदन	१.६७
सनह्य सर्वायुध	१७.१२	सा चापि सना	१६ ४८
सनाहिन स्वान्	१८.२०	सा चैवमुक्ता	१९ ४९
सपन्नौ दैवसपत्त्या	२९ १०३	सा तिष्ठतु स्वा	१०.६
सपूज्य त सागर	१८ ११२	साधूक्तमेभिर्नृप	१६.६५
सपूज्य तान्मन्त्रि	१६ ७५	साध्यात्मनीये	१२.३५
सप्राप्तकल्याणमहा	२.८८	सामन्तभूमीश्वर	११ ६४
सप्राप्य भवविस्तान्	५ ३७	सामान्यभूते च	८ ६
सप्राप्य युद्धे	१८ ६७	सामान्यसत्काञ्चन	३० ६१
सप्राप्य राजालयम्	२ ४३	सामायिक प्रोषध	२२ ३०
सप्राप्य सार्वज्ञ्य	११ ३३	सामुद्रहोराफल	२८ ५

साम्ना प्रदानेन	१६·५४	सुनीतिमार्गेण	१६·४४
सायं पादपम्	१५·८८	सुपर्णनागोदधि	९·४
सार्थाधिपो	१४·५७	सुपात्रदानात्	७·४९
सार्थेन सर्वर्द्धि	१४·३	सुपार्श्वनामा किल	२७·७०
सा लक्ष्मणासीन्नवमी	२८·७५	सुभाषितं खलु	१३·३३
सिता बलाकाश्रय	२३·४९	सुमतयोऽजित	२०·२१
सिंहव्याघ्रमृग	५·३९	सुमन्त्रपूताम्बु	२५·३८
सीमकरः पञ्चमको	२७·३८	सुराङ्गना वैक्रिय	९·५२
सुखदुःखफलात्	२४·५३	सुराधिवासस्य चतुर्	३·४१
सुखदुःखविमिश्रित	८·६९	सुरेन्द्रलोकस्य	९·२५
सुखदुःखोपभोगस्तु	२६·५८	सुरेश्वराणाम्	१०·४४
सुख निमेष	५·१०८	सुवर्णकक्षोपहितान्	२·५८
सुखं हि साम्नैव	२१·६६	सुवर्णपात्रे परम	२९·१९
सुखोपभोगात्	२१·४६	सुवर्णपुष्पैर्विविध	२३·६७
सुगन्ध सुमाल्यं	१३ ८९	सुवर्णरूप्य	१२·७६
सुगन्धिगन्धोदक	२३·५८	सुवर्णवर्णः खलु	२८·८७
सुगन्धिनाना	९·२३	सुवर्णवासन्तिक	२२·७१
सुगन्धिसच्चन्दन	११·५९	सुशब्दपूर्वास्तु भवन्ति	२१·२८
सुगन्धिसच्चन्दन	२८·२०	सुशिल्पिनिर्मापित	२२·५९
सुगन्धिसच्चन्दन	२३·६६	सुशीलमाहात्म्य	१९·७०
सुगन्धिसच्चम्पक	७·२२	सुश्रावकः सर्व	२३·९६
सुग्रीवनामा सुदृढो	२७·७२	सुसंयता वाग्भिः	६·३८
सुतदुःखहिम	१५·१९	सुसयतेभ्यो वसति	७·४७
सुतप्तकृष्ण	५·७७	सुसिद्धमन्नं	२९·६१
सुदर्शनश्चैव हि	२७·७३	सूर्यप्रभैः सूर्य	९·२२
सुदर्शनीयाः फल	२३·२८	सूर्याश्च चन्द्राः	९·६
सुदर्शनेन	१३·४०	सूर्ये तदास्तांगिरि	१२·५८
सुदृष्टयस्तप्त	७·३१	सैकाब्धि नारक	८·१६
सुनन्दया किं तव	१७·३१	सैवेह दानेन	८·१४

सोत्साहधैर्यद्युति २२.३
सोद्यानवापी ९.२४
सोपचारैरुपासृत्य ५.६१
सोऽपीन्द्रसेनः १८.८८
सौधर्मकल्पप्रभृतिषु ९.५१
सौधर्मकल्पः ९.७
सौधर्मादिषु १५.१२७
सौभाग्ययुक्ता ८.५३
सौवर्णरौप्यामल २३.२२
स्तम्भास्तु सर्वे २.६६
स्तम्भैर्ज्वलद्भिः २२.६३
स्तोत्रावसाने २९.५१
स्त्री चेव पुंस्त्व ४.८९
स्त्रीणा पुरुष ५.६५
स्त्रीपुंसयुग्म ७.५६
स्त्रीबालवृद्धान् १६.१०१
स्त्रीबालवृद्धाश्रम २२.५
स्त्रीभिः सम १४.६६
स्त्रीभूषणै रागिण २५.८१
स्त्रीरूपसंदर्शन ३१.७९
स्थलेषुनिर्जन्तुषु ३०.२९
स्थानानि जीवस्य ३०.४
स्थानानि सपाद्य १७.४१
स्थानेन बीजेन ३१.२१
स्थानासने २१.५०
स्थितं पुरस्ताद् १७.४
स्थितः क्वचिच्च १७.८४
स्थितिगतिद्युति ३०.६९
स्थित्वापि सद्ध्यानपथे ३१.१०७
स्थिरमतिरकृतार्था १९.८१
स्थूलस्थूल तथा २६.१५
स्थूलामहिंसामपि २२.२९
स्नानादिभिः १०.५१
स्नानानुलिप्ताः २३.३२
स्पृष्टं यदा ११.१७
स्मरानलार्चिः २९.८
स्मितपूर्वमनोज्ञ २४.७४
स्मित्वा ततः सो १९.३
स्यन्दते मुखतो ४.५१
स्यात्षष्टिरेका २७.५२
स्यात्सागराना २७.३०
स्याद्वादस्तु विशेषेण २६.७७
स्याद्वादः खलु २६.७६
स्याद्वाद खलु २६.८१
स्यान्मानमेतत्किल २७.३१
स्यान्मानहानिः १६.५६
स्वच्छाम्बुपूर्णैः २३.६५
स्वजीवितं बन्धु १७.२२
स्वजीविताशा ३१.६२
स्वजीवितेनात्र १८.३६
स्वतनयाभिनिरीक्षण २०.७२
स्वतनुदुर्बलता २०.१४
स्वनाथकायानु ९.५३
स्वनाथवाक्यं २१.६५
स्वनामगोत्राणि १८.७४
स्वपित्युत्थापितो ४.५०
स्वपुत्रसत्कृति ११.५४
स्वपुराकृतकर्मपाश २४.६२

स्वप्नश्च भृत्यो ८·९
स्वबन्धुमित्राणि १४·६९
स्वबन्धुमित्रान् २५·१५
स्वबाहुवीर्यार्जित १९·२७
स्वभगिनीसुत २०·४१
स्वभावतः प्रोन्नत १६·२३
स्वभावतः शरतमाः १८·५
स्वभावतो बाल ९·४३
स्वभावनिर्वर्तित २३·५२
स्वभावभद्राः श्रुति २८·८१
स्वभावशुभ्राणि ९·२०
स्वमन्त्रिसंदर्शित २१·६८
स्वयमेव न भाति २४·३९
स्वय नरेन्द्रो ११·६५
स्वय प्रबुद्धः १३·३४
स्वर्गोऽस्ति नास्तीति २९·५९
स्वविषयात् २०·६२
स्वसा तवाह १३·४१
स्वसृमातृस्वसा १५·११५
स्वस्मात्सुताद्यः २५·६५
स्वस्वामिसबन्ध १७·४४
स्वं जीवितं न २८·५३
स्वान्त्राणि केचित् १७·५९
स्वाभाविकश्चाप्रति २·६९
स्वामिन्किमेवं २८·७४
स्वामिन्प्रभो ८·२१
स्वायंभुवैर्यज्ञ २५·१८
स्वैर्मन्त्रिभिः १९·११

हता किलैकेन १६·१०९
हतेश्वरे सापि १४·४५
हत्वा प्रदस्यून् १४·२७
हत्वा सुतं मे १४·३५
हयद्विपस्यन्दन २२·६२
हयरथद्विप २०·५६
हयास्तु जाति १९·७२
हये रथे वा १६·१०४
हरिभोजोग्रवंशे १५·१२९
हर्षे रोषे त्ववज्ञाया ४·८३
हलीशवागीश २८·३६
हसन्ति ये स्वाकृति २३·४२
हस्तपादमथ च्छित्वा ५·४३
हस्तविक्षोभ ४·४७
हस्तागत प्राणबल २८·४०
हस्तार्पित ये परकीय ६·३४
हस्त्यश्वयानानि १२·७८
हंसाङ्गना १२·७४
हसांसकुन्दच्छद २३·३७
हा वत्स किं १४·५०
हासेन वा मधु १·६१

हास्यरत्यरति	४·२९	हेमन्तकाले धृति	३९·३२
हिमाहतानामिव	२८·८३	हेमन्तकाले रति	२२·१०
हिंसानुधर्मस्त्वथ	११·६	हेमोत्तमस्तम्भवृता	२·५४
हिंसाया निरता	५·२६	हैमैर्घटैर्गन्धविमिश्र	२·७१
हिंस्यन्ते हिंसकाः	१५·८५	हैरण्यका हैमवता	७·६३
हृदयहारिवचः	२०·६८	ह्योविद्धि निर्गत	१५·१०५

NOTES

NOTES

CANTO I

4 तत् serves no special purpose here. **8-9** The author is as it were illustrating the use of विना with Abl., Acc. and Inst. **11** By sandhi श्रोत्रात्मनोरुप°. **14** Better शुश्रूषुता°. **16** न प्रतिलिप्समानो in the sense of अप्रति°. **17** Note the position of च. **22** नमः and कृत्वा are separably used, cf. शिशुपालवध I. 46. **23** In *b* better च for म; the reading भोगश्रिया is equally good rather better; पृथिव्याः would be better. **24** Possibly °नियमोच्चनिधि. **25** गेह is usually neuter but here mas, see also xxi. 38, xxii. 66, 73. **27** अतिशाययन्ति is causal for primitive. **34** Better read अभ्यन्तरश्च. **38** Should we read in *c* & *d* °भूमिदेशैर्विन्यस्त° ? **43** Better शमेषु for समेषु. **44** Perhaps रत्नापगाजलधिभिः. **46** In *a* we have a सापेक्षसमास for which the author has too much inclination; note the use of the form आम independently. **51** Better न कुरुते for प्रकुरुते. **52** Are we to read क्षुत्क्षीणमग्ननयनोदरवक्त्रगण्डः ? **54** बद्धदृढवैरवता is not a happy compound with the suffix वत्. **59** To be correct, we want °गर्ववत्यः and °विशुद्धिवत्यः in *a* and *b*; by violating Pāṇini's rule आनङ् ऋतो द्वन्द्वे, स्वमातृपितृ etc. is used irregularly for मातापितृगोत्रविशुद्धिवत्यः; is परीप्सयिन्यः irregularly is used for परीप्सिन्यः? **60** What is the object of अनुभूय ? **61** °कथाभिरक्ताः would be a better reading. **64** The line *b* may be read कामैकभावरतिकर्कशजातरागा, कर्कशजात = कर्कशीभूत irregularly. **68** Better °परितोषण° in *c*. **70** The gap may be filled by °भूप° or °राज°.

CANTO II

2 च misplaced. **3** कलप्रलाप would be nearer the actual reading, but to qualify the moon as well as the prince कलाकलापं is better; are we to read भूपं ? **6** Better °गान्धर्वकला°. **11** अतुल्यनामा = अतुल्यानामा; her name is अतुल्या and the shortening of आ to अ is irregular. The shortening seen in रेवतिपुत्रः, अजक्षीरं etc. is not quite similar. In Prākrit, however, we have shortening of the

व्युपदेष्टुकामः gives better sense. **15** We want the form प्रहृष्टरोमा. **18** Sandhi is not observed between *c* and *d*. **21** चिचित्सवः stands either for चिकित्सवः or irregularly for चिचेतिषवः from चित् 1 p. **23** सिशसवः perhaps irregularly for शिशमिशवः from शम् 4 p. **30** समाहार would have been better for हस्त्यश्वयानानि. **31** मत्तद्विपस्य connected with स्कन्धाधिरूढः, again a सापेक्ष compound. **39** Note the hiatus between *c* and *d*. **43** Rather व्युपदेष्टुकामः as suggested above in 4. **47** च misplaced, also in 36 above. **54** अधिक is used in the sense of अधिकत्व. **55** येऽधर्माश्रयात् would give better sense. **58** तीक्ष्णाङ्कुशवान् is कर्मधारय with वत्. **63** जिनानां for जनाना would give better sense.

CANTO IV

6 *d* is metrically defective. **7** Note *c* has nine syllables. **14** Note *c* has nine syllables. **22** Better द्वित्रान्वाथ ; *c* is metrically defective. **24** Note the hiatus between *c* and *d*. **29** *a* is metrically defective. **30** विघातयन्ति causal with primitive sense. **31** The position of लोभः occasions यतिभङ्गदोष. **34** Better तत् for तं. **37** Hiatus between *c* and *d*. **39** Hiatus between *a* and *b*. **41** Read आन्तर्मुहूर्तिकी. **44** Hiatus between *a* and *b*, also in 45. **52** स्वपन्कर्म would be a better reading. **61** Rather चातुर्वर्ण्यस्य ; hiatus between *c* and *d*, and also between *a* and *b* in 62. **68** Note उत्थान is Mas. **72** Hiatus between *a* and *b*. **77** Better प्रकृतिं तेन. **83** लपते Ātm. only in epics. **84** Hiatus between *a* and *b*. **85** Are we to read the first line thus : ज्ञानव्रततपःशीलदैन्यान्यसुखकारणम् ? ; hiatus between *c* and *d*. **98** Rather °विपाकान् हि बध्नन्ति शुभनामकाः. **102** Hiatus between *c* and *d*. **105** Hiatus between *a* and *b*. **106** Better read घटवद्देहेऽस्मिन्. **109** Nine syllables in *a*, so read एतानि नरके घोरे. **114** समश् is 5 Ā, so the form समश्नुता (also in v. 95) is perhaps irregularly used for समश्नुवानाना or समश्नुवतां when it is Parasmaipada (vi. 16). ; note तरतम is used like an adjective.

CANTO V

5 धिष्ठिताः = अधिष्ठिताः, an epic usage. **8** Rather गव्यूतिर्गव्यूत्यर्थे. **12** Hiatus between *a* and *b*, also in 16. **21** Hiatus between *c*

vowel under similar circumstances: खंडविसाहनामाओ विज्जाहरकुमारीओ, their names being खंडा and विसाहा; परितोसनामाए चेडियाए, her name being परितोसा. It is a statement put in the mouth of श्रेष्ठिन्, so note that the Perfect form बभूव is not justified. **13** Note तम is suffixed to a substantive. **14** उपोपविष्टाः is apparently an instance of double preposition, and the need of an additional preposition may be thus explained. विश् with उप, when it means 'to sit down,' develops slightly independent meaning, and hence the need of another उप to express the meaning 'to sit near'. We find this form in रामायण, अयोध्याकाण्ड i. 51, and अश्वघोष too has one instance in बुद्धचरित. IX.8 (JOHNSTON'S Ed., COWELL'S Ed. reads नृपोपविष्टं for उपोपविष्ट). **27** Better read दोषा य एनेन. **35** Better read विवाहतन्त्राधिकृतान्; ससर्ज is in the singular for the subject in plural; perhaps the author might have used समर्जुः irregularly for ससृजुः. **37** निशाम् 10 U. to see, निशम् 4 P. to hear; corresponding to this in 40 below निशम्य वाणीं च समीक्ष्य लेखम्. **39** Better read पतिं स्वमारोपित° or पत्या समारोपित° as suggested in the footnote. **43** Better read राजालयमुत्तमर्द्धि, so that उत्तमर्द्धि qualifies राजालयं. **47** शुचिमान् = शुचिन्ववान्, or from शुचिः 'purity', 'honesty'. **48** Both एवम् and इत्थम् are used one is redundant. **50** Read *d* thus: आह्वायया कार्यविदो बभूव; our author is in the regular habit of separating the main verb of the perephrastic perfect from its auxiliary by an intervening word. We will note many such cases throughout this book. **53** Rather सव्यानवतीं, सव्यानम् = a covering. **57** स्वाभिः + अमा (= सह); the use of अमा is archaic. **71** In *b* °संवेष्टितदामलीलैः would be better. **73** फुल्ल = a flower; अक्ष perhaps means 'rice' here, cf. Kannada अक्कि. **76** क्षितीन्द्रपुत्रीश्च would give a better sense · कथयाबभूवुः has no subject, are we to read °पौराः समेताः? **80** Rather श्रमः, केवल being an indeclinable. **85** We should read सर्वजनावगम्यम् and तच्छ्रद्दधुः. **87** Almost uniformly the Mss. read सन्मान° for संमान. **88** चाहितराजलक्ष्म्या or चागत° as suggested in the footnote.

CANTO III

4 The spelling of मडम्ब and खेड is like that in Prākrit;

and *d*. **30** Read °मुखेष्वेके ; hiatus between *a* and *b*. **32** Rather पूतिगन्धयः **33** Hiatus between c and *d*, also in 36. **37** Should we read शूलैस्ताडयन्त्यथ ? **42** प्रादुः पिशितकं would give some sense. **48** शङ्कु is mas., so शङ्कून् + मूर्धसु ; उत्खन् used in the sense of निखन्. **49** In the light of 57 below, the first line may be thus emended मक्षिका मशकांश्चैव वृश्चिकांश्च पिपीलिकाः The rule that the causals of the roots अद् and खाद् govern the Instr. case is violated. Better read स्रवद्रुधिरपूयिनः. **53** Better विच्छिद्य. **56** Hiatus between *a* and *b*. **59** Rather ससंभ्रमम् **60** Taking परस्त्रीणां etc. a सापेक्ष compound, we want °कर्कशैः or कर्कशान्. **61** Rather सोपचारमुपासृत्य and ब्रुवन्यः. **64** Better युवयो रतिविभ्रमम्. **68** श्वाभ्री *f*. hell, see 27 above. **71** Hiatus between *a* and *b*. **74** Read शैलात् + शीर्यमाणाङ्गान् + चूर्णयन्ति etc. **83** What is the object for अधिरुह्य ? **85** चूषयन्ति causal for primitive. **93** Rather उदाराण्युरुवक्षांसि. **94** भर्स् is rarely Parasmaipada. **96** Better read प्रावेक्ष्यद्ग्रीष्ममध्याह्ने वह्निं दुःखमलप्स्यत। **97** °प्रावेक्ष्यच्चेद्विनिर्गतः...पर दुःखमलप्स्यत would be better. **101** Rather उपभुज्यात्मनः. **106** Are we to read जघन्यका for जघन्यकः ?

CANTO VI

4 Rather कायांश्च. **15** गोण 'Ox' is a Prākrit word. **21** Better read न्यङ्क्केडकाद्याः परिपुष्टकायास्त्वङ्गांस°. **23** निपानदेशेष्वभिलीन° would be better. **24** अनुवाच्यमानाः does not give the necessary sense, unless it is a Sanskritisation from the Prākrit root वच्च to go ; so अनुधाव्यमानाः or अनुबाध्यमानाः would give the necessary sense. **26** Usually वराकी is the f. from वराक. **36** वसन्ति = विशन्ति ? **38** Rather सुसंयतान् ; ददते has no object ; and also note the position of हि at the beginning of a pāda. **40** Are we to take जलाश्रितां as the Gen. pl. of जलाश्रित, जलमाश्रयतीति जलाश्रित् ? **42** Read पञ्चाशदुक्तं. **45** Rather शून्ययुक्ता कोट्यः and प्रभञ्जनावात्मकयोश्च. **46** Hiatus between *c* and *d*. **52** जाल 'a net' is neuter, but mas. here. **53** The rule of समानकर्तृकत्व in the use of Gerund is violated here ; or are we to read त्वपरैरवाप्तं ?

CANTO VII

16 दुन्दुभी f. is used in epics. **21** Note कर्मधारय with suffix वत्. **23** Rather कामलतावि°. **36** हेयसुदाहरन्ति would give better sense.

40 Rather ते गुडशर्कराद्याः **48** We want °धीयशांसि, also in 49. **54** Hiatus between *a* and *b*. **66** Rather °पुण्य-प्रभवसुखं.

CANTO VIII

1 साह like उपाह 'by name'. **4** Hiatus between *c* and *d*, also in 7 and 14. **8** Better सद्धर्ममतीव कृच्छ्रात्. **16** Hiatus between *a* and *b*; the verse is obscure. **17** Better अल्पार्थमन्यासु मतिं or as suggested there. **18** अनभिज्ञतत्त्वाः = तत्त्वानभिज्ञाः; better परप्रैषकराः, प्रेष्यकर is known to epics, see also 27 below. **22** परैस्तु may be substituted by परेषा or हृत्वा is used with causal sense. **26** Better धनाशया क्लेश°. **28** Either कर्पटिनः or कार्पटिकाः; भिक्षयन्ति causal for primitive. **29** Are we to read स कर्मणां ?. **33** Rather अकल्यता 'Sickness'. **34** सश्लाघयन्तः Causal for primitive. **36** तदवाप्नुवन्ति, तद् is unnecessary. **38** Rather ददत्तथार्थानपि. **39** च इष्ट° a hiatus. **40** Rather लक्ष्मीवनि; व्याप्तयशोदिगन्ते irregularly for यशोव्याप्तदिगन्ते; better सन्तस्तमाहुः. **41** Vocatives collectively put: मन्नाथ, वत्स, प्रिय, पुत्रकेति. **42** Should we read यो ना for यूना? **43** Better संवसानः and गन्धान् सुगन्धीन्. **44** अमा = सह. **45** Better रात्रिंदिवं. **46** वादि-त्रकालाप° may be equally good. **50** Are we to read ग्रामसहस्रमेकः? **53** Better °संपद्रूपित्वमारोग्य°; आरोग्यता, a contaminated compromise between आरोग्य and अरोगता. **57** Note आर्हन्त्य for आर्हत्य, also in XXVII 47. **62** Better तथा or सदा for तदा; शुचि = शुचित्व. **69** *d* is wanting in two syllables, so read गदितु स्पष्टतराक्षरां प्रवृत्तः.

CANTO IX

15 Possessive suffix to कर्मधारय in *a*, also in *c* 45 below. **24** पर्यन्त° etc. irregularly for पर्यन्तस्थितकान्तकल्पवृक्षाः. **28** Are we to read ये कामतो? **38** Hiatus between *a* and *b*; rather व्याभासयन्तश्च. **49** Hiatus between *a* and *b*. **51** त्रयस्त्रिंशक?. **60** Hiatus between *c* and *d*. **62** Rather यत्सौख्यं.....तत्प्रारेभे.

CANTO X

7 Rather रागविरागवर्जम्. **19** Rather यैर्निर्जितमोहसेनैस्तेषां. **20** दिनेन, I think now, is a better reading. **28** समीप्रकृत्य may stand for सम प्रकृत्य or irregularly for समीकृत्य. **31** *c* is obscure. **45** धिष्ठित = अधिष्ठित. **52** Better परिकर्ममुक्तव्यपेत.° **63** Better गृहीत्वार्थ°; is संनिदध्युः used irregularly for संनिदधुः? **64** Better नृपच्छत्रमध्ये.

CANTO XI

6 Are we to read हिंसानुधर्मं त्वथ? **9** Rather श्रुतं यदर्थे. **12** Better °विपर्यये. **23** Usually समक्त, but here सभजित. **25** सवेदकः, 'a man of knowledge', क being a स्वार्थे suffix. **30** विभग्नसंसार etc. would be better. **32** यतते, यत् 'to be prepared for or to strive after', governs Acc., or better तपते which is sometimes Ātm. **33** Rather नैःश्रेयसीं. **34** धर्मामि° etc irregularly for धर्माभिरागसत्क्रियोद्यताय. **36** Better तपश्चरन्ति, as that root is rarely Ātm. **44** Hiatus between *a* and *b*; better कृतसाध्यकस्तु. **45** Note the rhyme **46** वयोपचार stands either for नयोपचारं or यथोपचारं. **47** तपस्कः is used in the sense of 'a saint', if it is a correct reading. **48** Better स्म कार्यम्. **51** Note अपेत with Instr., not unusual in the Epics. **56** Rather वाक्यान्यनुमत्य. **57** Hiatus between *a* and *b*, also between *c* and *d* in 59. **58** Better सुतोरणा°. **61** Auxiliary separated in *d* also in 62 and 85. **64** आमात्य for अमात्य is known to Lexicographers; ते serves no special purpose. **65** Are we to read पुरस्कृतः श्रीयशसे? तानि appears to be used like a definite article, also in 72 below. **66** Better केशमाला for केतु°; and प्राकारकाञ्चिः. **70** रराज, the use of Perf. is not satisfactory. **75** Are we to read सजीवनान्नो or सजीवतां नो? **77** Better रूपान्वितो वा कृतिनां. **83** युवराज्य = युवराजत्व? Note एकादशम for एकादश in the colophon, which reminds one of the Prākrit usage.

CANTO XII

2 Hiatus between *c* and *d*, also in 4. **5** In both the Mss., almost uniformly, विसर्ग is retained before क and प and not changed to ष् as expected. **6** Better °धुरासमर्थे. **11** In *b* rather न वा न शक्तिः. **12** Hiatus between *c* and *d*, also between *a* and *b* in 13 and in 15. **18** Better पूर्वमुपाश्रिता श्री°. **19** Are we to read ये नात्मबुध्या? **21** प्रयाचमाना + आस सुतेन. **24** Rather परैरविज्ञात.° **28** Rather अभ्यर्थ्यमाना°. **29** Better read जात्यौ. **31** स and सो serve no special purpose; hiatus between *a* and *b*. **37** धारितवामशीलं would be a better emendation for वारित° etc. **39** Rather °वेषक्रिययाधिरुह्य. **40** Are we to read तथाऽविनीतः? **41** Rather अश्ववता. **42** Should we read सुकृतानि? **44** Read वातो यथौत्पातिक°. **49** The subject for आरुरोह

is omitted. **51** Rather शीतवनानिलेन. **55** Should we read विधाय for निधाय? **61** Rather च दुःस्थितस्य or सुदुःस्थितस्य. **62** Better शार्दूलयानं प्रति°. **65** Read ददृश कुम्भे. **69** Better तवोपकार°. **72** c stands irregularly for फुल्लोत्पल...संछन्नं. **74** If we accept the emendation ददृशुस्तिरस्तात्, it means ताः तिरोददृशुः = ताः तिरोदधुः, a rare usage indeed. **75** Rather क्षामनयाम्बु. **78** Are we to read रोरुह्यमाणो for आरुह्य? **79** Note सपाषाणमय, or सपाषाणं + अयं. **83** Rather °मूर्जित or °मुच्छ्रित. **85** Read यद्भिण्डप्रचय, भिण्ड° = भेंड in Marathi. **87** Are we to read समानपुंसः **88** Rather धृति°.. लम्ब्य. Note द्वादशम for द्वादश in the colophon.

CANTO XIII.

1 The compound in *a* stands irregularly for फुल्लोत्पल°. **10** Are we to read °दर्शनं जिनं? **13** Rather प्रपश्यतां for प्रशस्यता. **15** शरण्यता stands irregularly for शरण. **17** Better read निस्तृषा for निस्तुषाः to agree with येन. **20** व्रतधारि° or वशधारितात्मकम्; auxiliary separated in *d*. **25** कर्मधारय with the suffix इन् in *b*. **31** In *b* the compound stands irregularly for दुर्लभप्रतिकारा. **34** Rather read *d* thus. परान्ववस्थापनबोधन°. **38** Read नापि for वापि. **39** As suggested there or परीक्षणायाकृषि मृष्यताम्. **43** Better वरे वने...°शोभिते. **45** Or we may improve on the reading of क thus: °वालुकाकुला. **51** Rather रमरन्नशेत. **56** Rather बहुप्रकारक्रिमि°; c is an इन्द्रवंशापाद in a वशस्थ verse; should we read प्रमार्जनादि०? **60** Rather °निन्युरादृताः. **62** Rather तुष्टः, and some verb like इत्युवाच is omitted. **63** तस्मिन्, Loc. for the usual Acc. **66** भूषण is usually Neu., but also Mas. in the Epics; ते in *b* serves no special purpose. **69** Are we to read °मिष्यतेऽक्षमैः? **70** Read यत्तदस्तु युक्ता°. **71** The reading of क is equally good; rather स्वबन्धुसंग. **74** Better °प्रतिमात्मपौरुष° **75** कायोपस्थितिं suggested there disturbs metre, so better कायोपचितिं or कायोपहतिं. **78** Rather परीत्य चारकः (also in 79). **87** संवाहनता = संवाहननं. **88** Rather चतुर्भ्यस्त्वद्भोभ्य° which gives the necessary sense; I think, even this usage may be correct. Note त्रयोदशमः for त्रयोदशः in the colophon.

CANTO XIV

2 Are we to read गोष्ठीमिष्टः समध्यास्त स सं°? **4** Note the transi-

tive use of नृत्. **6** Hiatus between c and *d*. **9** Better श्रुत्वापि तूर्यं. **12** प्रतिवर्षयन्तौ causal for primitive. **13** There is only one army of Pulindas, so we might better read thus: प्रत्यागतां तां वणिजः...°सेनां ज्वलदग्निकल्पाम्. **16** Auxiliary separated. **24** The form प्रदुद्रुवुः makes the last pāda one of वंशस्थ in an उपजाति verse, so better read इति दुद्रुवुस्ते. **29** Usually प्रपातः, so better °प्रपातानपि. **31** प्रजहार with Acc., cf. प्रहर्तुमभ्युद्धतमात्मयोनिम्, कुमारसं., iii 70. **37** Read °निरर्थैर्योत्स्ये as required by the metre; are we to read मा चल त्वम्? **45** नरेश्वरो द्रावितशत्रुपक्षः or as suggested there. **51** Is जघ्निथ irregularly used for जघनिथ? *d* is obscure. **52** Better प्रसूय for प्रसव्य. **57** च misplaced. **70** धर्मकालं = कालधर्मम्; rather कश्चिद्भटस्याप्रति°. **73** Hiatus between *a* and *b*. **78** Better ददस्व for दधस्व; note the hiatus in *d*. **79** Either विमुञ्च यामि or विवञ्चयामि. **84** Hiatus between *a* and *b*. **86** Hiatus between *c* and *d*. **87** Rather वियोगभी.° and मर्त्यानकृतश्रमांस्तु. **89** Better °घुण्यपण्य. **90** Rather °प्रियतां पटुत्वं. **95** अद्धा means 'time', it is quite usual in Prākrit. **98** Rather पुरुधीर्वेणिग्.

CANTO XV

1 वृत्तान्त, rarely neuter. **3** Rather अनुगम्याप्यपश्यन्तो or as suggested there. **8** Read °राजापवाहने. **9** Are we to read कुमारोऽभ्यन्तरात् स्वेन उत बाह्येन? **10** Rather °बलयुजा qualifying स्त्रिया. **15** Note the alliteration. **18** Hiatus between *a* and *b*. **24** परस्पृशे allowed by the Epic usage. **25** Hiatus between *a* and *b*. **34** Rather श्रुतवत्यस्तु. **36** Rather रुदत्य°, also in 39; such forms are allowed in the epics, and अश्वघोष also uses this form, सौन्दरनन्द, vi. 6,35. **37** Rather °श्चेतनाकृत्यः. **47** How to explain the form कृतान्तः, which is apparently Voc. Sg.? **51** Rather त्वाद्य = त्वा + अद्य. **64** कल्पते or कल्प्स्यते. **65** Is मण्डल = मण्डलाग्र? **69** Rather स नौरिव ... तारयत्यापदर्णवम्। **73** Rather °स्थिता. **74** प्रारब्धो in the sense of प्रारब्धवान्. **87** Rather शोककारिणः **104** Nine syllables in *b*; rather तत् त्रयं सेव्यते. **108** धध्वं or धत्त for धत्स्व, as we want plural. **111** Rather त्रिप्रकारं; hiatus between *c* and *d*, also in 112. **114** Rather कुले or खले for कले. **115** Rather °मातृस्नुषाप्रख्या. **126** Either ये is redundant or पाल्यन्ति for परिपाल्य. **128** Usually

रत्वा, but रन्त्वा also is met with. **129** Hiatus between *a* and *b*. **133** सः serves no special purpose. **134** Rather मा भूवन् (subj. भवत्यः); मृगयामि, but usually 10 Ā. **142** Rather °मनसक्रियाः. **145** Are we to read पतीष्टाः? **146** Rather मुहुः श्वसत्यः संदध्युर्युवनृपतेः समागमाशाम्.

CANTO XVI

2 Better क्रीडन्यथा, and रतिं for गतिं. **10** तेन serves no special purpose. **18** Better तद्ग्राहयिष्यामि [परैः]. **21** Rather ललिताह्वपुर्याः **24** Apparently अह is the subject, so the use of the Perfect form विससर्ज is objectionable. **27** Rather निकृष्य त. **30** Note °ति (followed by व्यक्तिम्) becomes prosodially long against the metre. **31** पदाति etc., समाहार would have been better; नरेन्द्रयातानुपथं = नरेन्द्रयातपथमनु irregularly. **37** Either सद्धूमकेतौ or स्यात् = कथंचित्. **38** नृपेन्द्रसेनो = इन्द्रसेननृपः. **40** Better read नापीक्षते for नोऽपीक्षते. **45** Rather तं for तौ. **50** Rather प्रधृष्टः; अपेत with Inst., see above VIII. 34 & XI. 51. **52** Read विदधुर्वचस्तत्. **56** Are we to read मन्धिभङ्गो. **57** जगौ = 'spoke'. **59** Rather तदेव for तद्देव. **60** क्षितीशाम्, Gen. is used for Abl. **62** Better परैरवार्यास्त्व. **63** Rather विगृह्य तन्नाशनमेव. **63** Should we read मेघकालः for मेऽप्यकालः? **68** Note both यदि and चेत्. **70** Better शान्तेर्दानाश्रयस्थानविधे°. **72** Is it that मस्थाः is irregularly used for मन्यस्व. **73** Rather नृप ते महायाः. **76** स्वघोषणा or even स घोषणा. **77** Rather °स्त्वरयाभ्युपैत. **78** Are we to read स्म for सा? **79** Rather स्वपुरान्तिकस्थं. **81** Hiatus च अत्रैव. **83** Rather ब्रुवे. **85** Or even °त्युदितेन दोषः. **89** Rather °प्यनिवार्यवीर्यः. **90** Rather पूर्वकृतेर्विपाकः. **91** Something like इत्युवाच is necessary in this verse. **95** Better प्रेत्येह. **97** Better निवर्त्यता. **107** Hiatus between *c* & *d*. **109** Rather विजेतेति. **110** Rather °पुरोधःशिष्टमित्रेष्टवर्गाः or °वर्याः **111** Either रिपुबलमथनार्थं or रिपुबलमथ तर्तुं, the form तर्तुं being already used below xvii. 32, and sanctioned by the Epics.

CANTO XVII

10 निश्चतमर्थवादी, perhaps irregularly for निश्चितार्थवादी. **15** Is the form °विसर्पीगिरयो regular? **23** Better व्यलुम्पन् for विलुम्प्य. **28** युद्धे or युद्धं or युद्धात् is not quite satisfactory; can it be

युधा विजेतुं? **31** Read लभ्या for लभ्यते as required by the metre. **32** *a* is not syntactically well expressed; we want नृपात्मजा in the Inst. sg.. **34** As it stands मंक्षु (quickly) + आमुहि. **35** Either ससुना or सुसुतां. **36** Rather प्रशस्यमानः. **39** हिहेषुः is possibly a copyist's mistake for जिहेषुः; the root हेष् is also Parasmaipada in the Epics, though usually I Ā. **41** Better आकर्णपूर्णान्यवकृष्य **44** Rather समराभिलाषाः; प्रजह्रुः with Acc., see xiv. 31 above. **45** More correctly पदातयः, though पादातयः also is used; rather °भिहत्य. **47** What is the object for उद्भाम्य? **48** Rather प्रधने or प्रथमे for प्रदने. **49** Either निरीक्ष्यमाणा or नैवेक्ष्यमाणा. **50** Either as suggested there or चाभ्यर्णतयास्त्रमन्यं. **51** Rather नान्निष्क्रियान्; वाक्कटु° = कटुरूक्षवाग्बाणैः irregularly. **54** Should we read उपलवत् for उत्पलवत? **56** Rather °व्रणालंकृति°; तुमल = तुमुल, usual in the Epics. **59** Rather वामाग्र°. **61** प्रजह्रुः with Loc. would have been better here. **65** In the first part घातैः and पातैः rhyme with each other; for similar alliteration are we to read पदातिपादै रथनेमिनादैः? **66** Rather रजोवितानात्; better प्रसमुद्यतास्त्रा. **68** Rather °वर्गानाश्लिष्य ते. **70** Either प्रततानि यान्ति or नभोभुवं स्म प्रति यानि यान्ति. **73** Rather परिभूयमानान् and प्रधाव्याश्वसहस्र-वृन्दैः. **76** Better °योगभूते; and fill the gap etc. thus. संनिरस्तप्रभा-विभूतिः स बभूव सूर्यः **77** Both the Mss. regularly read कणय for कणप. **79** Read तदात्ययुध्यन्त. **81** Either ध्रुवं or द्रुत for युतं. **82** Better महाजिभूमी; *c* possibly stands in the sense of विलम्बमालाभवहिर्गतास्त्रा **85** *d* is short by one syllable, better read प्रबभूव. **86** Is not अनयोः redundant? Note सप्तदशमः for सप्तदशः in the colophon.

CANTO XVIII

2 Is अविगण्य irregularly used for अविगणय्य? **4** Rather पुष्टा for पृष्टा. **11** Are we to read सांयात्रिकचोदितानाम्? **12** Rather प्रचक्षरुर्लोहित°. **13** Rather परास्तान्करिणः संयतॄन्. **15** अपेत्य or उपेत्य? **18** सर्वैजयन्त्यः is irregularly used for सर्वैजयन्तीकाः. **20** Rather तद्विजयस्य. **23** Better read उपेन्द्रसेनप्रतिचोद्यमाना°. **26** Rather °केतुप्रति°. **41** भर्त्स् is rarely Parasmaipada but quite usual with our author, see v. 34 and also 44, 76 below. **47** For मुक्ता the subject शक्तिः

is omitted. **49** Note the सापेक्ष compound in *b*, also in *a* of 52. **52** Better विमुक्तशक्तिं. **54** Are we to read प्रतिभर्त्स्य नीतिं? **55** चक्र is usually neuter but mas. here; or we might read आयात्तदालोक्य in view of its use in the next line.; better द्रुत for धृतं. **56** Auxiliary separated. **60** Rather गज गजेनाप्रति°. **65** Rather °मानभ्रमरावलीकम्, सनादं or सपातं for सपादं, and विनिपत्य for विनिपात्य°; with these minor emendations it is a beautiful verse. **68** Rather समानविश्रम्भ°. **70** Better read भुशुण्डिभिः for मुखण्डिभिः; again प्रजह्रुः governs Acc. **73** Note the position of च. **75** Are we to read *b* thus: बलद्वये नैकविधं धनं च? **79** Or शक्ति + अर. **81** Better छत्रे प्रभग्ने and कणयान् (both Mss. uniformly read कणय = कणप). **83** °नेत्रोः, °गोप्त्रो° etc. irregularly for °नेतृकयोः...गोप्तृकयोः. **88** Rather प्रवृद्धेर्द्विगुणानि°. **89** Better ममाद्य for मयाद्य. **90** Rather सुकल्पितं for सुकम्पितं. **106** वर्मप्रतियातनानि is obscure, rather वज्र° for वर्म.° **110** Better स्वपक्षधृत्यै, and दध्मौ, for दधौ. **116** Note the use जयं नरेन्द्रस्य निवेदनार्थम्. **126** काश्चिद्भटाय, dative used perhaps to imply 'instead of'. **129** As required by metre, better तौ परिकथितौ. **130** The last two lines are metrically defective. better युद्धश्रीश्रुतिसुखसंकथारताभिर्हृष्टः सन्नृपतिरथाविशत्स्वगेहम्।.

CANTO XIX

3 Better सोऽथ परोक्षितशः. **4** तम suffixed to a substantive, also xx. 37. **7** Auxiliary separated. **13** Better नित्योत्सवाया; are we to read तदेव for तानेव? **14** Rather सुमहापथाश्च; either रत्नान्यकिरन् as suggested there or तत्र व्यकिरन्. **17** Better भण्डाः. **19** Auxiliary separated; better प्रीतमुखाः. **21** Are we to read प्रहतं सहस्र? **24** Better प्राविक्षता for प्राचक्षितां. **27** *a* has कर्मधारय with वत्. **28** अमंस्त is really unnecessary in view of अभाषतेत्थम् in 27. **30** Better कीदृशि वा तत्र. **35** Either साप्यात्मकीयै° or साप्यात्मनीनै.° **38** Rather परस्परोद्धर्षित°; note the rhyme in this verse. **41** Rather °रन्तर्वह्नि.° **42** आसे perhaps irregularly for आसांचक्रे; read सम्नौ for सास्मो. **43** Read सा स्थितनिश्चलाक्षी irregularly for निश्चलस्थिताक्षी. **44** रुदन्त्या see above xv. 36 **52** Rather सख्यः; are we to read न यन्त्रणां त्वं मयि etc.? **54** संमानपूर्वा or °पूर्वे. **55** Rather ऋते भवत्याः. **63** मृगये is perhaps a slip for मृगसे irregularly equal to मृगयसे, or मृगये stands for Potential 2nd p. sg. form taking

that root to be परस्मैपद as used above xv. 134. **64** Rather प्रतीर्दिवं. **66** Better मनुजाः प्रतीताः. **67** Should we read दिशामयत्नात्? **73** आचक्षितं for आख्यातं?; better °मतक्रियार्थः. **74** Better read द्वित्रेष्वहस्सु. **77** वश्यमनं perhaps irregularly for वश्यमनसम्; सलज्जवत्या irregularly for सलज्जायाः or लज्जावत्याः. **78** Rather °शिखार्तप्रान्तपत्रा and अहरहरभितापक्षीय°. **79** Rather कमलसङ्गस्तेन. **80** Both यदि and चेत् are used. **80** Should we read तत्प्रहोष्ये?

CANTO XX

5 पितृपुत्र° irregularly of पितापुत्र°; धर्मसपूर्व appears to have been used for धर्मपूर्वसेन = धर्मसेन, just as दशपूर्वरथ = दशरथ; so omit the suggestion [धर्मजपुण्य°]. **6.** *d* युवराज्ये is to be understood. **7** Better गतघनश्च, see 85 below. **19** Note वचः प्रविलोक्य. **20** Are we to read गतेऽध्वनि योजनम्? **21** Note both इत्थ and एवं are used. **23** Rather मदप्रति°. **24** गाध in the sense of गाधत्व. **25** Both यदि and चेत् are used, or स ध्रुव°. **27** °साह is used like उपाह. **31** आस्स्व, used irregularly for आस्ता; better °व्यसनादहम्. **42** The poet often uses गै in the sense of गद् 'to speak', see 80, 83 below. **44** Better स्वपुरात्परमर्द्धितः; either सहभोजनम् or स ह भोजनम्. **55** *b* कर्मधारय with इन्. **56** Better °क्षणमम्बरे. **58.** Better read *b* thus पुरजनान्नृपतिस्त्ववशेष्य तान्, and *d* thus: परबलोन्मथनार्थमतोऽत्युदैत्. **60** Rather °भटानुसृतः. **65** We may suggest an emendation °संपदम् and restore the correct form which also is used by the author in 79 below; but it appears that the poet uses a word संपदा, corresponding to Prākrit संपया see xxv. 44 where we get a form सपदाभिः. **68** Better इत्यभिहितो. **75** मैथुनः, 'brother-in-law' cf. मैदुन in Kannada and मेहुणा in Marathi. **76** उत्सुक in the sense of उत्सुकत्व; we have however उत्सुकम् 'sorrow'. **79** Rather तदवगम्य. **81** Better read °दुन्दुभयोऽध्वनन् (ध्वनञ् + जल°): **84** Rather °नृपतिताम्. **87** Better °योषितां in *a*. **90** स्वसारः irregularly for स्वसृः. **91** Better read *a* thus: सदयमनुपमाद्याः सनतास्ताश्च दृष्ट्वा.

CANTO XXI

7 Rather विमुच्य. **8** °पितृमातृ° irregularly for पिता°. **9** च misplaced in *c*; better read *d* thus: कृतापराधा इति नैव शिश्यिरे.

13 Either जिजीविषायाः or जिजीविषाशाः. **14** Better read समुत्थितो as required by metre; is मा भैः irregularly used for मा भैषीः? **15** सादन = सदन for the sake of metre. **20** Should we read अशाश्व for प्रशास? **21** With the form आदाय, *a* becomes इन्द्रवंशा in a वंशस्थ verse. **25** Either कृतानुयात्रो मुदितै° or कृतानुयात्रैर्मु°. **28** What is the speciality of यद् in *c*? **29** Better read °ननर्त चानर्तपुरं ततोऽभवत्. **32** Rather चोद्यानवनैः. **33** आस is independently used. **39** Better °संकटं. **41** Are we to read मृद्वीकवनं, मृद्वीक = मृद्वीका metris causa, see xxii. 72. **44** Are we to read पथि श्रमात्काञ्चनविद्रुमा°? **50** Rather विचित्य यत्सागर°...तदाशिषन्मुदा or तदादिशन्मुदा. **52** Better कुलसंततिष्वयम्. **58** संविभाजितुम् irregularly either for संविभाजयितुं or संविभक्तुं. **61** Is it °सभाममक्षतो?; लेखक = लेख with स्वार्थे क. **62** Note रहित governs Abl. **63** The name of that king is indiscriminately spelt as बकुलाधिप and कुलाधिप, see xx. 79. 80 *a*, xxi. 58, 71. and also note the variants. **65** Better °दक्षिणाः. **69** If we take the form अधिष्ठितं, then it is a case of double preposition like उपोपविष्ट; if not सिंहासनमध्य+धिष्ठितं. **76** Better हेतुकान्, हेतून् suggested there is metrically defective. **80** Better जनयतिरतिकर्यां; note the alliteration in the first two lines; and °रहरुपयातः in *d*.

CANTO XXII

1 Either रत्नकोशै°or °वेशै.° **3** Auxiliary separated. **7** Note the alliteration. **8** Should we read खरोऽमृदूना क्रमयायिनां च?; better श्वोडुराजः. **12** Rather तरुणातिकान्ते; and फुल्लद्रुमत्त° (फुल्ल–द्रु–मत्त°). **14** Rather खद्योतमाला.° **17** Rather शूरैः for सुरैः. **20** रत्वा see xv. 128. **21** Note the alliteration. **26** अञ्जलि is Mas., so कुट्टलाभं; auxiliary separated. **31** अनन्यकीर्ति in the sense of अनन्यकीर्तित्व. **34** Rather भवतान्नरेन्द्रः. **37** Rather समुद्यतस्ते. **42** Either समुपाश्रयन्तः or causal for primitive. **50** तु in *d* becomes long against the metre. **51** If गेहं is neuter here, then we will have to read येनोत्तमार्हे at the cost of metre; but our poet often uses गेह Mas. (see 66.73 below), so better °मर्हिर्जिनदेवगेहो संस्थापितो. **55** Rather प्रियया for क्रियया. **57–58** Note the alliteration. **65** Better °नीलभ्रमरावलीकैः. **68** Better °रिवाद्रिराजः in *d*. **69** Rather °कर्णिकारपुन्नाग°; सविहार°,

स is redundant. **70** Rather आम्रातका. **76** Better तदित्यास तर्को भुवि.

CANTO XXIII

3 Auxiliary separated, also in 8. **6** अमा 'with'. **10** °मिश्रैः, what does this qualify?; or is it that some lines have interchanged their places? **14** Better °कुम्भं भक्त्या **17** Note that the auxiliary is separated, and the preposition प्र also is noteworthy. **19** Hiatus between *a* and *b*. **20** आरोग्यता see VIII. 53. **26** पद्मोत्प° etc. irregularly for उत्फुल्लपद्मो°. **30** चूर्ण is usually Neuter but also Mas. in the Epics; संघातिम + क (स्वार्थे) is a variety of garlands. **31** वेत for वेत्र is allowed. **32** Better स्नातानुलिप्तो°. **34** विभास् is आत्मनेपद, so should we read विभावतां?; better फेलुः (i.e. opened) for पेतुः. **37** Better सदामकानि च्छत्राणि, see 50 below **41** Rather °पिहितान्पयोजै°, and विलासवत्यो. **42** Either स or सु° is redundant. **43** Better स्मरास्त्रायतलक्ष्यभूतप्रोद्भिद्यमानस्तनकुड्मलिन्यः° **47** First च in *a* misplaced. **48** Rather हि पर्वसन्धौ. **49** Better बलाकश्रिय.° **53** Better चामरहंसमाला. **55** Rather ददत्कटान्त°. **58** तुरुष्क° etc irregularly for तुरुष्कधूपसंधूपितपाणिः. **62** Hiatus between *a* and *b*. **63** Rather °ण्युपजप्य. **64** कुसुमाक्षतानि, but अक्षत is Mas. pl. when rice grains are meant. **66** If not धूम्राः, better read °ताम्राः **68** Read either प्रदाय or प्रदीप्य for प्रदाप्य; °देवतानां as suggested there or °देवताया. **71** Auxiliary separated. **73** उपोपविष्ट, double preposition. **77** Rather नरोऽमराणा. **79** Better °विरतेश्वरेभ्यो. **82** Better °मधुरस्वरः; अनिवारिताशः or अभिधारिताशः as suggested there. **84** Better °राज्येऽधिकतः, and गुणशीलपालः. **91** Rather सान्ततिकप्रमोदं. **94** Are we to read जिनेन्द्रपूजाप्रयतो? **98** भवतु + आ + अधिक°? **100** Rather °जनस्तत्मकल; are we to read प्रीतः प्रसादोदयवान्? **101** °रेणुभिः Instru. for Acc.

CANTO XXIV

1 In *d* both इव and वत् are used; so are we to read कान्तिमिवेन्दुरुद्भार? **2** *b* is short by one syllable. **3** For वद्यः, वेद्यः would be better than वन्द्यः suggested there. **4** One तेषु appears to be redundant. **8** Read जह्रे for जह्रौ. **10** च misplaced, also in 12 *a*. **19** Better read *d* thus as required by metre: वद तत्त्वमसंशयं

प्रभो नः. **20** Rather प्रदिष्टमर्थं or प्रदृष्टमर्थं. **22** Both यदि and चेत् are used, also in 28. **24** Rather भवद्भनेन as required by metre too. **24** Are we to read वरकैरवगन्ध°? **25** Rather यद्धविरादाय. **26** Better प्ररिधाव्य for परिदाप्य. **27** Rather परानगतीन्कथ **28** Note यदि कृती, the short vowel followed by कृ is taken as metrically long. **29** प्रसवन्ति, प्रसू is rarely परस्मै. **30** आत्मकम् in *d* is redundant. **33** बलिनो irregularly for बलेः. **34** Rather °मित्र-सुमन्त्रि°. **35** Are we to read बृहता पति° (*i.e.* बृहस्पति)? **36** *a* is defective; are we to read रविचन्द्रमसोर्ग्रहप्रपीडां and परपोष्यत्व°?; compare भर्तृहरि's line शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनम्. **37** *b* is defective, rather परपक्षप्रविलुप्तता etc. **40** The first two पादs should interchange their places; and read rather दोषैर्बहुभिः in *d*. **41** Rather read *b* thus: प्रतिभानस्थिति°...[प्रसज्येत]; *c* thus: प्रतिकर्म विना स ना (= पुरुषः) सुखी स्यात्; and the last word of *d* आप्तबाह्यम्. **42** Rather व्रतदानतपांसि नि°. **45** Rather सुपरीक्ष्यः.....°भावात. **46** यदि in *a* does not serve any special purpose; rather हि गुणैर्न च प्रयोगो; and दुर्मतिः सः as required by metre. **47** Two syllables redundant in *b*, rather omit स्वयं; both यदि and चेत् are used. **49** *c* is metrically defective, so we may read असतीह ततश्च कर्मनाशे तव etc.; भावाफल्ना stands irregularly for फलाभावता. **50** यदि in *a* appears to be redundant; प्रतिभासते or as suggested there. **51** चेत् in *b* is redundant; rather अनवेक्षित°. **54** गतीषु, इ lengthened metris causa. **57** Read rather परवाच; *c* is short by one syllable, so read न च विक्षरते, but the root is irregularly आत्मनेपद here. **58** आददाति, Paras. only in the Epics. **59** Better यथासुख क्रि°. **62** Rather °बद्धो नरकादीश्च. **65** Rather तमोवृतेषु. **66** तिरश्चजीवाः irregularly for तिर्यग्जीवाः. **68** Omit हि as required by the metre. **69** चामर° etc. irregularly for चामरलीलावीज्यमानान्. **74** Can it be श्रिया + आभिः?

CANTO XXV

6 मैथुन see above xx. 75; rather चैकानि. **12** यदि is redundant. **15** Better सबन्धुमित्रान्; is जुहुः irregularly used for जुहुवुः?. **16** Rather °थानवाञ्छतः. **17** Better श्वभ्रमुखं. **24** Are we to read °द्विजोऽन्धः? **31** Rather मन्वते for मन्यते. **36** Rather प्रपोषन्ति, and यान्ति क्षयं तेऽप्यनवाप्त°. **38** Rather °साध्याः; कन्याः श्रित°; and वैधव्यमृच्छ-

न्यथवाचिरेण. **41** Better क्षत्रिया. **44** In *d* note that the word appears to be taken as संपदा and not संपद्, see above xx. 65. **45** निर्मलानि appears to be used in the sense of निर्माल्यानि; rather संस्पृशेद्धि for संप्रवृद्धिः. **46** Rather मोऽनुमेयः, and तस्या दशमात् कुलं, to be construed thus: तत् (= उदक) तस्य कुलं आ दशमात् (पुरुषात्) पुनाति. **49** I have suggested घ्रात° there, but ज्ञात would be better. **53** Better कौमारकाले. **54** Rather °भवच्च तीर्थम्. **57** Better °घोरमातापनं तेन पवित्र°. **59** भगवान्बभूव appears to be some corruption of a form of the periphrastic perfect. **61** Rather सफला for सकला. **62** The verse appears to be corrupt; are we to read thus: आरोहवाहाश्च धनप्रतोदैः प्रदोहवाहा दमनक्रियाभिः। प्र°...°न्ते देवर्षिसधास्तु सुखानि तेषाम्॥? **70** Rather यस्य नुः (= नरस्य) स्यात्. **74** Rather °जटाक्षसूत्र°. **75** Rather वञ्चयेद्यः for वर्षयेद्यः. **78** Better मुचुकुन्दनाम्नः. **81** Either शापशुद्धयै or शापसिद्धः. **85** Better आयुः समाप्तु. **88** Rather °तमान्वदन्ति. **93** Rather विवक्तृभि°. **95** Better सभासदश्च.

CANTO XXVI

6 Nine syllables in *a*. **19** Rather °स्पर्शरसा. **26** Note थिष्ठित, also in 12 above. **28** Better वर्तमान तु सशृष्टु°. **53** Are we to read न पर्यायार्थिको वापि? **54** Nine syllables in *b*; should we read नित्यं पर्याय°? **68** Rather महान्पन्थाः **73** Rather °सिद्धिमेतेभ्यः संप्रचक्षते. **102** Better °नथ प्रेप्सुः **103** Rather नार्थं प्रगच्छति. **105** Either एवं जनाः or as it is.

CANTO XXVII

1 Irregularly शुश्रूषयां° for शुश्रूषाबभूव and आवहिता for अवहिता. **3** Rather कालः. **7** Rather यथाभिधानम्. **8** Better तत्त्वयुतं, द्वाशीतिस्त्वधिका. **9** Read चापि धनाङ्गमाहुः. **10** Rather विद्याद्रुण° or विन्देद्रुण°. **15** One syllable more in *a*. **16** Rather °परिक्षिपत्तत्. **17** Note the words बर्कर 'goat' and तिन्दु. **19** Rather दशाहता सा. **21** समासान्तशने is obscure. **22** Rather °कोटीं दशाहतां and द्वित्यार्थ°. **24** Rather यातो तथैवाब्द°. **38** Rather श्रेयाञ्जिनेन्द्रो. **48** Rather जाताः, and जयधर्मकृष्णाः. **49** Should we read स्ववर्ष्मणा? **52** Rather पुष्पदन्ते. **53** Better श्रैयसमायु°. **54** Rather महेलिशून्योत्तर°. **56** च is ill placed in *d*. **61** Rather अध्यर्धपल्यं. **66** If we separate

कुन्थुधर्मौ + अमी + इह, the Sandhi rule will be violated; so better read कुन्थुधर्मावमी ह. **68** Rather पुष्पोत्तरादायद्युरप्रमेयाः.

CANTO XXVIII

5 Rather जातकैश्च. **12** Better पुरप्रधानर्द्धतमात्मजाश्च...सह संप्रधानाः (as in म). **15** Rather वर्णाश्रमास्तस्थुरथ स्वमार्गे. **17** Is it महामहाप्रीति°? **18** Better महेन्द्र or खगेन्द्र for मृगेन्द्र°. **24** Why not °वृन्दा विचित्र... रामा qualifying उल्का? **30** तं गेह, so गेह Mas. as usual with this poet. **35** Better वीरतरोऽस्ति. **39** Better चौषति for चौषधि, च + ओषति from उष् I P. to burn. **42** सुक्षेत्रे + अशः = सुक्षेत्रयशः is not sanctioned, so are we to read सुक्षेत्रकेऽशो? **44.** Better नादरीय. **53** प्रविगण्य used irregularly for प्रविगणय्य; what is the position of समम् here? **56** Rather °वियोगयोगमानापमान°. **57** Rather °संवेगयुतः सदर्थान् **58** Rather प्रायूयुजः. **59** Rather सदानुभूत, and प्रतिष्ठिपः श्रीमति **60** पितृमातृ° irregularly for पितामातृ° or better still मातापितृ°; च misplaced in *b*; better अशङ्कया for निःशङ्कया. **62** Or can it be मा स्म स्मरस्त्व सुतरां कुमारं, राज्य प्रकृत्या सह etc. **66** Either नृपतेर्विशाल, or नृपते विशाल or even नृप ते विशालं. **72** Note एकैकरूपैः. **75** Rather °मात्रसख्यैः **79** Auxiliary separated. **85** If we do not separate as in the text, then करवामहे appears to be used irregularly for कुर्महे or करवामहै. **86** Rather आ दानतः.. ..नाथे न .....कृतापराधाश्च न वापि भर्तुः, कथ.....भक्ताः. **87** Rather मास्मान्नगनीर्वराकीः **89** Rather °बन्धयन्तीः. **96** What is the object for नेष्यति? **98** Rather समेत for समेताः; both यदि and चेत् are used. **105** Rather धैर्यवत्यः.

CANTO XXIX

3 Note प्राण is used in the singular. **8** शमितुं irregularly for शमयितु. **9** Rather तं कर्तुम°. **10** Or more conveniently मा स्म त्वरिष्ठाः. **11** स्थितधर्मचित्तः irregularly for धर्मस्थितचित्तः, **12** Are we to read पुंसा for पूतां? **13** Rather कम्पच्छिराश्चञ्चल°, कम्प् is परस्मैपद here as in the epics. **14** Rather स्खलत्पदो व्याकुल°, and क्षितीशः **15** Better पुनश्चैव. **16** Are we to read मा वीवर एष याचे (मा वीवरः from वृ)? **19** Or better बुभुक्षमाणस्य. **23** Better चिन्ताकुलं व्यापृति°. **24** Are we to read धर्मेऽस्थितानां सुखभागिना च? **25** Rather °भूमिभुजां; auxi-

liary separated. **28** Either यदि or यद् is redundant. **29** उद्यतसत्क्रियस्य irregularly for सत्क्रियोद्यतस्य. **31** Both इदम् and इति are used, one is redundant. **33** Rather °कुलांश्च. **35** Rather विमृष्व for विधृत्व. **37** अविगण्य irregularly for अविगणय्य ; rather सर्वानहमीशितेति. **41** Rather चादरेण for सादरेण. **42** Rather स सर्वतत्त्वं. **44** Are we to read सूर्यप्रभाहेपक° ? **46** Better स्वबाहुवीर्यार्जित°. **49** Rather °मष्टाह्निकीं. **62** अर्थतम, superlative from a substantive; rather किमन्यदर्थान्तर°. **64** Either फलानभद्रान् or फलाननार्यान्. **65** Are we to read लोका for लोके ? **74** Rather रक्तोपलैर्व्याकुलिता°. **82** Better विषयेषु राजन् मा स्म प्रसांक्षीरिति. **83** Better °मार्गप्रतिबोधनं च. **86** Note the spelling of मडम्ब and खेड ; rather बाह्यानभ्यन्त°. **88** Does नरेन्द्र etc. stand for भक्त्या नरेन्द्रार्पित°. **98** मलीमस is used in the sense of मलीमसत्व ; we may better read c thus : ग्रहगणपिहितामलेव च द्यौः. **99** Rather साध्वीः समुपययुः. Note in the colophon एकोनत्रिंशतितमः.

CANTO XXX

2 लोच = plucking of the hair. **3** कृतमूर्धिहस्तान् irregularly for मूर्ध्नि कृतहस्तान्. **4** चतुर्दशानि irregularly for चतुर्दश ; rather आस्तुचरिष्णुता. **14** Are we to read स्वजने for प्रजने ? **17** Rather मुतविद्भिरार्यैः or even कृतिवि°. **21** ममर्दुः irregularly used for मम्लुः. **23** Rather स्वकशो or स्वकयान्. **24** Rather मदान्धान्करिणः. **25** Should we read स्वमुखं for स्वमुखं ? rather विषण्णा. **27** आस separately used also in 48 below. **29** One ते redundant. **34** Should we read सपिशाचसंघैः ? ; if not निश्चलं, then निश्चलस्थु°. **35** Rather स्वेदाङ्गसंसक्त°, and मुनयोऽभितष्टुः. **38** Better °रजक्षयाय ; and शय्यापल्यङ्क-वज्रोत्कुटकासना. **41** In *a* कर्मधारय with इन्. **45** Note the strange Sandhi ग्रामे + एकरात्रं. **52** Better ससिंहविक्रीडित°. **54** Rather सप्तस्ववगृह्य. **55** Rather शैलान्तरे. **56** Are we to read प्रायुञ्जनादन्न च रात्रिभागे ? **57** क्रीडकृतं is a strange Sanskritisation of the Prākrit कीअगडं = क्रीतकृतं usually ; it is a technical term indicating a fault of food. **64** Rather पक्षमासचान्द्राय°. **67** Rather °नैकविधा-भिरीशा ; auxiliary separated, **69** Rather सुगुणैरुपेता. **70** Are we to read स्वेदामलश्चैव ? **72** Rather केचिद्बभूवुर्हि महा°. **74** Better स्थिरमतयः. Note the form त्रिंशतितमः in the colophon.

CANTO XXXI

2 Rather दारद्रयाषा. **3** Rather अर्थाननर्थमतिमान्. **4** मातृपितृ° etc. irregularly for मातापितृतुल्यौ. **6** Rather गणाग्रणीः. **7** Better °प्रभङ्गानधीयते. **8** Rather प्रणिन्युर्बुद्ध्य°. **10** Rather वाक्कायचित्तैः, and तं त्रिविध. **13** °यष्टयस्ताः appears to stand irregularly for °यष्टीकास्ताः. **18** Are we to read यथानुपूर्व्यमलैः°? **29** Rather यमौषधैस्तैः. **32** तुम्बं appears to be a Prākrit word; rather प्रातबद्धनेमिं; better कृष्णायसतीक्ष्ण°; and स मुनिर्जिगाय. **34** Rather समूलकाषं विधिना चकार, and समूलोद्धरणाश्चकार. **36** Better मानं जिगाय प्रति मार्दवेन. **38** Rather कदाचिदेकोऽप्यक्ष° to justify the use of Acc. **41** निरजिताना irregularly for निरकाना. **43** एकमनःप्रविष्टः irregularly for एकप्रविष्टमनाः. **53** Better परिपक्वचित्तैः. **64** आराधितुं irregularly for आराधयितुं. **66** Better कालप्रधानैः° **69** विचिकित्सन irregularly for विचिकित्सां. **71** Rather खेदो महान् बाक्तनु. **73** दोषान्यतम irregularly for अन्यतमदोष; rather °विधानमिष्टम्. **74** Rather तपस्तत्. **82** सुसाधयित्वा irregularly for सुसाध्य. **86** Should we read °शिखान्तुदेर्भिस्तृणाग्र? **90** Better देहात्मनोर्भेद°, °भेदस्तुद°, and विद्वानयैतत् कथमत्र. **92** Rather यथाम्बु. **94** Are we to read यथापि नुर्वह्नि° and च भस्मना? **99** Should we read °चित्तः प्रणिधान-संस्थः? **102** Rather °विधानुकम्पी. **107** Better प्रापदत्तो. **113** अगत्वम् + आ + आप्. **114** Second line is metrically short, so better यत्प्राप्तं किल सुखदुःखमप्रचिन्त्यम्. Note the form एकत्रिंशतितमः in the colophon.

INDEX

(OF PROPER NAMES IN THE TEXT)

This Index includes the proper names from the Text of *Varāṅgacarita* Only one occurrence, preferably the first, is noted in the case of persons etc from the story proper Jaina technical terms such as the names of fabulous regions, hells and heavens are omitted Some obscure names could not be included In some cases the following appreviations have been used : *c* = clan or country, *g*=gotra, *k*=king, *m*=minister, *p*=prince or princess, *q*=queen, *ś* = Śalākāpuruṣa or Kāraṇamānuṣa, *t* = *town*.

Abhicandra, xxvii 35
Abhinanda, *ś*, xxvii 37.
Ābhīraka, *c*, xvi. 32.
Acala, *ś*, xxvii 43
Ādirāja, xxii 35.
Ajita, *m*, ii 14 etc
Ajita, *ś*, xxvii 37
Amalavāhana, xxvii 34.
Amātirāṣṭra, *c*, xxi 57
Anangasenā, *p*, ii 60.
Ananta, *m*, ii 14 etc
Ananta, *ś*, xxvii. 38
Ānartapura, *t*, xxi 28
Anga, *c*, ii 62 , xvi 32
Angirasa, *g*, xxv 5
Ano, xxv 77
Anupamā, *p*, ii 11 , xv 34 , etc
Aparājita, xxvii 79
Apratimalla, xvii 26
Ara, *ś*, xxvii 39, 41
Ariṣṭanemi, *ś*, iii. 1, xxv 59 , xxvii. 39
Arkakīrti, xxii 34
Asita, *c*, xvi 33
Aśmaka, *c*, xvi. 32
Aṣṭāpada, xxii 35
Aśvagrīva, *ś*, xxvii 44
Aśvasena, xxvii 73
Ātreya, *g*, xxv 5
Atulyā, *q*, ii 11
Audra, *c*, xvi. 33
Audraka, *c*. viii 3.
Avācā (?), xxvii 75
Āvantikā, *c*, xvi. 32.
Bāhlika, *c*, viii 3.
Bakula, xxvii 80
Bakuleśvara, *k*, xx 80
Balāhaka, xviii 7
Bali, xxv 77.
Bali, *ś*, xxvii 44
Balin, xxiv, 33.
Barbaraka, *c*, viii 3, 6
Bhadrapurī, *t*, xxvii 83.
Bhāgīrathī, xxv 55
Bhānurāja, xxvii 72.
Bharata, xxvii 36
Bharata, *ś*, xxvii, 40
Bharatesvara, iii 32, see Bharata
Bhārgava, *g*, xxv. 5
Bhīṣma, xxv 48.
Bhojakula, *c*, i 46
Bhṛgalīśvara, xii, 29.
Brahmā, xxv 76, xxvii 78, xxviii. 35
Brahmadattā, xxvii 76
Brahmadeva, *ś*, xxvii. 41
Buddha, xxv. 82, 84

Cakradhara, xxv 55
Cakrapura, *t*, ii 61.
Cakṣuṣmat, xxvii 34
Campāpura, *t*, xxvii 83, 91.
Candrābha, xxvii 35
Candradatta, xxvii 78.
Candraprabha, *ś*, xxvii 37.
Candrapura, *t*, xxvii, 82.
Cāṇūra, xxv 77.

Caraka *c* xvi 33
Citrasena *m* ii 14 etc

Datta *s* xxvii 42
Devasena *k* ii 23 etc
Devasenya *p* ii 19
Dhana xxi 55
Dhanadatta *p* ii 70
Dharanisuta (?) xxiv 35
Dharma *s* xxvii 38 43 80
Dharmamitra xxvii 79
Dharmasena *k* i 46 ii 1
Dharmasimha xxvii 79
Dhivara *m* ii 14 xxi 9
Dhrtisena *k* ii 10 etc
Drona xxv 44
Dvapara (yuga) xxv 9
Dvipista xxvii 42
Dvisamtapa *k* ii 32

Gandhara *c* viii 3
Ganga xxv 46 48
Gardabha (?) xxv 78
Gargya *g* xxv 5
Gautama xxiv 34 xxv 79
Gautama *g* xxv 5
Girivraja *t* ii 61
Gunavati *q* i 63 xii 10

Hara xxviii 35
Hari *c* viii 4 etc
Hari *s* xxvii 41
Hari sarathi xxv 76
Hiranya garbha (Visabha) iii 32

Iksvaku *c* viii 4 xxii 86
Indrasena *k* xvi 5
Istapura *p* ii 60
Isvara xxv 46

Jaladhi vrddhi = Sagara xx 62 etc
Janardana xxi 29 xxv 59
Jarasandha xxi 29
Jaya xxvii 79
Jaya xxvii 75
Jayadharma xxvii 73
Jayasena *s* xxvii 41
Jitarat xxvii 71
Jitasatru, xxvii 71

Kailasa *m* xxv 58 xxvii 91
Kakandi *t* xxvii 83
Kala xiv 7
Kalinga *c* xvii 32 xxi 55
Kaliya naga xxi 29
Kaliyuga xxv 10
Kamadeva xxiv 33
Kamatha xxv 44
Kamboja *c* viii 3 6
Kampilya *t* xxvii 84
Kamsa xxv 77
Kantha xxv 44
Kartikeya xxv 53
Kasi *c* xxi 56
Kasmira *c* viii 3 6 xvi 33
Kascidbhata = Varanga xiv 66
Kasyapa *g* xxv 5 xxvii 88
Katyayana *g* xxv 5
Kaundinya *g* xxv 5
Kausambi (?) *t* xxvii 82
Kausika *g* xxv 5
Kausumbhi xiii 59
Kautsa *g* xxv 5
Khasa *c* viii 3
Kirata *c* viii 3
Kosala *c* ii 62 xvi 32 etc
Krsna *s* xxvii 42
Krsnasatru *s* xxvii 44
Krtavarma xxvii 72
Krtayuga xxv 9
Krura xxv 23 25
Ksemandhara xxvii 33
Ksemankara xxvii 33
Ksudramatsya (fish) v 103
Kuladhipa — Bakuladhipa xxi 58 63
Kumara xxv 53 79
Kumari xxv 54
Kumbharaja xxvii 73
Kundapura *t* xxvii 85
Kunta *c* xvi 33
Kunthu *s* xxvii 39 41
Kuru *c* viii 4 xxv 56 etc
Kuruksetra xxv 48 56
Kusumbha, xiii 58

Laksmana xxvii 75
Laksmipura *t* i 34
Lalitapura *t* xiv 85

Madhukaiṭabha *s* xxvii 44
Madhupingala xxv 21
Madhuprabha xvi 9
Madhura *t* xvi 5
Magadha *c* xvi 32
Maghavan xxiv 34
Maghavan *ś* xxvii 40
Mahabala xxvii 71
Mahakala xiv 7
Mahapadma *ś* xxvii 41
Mahendra xvi 33 xxvii 78
Mahendradatta *k* ii 32
Mahendrasena *k* xvi 31
Makaradhvaja *k* ii 32
Malava *c* xxi 57
Malli, *ś* xxvii 39
Māṇḍavya *g* xxv 5
Mangala xxvii 74
Manimat xxi 27
Manohara (park) iii 5
Manohara *p* xxi 72
Manorama *p* xix 39
Marudeva xxvii 36
Marudevi xxvii 74
Matapan ta (?) xxv 57
Matsya *c* xv 32
Maudgalya *g* xxv 5
Megharaja xxvii 71
Meraka *s* xxvii 44
Mithila *t* xxvii 84
Mitra xxvii 76
Mitramsaha *k* ii 33
Mṛgasena *q* xii 4
Mucukunda xxv 78
Murarin xxiv 33

Nabheya *s* xxvii 37
Nabhi xxvii 35 71
Nagapura *t* xxvii 85
Nami, *s* xxvii 39
Nanda xxvii 79
Nanda xxvii 75
Nandi *s* xxvii 43
Nandi xxvii 80
Nandimitra *s* xxvii 43
Narayaṇa, *s* xxvii 42
Narta pura = Ānarta xxi 29
Nisumbha xxv 76 xxvii 44
Nṛsimha *s* xxvii 42

Padma *s* xxvii 43
Padmabha *s* xxvii. 37
Padmajit xxvii 78
Padmalaya xxvii 76
Pallava *c* xxi 56
Pancalaka *c* xvi 33
Paṇḍu xxv 57
Parasara xxv 44
Parsva *s* xxvii 39
Parvatiya *k* xvi 64
Pavapura *t* xxvii 91
Pinakin xxiv 33
Prahlada *ś* xxvii 44
Prasenajit xxvii 35
Pratisruti xxvii 33
Priyakarini xxvii 76
Priyakarini *p* ii 62
Priyavrata *p* ii 61
Pṛthvi xxvii 74
Pulindaka *c* viii 3
Punarvasu xxvi 79
Puṇḍarika *s* xxvii 42
Puṇḍra *c* xvi 32
Puruṣottama, *s* xxvii 42
Puṣkara xxv 58
Puṣpadanta *s* xxvii 37
Puṣpadeva xxvii 78

Rajagṛha *t* xxvii 84
Rakṣita xxvii 74
Rama xxiv 32 xxvii 43
Ramya i 31
Ramyataṭa *t* i 32
Ratnapura *t* xxvii 84
Ravaṇa *s* xxiv 32 35 xxvii 44
Rṣabhadatta xxvii 80
Rudra xxv 74 84

Sagara *s* xxvii 40
Sagarvṛddhi xiv 6 etc
Saindhava *c* xvi 33
Saketa, xxv 21 xxvii 81
Śakti xxv 44
Śambhava, *s* xxvii 37
Sammati xxvii 33
Sammedaśaila xxvii 92
Samṛddhapuri *t* ii 10 etc
Samudragupta or datta *k* ii 32 etc
Samudravijaya xxvii 73

Sanatkumāra, *k*, ii 32.
Sanatkumāra, *s*, xxvii 46
Sankara, xxv 45
Śāntanava, xxv 48
Śānti, *ś* xxvii 38, 41
Sarasvati, xxi 28
Sarvasri, xxvii. 75.
Saumyā, xxvii 74
Saurāṣṭra, xvi 32
Śauryadharmā, xxvii 72
Śauryapuri, *t*, xxvii 85
Sauviraka, *c*, xvi 33
Senā (?), xxvii 74
Siddhārtha, xxvii 73
Siddhārthā, xxvii 74
Simandhara, xxvii 34
Simankara, xxvii 34
Simhala *c* viii 3
Simhapura, *t* ii 56
Simhapuri, *t* xxvii 82
Simhasena, xxvii 72
Śitala, *ś* xxvii 38
Śivadevi, xxvii 76
Soma, xxvii 78
Somadeva, xxvii 78
Somadevi, xxvii 76
Śrāvasti, *t* xxvii 82
Śreyān, *s*, xxvii 38
Śreyān, xxvii 78
Śri, xxv 58
Śrimalaya, ii 60
Śriparvata, xxv 58
Śripuṣkara xxv 58
Subhauma *s* xxvii 41
Subuddhi, xii 16
Suchukrunda (?), xxv 78
Sudarśana, xxvii 73
Sudatta, xxvii 80
Sudṛḍha, xxvii 72
Sudṛṣṭa *ś*, xxvii 43
Sugātra, xxviii 5
Sugrīva, xxvii 72
Suhma, *c*, xvi 32
Sukeśi, *p*, ii 61
Sulabhā, xxv 21
Sumati, *ś*, xxvii 37
Śumbha, xxv 76
Sumitra xxvii 73 79
Sunandā, *p*, ii 20 etc
Sunandana, xxvii 79
Supārśva, *ś*, xxvii 37.
Suprabha, *s*, xxvii 43
Supratiṣṭha, xxvii 71.
Surasena = Devasena, xxi 5
Surendra, xxvii 78
Suṣeṇa, *p*, xi 84
Sutanu = Varāṅga, ii 73
Suvrata, *s*, xxvii 39
Suvratā (?), xxvii 75
Svayambhū, *s*, xxvii 42
Svayamvara, xxvii 71
Śyāminikā, xxvii 75

Tāraka, *s* xxvii 44
Tilottamā, xxv 76
Tretāyuga, xxv 9
Tripiṣṭa, *s*, xxvii 42
Tripura, xxv 74

Udadhi Vṛddhi = Sāgara, xx 36.
Udgama, xxv 44
Ugra, *c*, viii 4, xv 129, etc.
Ujjayanta, xxv 59
Umā xxv 74, 79
Upendrasena, xvi 5
Ūrjayanta, xxvii 91
Uttamapura, *t* i 33

Vaidarbha, *c*, xvi 33
Vaidiśa, *c* xvi 33, etc
Vaiṣṇavi, xxvii 75
Vajrāyudha, *k*, ii 32, etc
Vanga, *c* xvi 32
Vaprini, xxvii 76
Vapuṣmati, *p*, ii 59
Varadatta, iii, 2, etc
Varāṅga, ii 1 etc
Vārāṇasi *t* xxvii 83
Varatanu = Varāṅga xx 30
Vardhamāna, *s* xxvii 39
Vāsava, xxiv 35
Vasiṣṭha, *g* xxv 5
Vasiṣṭha, xxv 44
Vasu, xxi 55, xxvii 74 etc
Vasumdharā, p ii 60
Vāsupūjya, *s*, xxvii 38
Vibudha, xxi 56
Vijaya, *m*, xvi 67
Vijaya, *ś* xxvii 43
Vijayasenā, xxvii 74
Vimala, *ś* xxvii 38
Vinayamdhara, *k*, ii 32

Vindhyapala *c* xvi 32
Vindhyapura *t* ii 56
Vinita i 23
Virasena *k* xvi 60
Visruta xxvii 76
Viṣṇu xxv 77 78 84 etc
Viṣṇu xxvii 72
Visvasena *p* ii 62
Visvasena xxvii 72
Vṛṣabha xxv 58 etc
Vyasa xxv 44

Yadu *c* xxi 29 xxv 59
Yadu pravira (?) xxv 23
Yasasvan xxvii 35
Yasovati i 59

ADDENDA ET CORRIGENDA

For		Read
Canto I		
18*b*	क्षमा	क्षमा.
40*d*	नक्तं दिवं	नक्तंदिवं.
57*c*	°वपू°	°वपुर्विनय°.
64*b*	F.note 1	१ [कामैकभावरति].
Canto II		
3*c*	F.note 1	१ [कलाकलाप].
38*c*	साधु कृतात्म°	साधुकृतात्म.
50*d*	F.note 1	१ [आह्वायया कार्यविदो].
93*b*	पैशून्य°	पैशुन्य°.
Canto III		
1*b*	प्रणष्ट°	प्रनष्ट°.
Canto V		
31*c*	पतन्त्युत्पत्य	°न्त्युत्पत्य.
41*b*	केचिदुत्कृत्य	°कृत्य.
45*a*	पिषन्ति	पिंषन्ति.
45*b*	°काश्चिन्मृ°	°काश्चिन्मृद्नन्मृ°.
46*b*	°विद्धा	°विद्ध्वा.
57*c*	बध्वान्ये	बद्ध्वान्ये.
83*a*	°छिन्न	°च्छिन्न.
96*a*	मध्यान्हे	मध्याहे.
96*b*	वन्हि	वह्नि.
98*c*	गृण्हीया	गृह्णीया°.
Canto VI		
25*c*	सवेदनानि°	सवेदना नि°.
52*b*	जरा	जरा.
54*b*	[⏑ – –]	[⏑ – –]².
55*b*	°निर्वेदमुक्ता	°निर्वेदयुक्ता.
Canto VII		
6*b*	°हैमवर्णा	°हेमवर्णा.
8*c*	°क्षमानि	°क्षमाणि.
16*b*	F.note 2	२ [सशान्त्रजदुन्दुभींश्च].
35*c*	नाभ्या	नाभ्या.
54*a*	दर्शनेभ्यः	°दर्शनेभ्यो.
54*c*	दत्वेह	दत्त्वेह.
57*d*	शशिस्स्व°	शशिस्व°.
Canto VIII		
18*a*	नरदेववृत्त°	नरदेव वृत्त°.
30*b*	°भीर्भर्त्सन°	°भीभर्त्सन°.
36*c*	आजन्मनः	आ जन्मनः.
43*d*	स पुण्यः	सपुण्यः.
45*c*	श्रुण्वन्न°	शृण्वन्न°.
46*b*	F.note 4	[वादित्रका°].
Canto IX		
21*d*	°भिन्नान्धा°	भिन्नान्ध.
24*a*	°वापी ह्रद	°वापीह्रद°.
37*a*	मेघा शनि	मेघाशनि°.
43*a*	वभावतो	स्वभावतो.
49*c*	ईयु°	इयु°.
Canto X		
27*a*	लोके नल	लोकेऽनल°.
28*c*	°प्रकृत्य	प्रकृत्य².

For		Read
59*c*	पृष्टा	पृष्टास्त्वया.
60*b*	सुधाभिः	सुधीभिः.
63*c*	विजह्रुः	विजह्रुः.

Canto XI

1*c*	कृताञ्जलि°	कृताञ्जलि°.
9*c*	सशकरं	सशर्करं
11*d*	प्रणष्टः	प्रनष्टः.
38*d*	२८	३८
39*c*	°सौख्यमाजीवि°	°सौख्यमा जीवि°.
70*c*	प्रणष्ट°	प्रनष्ट°

Canto XII

21*b*	वक्तम°	वक्तुम°.
21*d*	माना ससु°	°मानास सु°.
39*a*	°मङ्गाङ्ग°	°म गाङ्ग°.
55*b*	स्थितेनैव	स्थिते नैव.
64*b*	F.note 6	६..... [समस्तुत].
80*c*	°विदग्धो	°वदिग्धो.

Canto XIII

3*c*	°र्यासोः	°र्वियासोः.
29*a*	निगूह्य	निगुह्य.
56*b*	°दर्शके	°दर्शके°.
67*a*	°वान्नोद°	°वान्नौद°.
88*b*	°भत्यं	°भृत्यं.

Canto XIV

51*b*	°कर्पटोऽज°	कर्पटो ज°.
59*d*	°दधुरा	°ददुरा°.
62*c*	समान्न°	सभान्न°.
66*a*	°वृद्ध°	वृद्धि°.
98*a*	°कल्कन्धु°	°कल्गनु°.

For		Read
Canto XV		
4*a*	°निवृत्त्या	°निवृत्या°.
7*b*	दव°	देव°.
28*a*	वत्स	वत्सं.
41*a*	काश्विद्धे°	काश्विद्धि°.
94*b*	ध्रवं	ध्रुवं.
103*b*	त्युर्भ°	मृत्युर्भ°.
106*b*	°पेष्यति	°पैष्यति.
136*c*	°लाक्ष्यि°	°लाक्षिण्य°.

Canto XVI

8*b*	°स्रति°	°स्रुति°.
30*d*	°देवाशु	दैवाशु.
72*b*	त्वमवैहि	त्वमवेहि.
74*c*	°कर्षी	°कर्षि.
98*d*	°मास्व	°मारस्व.
100*b*	विषयेन	विषयेण.
101*d*	मयाय	ममायं

Canto XVII

22*b*	ये प्रति	येऽप्रति°.
40*b*	°लका हला°	°लकाहला°.
41*c*	°पूर्णानव°	°पूर्णान्य°.
43*b*	सेनाऽप्र°	सेना प्र°.
44*b*	प्रतिशा नि°	प्रतिशानि°.
48*d*	F. note	६ [श्वासुरन्ये].
71*a*	चरण°	च रण°.

Canto XVIII

11*c*	आदन्त°	आ दन्त°.
11*d*	ममर्जु°	ममज्जु°.
23*a*	°चोद्ययाता°	°चोद्य याता°.
32*c*	°मनोरञ्ज°	मनो रञ्ज°.
74*d*	°नया लौ	°नयालौ.

For		Read		For		Read
78c	लब्धीन्द्र°	लब्धिन्द्र°.	24a	प्रश्रयणो°	प्रश्रवणो°.
83a	°योच्छिन्न°	°योभिछन्न°.	32a	स्नाना°	स्नाता°.
90d	°कम्पितं	°कलितं.	40b	ह्यप्सरसा	ह्यप्सरसां.
93c	साधुयशो°	साधु यशो°.	53a	°पताका नि°	°पताकानि°.
95b	°किरच्छ°	°किरब्छ°.	63c	पठंस्तो°	पठन्स्तो°.
103c	सशरौ°	स शरौ°.	73c	प्रभुनैव	प्रभुणैव.
117a	°धाम°	°दाम°.	76c	त नृसु°	तन्नृसु°.
128c	°दुद्भत	°दुद्भूत°.	92d	दत्वा	दत्त्वा.

Canto XIX

11c	कन्या°	कन्यां°.
14b	महान्प°	महाप°.
48c	°मासे	°मास्से.
50a	ह्रवाणा	ह्रुवाणा.
51b	°रङ्गतन्वी	°रङ्ग तन्वी.

Canto XX

44d	वान्सह.	वान्स ह.
83a	°धुरं भजता°	°धुरा भज ता°.
84d	°नृपतिना	नृपतिता.

Canto XXI

26c	दुर्धराः	°धूर्धराः
42d	चकासिरे	चकाशिरे.
60d	°भ्युपंतु	°भ्युपैतु.
67a	°ष्ठा तनया	°ष्ठां तनया.

Canto XXII

6c	°च्छिन्नात्मा°	°च्छिन्नान्मा°.
39b	°ध्रेवा	°ध्रुवा .
54d	F. note	५ [...प्रणयस्व बु°].

Canto XXIII

2a	°रुचा वि°	रुचावि°.
4b	दत्वा	दत्त्वा.
23d	प्रापूय	प्रापूर्य.

Canto XXIV

23c	गृहीता	ग्रहीता.
27a	°लोदन	°लौदन.. ष्ट.
38b	कर्मकर्तुः	कर्म कर्तुः
45c	°त्सुशून्य	°त्सु शून्य.
50a	°ष्यदिको°	°ष्यदि को°.

Canto XXV

3d	पित्रैक°	पित्रेक°.
55c	°गतानु°	°गतानू°.
66d	°तश्वः	°तश्व.
75a	वेदसुरे°	वेद सुरे°.

Canto XXVI

18c	च्छाया	छाया.
50d	प्रोक्ताः	प्रोक्ता.
61d	महर्घिणः	महार्घिणः.
73b	°चक्ष्यते	चक्षते.

Canto XXVII

4b	सप्तभि°	सप्तभिः.
25d	°भवाभुवां	°भवा भुवां.
28b	°सर्ग प्र°	°सर्गप्र°.
32b	°विंशति	विंशति°.
52b	दशोदिता	दशोदिताः.
89a	पार्श्वौ	पार्श्वो.

For		Read
Canto XXVIII		
34*c*	सुरक्ष°	सुरक्ष्य°.
60*b*	आपृच्छ°	आप्रच्छ°.
86*b*	नाथेन	नाथे न.
Canto XXIX		
16*a*	भित्वा°	भित्त्वा°.
29*a*	आबाल्य°	आ बाल्य.
68*c*	समीक्ष्य°	समीक्ष°.
82*c*	यथा सुख	यथासुख.
86*c*	आजीवि	आ जीवि°.
98*b*	नारा	नाराः .
Canto XXX		
18*d*	°स्तै ऋषि°	°स्तैऋषि°.
51*b*	°पैशून्य°	°पैशुन्य°.
60*d*	निश्रेयस°	निःश्रेयस°.
Canto XXXI		
60*a*	आजीवि°	आ जीवि.
64*a*	उदन्मु°	उदङ्मु°.

PARAMĀTMA-PRAKĀŚA & YOGASĀRA

Parmātma-prakāśa of Yogīndudeva, An Apabhraṁśa Work on Jaina Mysticism :

The Apabhraṁśa Text edited with Brahmadeva's Sanskrit Commentary and Daulatarāma's Hindī Translation, with a Critical Introduction, Various Readings etc, etc. ; and also *Yogasāra* critically edited with the Sanskrit Chāyā and with the Hindī translation of Pt Jagadishchandra Shastrī, by A N UPADHYE, M A., Professor of Ardhamāgadhī, Rajaram College, Kolhapur ; Published by the Secy, Rāyachandra Jaina Śāstramālā, Royal 8vo pp 12-124-396, Bombay 1937.

Select Opinions and Reviews :

Dr LUDWIG ALSDORF, Berlin University, Germany ·

'I have read the latter [i e Intro] with great interest, and I feel bound to say that you have done very valuable research work and given an extremely useful contribution towards the knowledge of Apabhramśa and Jaina mysticism.'

Dr. L SUALI, Pavia University, Italy .

' you have given us a first-rate piece of work. The amount of information you have spread through the Introductions is wonderful and the method of your editing is really sound '

Dr. N P. CHAKRAVARTI, Government Epigraphist, Ootacamund ·

'I am glad that you have not only spared no pains regarding the text but have also added an exhaustive Introduction which is always very useful in a publication of this kind.'

Dr. S. K. DE, University of Dacca, Dacca :

'You have omitted no relevant points from your discussion and your edition of this difficult text is all that one can desire . Your discussion of the general philosophical implication of the doctrines is interesting and scholarly, while your study of the Apabhraṁśa of the text is highly informative and lucid . I have nothing but great admiration for the patience, industry and learning displayed by this work.'

Dr. A BERRIEDALE KEITH, Edinburgh University :

'You have again made an important and valuable contribution alike to the study of Apabhramśa and of Jaina mysticism.'

Dr. B R SAKSENA, Allahabad University :

'श्री° आदिनाथ उपाध्याय जैन प्राकृत तथा इतर जैन-साहित्यके प्रगाढ़ पंडित हैं। प्रसिद्ध ग्रंथ 'प्रवचनसार' का सुंदर और सर्वांगपूर्ण संस्करण निकालकर उन्हों ने पहले ही विद्वन्मंडली में आदर और सत्कार पाया है। प्रस्तुत ग्रंथके द्वारा उन्हों ने अपनी कीर्ति को और उज्ज्वल किया है।.....इतने सुसंपादित ग्रंथ विरले ही देखनेको मिलते हैं।.

PROF. L. V. RAMASWAMI AIYER, Ernakulam, Cochin :

'The chapter on the language of Paramātma-prakāśa and particularly the comparisons with Hemacandra are exceedingly useful and suggestive to the student of Indo-Aryan Linguistics'

Dr. LAKSHMAN SARUP, University of Punjab :

' ..your excellent essay on Joindu and his Apabhraṁśa works. You have taken great pains Some such Introduction was a long-felt desideratum.'

M. GOVIND PAI Esq., Manjeshvar :

'There is hardly any doubt that your essay is very scholarly and no less exhaustive.'

Pt. D. L. NARASIMHACHAR, Mysore :

'It is so erudite and thorough that it is difficult to add anything more to it. You have made use of all the available material and presented it tellingly and briefly.'

Prof. P. V. RAMANUJASWAMI, Vizianagaram :

'Let me congratulate you on the production of a learned and critical essay on the most important of Apabhramśa writers I was wondering till now what the source of Hemachandra's verses could be. I am very grateful to you and every lover of Prakrit must similarly be.'

For copies write to · Manilal Revashankar Jagjivan Jhaveri, Rayachandra Jaina Sastramala, Jhaveri Bazar, Bombay 2, India.

वीर सेवा मन्दिर
पुस्तकालय
काल न० 229
लेखक Jata, Simhanandi's
शीर्षक Varangacarita.
खण्ड क्रम संख्या 75